CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

महाकविश्रीजयदेवप्रणीतं

श्रीगीतगोविन्दम्

संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयोपेतम्

कुलपतेः प्रो. अशोककुमारकालियामहोदयस्य प्रस्तावनया विभूषितम्

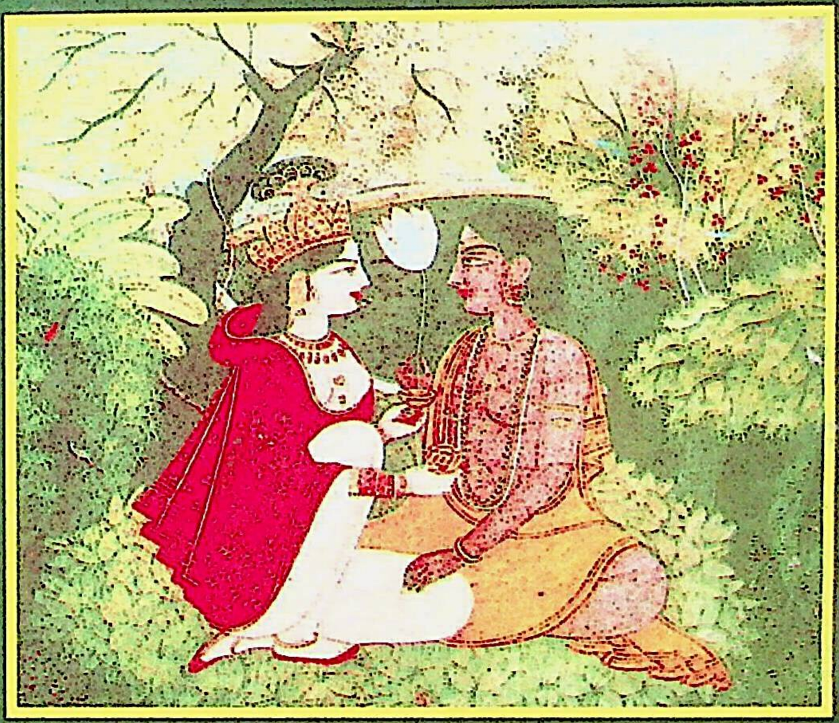

सम्पादकः

प्रो० विद्यानिवासमिश्रः

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५.१

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

श्रुतम् मे गोपाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

GAṄGĀNĀTHAJHĀ-GRANTHAMĀLĀ

[Vol. 26]

ŚRĪ GĪTAGOVINDAṂ

OF

MAHĀKAVI ŚRĪ JAYADEVA

WITH THE COMMENTARIES

'ŚRĪ GĪTAGOVINDAVYĀKHYĀNAṂ'

BY

ŚRĪ PRABODHĀNANDA SARASVATĪ

HINDĪ COMMENTARY BY

PROF. VIDYA NIWAS MISHRA

FOREWORD BY

PROF. ASHOK KUMAR KALIA

VICE-CHANCELLOR

EDITED BY

PROF. VIDYA NIWAS MISHRA

EX-VICE-CHANCELLOR

Mahātmā Gāndhī Kāśīvidyapīṭha

and

Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi

VARANASI

2005

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Research Publication Supervisor—
Director, Research Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

ISBN : 81-7270-172-1

❒

Published by—
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Director, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002

❒

Available at—
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002

❒

First Edition : 500 Copies
Price : Rs. 320.00

❒

Printed at—
Tara Printing Works
Kamachha, Varanasi-221 010

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गङ्गानाथझा-ग्रन्थमाला
[२६]

महाकविश्रीजयदेवप्रणीतं

श्रीगीतगोविन्दम्

श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीकृतया
श्रीगीतगोविन्दव्याख्यानाख्यटीकया

प्रो. विद्यानिवासमिश्रकृत-हिन्दीव्याख्यया

कुलपतेः प्रो. अशोककुमारकालियामहोदयस्य प्रस्तावनया च विभूषितम्

सम्पादकः
प्रो. विद्यानिवासमिश्रः
कुलपतिचरः
महात्मागान्धीकाशीविद्यापीठस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य च
वाराणसी

वाराणस्याम्

२०६२ तमे वैक्रमाब्दे   १९२७ तमे शकाब्दे   २००५ तमे खैस्ताब्दे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ISBN : 81-7270-172-1

अनुसन्धान-प्रकाशन-पर्यवेक्षकः –
निदेशकः, अनुसन्धान-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी।

❐

प्रकाशकः –
डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी
निदेशकः, प्रकाशन-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी-२२१ ००२

❐

प्राप्ति-स्थानम् –
विक्रय-विभागः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य
वाराणसी-२२१ ००२

❐

प्रथमं संस्करणम् : ५०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम् : ३२०.०० रूप्यकाणि

❐

मुद्रकः –
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
कमच्छा, वाराणसी-२२१ ०१०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

संस्कृत-साहित्य में महाकवि श्रीजयदेव का 'गीतगोविन्द' अजर, अमर तथा अद्वितीय नाट्यकाव्य है। इसमें कवि ने प्रेम-भक्ति की जो स्रोतस्विनी की निर्मल धारा प्रवाहित की है, उसका एक-एक बिन्दु प्रेमियों, भक्तों तथा सहृदयों के हृदयों को उद्वेलित, विस्मित और आनन्दित कर देता है।

बारह सर्ग वाले इस काव्य के एक सर्ग में कम-से कम एक, अधिक से अधिक चार अष्टपदियाँ हैं। प्रत्येक अष्टपदी के आदि और अन्त में कथायोजक सूत्र के रूप में अथवा आशीर्वचन के रूप में श्लोक हैं। अष्टपदियाँ गेय तथा अभिनेय हैं। महाकवि जयदेव का 'गीतगोविन्द' सरस-मधुर कविता की पराकाष्ठा का निदर्शन है। भक्ति तथा सरस कविता का एकत्र समावेश जैसा गीतगोविन्द में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। स्वयं श्रीजयदेव ने ही कहा है–

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलिं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्।।
(गी.गो. १.३)

पण्डित श्री विद्यानिवास मिश्र जी ने सरस-मधुर काव्य 'गीतगोविन्द' की सरस, मधुर और ललित व्याख्या प्रस्तुत कर सौवर्णिक सुगन्ध बिखेर दी है। भारतवर्ष के हर प्रान्त और भाषा में इस मधुर काव्य की अनेक प्रकार की टीकाएँ उपलब्ध होती हैं। किसी ने उसके अलङ्कार, रस एवं छन्द के सिद्धान्तों के अनुसार व्याख्या की, तो किसी ने इसे वैष्णव-सम्प्रदाय का ग्रन्थ माना, तो कुछ ने इसे रहस्यवाद का ग्रन्थ स्वीकार किया। किन्तु पण्डित मिश्र जी ने 'गीतगोविन्द' की जो व्याख्या प्रस्तुत की है, वह अद्भुत, सरस, ललित और मनोहर है।

पण्डित जी ने जिस सूक्ष्मता से गीतगोविन्द का विवेचन प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त विलक्षण है।

'गीतगोविन्द' के प्रत्येक सर्ग में कृष्ण के एक विशेष नाम का उल्लेख हुआ है, जैसे प्रथम सर्ग में सामोददामोदर। पण्डित श्री विद्यानिवास मिश्र जी ने बहुत गम्भीरता एवं वैदुष्य से सर्गों के नामों का विश्लेषण किया है। वे बहुत तर्कसंगत बारीकी से बताते हैं कि दामोदर का अर्थ है– जिसका उदर रस्सी से बँधा हुआ हो, जो भयभीत हो। एक ओर वह सामोद है; क्योंकि वसन्त रस-नृत्य, गन्ध का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संचार उन्हें चारों ओर से घेरे हुए है, दूसरी ओर वह आतंकित है, रासेश्वरी की अनुपस्थिति से। सामोददामोदर में एक साथ दो व्यञ्जनाएँ हैं। पण्डित जी इसी प्रकार हर नामों की व्यञ्जनाएँ प्रत्यक्ष करते हैं, यह एक बड़ी उपलब्धि है।

पण्डित श्री विद्यानिवास मिश्र जी के शब्द 'गीतगोविन्द' के सार को जिस ढंग से पहचानते हैं, वह जयदेव के काव्य की अनुभूति और स्वयं पण्डित जी की गहरी चेतना का द्योतक है। गीतगोविन्द की सरस, मधुर, ललित व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए पण्डित श्री मिश्र जी को शतशः नमन करते हुए उनके प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

प्रकाशन-संस्थान द्वारा 'गीतगोविन्द' की श्री प्रबोधानन्द सरस्वती विरचित संस्कृत-व्याख्या प्रथम बार बंगला-लिपि से संस्कृत-भाषा में लिप्यन्तरण करके प्रकाशित हो रही है। पण्डित श्री विद्यानिवास मिश्र जी द्वारा मधुर एवं प्रभावशाली भाषा में निबद्ध हिन्दी-व्याख्या भी लोकोत्तर है, जिससे सत् चित् का आनन्द में और आनन्द का सत् चित् में विलयन हो रहा है एवं सत्यं शिवं सुन्दरं की फलश्रुति चरितार्थ हो रही है। इसके लिये संस्थान के निदेशक डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी अपने सहयोगियों के साथ बधाई एवं धन्यवाद के पात्र हैं। उन्हें शतशः आशीर्वाद प्रदान करते हुए आनन्दित हो रहा हूँ।

इस ग्रन्थरत्न के मुद्रक तारा प्रिंटिंग वर्क्स के सञ्चालक श्री रविप्रकाश पण्ड्या को भी भूरि-भूरि आशीर्वाद एवं धन्यवाद से विभूषित करता हूँ, उन्होंने सहज, सुन्दर, आकर्षक मुद्रण कर अति कल्याण किया है।

अन्त में जयदेव की कृति को देवाधिदेव महादेव के पादारविन्द में समर्पित करते हुए जयदेव का संकीर्तन करता हूँ।

वाराणसी
मकर-संक्रान्ति,
२०६२ वैक्रमाब्द
(१४-१-२००६ खैष्टाब्द)

(प्रो. अशोक कुमार कालिया)
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशकीय

प्रेम-भक्ति-शिरोमणि श्रीजयदेव कवि की कविता का अमृत पान करके तृप्त, चकित, घूर्णित तथा मोहित कौन नहीं होता एवं कौन ऐसा विद्वान् है, जो श्रीजयदेव की काव्यमाधुरी का पान कर मधुपवत् मधुभक्त न होता हो? जयदेव कवि का यह स्वाभिमान है कि अंगूर तथा इक्षुरस की मिठास उनकी कविता के आगे नीरस है। वे स्वयं अपने काव्य की प्रशंसा में लिखते हैं–

साध्वी माध्वी चिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीर-नीरं रसस्ते।
माकन्द[१]! क्रन्द कान्ताधरधरणितलं गच्छ यच्छन्ति भावं
यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि।।

(गी.गो. १२.४)

'गीतगोविन्द' आनन्द की सभी सामग्री देता है, जहाँ कोई रसिक, भक्त, प्रेमी मित्र न हो, वहाँ यह सब कुछ बनकर साथ रहता है। जहाँ गीतगोविन्द है, वहीं वैष्णवगोष्ठी है, वहीं रसिक-समाज है, वहीं वृन्दावनधाम है, वहीं प्रेमरसपूरित मानसरोवर है, वहीं भवसागर है, वहीं गोलोक है तथा वहीं प्रत्यक्ष ब्रह्मानन्द-स्वादसहोदर परमानन्द है।

महाकवि जयदेव का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीतगोविन्द' बारह सर्गों मे विभक्त है, जिसमें पूर्व में श्लोक तथा फिर गीत की अष्टपदियाँ हैं, जिनमें परस्पर विरह, दूती, मान, गुणकथन तथा नायक का अनुनय के साथ मिलन वर्णित है।

'गीतगोविन्द' पर भारत के प्रत्येक प्रान्तों एवं भाषाओं में सरस, मधुर व्याख्याएँ लिखी गयी हैं। यहाँ श्री प्रबोधानन्द सरस्वती विरचित संस्कृत-व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है, जो सरस एवं सरल रीति से भाव का स्फोरण तो करती ही है, उनके आध्यात्मिक रहस्यों को भी उजागर करती है।

विभिन्न प्रकार की व्याख्याओं और टीकाओं की परिपाटी के उपरान्त पण्डित श्री विद्यानिवास मिश्र जी की हिन्दी-व्याख्या अद्‌भुत, मनोहारी, ललित, संवेदनापूर्ण है। पण्डित मिश्र जी जहाँ एक ओर सर्ग के नामों की सार्थकता सिद्ध करते हैं, वहीं

---

१. मीठा फल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋतु के कालक्रम की ग्रन्थि को भी खोलते हैं। 'गीतगोविन्द' का प्रारम्भ होता है वर्षा के मंगल से और विरमित होता है, वासन्ती रसवृष्टि से। बहुत सूक्ष्मता से वे कहते हैं कि काव्य का प्रयोजन ही है राधा का कृष्ण को रँगना और कृष्ण का राधा को। यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि किसका रंग ज्यादा गहरा है। पण्डित जी कहते हैं कि यह काव्य दो प्राणियों की प्रेमगाथा नहीं, अपितु यह राधा के कृष्णमय होने का और कृष्ण के राधामय होने का गीत है।

इस प्रकार 'गीतगोविन्द' की रचना जैसी मधुर, कोमल तथा ललित है, वैसी ही पण्डित श्री विद्यानिवास मिश्र जी की व्याख्या भी अद्भुत, मधुर, लालित्यमयी सशक्त भाषा में प्रस्फुटित हुई है। उसे प्रकाशित करते हुए अत्यन्त आनन्द की अनुभूति हो रही है। सम्प्रति परमश्रद्धेय गुरुदेव पण्डित श्री विद्यानिवास मिश्र जी के चरणकमलों में श्रद्धा-सुमनाञ्जलि समर्पित करते हुए हृदय आनन्दविभोर हो रहा है।

इस ज्ञानयज्ञ के पुरोधा मनीषी कुलपति प्रो. अशोक कुमार कालिया जी के सत्प्रयास, सत्प्रेरणा, सद्भाव का ही फल है कि इस प्रकार के ग्रन्थों के प्रकाशन से विश्वविद्यालय की यशःकीर्ति बढ़ रही है, अतः उनके चरणों में कोटिशः नमन करते हुए हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस ग्रन्थ का सहज, शुद्ध मुद्रण करने के लिए तारा प्रिंटिंग वर्क्स के सञ्चालक श्री रविप्रकाश पण्ड्या को हृदय से आशीर्वाद देता हूँ एवं मुद्रण के माध्यम से संस्कृत-सेवा के लिये उनका आभार मानता हूँ।

अन्त में इस ग्रन्थपुष्पोपहार को माता अन्नपूर्णा एवं भूतभावन परमपावन काशीपति श्रीविश्वनाथ को समर्पित करते हुए राधा-माधव की कीर्ति, जयदेव की कृति को व्याख्यायित करने के लिये मनस्वी मानधन को शत-शत प्रणाम करता हूँ।

विद्वद्विधेय

वाराणसी
पौष-शुक्ल एकादशी
२०६२ वैक्रमाब्द
(१४-१-२००६ खैष्टाब्द)

(डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी)
निदेशक, प्रकाशन-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयानुक्रमणिका

विषयाः		पृष्ठाङ्काः
१. भूमिका		१-२६
२. प्रथमः सर्गः	सामोददामोदरः	१-७०
३. द्वितीयः सर्गः	अक्लेशकेशवः	७१-९९
४. तृतीयः सर्गः	मुग्धमधुसूदनः	१००-११३
५. चतुर्थः सर्गः	स्निग्धमधुसूदनः	११४-१३०
६. पञ्चमः सर्गः	साकाङ्क्षपुण्डरीकाक्षः	१३१-१४९
७. षष्ठः सर्गः	धन्यवैकुण्ठः	१५०-१५७
८. सप्तमः सर्गः	नागरनारायणः	१५८-१८६
९. अष्टमः सर्गः	विलक्ष्यलक्ष्मीपतिः	१८७-१९६
१०. नवमः सर्गः	मन्दमुकुन्दः	१९७-२०२
११. दशमः सर्गः	मुग्धमाधवः	२०३-२१५
१२. एकादशः सर्गः	सानन्दगोविन्दः	२१६-२३८
१३. द्वादशः सर्गः	सुप्रीतपीताम्बरः	२३९-२५८
१४. परिशिष्टम्	१. गीतगोविन्द : नया युगारम्भ	२५९-३०४
	२. संक्षिप्त-ग्रन्थानुक्रमणिका	३०५-३०६
	३. श्लोकपादानुक्रमणिका	३०७-३११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

'गीतगोविन्द' पर जितना भी लिखा जाय, कम है; क्योंकि 'गीतगोविन्द' ग्रन्थ मात्र नहीं है। यह काव्य-परम्परा है, नृत्य-शैलियों और गीति-शैलियों, रंग-लिपि और सरगम-लिपि और चित्र-शैलियों का मूर्त आधार है। शास्त्रीय और लोक दोनों प्रकार के नाट्य-प्रबन्धों की अभ्यास-पुस्तिका है, वैष्णव भक्ति की बार-बार अनुभावित प्राण-साधना है। यह भारत में संस्कृति-यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण मानचित्र है। इस पुस्तक के परिशिष्ट में इस सम्बन्ध में एक विशद परिचय मेरे शिष्य नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने दिया है। मैं उनके इस मत से सहमत नहीं हूँ कि श्री जयदेव का जन्म बंगाल में हुआ था। मैं श्री जगन्नाथ मंदिर की परम्परा और उड़ीसा में जयदेव की पदावली की प्रस्तुति की लम्बी परम्परा के आधार पर यही मानता हूँ कि वे उड़ीसा में ही पैदा हुए थे।

मैं उस विस्तार में न जाकर कुछ विशेष मुद्दों की चर्चा करूँगा। एक तो यह कि यह रचना नाट्य-प्रबन्ध है और नाट्य-प्रबन्ध से भी अधिक लीला-प्रबन्ध है; क्योंकि नाट्य-प्रबन्ध में तो प्रेक्षक और अभिनेता के बीच दूरी बनी रहती है, लीला-प्रबन्ध में प्रेक्षक भी लीला-प्रबन्ध के अंग बन जाते हैं, उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। नाटक में बराबर बना रहता है कि अभिनेता अभिनेता है, अभिनय नहीं है, लीला-प्रबन्ध में जो भी अभिनय करता है वह तद्रूप हो जाता है, उसमें कुछ क्षण के लिए दिव्य भाव आ जाता है, यदि वह सही तरीके से लीला कर रहा होता है। चित्रकार इसीलिए लीला-प्रबन्ध के क्षण को डूबकर अंकित करते रहे हैं। संगीतकार लीला-पदों के गायन के लिए नए-नए प्रयोग समाहित होकर करते रहते हैं। गीतगोविन्द को किनारे कर दें तो भारतीय प्रयोगधर्मी कला और चित्रकला के आधे से अधिक रचना-संसार से हम वंचित हो जायेंगे। इसलिए यद्यपि इसमें इन्द्रियों से अनुभाव्य रूप है, माधुर्य है और संगीत है, लय है, गति है, परन्तु यह समष्टिरूप है, ऐन्द्रिय नहीं है। निरीह ऐन्द्रिय सृष्टि की इतनी व्यापकता, इतनी गहराई, इतनी नई-नई आविष्कृति की समता सम्भव नहीं थी। इसे हम विस्तार में आगे बतालायेंगे। इस पुस्तक का उद्देश्य ही है कि प्रबोधानन्द की टीका के द्वारा इस ग्रन्थ के इस पक्ष की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट किया जाय। प्रबोधानन्द जी चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे और वे ठेठ अद्वैती से महाप्रभु के प्रभाव में रसचरित, भावुक भक्ति-साधक हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गए, चैतन्य सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। उनकी टीका कई दशकों पूर्व बंगलिपि में छपी थी। उसे देवनागरी लिपि में करके प्रकाशित करने का उद्देश्य यही है कि लोग इस भ्रम में न रहें कि यह संसारी दृष्टि से शृंगारी रचना है। यह शृंगार है; लेकिन एक विचित्र प्रकार का उज्ज्वल शृंगार है, जो विषयों को और विषयों से आसक्ति को जाने कहाँ बहा ले जाता है। मणिपुरी नृत्य-परम्परा में राधा-माधव-मिलन की पदावली प्रस्तुत करने का अधिकार बहुत परिपक्व शिष्याओं को ही गुरु देते हैं, जो निरन्तर राधा-कृष्ण को प्रस्तुत करते हुए उसी भूमिका में पहुँच चुकी हों, जिस भूमिका में अभ्यास के बाद योगी पहुँच जाता है। चित्रावलियों में भी हम यह बात पाते हैं कि वहाँ मानव की आकृति प्रकृति के सौन्दर्य में आवेष्टित है। अर्थात् उसमें प्रस्तुत होने वाले राधा-माधव और सखियाँ दिव्यलोक में अवस्थित हैं। यह तो हम लोगों के ऊपर प्यूरिटन मसीही शिक्षा का प्रभाव है कि हम इसे ऐन्द्रिय संसार की रचना मानते हैं। ध्यान से यदि पढ़ें तो ऐन्द्रिय व्यापार केवल स्मृति में है, प्रत्यक्ष केवल तरह-तरह की आकुलता का होता है। यह आकुलता भिन्न-भिन्न प्रकार के संसारी भावों की अभिव्यञ्जना के रूप में सामने आती है—ईर्ष्या, उत्कंठा, हर्ष, लज्जा, जाने कितने परिगणित कितने अपरिगणित संचारी भावों के रूप में पदावली के प्रारम्भ और अन्त में नेपथ्य से जो लीला होने वाली है, हो रही है, उसका समाहार सूचित मात्र करते हैं, वह अभिनेय अंश नहीं होता, वह केवल सूत्रधार की भूमिका में रहने वाले व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत प्रबन्ध-सूत्र हैं।

प्रबोधानन्द जी की टीका इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि वे अद्वैत मत में दीक्षित थे, उनका चित्त पहले से ही पूर्ण सत् में रूपान्तरित हो चुका था और वे जब राधा-माधव की लीला के रहस्य को खोलने में उद्यत होते हैं तो विषयों के संसार से बहुत दूर जा चुके होते हैं। चैतन्य महाप्रभु के रंग में रंगकर वे उस मादन भाव में पहुँच जाते हैं, जहाँ विषय हो जाता है या यों कहें कि विषय और विषयी में भेद नहीं रह जाता। जहाँ आसक्ति महाभाव में रूपान्तरित हो जाती है। जैसे राधा विरह की तीव्रता में माधव को सर्वत्र देखती हैं और स्वयं अपने में माधव को प्रतिष्ठित पाती हैं, पुनः माधव बनकर ही राधा के लिए विरहातुर हो जाती हैं, अपने चित्त के दो भाग करके भी वह व्याकुल ही बनी रहती हैं। उसी तरह प्रबोधानन्द अपने पाठक से यह अपेक्षा रखते हैं कि वह इस लीला के रस में केवल केलि-कला में कुतूहल रखने के कारण आकृष्ट न हों, न वह इसे हरि-स्मरण का साधन भर मानें। वह दोनों स्थितियों से ऊपर उठकर प्रत्यक्ष लीला की वर्तमानता को निर्वैषयिक स्तर पर अनुभव करने वाले हों। जयदेव की कृति लोक-प्रचलित गीतिशैलियों की अलौकिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका प्रस्तुत करने वाली कृति है और वे रससिद्ध संत के रूप में हमारी साधक-परम्परा में प्रतिष्ठित हैं। उनका स्मरण चंडीदास, गोविन्ददास, विद्यापति, सूरदास प्रभृति भक्त कवियों ने तो किया ही है, श्रीगुरुग्रन्थ-साहब में भी उनका स्मरण है, बाद के रीतिकालीन कवियों के छन्दों पर उनकी छाप है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का रामलीला के रूप में जो रूपायन शुरू हुआ, उसमें दो अंश है—कथावाचक कथासूत्र जोड़ते हैं और फिर लीला संवाद के रूप में शुरू होती है। कहीं संवाद के रूप में, कहीं साक्षात् प्रस्तुति के रूप में। इस पर भी जयदेव का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। जयदेव के गीतगोविन्द का प्रभाव सबसे अधिक सहलिया सम्प्रदाय के बाउलों पर पड़ा है, जो जयदेव को अपनी गुरु-परम्परा में बीच का स्थान देते हैं। बहुत-से लोकनाट्य रूप जयदेव के गीत-गोविन्द से प्रभावित हैं। लोकमानस में गीतगोविन्द नाटक नहीं है, वह श्री राधा-कृष्ण के अलौकिक सम्बन्ध का गायन होने के नाते एक जंगम मंदिर है।

इसीलिए जयदेव पर टीका पर टीका लिखी गई—कुछ टीकाओं के नाम दिए गए हैं। इनमें सबसे प्रचलित है रामाकुम्भ की टीका 'रसिकप्रिया', जो विशेष रूप से नाट्यसंकेत के कारण नृत्याचार्यों के लिए पाठ्य-पुस्तक जैसी है। इनमें से कुछ टीकाएँ तो बंगलिपि में प्रकाशित हैं, कुछ पाण्डुलिपि के रूप में हैं—

अनूपसिंहकृत टीका	अनूपसिंह
अर्थरत्नावली	गंगा कृष्णदत्त
गीतगोविन्द-तिलकोत्तमा	हृदयाभरण
गीतगोविन्द-प्रबोध	रामकवि
गीतगोविन्द-माधुरी	रंगनाथ
गीतगोविन्द-व्याख्यान	प्रबोधानन्द
तत्त्वदीपिका	रामराय
दीपिका	गोपाल
पदद्योतिका	नारायण
पद-भावार्थचन्द्रिका	श्रीकांत मिश्र
पदातिनयमंजरी	वासुदेव
प्रकाशकौमुदी	कविराज चंडीदास
प्रथमाष्टपदीविवृति	विट्ठल दीक्षित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालबोधिनी	पुजारी गोस्वामी
भावविभावनी	उदयनाचार्य
रंगमाला	कमलाकर
रसकदम्बकल्लोलिनी	भागवतदास
रसमंजरी	शंकर मिश्र
रसिकप्रिया	रामाकुम्भ
वचनमालिका	शशिरेखा, कृष्णचन्द्र
श्रुतिरंजनी	विश्वेश्वरचन्द्र
श्रुतिसाररंजनी	तिरुमलराज
संजीवनी	वनमाली भट्ट
सन्देहभेदिका	कुमार खान
सर्वांगसुन्दरी	नारायणदास
सानन्दगोविन्द	रूपदेव पंडित
सारदीपिका	जगद्धर
साहित्यरंगमाला	शेषकमलाकर
साहित्यरंगाकर	शेषरत्नाकर
सुबोधा	भरतसेन मलिक

इस टीका की विशेषता यह है कि यह बड़े प्रांजल काव्यात्मक गद्य में गीतगोविन्द के रस का अवगाहन करती है। स्थान-स्थान पर गीतगोविन्द के आभ्यन्तर अर्थ को बिना अधिक दार्शनिक हुए उन्मीलित करती है। उनकी ग्रन्थ-सूची पढ़ने से भी यह प्रमाणित होता है कि वे चैतन्य महाप्रभु के सम्पर्क में आने के बाद वृन्दावन-रस में ही डूबे रहे। ग्रन्थ-सूची इस प्रकार है—

श्रीवृंदावनमहिमामृत
श्रीचैतन्य-चन्द्रामृत
श्रीराधारससुधानिधि
श्रीआश्चर्यरासप्रबन्ध
श्रीसंगीतमाधव
श्रीश्रुतिस्तुतिव्याख्या
श्रीकामबीज-कामगायत्री-व्याख्यान
श्रीगीतगोविन्द-व्याख्यान
श्रीगौरसुधाकर-चित्राष्टक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अद्वैत-वेदान्ती के रूप में इनका नाम प्रकाशानन्द था। प्रकाशानन्द के रूप में इनका ग्रन्थ है—विवेकशतक।

इस टीका का अनुवाद तो नहीं प्रस्तुत है, पर इसी के समानान्तर हिन्दी में अर्थ-प्रकाशन की धृष्टता मैंने की है, जो इस टीका के साथ ही दी जा रही है। संक्षेप में मैंने गीतगोविन्द में अपनी कल्पना क्या है, इसे ही सामने रखा है और इसकी काव्य-योजना भी दी है।

गीतगोविन्द का मङ्गल-विधान

महाकवि जयदेव की अमर कृति 'गीतगोविन्द' की सरलता की ओर इधर लोगों का ध्यान जाने लगा है। पहले-जैसी उपेक्षा अब कम दिखाई पड़ती है। लगभग एक शताब्दी तक गीतगोविन्द को घोर शृंगारी काव्य मानकर हेय दृष्टि से देखा गया। एकाएक एक स्वस्थ मोड़ आया है और महाकवि जयदेव की रससृष्टि का महत्त्व आँका जाने लगा है। शुरुआत प्रयोगधर्मी कलारूपों में गीतगोविन्द की व्याप्तता की पहचान से हुई है, संगीत और नृत्य, चित्रकला (शास्त्रीय और लोक) और शिल्प में गीतगोविन्द की वर्णित लीला किस तरह नयी सम्भावनाओं का निरन्तर सर्जन करती रही और किस प्रकार उनके माध्यम से भारतीय जनमानस अपने चित्त का संस्कार एक अद्भुत द्रुति के व्यापार के द्वारा करता रहा, इसकी मीमांसा विगत दशक में अनेक कलामर्मज्ञों ने की है और यह कहा जाने लगा है कि महाकवि जयदेव के द्वारा राधामाधव के तीन वासन्ती दिनों की सृष्टि, भारतीय साहित्य के इतिहास में अपूर्व घटना है। ऐसा नहीं है कि इसके पूर्व राधामाधव नहीं थे, राधामाधव की केलि का रस वर्णित नहीं हुआ था; न ऐसा ही है कि रागाकुलता और भगवद्भक्ति को एक बिन्दु में—श्यामबिन्दु में पहले समाहित नहीं किया गया था। बस, इतना ही है कि जयदेव के पहले किसी भी कवि ने श्यामबिन्दु को अपने में समाहित नहीं देखा था, गौर छवि के चारों ओर नाच-नाचकर वृत्त बनते नहीं देखा था। यही गीतगोविन्द की अपूर्वता है। गोतगोविन्द में प्रत्येक गीत गोविन्द है, गोचर रूप-सम्भार के लिए, गोचर प्राण-पुकार के लिए, गोचर निःश्वास-सुरभि के लिए, विश्वमोहन की बेचैन तलाश है। गीतगोविन्द का मंगलश्लोक बड़ी सूक्ष्मता के साथ यह व्यंजित करता है कि सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण अपनी व्यापकता से घबरा गये हैं, सारा आकाश रसवर्ती घनश्याममय है, नीचे जमीन तमाल की घनी छाया से श्याम हो गयी है, बीच के अन्तराल को श्यामा रात्रि भर रही है। श्याम अपनी ही इस विश्वम्भर श्यामलता से भयभीत हो गये हैं—कहाँ जाँय, उन्हें राह नहीं सूझती; क्योंकि सभी राहें गन्तव्य बन गयी हैं, मंजिल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन गयी हैं। नन्द को चिन्ता होती है, चैतन्य के सुख-भाव को चिन्ता होती है—श्याम घर कैसे पहुँचें, अपने उस स्वभाव को कैसे पायें—जिसके ऊपर श्यामता न्यौछावर हो जाये! वे राधा से कहते हैं—इसे घर पर पहुँचाओ! इसका घर मुक्त आकाश के नीचे है, यमुनाकूल के बलहे निकुंजों में है, सघन तमाल की छाया में है, इसका घर अध्व अर्थात् पथ में है, इसका घर व्रजन में है, व्रज में है। इस सघन श्यामभाव को साध्य न रहने दो, इसे साधक बनाओ! इसे गन्तव्य न रहने दो, इसे पथ बनाओ; इसे अनन्त रस-समुद्र न रहने दो, इसे उद्वेलित तट का ध्वंसी ज्वार बनाओ। इसे रस न रहने दो, इसे रास बनाओ—

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः।।

जयदेव से चार सौ वर्ष पूर्व भट्टनारायण अपने वेणीसंहार के मंगल-श्लोक में गीतगोविन्द की भूमिका तैयार कर चुके थे—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः।।

रास में एकाएक राधिका नाराज हो गयीं और यमुना के बलुहे तट पर रास छोड़कर चल पड़ीं, रोती-बिलखती हुई। श्रीकृष्ण उनके पीछे-पीछे चले, राधिका के पैरों की छाप निहारते चले, उन्हीं पद-चिह्नों पर जब वे पैर रखते तो उन्हें रोमांच हो जाता। मनाते रहे और एकाएक प्रियतमा ने मुड़कर देखा, और श्रीकृष्ण निहाल हो गये।

ध्यान से देखने पर भट्टनारायण के मंगल से जयदेव के मंगल में एक वैशिष्ट्य है—भट्टनारायण के मंगल में श्रीकृष्ण का निहाल होना मुख्य रहता है, परन्तु जयदेव के मंगल में राधा-माधव दोनों एक होकर रस बनते हैं। गीतगोविन्द की अपूर्वता इसी बात में है कि वह श्रीकृष्ण को अकेले नहीं रहने देता, राधा का साहचर्य देता है—ऐसा साहचर्य देता है, जो ईर्ष्या, मान, उत्कंठा, विरह में भी कभी साथ नहीं छोड़ता। कुछ और गहराई में जाकर कहा जा सकता है कि साहचर्य के साथ-साथ साहचर्य की एक ऐसी बेचैनी भी देता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, जो मिलन में भी साथ नहीं छोड़ती। श्रीकृष्ण एक साथ ही विप्रयोगात्मक, सम्प्रयोगात्मक शृंगार हो जाते हैं, एक ही शरीर में वे नट हैं, अर्थात् जिसका अभिनय कर रहे हैं—वे नहीं हैं, और वर हैं, अपने लिए निर्धारित प्रियतम पति हैं! गीतगोविन्द की प्रत्येक अष्टपदी में संयोग-वियोग एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं—संयोग कभी स्मृति के रूप में, कभी आकांक्षा के रूप में, कभी दंश के रूप में, बराबर वियोग को तीव्रतर बनाता है; और वियोग अपनी तीव्रता में ध्यान-लय से संयोग उपस्थित करता है—ऐसा संयोग, जिसमें विश्व तन्मय हो जाता है, यहाँ तक कि स्वयं राधिका अपने को मधुरिपु समझकर श्रीकृष्ण की चेष्टाएँ करने लगती हैं। श्रीकृष्ण रास में विहार करते-करते एकाएक रास में केन्द्रबिन्दु का अभाव अनुभव करते हैं और उन्मन हो जाते हैं। एक दिन एक रात तो सन्देशों के आदान-प्रदान में बीत जाती है, श्रीकृष्ण जहाँ प्रतीक्षा करते हैं, वहाँ राधा नहीं पहुँच पातीं और श्रीराधा के निकुंज में श्रीकृष्ण नहीं पहुँच पाते। राधा अपने को वंचित, ठगी हुई मानकर और विह्वल होती हैं। अन्त में श्रीकृष्ण राधा को मनाने आते हैं, राधा झिड़क देती हैं—जाओ, मुझसे झूठी बातें न करो! श्रीकृष्ण चले जाते हैं। अब राधा से रहा नहीं जाता और वे स्वयं प्रतीक्षातुर होकर प्रतीक्षातुर से मिलने चल पड़ती हैं; और जब पाती हैं कि वे एकरस हो गये हैं, उनकी बेचैनी भी इस उत्कर्ष पर पहुँच गयी है कि वे राधामय हो चुके हैं, तो उनसे मिलती हैं। राधामय श्रीकृष्ण की छवि जयदेव ने इन उपमानों से उकेरी है—

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गम्।
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम्।।

हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम्।
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिवासम्।।

स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम्।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम्।।

स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव मुदिततडागम्।
शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरसकुसुमकेशम्।।

तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्गतमलयजतिलकनिवेशम्।।

पहली उपमा है, राधा के चन्द्रवदन को देखने की अकुलाहट के ज्वार में आये हुए उच्छलित तरंगवाले समुद्र की, समुद्र चन्द्रमा की पूर्णता प्राप्त करने के लिए अपनी नीलता मथकर केवल उज्ज्वलता धारण करता है; क्योंकि पाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की अभिलाषा सार्थक है तो होने की ही अभिलाषा में। दूसरी उपमा है, यमुना के जलप्रवाह से, हरि ने राधामय होने के लिए मोतियों के हार पहने हैं, लगता है, श्वेत फेनों के कदम्ब के फूलों से यमुना पट गयी है। तीसरी उपमा है पीताम्बर की, लगता है, नीलकमल ऐसा खिल आया है कि उसका पीतपराग उड़-उड़कर पूरी तरह उसे आवेष्टित कर चुका है, उसकी आकांक्षा उसकी आपूर्ति बन गयी है। चौथी उपमा है आँखों की, शरद् ऋतु के सरोवर-जैसा समदर्शी श्यामल शरीर, उसमें खिला हुआ कमल जैसा मुख, उसमें चंचल-चटुल खंजन के जोड़े-जैसी दो आँखे, जिनमें श्वेत रंग काले रंग को उभार रहा है। पाँचवीं है, श्वेत कुसुमों से गुंथे घुंघराले मेघ-सरीखे केशों की चन्द्रमा से आँखमिचौनी से और छठीं उपमा है, मलयज चन्दन के तिलक की उस चन्द्रमा से जो तिमिर भेदकर निकलता है। ये सभी उपमाएँ श्रीकृष्ण की कृष्णता के ऊपर राधा की गोराई को प्रतिष्ठापित करती हैं। तभी तो श्रीकृष्ण एकरस हैं, राधा की तरह ही विक्षुब्ध हैं, उत्कंठित हैं! ऐसे एकरस प्रियतम के आगे मान विगलित हो जाता है, राधा का आग्रह नहीं रहता कि प्रिय मेरे निकुंज में आयें—वे स्वयं श्याम के राधामय निकुंज में प्रवेश करती हैं, श्याममय होकर। पर मिलन सब गड़बड़ कर देता है; प्रात:काल जब दर्पण में राधा अपनी छवि देखती है तो पाती है कि राधामय में डूबकर मैं श्याममय नहीं रही; और अन्तिम अष्टपदी में निवेदन करती है कि यदुनन्दन, मुझे वैसा ही अपने हाथों रच दो, जैसे मैं आयी थी। तुम मेरे वक्ष:स्थल पर कस्तूरी के लेप बन जाओ, तुम्हारे ही चुम्बन से काजल फैला, तुम्हीं अपने हाथों अपने को काजल बनाकर मेरी आँखें आँज दो—वे चमक उठें। तुम मेरे मस्तक कर कस्तूरी के तिलक बन जाओ, और तुम्हारे हाथों शिथिलित कबरी में अपने मोर-मुकुट सदृश इन्द्रधनुषी रंग के फूल सजा दो। प्रिय, मुझे फिर से श्यामा बना दो, राधा बनकर मुझसे रहा नहीं जायेगा।

इस अष्टपदी में दो कड़ियाँ विशेष मर्मस्पर्शी हैं—

अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने।
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रियलोचने।।

और—

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे।
विहितकलङ्ककलं कमलानन विश्रमितश्रमसीकरे।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुमने जो मेरी आँखों का काजल फैला दिया है, उन आँखों की ज्योति तुम्हीं हो, उन आँखों के संदृष्ट तुम्हीं हो; इसीलिए तो तुम जब काजल बनकर इनमें अँजोगे तो वसन्त का गुणगान करने-वाले भौरों की भीड़ लजा जायेगी, काम के हाथ से धनुष छूटकर गिर जायेगा। तुम उत्सर्ग की उत्कंठा बनकर, उज्ज्वल श्रृंगार बनकर वसन्त ऋतु के ऊपर छा जाओ। राधा की चम्पई छवि की मोहक दृष्टि के सम्मोहन मन्त्र बन जाओ। और अब यह प्यार छिपाये नहीं छिपता; अब आँखों में ही नहीं, मेरे भाल पर, मेरे भाग्य में श्रीकृष्ण का रंग अंकित हो जाये—श्रीकृष्ण कस्तूरी के रस से बने तिलक हो जायें, मेरे अष्टमी के चन्द्रमा जैसे भाल के कलंक की कला बन जायें। यह रहःकेलि, यह गोपन प्यार, विश्वमोहन को मोहते-मोहते थककर उनसे मोहित का खुला स्वीकार बन जाये। राधा एक चित्त नहीं है, वह उन्मथित चित्त मात्र है; वह एक ही एक के लिए उत्कंठा नहीं है। वह सर्व के लिए सर्व की उत्कंठा की ही एक विचित्र संज्ञा है, पहचान है। राधा शब्द में दो भाव निहित हैं—एक भाव है आराधना का, अनन्यता का; दूसरा भाव है पकाये जाने का, सिझाये जाने का, राँधे जाने का। गीतगोविन्द का प्रारम्भ तो होता है राधा के पथप्रदर्शक भाव से। आराधिका बनकर राधिका श्रीकृष्ण को उनकी लीला का प्रयोजन दिखलाती हैं, तुम्हारा यह अव्यक्त-अगोचर प्रसार तभी सार्थक है, जब व्यक्ति के गह्वर को भरने के लिए आकुल हो, जब वह बूँद बनकर बिखरने के लिए आतुर हो; और अन्त होता है राधिका के श्याम रंग में ऊपर से नीचे तक सराबोर होने में, पका कर रँगे जाने में।

गीतगोविन्द में एक और विलक्षणता है, श्रीमद्भागवत में एक शब्द आया है शरत्काव्य। वह सचमुच शरत्काव्य है, तृप्ति का काव्य है। उसमें गोपियों का उद्दाम-निर्बन्ध प्रेम मन्मथमन्मथ श्रीकृष्ण को उन्मथित करने में समर्थ नहीं होता। हाँ, वे इस उद्दाम प्रेम के द्वारा श्रीकृष्ण भाव को अवश्य प्राप्त करती हैं। गीतगोविन्द में दो ऋतुएँ हैं, स्मृति के रूप में या आकांक्षा के रूप में वर्षा, उद्दाम प्यार की ऋतु और प्रत्यक्ष अनुभव के रूप में वसन्त, उत्कंठा की ऋतु। जो नहीं है, वह होने की उत्कंठा ही तो वसन्त है। पेड़ है, पेड़ की डाली है—पर ये फूल होना चाहते हैं, पल्लव होना चाहते हैं, पेड़ या डाली बने रहने को तैयार नहीं हैं। वर्षा के मंगल से काव्य प्रारम्भ होता है और दामोदर—रस्सी में बँधे श्रीकृष्ण का दम खुल जाता है। पहले सर्ग का नाम 'सामोद-दामोदर' है। अनन्तता भी एक बन्धन है, इसलिए उचित ही है; निस्सीमता भी एक विवशता है, श्रीकृष्ण उससे मुक्त कर दिये जाते हैं। जब सब कुछ घनश्याममय हो जाता है तो श्याम तरल-उज्ज्वल रसबिन्दु बनने के लिए आकुल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो जाते हैं। उनकी रसवृष्टि की आकुलता जब पूरी तरह झहरा लेती है, जब तमाल-निपात हो जाता है, तब निपात होकर चम्पई रसबिन्दुओं से भर उठता है। वर्षा की उद्दामता ही वसन्त की उत्कंठा को जन्म देती है। समष्टि-चित्त का विक्षोभ ही व्यष्टि-चित्त को नयी आकांक्षा से भरता है, उससे सब कुछ रखवा लेता है, उसे एकदम निष्किंचन-नि:स्व बना देता है, निरुपाय और असहाय बना देता है। पहले ऐसा भाव भरता है कि तुम वंचित हो, तुम्हें किसी ने ठग लिया है, धोखा देकर तुम्हें कहीं का नहीं रखा है; फिर एक-से-एक नये पल्लव, नयी कलियाँ, नये फूल उगाता है। मैं ही विक्षुब्ध नहीं हूँ, वे भी मेरे लिए सविकार हैं; मैं आँच में पककर यदि दूध से दही हुई जा रही हूँ, तो वे भी नवनीत के पिण्ड से पिघलकर आहूत होने के लिए घृत बनते जा रहे हैं—

सखि हे, केशिमथनमुदारम्!
रमय मया सह मदनमनोरथभावितया सविकारम्!

गीतगोविन्द एक चिर अभिलाषा का, सनातन आकुलता का काव्य है। यह मोक्ष का भी मोक्ष है। कृष्ण का अर्थ होता है—आकर्षक—खींचनेवाला। वह अर्थ पीछे छूट जाता है, श्रीकृष्ण खिंचते चले जाते हैं, जुतते चले जाते हैं, और खिंचते-खिंचते वे शाश्वत भाव न रहकर रस के नूतन से नूतनतर वृत्त बन जाते हैं। इसी अर्थ में गीतगोविन्द पावस और वसन्त की भूमिकाओं की हेराफेरी का काव्य है। काव्य के मन में पावसरूपी कृष्ण और काव्य की देह में वसन्तरूपी राधा छायी हुई हैं। पावस को वसन्त होना पड़ता है, वसन्त को पावस। दोनों मिलकर वन और वन के निकुंज होना चाहते हैं, पुलिन और पुलिन के सङ्केत होना चाहते हैं, ठूँठ से ठूँठ हृदय की प्रसुप्त आकांक्षा के अंकुर होना चाहते हैं, सूखी-से-सूखी और तपी-से-तपी बालू के कण में रस भरने की चाह होना चाहते हैं। गीतगोविन्द घर का, आँगन का, प्रासाद का, हर्म्य का, रत्नजटित गवाक्षों का काव्य नहीं है। जो लोग इसे अपनी कामुकता से जोड़ते हैं, वे इसकी जमीन नहीं देखते। वह जमीन है यमुनापुलिन, सूर्य की बेटी का बलुहा तट। उस जमीन के ऊपर जो आसमान है, वह है उत्तरायण के सूर्यमधु का छत्ता। इस काव्य में ऐन्द्रियता नहीं है—यह बात कोई कोरा भक्त कहे तो कहे, मैं ऐन्द्रियता का खंडन नहीं करूँगा; पर ऐन्द्रियता इस काव्य का प्रत्यायक गुण नहीं है, वह केवल उपसर्ग है, जो लौकिक-साधारण प्रेम-व्यापार के विशेष से जोड़कर अलौकिक-असाधारण प्यार की गहराई को आकार देता है। इस ग्रन्थ के प्रत्यय दो हैं, एक है वियोग में संयोग का आधान, जो श्रीकृष्ण को लाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि'—मेरे सामने तुम आ रही हो, जा रही हो, परन्तु **'किं पुरेव ससम्भ्रमं परिरम्भणं न ददासि'**—पर यहाँ है, पहले-जैसी घबड़ाकर तुम गले क्यों नहीं लग रही हो?

राधा को भी ध्यानलय के बल से दुष्प्राप्य श्रीकृष्ण प्राप्त हो जाते हैं। वह उन्हें पाकर भी बिलखती है, हँसती है, उदास होती है, छनछना उठती है और मन के सब ताप धो देती है—

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीवदुरापम्।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम्।

दूसरा प्रत्यय है, नाम के द्वारा एकाकारता प्राप्त करने का उपाय। राधा के भी **'हरिरिति हरिरिति जपति सकामम्। विरहविहितमरणेव निकामम्'।।** विरह में जीना सम्भव नहीं है, इसलिए मरने का राधारूप में अस्तित्वहीन होने का निश्चय करके हरि-हरि जपती रहती है—श्रीकृष्ण भी—

वसति विपिनविताने त्यजति निजधाम।
लुण्ठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम।।

अपना घर छोड़कर, वैकुंठधाम छोड़कर, सूर्य की ऊर्ध्वरश्मियों का देश गोलोक छोड़कर जंगल में जमीन पर लोट रहे हैं, वन-वन तुम्हारे नाम (राधा-राधा) की करुण पुकार लगाते रहते हैं।

ये दोनों प्रत्यय ही गीतगोविन्द की ऐन्द्रियता को ऐसी भूमि तक पहुँचा देते हैं, जहाँ इन्द्रिय इन्द्रिय नहीं रह जाती, विषय विषय नहीं रह जाते, विषय-सुख सुख नहीं रह जाता—कोई भी सुख सुख नहीं रह जाता, इन्द्रिय विषय बन जाती है—दूसरे शब्दों में आदमी का उपभोक्ता भाव उपभुक्त हो जाता है और विषय इन्द्रिय बन जाते हैं। वन, नदी, मेघ, चन्द्र—ये सभी प्राकृत विषय; हार, तिलक, अंजन—ये सभी वैकृत विषय प्राणवान् होकर, प्राण-पीड़ित होकर इन्द्रिय हो जाते हैं। हर प्रकार का समागम-सुख दुरन्त दुःख बन जाता है, और विरह का दुरन्त दुःख असीम-अपरिमित सुख बन जाता है। सही बात तो यह है कि सुख-दुःख दोनों ही केलिरस बन जाते हैं, क्रीड़ा बन जाते हैं, और क्रीड़ा राधा-कृष्ण-भाव बन जाती है। दूसरे शब्दों में, वसन्त की उत्कंठा और वर्षा का उन्माद, दोनों एक हो जाते हैं; घनश्याम वसन्त बन जाते हैं और राधा घनश्याम की रसवृष्टि।

यही इस वासन्ती रसवृष्टि के काव्य की सनातन सार्थकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविन्द की काव्य-योजना

जयदेव के गीतगोविन्द के बारे में कुछ बातें मान ली गई हैं, गीतगोविन्द का महत्त्व नृत्य-प्रबन्ध के रूप में है, नृत्य-गुरुओं को इसके द्वारा व्यंजित करणों से चारियों, मुद्राओं से ही मतलब है, या फिर इसका महत्त्व लोकबाह्य भावोन्मादी वैष्णवों के लिए है, जिनको सभी जगह राधाकृष्ण ही का प्यार दिखता है, उन्हें यथार्थ जगत् का कड़वा संघर्ष कभी दिखता ही नहीं था। फिर इसका महत्त्व उन सामन्ती वृत्ति के रसिकों के लिए है, जो इसकी शृंगारिकता में पलायन का एक सुलभ उपाय पाते हैं, कुछ हद तक राजपूत कला की चित्रकला के मर्मज्ञों के लिए है, उन्हें गीतगोविन्द के पाठ से चित्र के ब्यौरे मिलने की आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् गीतगोविन्द सामान्य व्यक्ति के आस्वाद का विषय नहीं है। यह समकालीन यथार्थ की दृष्टि से तो और भी नहीं। इस स्थिति में शुद्ध साहित्य की दृष्टि से गीतगोविन्द पर बात शुरू करना बड़े जोखिम का काम हो जाना है, पर जब सब कुछ बिकाऊ हो रहा हो, देश, संस्कृति, कला और आदमी, तब जोखिम उठाकर भी बिकाऊपन को रोकने वाले भाव की बात करनी ही पड़ेगी। गीतगोविन्द ने जिस प्यार का उन्माद उद्वेलन ध्वनिलहरियों में रूपांकित किया है, वही बिकाऊपन को रोकने में समर्थ है, वही निरर्थकता के आनन्द को सार्थक अस्तित्व की सिहरन में परिवर्तित करने में समर्थ है, वही जीवन को विशाल अस्तित्व की संगीतमय उपस्थिति से रसमय बनाने में समर्थ है।

जयदेव ने भारतीय संस्कृति में एक नये युग की अवधारणा की, इसे मैं राधा-युग कहता हूँ, इसका अर्थ यह नहीं कि राधा जयदेव के पहले नहीं थी, राधाकृष्ण की उपासना नहीं थी। राधा नाम नक्षत्र नाम के रूप में अथर्ववेद में मिलता है। विशाखा और अनुराधा दो नक्षत्र एक ही परिपार्श्व में हैं, चन्द्र वैशाखी पूर्णिमा के दिन विशाखा में या कभी-कभी अनुराधा में आता है। सूर्य अगहन में विशाखा और अनुराधा में आता है। प्राचीनकाल में भारत में वर्षारम्भ अगहन से होता था, श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने महीनों में अपने को मार्गशीर्ष घोषित किया, 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्'। मार्गशीर्ष और वैशाख दोनों फसलों के कटने और अनाज के घर आने के महीने हैं। दोनों ही उत्सवों और मंगलकार्यों के महीने हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में विशाखा, अनुराधा नक्षत्र को इन्द्र और अग्नि कहा गया है, अग्निचयन में इन नक्षत्रों के नाम की ईंटें चिनी जाती हैं। वैदिक वाङ्मय में ही वसन्त के दो महीनों चैत्र और वैशाख के नाम मधु और माधव दिए गए हैं, महाभारत में विष्णु का एक नाम नक्षत्री दिया गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, माधव नाम तो उनका प्रसिद्ध ही है। वैदिक वाङ्मय में ही अपालासूक्त में इन्द्र के लिए अपाला के उन्मद प्यार का वर्णन है। पुराणों में इन्द्र का गौरव विष्णु में और विष्णु का गौरव श्रीकृष्ण की रहस्य विद्या साधना के द्वारा श्रीकृष्ण में समाहित हो जाता है, उनमें मनस्तत्त्व चन्द्रमा और चाक्षुष तत्त्व सूर्य भी समाहित हो जाते हैं। इन सबको जोड़कर हमारे कवि राधा और श्रीकृष्ण का एक विश्वव्यापी आकार खड़ा कर सके हैं।

इस विशाल ब्रह्माण्ड में ही परस्पर आकर्षण का एक निरन्तर चक्र चल रहा है, इस आकर्षण का विचित्र स्वभाव है, बड़े तीव्र वेग से अपनी ओर हर दूसरा खींचा जाता है, खींचने की सममात्रा होने पर दोनों खींचने वालों में या खिंचने वालों में एक सामंजस्य स्थापित हो जाता है, उसे दोनों का दोनों में विलयन भी कह सकते हैं, दोनों में एक का ही प्राधान्य भी कह सकते हैं, दोनों में एक साथ दो-दो तत्त्वों का समुदय या समागम भी कह सकते हैं। पिण्ड के भीतर यही प्यार बन जाता है, एक चित्त में दूसरा चित्त अध्यारोप और कभी-कभी तो अध्यवसाय बन जाता है, कभी तो राधा श्रीकृष्ण का वेश धारण करके श्रीकृष्ण बन जाती हैं, कभी श्रीकृष्ण श्रीराधा के शृंगार करके श्रीराधा बन जाते हैं, कभी और गहरे उतरकर श्रीराधा राधा के विग्रह में रहते हुए चित्त से श्रीकृष्ण बन जाती हैं और राधा के विरह में व्याकुल हो जाती हैं, कभी श्रीकृष्ण राधा के चित्त से एकाकार होकर व्यक्त मन की दृष्टि से समष्टि मन के लिए आकुल हो उठते हैं, यह अपने से विरह, अपने लिए दूसरी भूमिका से उद्वेलन जब होता है, तभी सृष्टि की सोद्देश्यता दिखाई पड़ती है। साहित्य इसी सार्थकता को कुछ जानी-पहचानी और कुछ अनजानी अनपहचान-सी भाषा देता है, जिससे साधारण जन भी ऐसे उद्वेलन में सहभागी हो सकें। साहित्य न भक्त बनाता है, न साधक, न ज्ञानी, वह बस एक सोये हुए चित्त-व्यापार को उन्मथित कर देता है। उस उन्मथन से पहले विष निकलता है जरूर, वह विष भी शिव के लिए है, कुछ और तीव्र उन्मथन के लिए तैयार हों तो अमृत मिलता है, न मरने का भाव।

जयदेव के पहले भी भारतीय साहित्य ने इस उद्वेलन को अंकित किया, उनके चार शताब्दी पहले के वेणीसंहार के नान्दी-श्लोक में जयदेव के गीत-गोविन्द का कथानक आ चुका है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः।।

कालिन्दी के बलुहे तट पर रास हो रहा था, बस राधा ने समझा मेरी तरफ जितना ध्यान श्रीकृष्ण का होना चाहिए था नहीं है, नाराज हो गई, रास में उन्हें रस न रहा, चल पड़ीं। श्रीकृष्ण कैसे वहाँ रहते, वे भी पीछे-पीछे चले, राधा की आँखें अंसुवाई हुई, राह पर पैर ठीक तरह से पड़ नहीं रहे हैं, श्रीकृष्ण गीली बालू में राधा के पैरों के छाप निहारते चलते हैं, उसी छाप पर अपने पैर रखते हैं तो उन्हें रोमांच हो जाता है, और बिल्कुल अबोध बनकर अनुनय करने लगते हैं, राधा की तरल आँखें पीछे मुड़ती हैं और श्रीकृष्ण का यह रूप देखकर और तरल हो जाती हैं। मन की सब कलक बह जाती है, यह प्रसादमयी प्रीति पोषक बने समस्त सामाजिक की।

वेणीसंहार से भी पहले ध्वन्यालोक में कई उद्धरण मिलते हैं। एक उद्धरण बड़ा मनोरम है, श्रीकृष्ण द्वारका चले गए, पहले की उन्हें सुधि आती है, उद्धव से कहते हैं, मित्र अपनी सखी की क्या बात करूँ, कैसी होगी, मैं तो उन लताओं की बात सोचकर ही अत्यन्त कष्ट का अनुभव कर रहा हूँ कि वे कैसे मुरझा गई होंगी, जब उन्हें लगा होगा कि हमें अब केलिशय्या पर बिछने के लिए तोड़ा नहीं जा रहा—

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहःसाक्षिणां
क्षेमं भद्र कलिन्दशैलतनयातीरे लतावेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः।।

ध्वन्यालोक की टीका में उदाहरण के रूप में अभिनवगुप्त ने एक ऐसा छन्द दिया है, जिसमें राधा के विरह-क्रन्दन से जल के भीतर रहने वाले प्राणी तक करुण कूजन करने लगते हैं, राधा के जीवन का अवलम्ब वे बेंत की लताएँ रह गई हैं जिन्हें श्रीकृष्ण ने झकझोरा था, मानों सङ्केत देने के लिए, आओ यहाँ आओ।

याते द्वारवतीं मधुरिपौ तद्दत्तझम्पानतां
कालिन्दीतटरूढवञ्जुललतामालिङ्ग्य सोत्कण्ठया।
तद्गीतं गुरुवाष्पगद्गदगलत्तारस्वरं राधया
येनान्तर्जलचारिभिर्जलचरैरप्युत्कमुत्कूणितम्।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राकृत गाथाओं में राधा के गौरव की बात और पहले आ चुकी थी। जयदेव के पहले ही राधाकृष्ण की उपासना प्रचलित हो चुकी थी। ९वीं शताब्दी के बंगाल के पहाड़पुर मन्दिर में श्रीराधाकृष्ण की मूर्ति मिलती है, जिससे प्रमाणित होता है कि जयदेव के पहले प्रेमाभक्ति का प्रस्फुटन और श्रीकृष्ण के रास का रूपायन भी प्रचलित हो चुका था। जयदेव ने गीतगोविन्द में उस प्रेमाभक्ति का आलम्बन उलट दिया। पहले श्रीकृष्ण आलम्बन थे, अब आलम्बन हो गई राधा, ऐसी राधा जो श्रीकृष्णभाव में तरह-तरह से उद्वेलित है, कभी नाराज होकर, कभी मिलने के लिए आकुल होकर, कभी बाट जोहती हुई, कभी अपने मन में ही कृष्ण को अन्य के साथ आसक्त देखकर खीझती हुई, कभी मनाने पर और कठोर बनती हुई, कभी स्वयं अभिसार के लिए चलती हुई और कभी श्यामरस में सराबोर होकर श्याम के हाथों श्यामा बनने के लिए तरसती हुई।

गीतगोविन्द का पहला श्लोक ही यह संकेत दे देता है कि मदनमोहन, मन्मथमन्मथ श्रीकृष्ण अब अवलम्बित हो गए हैं, राधा के, इतना उन्होंने विश्व को श्याममय देखा कि उन्हें लगा कि इस श्याम पारावर में मैं कहाँ हूँ, यह कोई सुझाए, मेरा घर किधर है, यह दिखाए और कौन दिखाएगा, श्यामता के भीतर की अकुलाहट की कौंधती विद्युत् रेखा राधा के बिना। आकाश काले-कजरारे बादलों से काला भँवर, काली कालिन्दी के किनारे के तमाल की घनी छाया से पृथ्वी एकदम श्यामल, काली रात घहराई हुई, श्याम डर गए हैं, नन्द कहते हैं, राधे, तुम्हीं इसे घर पहुँचा सकती हो, इसको अपना स्वरूप खींचना ही नहीं है, खिंचना भी है, भरना ही नहीं है, खाली होकर विशालता से विराटता से ब्रह्मता से खाली होकर लघुता से, वामनता से, जीवन्तता से भरा जाना भी है। इसका घर है राह, अपने आप रचना, लतामण्डप, सहज छाया और सहज ओट, खुला हुआ दुराव या छिपा हुआ खुलापन। देर न करो राधे, रात और गाढ़ी हो रही है, श्याम को ले जाओ। इस आदेश के पालन के लिए दोनों चल पड़ते हैं और रास्ते का हर कुंज स्वरूपविमर्श की केलि से भींग उठता है। ऐसी रसवृष्टि से भीगने आओ। पाठकों, श्रोताओं, प्रेक्षकों पर पहले वसन्त से गुजरो, नए ताप से गुजरो, भींगना इतनी आसानी से नहीं होता।

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाँ एक बात है, तुम्हारे भीतर तैयारी है कि नहीं, मन सरस है हरि की सुधि में, चैत आता है तो 'बिसरल सुधि उपरावे' सूखे घाव हरा कर देता है, बिसरे हुए दर्द ऊपर ला देता है, सोयी उत्कंठा जगा देता है, गाँव-गाँव फोड़कर नये पल्लव उकसा देता है, तैयार सत्यानाशी प्यार के राग में बजनेवाले हरि की विह्वल स्मृति के लिए और फिर तुम्हें कुतूहल है केलिकला के वितान में, द्विपक्षी विकास में, एक-एक कला बढ़ते-बढ़ते पूर्ण हो, एक-एक कला घटते-घटते सम्पूर्ण हो, अर्थात् आहुति पूरी हो जाय, कुतूहल देह में नहीं, गेह में नहीं, देह के ऐन्द्रिय व्यापार बन जाने में, एक-एक अंग के ईर्ष्या, उत्कंठा, प्रतीक्षा, वंचना, कोप, अनुनय, प्रसाद और आह्लाद बन जाने में, ऐन्द्रिय व्यापार के भी वसन्तव्यापी यमुना-पुलिनव्यापी जड़-चेतनमात्र का उद्वेलन बन जाने में, है ऐसा कुतूहल, मित्र तैयार हो ऐसे कुतूहल को वहन करने के लिए, यह जान लो कहीं वह कुतूहल तुमको आविष्ट न कर ले और फिर तुम तमाशाई न रहकर तमाशा बन जाओ। सोच-समझकर हाँ कहना। आओ तब इस गीतगोविन्द के लीला-प्रवचन के बारह सोपानों पर चढ़ती हुई सनातन विह्वलता का ज्वार देखो, पुलिन डूबता जा रहा है, कुंज डूबते जा रहे हैं, तरी पर तरी डूबती जा रही है, बस रस-सिन्धु है, उच्छल, उत्तरंग, उन्मत्त और उद्दाम।

जयदेव ने वसन्तरास से बात शुरू करने के पहले दशावतार-लीला गाई। श्रीकृष्ण की माया के इन आयामों को जाने विना उनसे पार कैसे पाया जा सकेगा, बड़े छली और बड़े सच्चे, बड़े शान्त और बड़े क्रोधी, विशाल और वामन, करुण और निर्मम, मछली की तरह अधीर और कछुए की तरह धीर, परशु लेकर भयंकर आखेट करने वाले और हल लेकर धरती को उर्वर बनाने वाले। ऐसे जगदीश को नचाना है, घुमाना है, झुकाना है और बनाना है राधिका का सर्वविध मण्डन। दशावतार-लीला गीतगोविन्द की आधारपीठिका है—

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहितवहित्रचरित्रमखेदं
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे।।
क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे।।
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना
केशव धृतशूकररूप जय जगदीश हरे।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तव करकमलवरे नखमद्भुतश्रृङ्गं
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गं
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे।।
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे।।
क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
शुभयसि पयसि शमितभवतापं
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे।।
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं
दशमुखमौलिबलिं रमणीयं
केशव धृतरामशरीर जय जगदीश हरे।।
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभं
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे।।
निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शितपशुघातं
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे।।
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालं
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे।।

इसके बाद वसन्तरास। शरद रास हो चुका है, शरद रास तो उद्दाम वर्षा की सम्पन्नता था, नदियों का पूरी तरह उमड़कर थिराना था, अलग-अलग आकांक्षाओं का विराट आकांक्षा के साथ ओत-प्रोत होकर उज्ज्वलता का मण्डल बन जाता था, विरह की तीव्रता में श्रीकृष्णलीला से एकाकार होकर देह का श्रीकृष्णवृत्ति में परिवर्तन था, इन अलग-अलग वृत्तियों का राधाकृष्ण में समर्पण था। यह वासन्ती रास नया है। हरि तो सदा हरण करते हैं, पर वसन्त में कुछ विशेष हरते हैं। इसलिए 'विहरति हरिरिह सरसवसन्ते नृत्यति युवतिजने समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते'। वसन्त वैसे ही उत्पाती, उसमें हरि रास करने आए,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्माद और बढ़ गया, हवा उन्मत्त हो गई, भौंरे उन्मत्त हो गए, कोयल उन्मत्त हो गई, जिनके प्रिय पास नहीं, उनका मदन मनोरथ उन्मत्त हो गया, उन्मद सौरभ-वाला बकुल उन्मद भौंरों की भीर से कसमसा उठा, मृगमद की गन्ध जबर्दस्ती छीन कर तमाल अपने घने श्यामल पत्रजाल को तान कर एकदम छोटे-छोटे फूलों की उन्मद से रसवर्षी बन गया, सेमल के नये फूल नरहरि के उन्मत्त नख बन गए, कितने युवा हृदयों का विदारण करेंगे। ऐसे में हरि ने रास रचा, देखा नहीं कि रास में राधिका तो है नहीं, पर रास शुरू हो गया, मुग्ध गोपवधुओं ने एक श्रीकृष्ण को आत्मसात् कर लिया। मधु में माधव मिल गए, ऐसे अबोध कि ऐसे असाधारण को हृदय में अधिष्ठित करके भी साधारण प्रणयी हो गए। राधा तो इस रास के लिए तैयारी करके आई थी, वासन्ती कुसुमों के परिधान पहने आई थी, पर रात में श्रीकृष्ण के साथ नाचना है, इस प्रतीक्षा में पहले ही विह्वल हो गई, आई तो रास थिरक उठा था, सखी ने (शायद विशाखा ही हो) कहा—श्रीकृष्ण तो आ गए, रास शुरू हो गया, कैसे सहोगी सखि?

शरद का रास रात्रि का रास था, वसन्त का रास दिनदहाड़े का रास है। वंशी ने नहीं बुलाया, हवा ने बुलाया, गन्ध ने बुलाया, पिक ने बुलाया, अपने ही नक्षत्र ने बुलाया, चलो तो मैं वहाँ चला, पीछे-पीछे आओ। किसी को किसी की सुधि नहीं, नाच भर की सुधि है, नाच में क्या नाचना है, बस इतना मालूम है। श्रीकृष्ण मुग्ध, गोपवधुएँ मुग्ध, राधा भी मुग्ध, बिदककर चली गई। श्रीकृष्ण ने नाच में किसी मोड़ पर दूर राधा को जाते देखा, रास-रस फीका पड़ गया, नचाने वाली तो चली गई, रासेश्वरी नहीं तो रास कैसा। हाय रे वसन्त, तुम संयोग में भी वियोग पैदा करते हो? राधा को लगा रास मेरा परिहास कर रहा है, 'रासे हरिमिह विहितविलासं स्मरति मनो मम कृतपरिहासम्', सखी से कहती है, श्रीकृष्ण को देखा, उनका अधरामृत पीकर वंशी थिरक रही है, उनके होंठ फरक रहे हैं, आँखों की कोर चंचल है, सिर घूम रहा है, कानों में लगा कुण्डल थिरक रहा है, काले केश लहरा रहे हैं, उस पर लगे मोर के पंख नाच रहे हैं, लगता है अनगिनत इन्द्रधनुष एक साथ लक्ष्यवेध के लिए चढ़ गए हों और बादलों के दल घुमड़ पड़े हों। क्या करूँ सखि, मेरी बड़ी हँसी हुई, पर इस रासविलासी कृष्ण के सिवा कुछ स्मरण करने को भी तो नहीं है। मुझे लगता है कि बड़े कदम्ब के पेड़ के नीचे प्रीति-तरंगित आँखों के इशारे से श्रीकृष्ण बुला रहे हैं, भीतर के कलही चित्त का सब कलुष शमित कर रहे हैं, उस एक तरह दृष्टिपात से। सखी, वे मुझे रास में रमा रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या करूँ, मैं ही वामा नहीं मन भी मेरा वाम है, मैं कहती हूँ श्रीकृष्ण से दूर चलो, ऐसा छली, ऐसा चंचल, नहीं जाते इसके रास में, और वह उधर ही जाना चाहता है। बार-बार वह एकान्त निकुंज में जाता है, मैं चकित होकर हर तरफ देख रही हूँ, कोई है तो नहीं और वह छिपा हुआ हँस रहा है। मैं प्रेमावेश से जाने कैसी हो रही हूँ और वह निश्चिन्त भाव से मेरी प्रथम समागम की लज्जा दूर कर रहा है। सखी, उसी बीते हुए क्षण में मुझे ले चलो, जब मुझसे वह सुख सहा नहीं जा रहा था, तनुलता निस्सह हो गई थी, मैं अर्पित हो गयी थी, वह मुदित हो रहा था। वसन्त मुझे चैन से रहने नहीं देगा, उसी के पास ले चलो।

उधर श्रीकृष्ण रास छोड़कर उस एकान्त कुंज में चले गए, जहाँ राधा से पहली भेंट हुई थी और पछताने लगे, क्यों नहीं मैंने उसे रोक लिया, मैंने क्यों नहीं उसे आदरपूर्वक बुलाया, क्यों मैं मनमोहनपन के सङ्कोच में पड़ा रहा, मेरी हँसी हो जाएगी। क्या होगा यह रूपसम्पत्ति लेकर, क्या होगा इतने लोगों का आकर्षण-केन्द्र बनकर, इन सबका जो उद्देश्य है, वही जब पास नहीं है, क्या कहेगी वह, क्या करेगी इस प्रकार अलग होकर।

अब इस जीवन में क्या रखा है और अब घर में क्या रखा है।

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण।
किं धनेन जनेन किं मम जीवितेन गृहेण।
हरि-हरि हतादरतया गता सा कुपितेव।।

माधव राधिका के विना, लगता है पहली बार ऐसे व्याकुल हुए हैं। यह प्रमादी वसन्त क्या-क्या प्रमाद करता है, मनुष्य की देह में भी कैशोर का वसन्त आता है। तो ऐसे ही प्रमाद करता है, ऐसे ही नाराज करता है, ऐसे ही खिझाता है, ऐसे ही सिझाता है अनुताप में और ऐसे ही तड़पाता है। वह सनातन किशोरी न हो तो माधव का ऐसा उन्मथन हो, माधव का मधु सम्पूर्ण विश्व को वितरित न हो।

माधव कुंज में बैठे-बैठे बिसूर रहे हैं, प्राणों की अधिदेवता राधा को। रात हो आई। इतने में राधा की सखी विशाखा राधा का विरह-निवेदन लेकर पहुँचती है। कहाँ-कहाँ श्रीकृष्ण प्रेमाकुल होकर भटक रहे हैं, जाने कैसे राधा प्रसन्न होंगी? सखी उन्हें ठिकाना देती है, राधा विरह में तुम्हारी भावना करते-करते तुममें लीन-सी हो गई है, उसे न चन्द्र की शीतल किरणें सुहाती हैं, न मलयसमीर, मलयसमीर तो मलयाचल के चन्दन-द्रुमों में लिपटे भुजंगों की विषैली फुफकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगती है। काम के शराघात के भय से मानों भावना के द्वारा तुममें छिपने का यत्न कर रही है। निरन्तर जो मदन शराघात किए जा रहा है, उससे बचने के लिए हृदय के ऊपर कमल के दलों का वर्म धारण कर रही है। फिर सोचती है कुसुम के इन बाणों की शय्या ही क्यों न बना ले, तुम्हें पाने के लिए यह एक तप हो जाए। प्रतिक्षण बिलखती कहती हैं, माधव मैं तुम्हारे चरणों में पड़ी हूँ, तुम विमुख रहते हो तो सुधानिधि चन्द्रमा भी शरीर में दाह ही पैदा करता है। राधा ध्यान के लययोग के द्वारा तुम्हें सामने पाने की परिकल्पना करके पा लेती हैं, कितने भी दुष्प्राप्य क्यों न हो योगियों के लिए, पर पाकर भी कभी विलाप करने लगती है, क्यों भुलाया, कभी उन्मत्त होकर हँस पड़ती है, अब मिले हो, कभी विषाद में भर जाती है, क्यों तुम्हारे ऊपर कुपित हुई, फिर रोने लगती है मैं पागल हूँ, तुम कुछ वैसा न मानना, फिर स्पर्श पाते ही छनछना उठती है, क्यों उपेक्षा की और अन्त में गरम उसाँसों के द्वारा भीतर का सारा ताप बाहर निकाल देती है।

घर वन हो गया है, सखियाँ जाल का घेरा हो गई हैं, शरीर का ताप गरम साँसों से मिलकर दावानल हो गया है। कमल की नाल उखाड़ लें तो जैसे कमल के ऊपर के जलकण चारों ओर बिखर जाते हैं, वैसे ही उसकी आँखें बरस रही हैं और लगता है कि उन आँखों का मूल अस्तित्व नहीं रहा। जैसे सन्ध्या बालचन्द्र को चिपकाये रहती है, वैसे ही गालों पर हाथ रखे रहती है, कहीं अश्रु प्रवाह से विचलित न हो जाए। बस हरि-हरि यही जपती रहती है कि श्वास इस नाम के साथ एकाकार हो जाए और इसी में सदा के लिए विलीन हो जाए।

पश्चिम और पश्चिम की छुई-मुई शुचिवादिता से प्रभावित भारत के विद्वान् गीतगोविन्द की ऐन्द्रियता और मांसलता की बात बहुत करते हैं, क्या यह ऐन्द्रियता है? क्या इन पंक्तियों में देहबुद्धि है? क्या संयोग शृंगार इस वासन्ती उद्वेग में उद्दीपन मात्र नहीं है, क्या विप्रलम्भ की विविध सम्भावनाओं के द्वारा प्रेम का तरह-तरह से उद्वेलन ही उस काव्य का मुख्य लक्ष्य नहीं प्रतीत होता।

अस्तु, श्रीकृष्ण को लगता है, बात अभी बिगड़ी नहीं है, इसी निकुंज में फिर राधा आ जाएगी, तब उसे लगेगा कि प्रियतम आकुल हैं मेरे लिए। यहीं दूसरा प्रमाद होता है। कुंज को श्रीकृष्ण महत्त्व देते हैं, राधिका के पूर्व मिलन स्थान को राधिका से अधिक महत्त्व देते हैं और स्वयं राधा के पास नहीं जाते। सखी राधा से श्रीकृष्ण की विह्वलता का वर्णन करती है और अभिसार के लिए अनुरोध करती है—विलम्ब न करो सखि, वनमाली वन के निभृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकान्त में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, वंशी में तुम्हारा ही नाम टेर रहे हैं, तुम्हारी ओर से हवा इधर चलती है और धूलि उठकर अंगों में लगती है, तो उस धूलि को जीवनमूरि मानते हैं, तुम्हारी क्षण-क्षण बाट जोह रहे हैं, पत्ता खड़कता है, पक्षी पंख फड़फड़ाते हैं, उन्हें लगता है, तुम आ रही हो और कुसुमों की सेज बिछाने लगते हैं। प्यारी, देर न करो, हरि बड़े अभिमानी हैं, रात भी बीती जा रही है, चलो प्रिय की इच्छा पूरी करो। नील वसन पहन लो, नूपुर उतार दो, नूपुर बड़ा अधीर है, बड़ा मुखर है, श्याम तम में श्याममय होकर चलो। कैसा वेश बनाया है श्रीकृष्ण ने कि मदन का मन भी उस वेश से ही हर जाए। कामनाएँ भी वेश देखकर कामना न रह जाएँ, ऐसे मिलन की तैयारी करो, जिसमें कामविरहित प्रेम उच्छ्वसित हो उठे और भूमिकाएँ बदल जायें, प्रेयसी प्रिय हो जाए।

अभिसार के लिए राधा चलने को तैयार होती है, पर चल नहीं पाती, सखी से कहती है—गोविन्द को ही बुला लाओ, मैं अभिसारिका नहीं बन पा रही, वासकसज्जा के रूप में यहीं प्रतीक्षा करती हूँ। सखी गोविन्द से कहती है, तुम गोपाल गोचारणविशारद तुम्हीं चलो, तुम्हें तो कुछ सुधि अभी है, राधा तो बस अपने आप में खो गई है, हर तरफ आपको देखती है, उसे लगता है प्यारे मेरे अधर-मधु का पान कर रहे हैं। कुछ पग चलती है, गिर पड़ती है, केवल तुम्हारे अनुभावन के कारण तुम्हारी रतिकला के सहारे, जिसकी उद्भावना करती रहती है, उसी से वह जी रही है। वह इतनी खो गई है कि शृंगार करना चाहिए राधा का, श्रीकृष्ण का शृंगार किए हुए है और सोच रही है कि राधा आ रही है। फिर उसे लगता है कि मैं राधा हूँ, श्रीकृष्ण को आना चाहिए था, नहीं आए। अकुलाकर अन्धकार को ही श्याम मानकर उसे अंक में भरने चलती है। लगता है तुम्हारी लीला में इतनी आसक्त होने पर इस प्राणसंकट वाली अकुलाहट में रात नहीं बिता पाएगी। सखी की बात सुनते हैं और श्रीकृष्ण भी चल नहीं पाते। राधा विलाप करने लगी। चन्द्रमा ऊपर चढ़ आया, हरि नहीं आए। मैं सखी की बातों में ठगी गई, कहाँ जाऊँ, यह रूप, यह यौवन विफल हो गया। लगता है हरि को दूसरी पुण्यशीला प्रेमपाश में बाँधे हुए है। जाने क्या-क्या केलिकलाप नहीं कर रही होगी। मेरी तरह अभागिन थोड़े ही है कि किसलय-शय्या पर भी चल रही हो, मदनबाणों से बींधी जा रही हो, हँसी का पात्र बन रही हो। एक मन:कल्पित ईर्ष्या में राधा दहक उठती है और संगम का एक कल्पित चित्र और अधिक उद्वेलित कर देता है। जयदेव ने यह नहीं कहा कि श्रीकृष्ण कहीं अन्यत्र रम रहे हैं, बस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनकहे कह दिया कि ईर्ष्याकल्पित वास्तविकता है। पर राधा और कृष्ण मिल नहीं रहे हैं, रात बीती जा रही है, पूरी तैयारी और इतनी प्रतीक्षा, अभिमान मिलने नहीं दे रहा है। राधा श्रीकृष्ण की तन्मयता के अभिमान में पड़ी रहती है, श्रीकृष्ण राधा के प्यार के पूर्वक्षण के साथ तन्मयता के अभिमान में पड़े रहते हैं, राधा अपनी व्यष्टि-सत्ता खोना नहीं चाहती, श्रीकृष्ण अपनी समष्टि सत्ता खोना नहीं चाहते। वसन्त के और नये प्यार के, और आध्यात्मिक अनुभव के शिखर के ये ही तमाशे हैं, 'मिलि न सकत मिलिबे अकुलावत'। मिलना नहीं होता है, केवल अकुलाना ही होता है मिलनै के लिए। उत्सर्ग के अन्तिम क्षण में बाधा और तीव्रतर हो जाती है। राधा को लगता है, मैं अपने आप से वंचित हूँ, मेरा स्व ही मेरे खिलाफ साजिश कर रहा है।

पहला दिन और पहली रात ऐसे ही बीत गई, श्रीकृष्ण को लगा, बहुत हो गया, चलें, राधा के चरणों में पड़ें, बड़ा क्लेश दिया मैंने। आये, पर राधा प्रभात की आभा में दीप्त बिगड़ गई, धूर्त कहीं के, रात भर दूसरी के साथ बिता कर सुबह घाव पर नमक छिड़कने यहाँ आये हो, तुम्हारी आँखें रतजगा का प्रमाण दे रही हैं, साथ-साथ किसी अपूर्व तृप्ति का अलस भाव भी जतला रही हैं, जाओ उसी के पास जो तुम्हारी थकान हरती है। तुम्हारे लाल ओंठ काजल-लगी आँखों के चूमने से काले हो रहे हैं, ठीक तुम्हारे शरीर और स्वभाव के अनुरूप। तुम्हारे हृदय किसी के चरणकमलों के आलते से अभिषिक्त हैं, जैसे वह नये प्यार के अँखुओं का किसलय-परिवार हो। तुम्हारा शरीर जैसा काला है वैसा ही तुम्हारा मन भी, नहीं तो अपनी इतनी समर्पिता को इस तरह धोखा देते। तुम्हें भीतर से कुछ लगता नहीं, बचपन में जिसने दूध पिलाने वाली को मार डाला हो, उससे और क्या आशा करें।

राधा को लगता है, खण्ड-खण्ड हो गई है। श्रीकृष्ण ऐसा करेंगे, कल्पना नहीं थी। विराट् को तोड़ना है कैसे कल्पना की जाए। पर सही बात तो यह है कि विराट् अधिक तोड़ता है। श्रीकृष्ण सारे जीवन तोड़ते ही तो रहे, कितने नाते कितने रिश्ते तोड़े, मुस्कराकर कहते हैं, जिस पर अनुग्रह करता हूँ, उसी को तोड़ता हूँ, जिसे चाहता हूँ उसे पहले अकिंचन बनाता हूँ। पर राधा अकिंचन नहीं है, अकिंचन बनाने वाले की सब कुछ है। वह खण्डित होकर भी टूटेगी नहीं, वह विराट् के आगे झुकेगी नहीं, वह विराट् पर छा जाएगी। सखी मनाती है, नहीं मानती। श्रीकृष्ण मनाते हैं, बड़ी मीठी बातें करते हैं, मैं तोड़ने वाला वंचक, पर तुम तो चारुशील वाली हो, मान जाओ, जो दण्ड देना चाहो, दण्ड दो, जिस-जिस अंग को तुम दण्ड के योग्य समझती हो, दण्ड दो, तुम्हीं मेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोभा हो, शृंगार हो, तुम्हीं मेरा जीवन, तुम्हीं मेरे संसाररूपी समुद्र का रत्न, तुम पुनः अनुकूल बनो। लाओ, अपने पदपल्लव मेरे सिर पर रखो, यह काम का गरल उतार देगा, मेरे सिर पर मुकुटमणि बनकर विराजेगा, जो मैं जल रहा हूँ विरह के ताप से, उस ताप को यह शोभित कर देगा शीतल स्पर्श से।

जयदेव ने इस अष्टपदी में विराट् को झुकाकर प्यार की एक अद्वितीय भूमिका स्थापित की है। विराट् सदा उपजीव्य है लघु का, समष्टि सदा प्रणत है व्यष्टि के आगे, श्रीकृष्ण के लिये राधा शक्ति मात्र नहीं, स्वरूप की पहचान है। इसी कारण जब दिन ढलने पर (सारा दिन तो अनुनय-विनय में ही चला जाता है) सखी के उकसाने पर स्वभाव की सहज भोली राधिका अभिसार के लिए उसी निभृत कुंज की ओर चलती है, तो उच्छलित हैं उसके पदविन्यास। वह अंधकार को अपने प्रेमरूपी हेम की कसौटी बनाती हुई चलती है, स्वाधीनपतिका बनकर चलती है, लो अब तो यह मेरे अधीन हो गए, जैसे चाहूँ इन्हें नचाऊँ, अब मैं मनमाना रास रचाऊँ। वह इस उल्लसित भाव से जब श्रीकृष्ण के पास जाती है तो उन्हें लगता है देर हो गई, राधा-देह पहुँचे, इसके पहले राधाभाव श्रीकृष्ण के अंग-अंग में अवतीर्ण हो गया है, राधा के लिए अभिलाषा राधा बनकर हुलस रही है। नीले समुद्र में पूर्ण चन्द्रमा को देखकर जैसे उज्ज्वल फेनिल लहरों का पुंज बन जाता है, अगाध समुद्रता जाने कहाँ चली जाती है। यमुना के ऊपर फेनिल लहरें जैसे शोभित होती हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण के नील वक्षस्थल पर हार झिलमिला रहा है। पीताम्बर ऐसा लग रहा है कि जैसे विकसित नीलकमल चारों ओर अपने ही पीत पराग की धूलि से लिपट गया हो, श्यामल शरीर सोने का कुण्डल वदनकमल से मिलने के लिए ऐसा आतुर है जैसे सूर्य हो, काले केशों में श्वेत कुसुम ऐसे गुँथे हुए हैं जैसे बादलों के बीच-बीच में चन्द्रमा की किरणें झाँक रही हों, चन्दन का तिलक ऐसे लग रहा है जैसे चन्द्रमा अन्धकार में एकाएक उदित हो आया हो। गौर राधा श्रीकृष्ण पर छा गई है, राधा तो श्रीकृष्ण से मिल चुकी, अब मिलन होना है तो श्याम बनी राधा का राधामय कृष्ण से मिलन होगा। मणिपुर में अन्तिम दो अष्टपदियाँ गाने का अभिनय करने का अधिकार बड़ी मुश्किल से किसी को मिलता है, कहाँ पात्रता होगी ऐसे मिलन का पूर्व क्षण और उत्तर क्षण अपने भीतर करने की। ओछा-सा मनुष्य देह का भाजन, वह भी जाने कितनी कलौंस से भरा यह उज्ज्वल रस-सिन्धु कहाँ से भरेगा। राधा की बड़ी आँखें श्रीकृष्ण की यह शोभा निहारती रहीं, जैसे कान तक पहुँच जाने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयास में एकदम श्लथविश्लथ हो गईं और आनन्दाश्रु बहने लगा, मानो अतिश्रम से स्वेद बह चला हो। श्रीकृष्ण के दर्शन ऐसे थे जैसे हजार दर्पणों में अपना दर्शन हो, इतना अपने को देखना भर देता है प्रत्येक नाड़ी को आनन्द के प्रवाह से और तब शरीर अवश हो जाता है। इस अष्टपदी का वितान बड़ा विलम्बित है।

हरि ने राधा की दृष्टि किसलयशय्या पर सतृष्ण पड़ी देखी तो उन्होंने आह्वान किया एक क्षण के लिए, तुम अनुगत नारायण के अनुसार व्यवहार करो, जैसे नूपुरों पर कृपा करती हो वैसे ही मुझे भी अधिकार दो कि कर-कमलों से चरणों की सेवा करूँ। इसके अनन्तर राधा नारायण हो गई, श्रीकृष्ण हो गए राधा, उस मिलन को क्या किसी भी मिलन के क्षण को साक्षात् जयदेव ने नहीं गाया, या तो स्मृतिरूप में या कल्पनारूप में या स्पृहारूप में ही मिलन अष्टपदी में आया। कथायोजक श्लोकों में कुछ अतीत की घटना जैसा मिलन उपवर्णित हुआ, पर अष्टपदी में मिलन या तो पहले है या बाद में कल्पना में या अभिलाषा में।

मिलन हुआ भी तो दो परस्पर रूपान्तरित भूमिकाओं का मिलन हुआ, रात क्षीण हो गई, सुबह होते ही राधा को लगा कि नारायण भाव झेला नहीं जाएगा, राधा बनकर लौटना है। पर ऐसी राधा जो श्यामरस में बोरी जाकर श्यामा हो गई हो, वह श्यामा श्याम के हाथों में बनना चाहती है, कस्तूरी का तिलक लगाना चाहती है, श्याम के हाथों कस्तूरी का लेप लगाना चाहती है हृदय पर श्याम के हाथों, श्याम के द्वारा पुछा कज्जल श्याम के हाथों और चटकीला कराना चाहती है, वेणी के ढीली पड़ने से केशों मे से कुसुम खिसक गए हैं, श्याम के हाथों से अपने केशों में ऐसे कुसुम गुँथवाना चाहती है कि मयूरपिच्छ बन जायें। श्रीकृष्ण ही उसे अपने हाथों से हार पहनायें, मेखला पहनायें, नूपुर पहनायें, नीली फरिया की फहरान ठीक करें, श्रीकृष्ण भर जायें तो राधा उत्कंठा-भरी राधा वापस मिले, मिलन में वह तो न जाने कहाँ बिला-तिला गई थी।

गीतगोविन्द गोविन्द द्वारा राधा के श्यामाकरण में पूर्ण हो जाता है, श्याम-श्याम की एक-दूसरे में आपूरित होने की निरन्तर आकांक्षा ही जयदेव की केन्द्रीय ग्रहण भाव-रचना है।

मैंने बहुत ही सपाट ढंग से इस लीला प्रबन्ध की कहानी सुना दी। पण्डित नहीं हूँ, इसलिए मैंने कोई आलोचना अपनी ओर से नहीं जोड़ी, दार्शनिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं हूँ, मैंने सच्चिदानन्द और उनकी ह्लादिनी शक्ति के बीच भेदभाव की तत्त्वमीमांसा नहीं की, भक्त नहीं हूँ मैंने भक्तिरस की दृष्टि से संचारियों के संगुम्फन का मर्म नहीं समझाया, न विरह-लीला का लोकोत्तर रहस्य समझाया और नृत्य संगीत की जानकारी नहीं कि प्रस्तुति में आए हुए तरह-तरह के मोड़ समझाता, कलाविद् नहीं कि रंगों का घुलन मनुष्य और सृष्टि का ओतप्रोत भाव देश या काल के विभाजन की कलायुक्तियों के द्वारा निरूपित करता। साहित्य का सामान्य पाठक हूँ, कला का सामान्य प्रेक्षक हूँ। बस मैं चाहता हूँ, शब्द और संगीत का अनबूझ श्रोता अपनी आँखों से इन लीलाओं को निरखें, देखें, कैसे देह का सौन्दर्य, देह की चेष्टा, देह की अपेक्षा से सब जब किसी गहरे भाव को लेकर सामने आते हैं तो देह रहते हुए भी देह से मुक्ति मिल जाती है। देखें, वर्षा का मंगल रचकर वसन्त जैसे रूप अनमने और पात-पात सुखाने वाले को कैसे अद्‌भुत रसवृष्टि का रास बना दिया जा सकता है, पिण्ड की रागात्मिका वृत्ति को कैसे इतनी भंगिमाओं में नचाते हुए ब्रह्माण्ड के अधीश्वर की सनातन विवशता का प्रेरक बनाया जा सकता है। ध्यान लगाकर सुनें, रास के पदक्षेपों और संगीत के स्वरों से बालू कैसे स्पन्दित होकर बजती है।

मुझे लगता है, जो यह रास पूरा नहीं हुआ, जो यह मिलन अभिलाषा में ही समाप्त हुआ, वह कुल सवा दो दिन में ही (जितने समय में चन्द्र एक राशि का भोग पूरा कर लेता है), किशोर मनोभावों के इतने चढ़ाव-उतार हो गए कि पूरी सृष्टि उससे उद्वेलित हो गई, यह सब अचानक नहीं हुआ। युगों से इसकी तैयारी हो रही थी और शायद अब भी तैयारी पूरी नहीं हुई, श्रीकृष्ण के चपल मनोहारी रूप को नचाने का संकल्प बड़ा पुराना है। हेमचन्द्र ने अपभ्रंश दोहे का एक टुकड़ा उद्‌धृत किया है—

हरि नच्चाविउ, अंगइ विम्हइ पाडिउ लोउ।

किसने आँगन में हरि को नचा दिया, लोगों को विस्मय में डाल दिया, सिवाय राधा की हल्की-सी झलक ने। युगों-युगों के कवियों का वह संकल्प पूरा किया है जयदेव ने। मैंने प्रारम्भ में एक प्रति की थी, जयदेव ने राधा नहीं रची, जयदेव ने राधा-युग रचा, यह युग राधा-युग संस्कृति का वह अध्याय है, जिसमें साहचर्य बराबर की सहभागिता माँगता है, जिसमें ब्रह्म कूटस्थ नहीं रहने पाते, जिसमें जीव के भीतर का चैतन्य केन्द्र बन जाता है, जिसमें बच्चों का एक घरौंदा बन जाता है पूरा ब्रह्माण्ड, एक छोटा-सा रेत का कण बन जाता है अनन्त ऊर्जा का स्रोत, एक अपरिपक्व मानुष संवेदना हो जाती है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सृष्टि की सार्थकता, वृन्दावन के यमुना-तट के एक कोने में उमड़ जाता है अथाह रससिन्धु और ईर्ष्याभरी उत्कट अभिलाषा हो जाती है विशुद्ध चैतन्य के लिए अतिरिक्त प्रभामण्डल टूटना, खण्डित होना, उन्मथित होना, पगलाना, खीझना, रूठना, मनाये न मानना, पिघलना, सजना, मिलना, खाली हो जाना, भरने की चाह करना ये सब घटित होते हैं, तो मनुष्य के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है; क्योंकि यह सब मिलकर ही यह साध सधती है कि विशाल लघु हो जाएँ, बूँदें एक क्षण को ही सही समुद्र से उछलकर ऊपर हो जाएँ।

जयदेव का काव्य यह साध पूरी नहीं करता, साध को केवल चेताये रहता है, आत्मीयता के विस्तार की आकांक्षा छूने न पाये, इसीलिए तो हरि यहीं विहार कर रहे हैं, इस समय भी विहार कर रहे हैं, जब पलाश दहक रहा है, कोयल कुहक रही है, तमाल श्यामलता छोड़कर राधामय हो रहा है, राधामय होकर निरन्तर मरन्दवर्षा कर रहा है, तमाल के इस परिवर्तन को श्यामलता सह नहीं पा रही है और भौंरों की भीर बनकर उसे आच्छादित कर रही है, विद्यापति के शब्दों में तिल-तिल नूतन हो रहा है, दिन दहाड़े डाका पड़ रहा है, कोई मित्र अपना मित्र नहीं रह जाएगा, सब पराये हो जाएँगे, शायद अपनापन छीनने वाले पराए की भी परता, परात्परता छिन जाएगी। अपनी साँसों में देखिए, मलय पवन सिहर रहा है या नहीं, अपने भीतर के गहन अन्तरतम में सुनिए भौंरे गुनगुना रहे हैं या नहीं, कोयल कुहक रही है या नहीं और एक उन्मुक्त भाव नाच रहा है या नहीं, विश्वास मानिए यह तमाम जंजालों के बीच अनेक प्रतिरोधों के बावजूद जो अनुभव होता है, वही हरि है, वही हरि का रास है, वही राधा का वैचित्य है, सनातन दुरन्त विरह है, वही जीव की सबसे बड़ी निधि है। सुनिए वह पुकार—

ललितलवङ्गलतापरिशीलन-कोमलमलयसमीरे
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिल-कूजत्कुञ्जकुटीरे।
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते।।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीश्रीगीतगोविन्दम्

श्रीश्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीकृतया
श्रीश्रीगीतगोविन्दव्याख्यानाख्यटीकया समेतम्

।।अथ प्रथमः सर्गः।।

सामोद-दामोदरः

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः।।१।।

शशधरमधुरमधुरमूर्त्तिश्रीवृन्दावनेश्वरीस्तनकुड्मलमकरीविरचनाकलितकर-कमलदलानन्दकन्दलितमकरध्वजादेशचलितयोः श्रीमत्कालिन्दीतटसम्बन्धि-माधवीव्रततिस्फुटत्कुसुमकदम्बसौगन्ध्यलुब्धसच्चञ्चरीकपटलीध्वनिकलमाधुरी-मुग्धस्वरगुणगणे विविधनिकुञ्जमञ्ज्वध्वद्रुमघनवनेऽवलम्बिनीं कन्दर्पकोटि-लीलारसजलधिमग्नहृदयश्रीवृन्दावनकिशोरीकिशोरचक्रचूडामण्यो राधामोहनयोः समस्ततज्जनहृत्पङ्केरुहानन्दसंवर्धिनीं विहारमाधुरीं तत्कृपयैव वर्णयितुं श्रीजयदेवनामा कविरिष्टदेवतास्मरणलक्षणं मङ्गलमाचरति—मेघैरिति। तच्चायोग्योऽप्ययं जनस्तदनुगतत्वेनैव व्याचष्टे—

जयदेव का गीतगोविन्द बासन्तीरास का काव्य है और मंगल-वर्षा का। यह अपने-आप में कोई कम विडम्बना नहीं है। पर यह इस काव्य के लिए आवश्यक है। यह साधारण प्रबन्धकाव्य नहीं है। इसमें सब-कुछ अटपटा है, सब-कुछ अद्वितीय है। इसका मंगल उसी अद्वितीयता का संकेत देता है। मंगल के रूप में पहला एक श्लोक ग्रन्थ के प्रतिपाद्य श्रीराधा और श्रीकृष्ण को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि श्रीकृष्ण नायक नहीं हैं, श्रीकृष्ण ले जानेवाले नहीं हैं। श्रीराधा ही श्रीकृष्ण को उनके घर ले जानेवाली हैं। समय भी कैसा है, जिसमें सब कुछ श्याम हो गया है। आकाश में घने बादल, आकाश एकदम घना काला हो गया है और स्थिति जमीन पर भी वैसी ही है। तमाल के घने पत्रजाल से पृथ्वी ऐसी ढँकी हुई है कि वह और भी घनी काली हो गयी है। यही काफी नहीं समझा गया है। रात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेघैरित्यादि। जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तन्ते, प्राकृताप्राकृतेभ्यो लीलास्वरूपयोरतिरेकात्; उक्तञ्च (भा. १।३।२८)– 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' इति। कास्ताः–रहःकेलयः सुरतक्रीडाः, 'रहो गुह्ये रते' इति। रहःकेलय एकान्तक्रीडा इति वा, सजातीयविजातीयेभ्योऽपि एकान्तत्वेन राधया सह केलीनामुत्कर्षो निरूपितः, उक्तञ्च (भा. १०।३०।२८)– 'यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः'। इति। अथवा केलयः सुरतक्रीडाः, प्रकरणवशात्। कस्मिन् सति? रह एकान्ते सति, एकान्तार्थे रहोऽव्ययमिति। सखीभिरपि किञ्चिद्व्यवधाने स्थितत्वात्; वक्ष्यति च (गो. ७७) 'याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने' इति। जयन्तीत्यनेन नमस्करणीयत्वमुक्तम्, तेन नमस्क्रियया काव्यामुखं द्योतितम्। 'आशिषि लिङ्लोटौ' (पा. ३।३।१७३) इति लोडर्थे लङ्विधानात्। आशीश्च– भवतीदमाशीर्वादस्वरूपं मङ्गलं भक्तप्रेम्णैव सङ्गच्छते, परमकल्याणरूपत्वात्। केलय इत्यनेन कथालक्षणं वस्त्वपि निर्दिष्टम्। एवं महाकविना त्रिविधमपि काव्यमुखं समुन्मीलितं भवति। तथा च जयन्तीत्यनेन वर्त्तमाननिर्देशात् केलीनां नित्यत्वं प्रतिपादितम्; केलय इत्यनेन बहुवचनेनानन्तत्वञ्च दर्शितम्, कवेश्च लीलोपासनया परमैकान्तिकत्वञ्च स्फुटमेव। तासां स्थानं दर्शयति- क्व यमुनाकूले यमुनायाः कूलं तत्र; प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमम् अध्वानश्च कुञ्जाश्च

आती है। श्यामता के ऐसे विपुल विस्तार में श्याम खो गये कि उन्हें अपनी ही श्यामता से भय होने लगा। मैं अपने को अपनी श्यामता में कहाँ ढूँढूँ? कहाँ पाऊँ? नन्द ने इसे समझा। और कौन उपयुक्त पात्र है, जो उन्हें उनके स्वरूप का विमर्श कराये, उसी को उन्होंने आदेश दिया। वह पात्र श्रीराधा हैं। घने मेघों के बीच में बिजली जब कड़कती है तो बादल भी साफ-साफ दिखता है। श्रीराधा इस सभी श्यामता को ओढ़कर उसे नीलवसन बनाकर जब आगे-आगे चलती हैं, तो श्रीकृष्ण के सामने राहें खुल जाती हैं और उन्हें दिखने लगता है कि हमारा मार्ग इधर है, हमारा मार्ग ऊपर आकाश में नहीं है। इस साधारण मानवलोक पर है। मानव-उद्वेलन के प्रतिक्षण की उत्सुकता में है, वर्षा को वसन्त में परिवर्तित करने में है, प्रत्येक झुरमुट में, यमुना की बालू में रस की सम्भावना का विस्तार करने में है। रस की सम्भावना एक ऐसे मानवचित्त में ही सम्भव होती है, जो चित्त रस की आकांक्षा से इतना परिप्लुत हो गया हो, इतना उमंगित हो गया हो कि चित्त नाम का पदार्थ उस ताप में, उस आकांक्षा के ताप में गलकर वही रूप ले चुका हो, अर्थात् चित्त स्वयं परात्पर प्रकाश की धारा का रूप ले रहा है। एक प्रकार से श्रीराधा केवल नीलवसन ही नहीं पहनतीं, ऊपर से ही केवल श्यामता धारण नहीं करतीं, भीतर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रुमाश्च अध्वकुञ्जद्रुमास्तान् प्रति, 'लक्षणेनाभिप्रती' (पा० २।१।१४) इति समासः। अध्वनि अध्वनि कुञ्जे कुञ्जे द्रुमे द्रुमे इत्यर्थः। अनेन महाविलासित्वं कथितम्, तदुक्तं 'चापल्यसीम' इति कर्णामृते (७४); तथा चाध्वादिषु केलयः, यथा (भा. १०।३०।२७,३१-३४)–

'कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना।
अंस-न्यस्त-प्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा।।
न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्य नूनं तृणाङ्कुरैः।
खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः।।
इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम्।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः।।
अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना।
अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः।।
प्रपदाक्रमणे एते पश्यता सकले पदे।
केशप्रसाधनस्त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम्।।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्ट इह ध्रुवम्'।।

भी श्यामता का ही अनन्त प्रसार भरती हैं। दूसरे शब्दों में राधा सम्पूर्ण श्यामता को अपने भीतर-बाहर समेट लेती हैं। इस कारण वे श्याम को अपने में ले लेती हैं, अपने में भर लेती हैं और अपने में भरकर उन्हें रस के विस्तार रास में ले जाती हैं। वर्षा से वसन्त की यह छलांग समझ में नहीं आती, एकदम उसी प्रकार जैसे घनी रात से दिन के प्रकाश पर एकाएक अवतरण भी समझ में नहीं आता और अन्त में तमाल का घना पत्रजाल फिर से इतनी जल्दी सब पतझड़ में झड़ जाता है। उसमें केवल शाखाएँ रह जाती हैं और शाखाओं के ऊपर झीने-झीने पीले-पीले फूल खिल जाते हैं। श्याम तमाल स्वर्ण तमाल बन जाता है और स्वर्ण तमाल से मकरन्द का द्रव ऐसे झरने लगता है, जैसे उस वृक्ष की उत्कण्ठा, श्याम से स्वर्ण होने की उत्कण्ठा ही झर रही हो। मैंने तमाल का वृक्ष वर्षों अपने दरवाजे पर देखा है, उसको काटने से बचाया है। आज के घोर उपयोगितावादी जमाने में लोग ऐसे पेड़ अपने पास नहीं रखना चाहते; क्योंकि ऐसे पेड़ की डालें नीचे जमीन तक आ जाती हैं और अपने आप एक नहीं अनेक कुंज अपनी छाया में रच देती हैं। पत्तियाँ एक-दूसरे से ऐसी सटी होती हैं और इतनी घनी हरी होती हैं कि उस छाया में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति श्रीभागवते; यथा वा (विदग्ध. ६।३२, ७।४३)–

प्रियसखि परिरम्भानाभिमुख्यानुबन्धा-
दसदृशविनिवेशान्नर्मलौल्योर्जितानि।
इयमविषममन्दन्यासतो जल्पगोष्ठीं
पदततिरिह राधाकृष्णयोरातनोति।।

मनोहारी हारस्खलितमणिभिस्तारतरलैः,
परिम्लायन्माल्यो मिलितपुरटालङ्कृतिकणः।
अयं कुञ्जस्तल्पीकृतकुसुमपुञ्जप्रणयवान्,
समन्तादुत्तुङ्गं पिशुनयति रङ्गं मुरभिदः।।इति।

यमुनाकूल इत्यनेन सम्भोगश्रमहरणाय शिशिरसमीरपद्माद्यवचय-जलकेलीनामित्यादिसम्पत्तिर्दर्शिता। कयोः? राधामाधवयोः, 'राध-साध-संसिद्धौ' इति राध्यते साध्यते संसिद्धिं प्राप्यते सौन्दर्यादिगुणैस्तादृशनायक-शिरोमणेराकाङ्क्षितमनयेति सा राधा। अथवा–राध्यते साध्यते वशीक्रियते स्वासाधारणानुरागमाधुर्यकौशलेनाशेषनायकचूडामणिरनयेति राधा। तथा चोक्तम् (भा. १०।३०।२८)– 'अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः' इति श्रीभागवते। अनेन नाम्नैवाशेषनायकगुणाः कथिताः। मां श्रियं शोभां वैकुण्ठेश्वरीं वा धुनोति निजसौन्दर्यगुणैः कम्पयति स्वप्रवणां करोतीति

कुछ भी नहीं दिखता। वर्षा भी वहाँ नहीं पहुँच पाती। जो भी वर्षा होती है, पत्तियों में ही टँगी रह जाती है, जैसे पेड़ अपने ही ऊपर सारी वर्षा ले लेता है। वही पेड़ पतझड़ में निरा वृक्ष हो जाता है, एक भी पत्ती नहीं रह जाती। काली डालें, एकदम काली डालें और भयावह लगती हैं, जैसे कोई काली रेखाओं का एक चित्र सामने खड़ा हो, आशंकाओं पर आशंकाएँ पैदा कर रहा हो। एकाएक नाटकीय परिवर्तन है। एक-एक शाखा में हर रोम जैसे पुलकित हो जाता है और यह पुलक मृगगन्धवाली कली बन जाती है। इस गन्ध की उपमा सही ही जयदेव ने मृग के मद से, कस्तूरी से दी है। कस्तूरी मृग की भीतरी गन्ध है और मृग के वयस्क होने का प्रमाण है। जब मृग वयस्क हो जाता है तो एकाएक लगता है कि एक गन्ध आ रही है। वह इस गन्ध की तलाश में भटकने लगता है और बाहर तो गन्ध नहीं है, गन्ध तो उसके भीतर है और अपने भीतर को वह नहीं देखता, भटकता है। कुछ ऐसी ही गन्ध तमाल की कलियों की होती है और जब असंख्य अनगिनत कलियाँ एक साथ खिल उठती हैं, तब समीप आप जायें, तो ऐसा लगता है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माधवः। धूञ्-कम्पने पचाद्यच्। यथाह लीलाशुकः—'यत्पादकल्पतरु-पल्लवशेखरेषु लीलास्वयंवररसं लभते जयश्रीः' (कर्णामृते-१) इति लीलया शृङ्गाररसविक्रमेण जयश्रीः सर्वातिशायिनी शोभेति। अथवा जयस्य श्रीविष्णोः प्रसिद्धा महिषी, जयं भर्त्तुर्वक्षसि नित्यमेव स्थितिलक्षणं सौभाग्योत्कर्षं तद्युक्तेति वा; उक्तञ्च (भा. १०।२९।३७)—'श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वापि वक्षसि पदम्' इति, (भा. १०।१६।३६) 'यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता' इति। अथवा मायाः सौन्दर्यादिगुणसम्पत्तेर्धवस्पतिर्माधवः 'धवस्पतिः प्रियो भर्त्ता' इत्यभिधानात्। मधौ मधुवंशे भवो माधव इति वा। अथवा मधौ मधुररसे भवो माधवः, वक्ष्यति च (गो० १२) 'शृङ्गारः सखि! मूर्त्तिमानिव' इति। मधौ वसन्ते भवो माधवः स्मर इति वा; 'तत्र भवः' (पा० ४।३।५३) इति सूत्रेणाण्। 'ओर्गुणः' (पा० ६।४।१४६) इति गुणः। तथा चोक्तं (भा. १०।३२।२) 'साक्षान्मन्मथमन्मथः,' (भा. १०।४३।१७) 'स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्' इति च। एभिर्व्याख्यानैर्नायकस्य गुणाः कथिताः। राधा च माधवश्च राधामाधवौ तयोः। तथा लक्ष्म्या काम्यमानोऽपि श्रीराधायामासक्तो बभूवेति तस्याः परमोत्कर्षो निरूपितः। तेन चातिगुरुगुणगणगौरवेण कामकेलिषु नायिकायाश्च प्राधान्यात्तस्याः पूर्वनिपातः। 'अल्पाच्तरम्' (पा० २।२।३४) इति वा। आस्तिककामुकोऽयं नायकश्च, तदुक्तम्—

'श्यामां परस्त्रियं प्राप्य चुम्बनालिङ्गनादिभिः।
नवाँश्च जनयेद्भावान् स स्यादास्तिककामुकः'।। इति।

कहीं जैसे सुगन्ध एकदम पागल हो गयी हो। जयदेव ने तीसरी अष्टपदी में सही कहा है कि कस्तूरी की गन्ध को भी इस तमाल ने वश में कर लिया है। कस्तूरी की गन्ध इसके आगे कुछ नहीं है, कस्तूरी का मद कुछ नहीं है। असली मद तो इस काले श्याम के रस में तन्मय हो जाने में हैं। यही मृगमद, यही कस्तूरी, इस काव्य के आरम्भ में है और यही कस्तूरी-मृगमद श्रीराधा के ललाट पर तिलक बनकर इस काव्य के अन्त में हैं। ये दो बिम्ब कस्तूरी और तमाल और इनके रूपान्तरण में है। कस्तूरी का रूपान्तरण तिलक में और तमाल का रूपान्तरण पत्रिल से पुष्पिल होने में है। उसी प्रकार एक दूसरा रूपान्तरण इस काव्य में घटित होता है, वह रूपान्तरण श्रीराधा का श्रीकृष्णमय होने का रूपान्तरण और श्रीकृष्णमय हो करके श्रीकृष्ण को वश में करके श्रीकृष्णमय होने का है।

इस पहले मंगल-श्लोक के कई अर्थ किये गये हैं। उनमें एक अर्थ तो यह किया गया है कि नन्द का अर्थ है आनन्द या आनन्द का पूर्ण रूप और यह मंगल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केचित्तु श्रिया विना भगवत्क्रीडासम्भवादिति गोपीषु लक्ष्मीत्वमापादयति, तत्तु रुक्मिणीकृष्णजन्मनीति, तस्याः पृथङ्निर्देशात्, (भा. १०।४७।६०) 'नायं श्रियोऽङ्ग३ नितान्तरतेः प्रसादः' इति निषेधाच्च न सङ्गच्छते। किञ्च (गोपालता. उत्तर. ५७) 'मूलप्रकृति रुक्मिणी' इत्युपनिषद्वचनाद् रुक्मिण्याः पूर्णत्वमवगम्यते, ततोऽपि गोपीनां भावाधिक्यश्रवणात् तन्नाशङ्कनीयमिति। तद्यथा (भा. १०।८२।३९)– 'तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम्' इति नित्ययुजां पातिव्रत्यविधानेन नित्ययुक्तानां महिषीणामित्यर्थः। अन्यच्च–यद्यपि नित्याद्वितीयवल्लभौ राधामोहनौ तथाप्यनेन परकीयत्वाभासेन शृङ्गाररसस्य परा प्रतिष्ठा ध्वनिता। तदुक्तम् (उ० १।२०)–

'बहु वार्यते यतः खलु, यत्र प्रच्छन्नकामुकत्वञ्च।
या च मिथो दुर्लभता, सा मन्मथस्य परमा रतिः'।।

इति भरतः। (शृङ्गारतिलके–२।३०) 'वामता दुर्लभत्वञ्च स्त्रीणां या च निवारणा। तदेव पञ्चबाणस्य मन्ये परममायुधम्'।। इति रुद्रः। शृङ्गारतिलके च (१।६१)–

'अनन्यशरणा स्वीया धनहार्यापराङ्गना।
अस्यास्तु केवलं प्रेम तेनैषा रागिणी मता'।। इति।

किंलक्षणयो राधामाधवयोः? इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण नन्दनिदेश-तश्चलितयोः लोकानुसारतस्तु रूढ्या नन्दनिदेशत इति कदाचिच्छ्रीराधया श्रीकृष्णः सम्बन्धयोगेन असङ्कोप-व्यवहाराद्वस्तुतः सङ्गमतृष्णयैव स्वव्रजे

परात्पर ब्रह्म को, सच्चिदानन्द परात्पर ब्रह्म को केवल आनन्द होने के लिए, सत्-चित् कुछ न रहकर केवल आनन्द होने के लिए निमन्त्रण है और वह निमन्त्रण सीधे उनको नहीं है; क्योंकि वे तो आत्ममुग्ध हैं, अपने में खोये हुए हैं, अपने में ही डूबे हुए हैं या यूँ कहें कि अपने से अपने में उलझे हुए हैं, अपने से निरन्तर भाग रहे हैं। उन्हें अपने भीतर बाहर का विस्तार दिखता है परन्तु भीतर उनमें सिमट करके कहीं-न-कहीं हैं, यह नहीं दिखता। श्रीराधा शिवतत्त्व हैं, जो उनके विस्तार की आन्तरिक अभिव्यक्ति हैं, जो उनकी परम सत्ता की, उनके ब्रह्म होने की सार्थकता हैं। अब हम विचार करें कि श्रीकृष्ण को ब्रह्म मान करके लिखा गया एक दूसरा काव्य भी है और पहले मंगल में श्रीकृष्ण का नाम न लेते हुए भी परम सत्य का ध्यान किया गया है। ऐसे परम सत्य का ध्यान किया गया है, जो स्वयं अजन्मा है, पर उन्हीं से सृष्टि, स्थिति और प्रलय क्रियाएँ होती हैं। वे न हों तो सृष्टि, स्थिति, प्रलय न हो। उन्हीं से कुछ होता है, उन्हीं में कुछ रहता है, उन्हीं में फिर सब कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोदोहार्थमानीतः। तस्मिन्नेव समये तन्निकटे स्वव्रजे श्रीव्रजेश्वरस्यागमनं जातम्। तत्र प्राणकोटिप्रियं पुत्रं मेघागमञ्च दृष्ट्वा प्रणयकोपोक्त्याह–हे वत्से! राधे यतस्त्वयायमानीतस्तस्मात्त्वमेवेमं गृहं व्रजं प्रापयेति वचनोपक्रमेणैव तन्निदेशतः स्वाभीष्टसिद्धेऽविलम्बेनैव कदाचित् क्रीडाप्रतिबन्धकं कञ्चन जनं प्रस्थापनाय दास्यतीति चलितयोः। मेघैरित्यादि। कालदेशसम्पत्तयोद्दीपिताः केलयो यमुनायाः कूलेऽध्वजकुञ्जद्रुमं प्रति जयन्तीति। मेघादीनां श्रीव्रजेश्वरदृष्ट्यैव भयानकहेतुत्वम्, तयोः रसिकशिरोभूषणभूतयोस्तु शृङ्गारहेतुत्वमेव चिन्त्यम्। तथा च प्रसिद्धिः–श्रीवृषभानोर्गवां कृष्णवत्सलानां दोहनं श्रीकृष्णः करोति, भगवत्प्रियाणां श्रीव्रजेश्वरस्य गवां श्रीदामादिना क्रियत इति। केचिच्च नन्दनिनाम्नी काचित् सखी, तस्या देशतो वचनादिति व्याकुर्वन्ति,..... ग्रन्थे प्रसिद्धनामकल्पनया न स्वीकारः; ग्रन्थानुसारी त्वयमर्थः–नन्दयतीति नन्दः 'नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (पा० ३।१।१३४) इति बहुलोक्तेरच् इति नन्दश्चासौ निदेशश्च आनन्दकारि-निदेशः, स्वाभीष्टक्रीडायां प्रेरणात् कस्याश्चिद्राधायाः प्रियसहचर्या भाषणं नर्मोक्तिस्तस्मात्। सख्या रसपोषकत्वात्; तल्लक्षणं यथा (उ० ७।७०, ८।९७-९९)–

> 'स्वात्मनोऽप्यधिकं प्रेम कुर्वाणाऽन्योन्यमच्छलम्।
> विश्रम्भिणी वयोवेषादिभिस्तुल्या सखी मता।।

सिमट जाता है। वही ऐसे हैं, जो सबको संचालित करते हुए स्वतन्त्र हैं, सभी विषयों को अभिव्यक्त करते हुए उनसे असम्पृक्त हैं। वे ही आत्म-कवि ब्रह्मा को, आदिस्रष्टा को आत्मस्रष्टा के भीतर हृदय-संवाद के द्वारा ब्रह्म का अर्थ अभिव्यक्त करते हैं। वेदों को आविर्भूत करते हैं। वे ही प्रकाशात्मक ज्ञान के प्रसार करनेवाले हैं। दूसरी ओर सत्य का ऐसा प्रकाश करनेवाले हैं, जिस प्रकाश के द्वारा ऐसा कुछ करते हैं, जिसमें झूठ भी सच दिखने लगता है। मृगजल भी, मृग को भटकानेवाली जेठ की जलराशि, पानी का लहराता हुआ सचमुच का जल दिखने लगता है और उस ओर एक बार और दौड़ पड़ने की इच्छा जागृत हो जाती है। संसार में एक और ललक पैदा हो जाती है। ऐसा है यह सच, जो झूठ को सच इसलिए नहीं बनाता कि वह कहीं सच ही न हो जाए, इसलिए बनाता है कि उस झूठ को सही सच बनने का व्यसन लग जाए। इस संसार में रहते हुए, इस संसार के सम्बन्धों में आत्मीयता का जो तत्त्व है, उस आत्मीयता को अधिक तत्त्व के रूप में जानने का उदग्र संकल्प जाग उठे। इस संसार का राग, इस संसार की आसक्ति, महाराग और महासक्ति में परिवर्तित हो जाए। यह कितना विचित्र है कि वही झूठ ऐसे समेटता है जैसे सूर्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिथः प्रेमगुणोत्कीर्त्तिस्तयोरासक्तिकारिता।
अभिसारो द्वयोरेव सख्याः कृष्णे समर्पणम्।।
नर्माश्वासननेपथ्यं हृदयोद्घाटपाटवम्।
छिद्रसंवृतिरेतस्याः पत्यादेः परिवञ्चना।।
शिक्षा सङ्गमनं काले सेवनं व्यजनादिभिः।
तयोर्द्वयोरुपालम्भः सन्देशप्रेषणं तथा।।
नायिका प्राणसंरक्षा-प्रयत्नाद्याः सखीक्रियाः'।।

इति चलितयोः, तमेव प्रकारमाह—हे सखि राधे! तत्तस्माद्धेतोरिमं त्वन्मुखचन्द्रनिहितक्षणचकोरं त्वमेव गृहं प्रापय, क्रीडानिकुञ्जं प्रापयेत्यर्थः। अखिलभोग्यास्पदत्वेन गृहमित्युक्तम्; तेन च सम्भोगसम्पत्त्या एवं सुखयेति गूढाभिप्रायः। त्वमेवेत्यन्ययोगो निराकृतः। अथवा गृहं प्रापयेति सामान्य-नारीव्यावृत्त्या गृहिणी निर्वर्त्य सम्भोगादिकर्मणि समुदिता भवेत्यर्थः। अत्र गृहशब्देन ताटस्थ्याद् गृहिण्युच्यते, गृहशब्दच्छलेन तामेव पुरस्कृत्य वनविहारदर्शनात्; प्राप्नोतिरुदयार्थे वर्त्तते, 'प्रलाभोदययुक्तिषु' इति चूडामणिः। एवकारोऽन्ययोगव्यावृत्त्यर्थः। त्वयैवायं गृहिणीमान् स्यादिति

की किरणें कोहरे को समेटती हैं। वही यह कुहक, मायाजाल पैदा करता है और वही उसे समेट देता है। ऐसे परात्पर सत्य का ध्यान श्रीमद्भागवत में किया गया है, महाभारत में भी इसी प्रकार की एक वन्दना श्रीकृष्ण की की गयी है, जिसमें उन्हें सत्यात्म के रूप में देखा गया है और कहा गया है कि धर्म और अर्थ के व्यवहार के द्वारा, धर्म और अर्थ से प्रेरित सांसारिक कर्तव्यों के द्वारा वह परम सत्य धर्मों के धर्म से अमृत के स्रोतरूपी धर्म से एक सेतु बनाता है, भिन्न-भिन्न सत्ताओं को जोड़नेवाला सेतु। यह सेतु बाहर जाने के लिए तो है और लौटने के लिए जब आते हैं तो यह सेतु तिरोहित हो जाता है। इस सेतु से उस पार जा सकते हैं, इस सेतु से इस पार लौट नहीं सकते। इस पार की गतिविधि को बड़ी ललक से, बड़ी मोहासक्ति से देख जरूर सकते हैं, लेकिन तब ल़ौटना नहीं होता है। बड़े-बड़े परमहंस इस सेतु के ऊपर चढ़कर उस पार चले जाते हैं। वे जब देखते हैं कि परली पार ऐसा कुछ हो रहा है, जिसमें मनुष्य की उत्कण्ठा के, साधारण जीव की उत्कण्ठा के पाश में स्वयं वह परम सत्य ही ऐसा बँध गया है और ऐसा बँधे-बँधे वह नाच रहा है। उस नाच में शामिल होने का मन करता है, लेकिन शामिल होने का सौभाग्य नहीं। देवता इसीलिए श्रीमद्भागवत में तरसते हैं, क्या पुण्य इन्होंने किया है कि उन्हें भारत-भूमि में जन्म मिला और इस मनुष्य के रूप में अवतार लेनेवाले भगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सख्या गूढपरिहसितमिति कुम्भकर्णोक्तेः। तस्मादिति किम्? यतोऽयं तवाधीनो जनो भीरुर्मदनवेपितः एभिर्भावैर्हेतुभिः स्मर-शर-हतीः सोढुमसमर्थः। अत्र नक्तं भीरुरिमं गृहं प्रापयेत्यत्रेदमोऽन्वादेशे 'द्वितीया टौस्स्वेनः' (पा॰ २।४।३४) इति सूत्रेण ऐनादेशः कथं न भवतीति न वाच्यम्, अन्वादेशविषयत्वाभावात्। एकक्रियाविशिष्टेन कथितस्य पुनः क्रियान्तरविशिष्टत्वेन कथनमन्वादेशः; इह तु नक्तं भीरुरित्यनेन भीरुत्व-विशिष्टतया निर्दिष्टे माधवस्वरूपे न पुनः क्रियावैशिष्ट्यं प्रतिपाद्यते, ततः क्रियान्तरविशिष्टत्वाभावान्नेहान्वादेशः, तानेव भावानाह–अम्बरमाकाशं मेघैर्मेदुरं सान्द्रं स्निग्धं वर्त्तते, अपरञ्च तमालद्रुमैर्वनभुवः श्यामा वर्त्तन्ते, नक्तं रात्रिकालः। एवं देशकालवस्तुलक्षणादिभावाः सूचिताः। तथावद्भावानां श्यामात्वेन शृङ्गाररसतादात्म्याच्छृङ्गाररसरूपत्वं ध्वनितम्। उक्तञ्च (नाट्यसूत्रे-५।४२)– श्यामो भवति शृङ्गार इति। किञ्च वनभुवः श्यामा इति नायिकासाहचर्यं, तमालद्रुमैर्मेघैश्च नायकस्येति। तथा चोक्तं (भा. १०।२१।१६)–

'प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलिभिः।
सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम्'।। इति।

के साथ लीला में सम्मिलित होने का अवसर मिला। उस प्रकार की सेवा करने की तो हमारे मन में ललक ही रह जाती है। हमें तो ऐसी सेवा का अवसर नहीं है। यह मनुष्य के चित्त के द्वारा सम्भव है। मनुष्य का चित्त मनुष्य के शरीर से असम्पृक्त नहीं होता; क्योंकि उसी शरीर में उस चित्त के सारे विकार, चाहे तामसिक हों, चाहे राजस हों, चाहे सात्त्विक हों, व्यक्त होते हैं। शरीर के अलावा कोई दूसरा प्रमाण चित्त के उद्वेलन का है नहीं। वह शरीर देवता को दुर्लभ है, वह शरीर विदेह को दुर्लभ है। श्रीमद्भागवत में इस मंगल की पुष्टि में एक दूसरे श्लोक में यह भी कहा गया है कि गोपियाँ अपनी उस उन्मादी हँसी से श्रीकृष्ण को विचलित करने में समर्थ नहीं होती हैं। उन गोपियों के उस हास से आकांक्षा के देवता काम के हाथ से धनुष छूट जाता है। वह उनको क्या मोहित करे, वह स्वयं मोहित हो जाता है। पर श्रीकृष्ण हैं कि रंचमात्र भी विचलित नहीं होते। सागर में तो तरङ्गें उठती हैं पर वे ऐसे अनुद्वेलित सागर हैं, जिसमें एक छोटा-सा बुलबुला भी नहीं उठता। जयदेव ने उन्हीं श्रीकृष्ण को ढाई दिनों में उद्वेग का रस-सिन्धु बना दिया है। इस प्रकार जब श्रीमद्भागवत और गीतगोविन्द, दोनों के मंगलश्लोकों की तुलना के द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचना चाहते हैं, तो यह लगता है कि श्रीकृष्ण-काव्य का मंगल श्रीकृष्ण-रस में सबको सराबोर करता है, उनके लिए आकांक्षा जगाता है, जबकि गीतगोविन्द का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र काव्ये शृङ्गारप्राधान्यात्तस्य मेघाद्यास्त्रयोऽप्युद्दीपनविभावाः, राधाद्याश्चालम्बनविभावाः, भीरुरित्यनुभावः, हर्षावेगशङ्कौत्सुक्यव्रीडाचपलतादयो व्यभिचारिण उक्ता भवन्ति। एवं कारणकार्यसहकारिभिरिति स्थायिभावः सकलरसराट्प्रपञ्चः संयोगाख्योऽभिलाषेर्ष्यासूयालक्षणो विप्रलम्भाख्यश्च शृङ्गारः साङ्गोपाङ्गः समुन्मीलितो भवति। तदुक्तम् (काव्यप्र० ४।२७-२८)–

'कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।
विभावानुभावास्तावत् कथान्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः'।।

तथा चाभाणि भरतेन (नाट्यशास्त्रे-६।३१)–

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'।। इति।

एवमेव कविना रसमुख्ये स्थिरीकृते तदाशयमबुद्ध्वा कैश्चिन्नायकस्य शिशुत्वं नायिकायाः प्रौढत्वं शृङ्गारविभावानां भयानकहेतुत्वं पितुश्च निदेश इति व्याहृतम्। तदा कविनिरूपितस्य रसस्यान्यथात्वमुपपद्यते, तेन पूर्वव्याख्यानमेव समीचीनम्। अथवा निदेशो भाषणादेशसामीप्यार्थे वर्त्तत इति

राधा-काव्य न कृष्ण के लिए न राधा के लिए, श्रीकृष्ण-राधा के प्यार की रसवर्षा के किंचित् कण के लिए तरस जगाता है, एक प्यास जगाता है, जहाँ तृप्ति नहीं माँगी जाती, केवल अतृप्ति माँगी जाती है। तृप्ति या प्राप्ति में कुछ नहीं, अतृप्ति में ही सब कुछ है और सनातन प्रयास में है। और ऐसे बड़े रास की (रस के विस्तार की) आयोजना शरद् काल की तृप्ति में नहीं होती, शरद् के प्रसन्न, निर्मल आकाश में रस से छलकते हुए चन्द्रमा की चाँदनी में नहीं होती, वह यमुना के छायाहीन बलुहे तट को महामण्डप बनाकर महाविलय में नहीं होती। उसके लिए आवश्यकता होती है, वसन्त की उत्कण्ठा की। वसन्त का सबसे सही प्रमाण चित्त की उत्कण्ठित में है, न आमों में बौर आने में है, न कोयल के कूकने में है, उसकी सही पहचान चित्त के अकारण उत्कण्ठित होने में है। किसके लिए उत्कण्ठित है, यही नहीं पता रहता है। क्यों उत्कण्ठित है, यही नहीं पता रहता है, बस उत्कण्ठित है। इस उत्कण्ठा में इतनी आकुलता है कि समय से रास में पहुँचा भी नहीं जाता है और रास में न पहुँच पाने पर यह होता है कि रास हुआ क्यों, मेरे बिना रास हुआ क्यों? और रास रचनेवाले के प्रति एक ओर क्रोध होता है, दूसरी ओर उनसे मिलने की उत्कण्ठा और भी तीव्र हो जाती है। पूरा एक दिन, पूरी रात और फिर दूसरे दिन इसी उत्कण्ठा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्दनिदेशतो नन्दसमीपात् नन्दनिदेशतो व्रजाद्वा अथवा उभयोर्यत्र सङ्गमो जातः, तदेवाह्लादकारी श्रीवृन्दावनान्तरदेशविशेषस्तस्मात्, पक्षत्रयेऽपि कृष्णोक्तेरनुचलितयोरित्यर्थः। तत्र कातर्येण सोच्छ्वासं सम्बोधयति–हे राध इति। इमं मल्लक्षणो जनो भीरुस्त्वत्पार्श्वं त्यक्तुमसमर्थ इति। अत्रानुकूलो नायकः, स्वाधीनपतिका नायिका, तयोर्लक्षणञ्च वक्ष्यतेऽग्रे (गो. १६.७९)। पूर्वार्द्धेऽभिलाषलक्षणो विप्रलम्भः। अपरार्द्धे सम्भोगश्च शृङ्गारः।।१।।

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती।
श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेत-
मेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम्।।२।।

में, इसके चढ़ाव-उतार में बीत जाता है और मिलन दूसरी रात के अन्तिम प्रहर में होता भी है, तो वह मिलन जैसा नहीं है। वह अपने को सदा के लिए पराया बनानेवाला मिलन है। वह अपने से ही बिछोह है। श्रीराधा श्रीकृष्ण को ले जाती हैं, रास में पहुँचाती हैं, और स्वयं रास में नहीं पहुँचतीं। श्रीकृष्ण पहुँचते हैं तो उन्हें झिड़क देती हैं, जाओ-जाओ। मेरे पास न आओ। और फिर उनसे नहीं रहा जाता। श्रीकृष्ण स्वयं उनके पास आते हैं और राधा देखती हैं कि श्रीकृष्ण तो राधामय हो गये हैं। अंग-अंग में श्रीराधा का उज्ज्वल गौरवर्ण कहीं-न-कहीं से झाँकता है। श्रीराधा उनके मस्तक पर केसर-तिलक बन करके विराजमान हैं। राधा का पूरा अंग ऐसा लग रहा है जैसे यमुना नदी में ज्वार आया हो और यमुना की घनी नीलिमा सफेद फेन में परिवर्तित होकर पूरा-का-पूरा पीताम्बर बनकर श्रीकृष्ण के ऊपर छा गयी हो। राधा अष्टपदी में श्रीकृष्ण से मिलती हैं। मिलना तो खैर अष्टपदी में नहीं होता है, उससे पूर्व होता है, पर अष्टपदी में मिलन के बाद की याचना है कि प्यारे यदुनन्दन! मुझे तुम राधा होकर जाने न दो, मुझे अपने हाथों से श्रीकृष्ण बना दो। तुम मेरी आँखों में काजल बनकर अँजो, तुम मेरे माथे पर कस्तूरी की तिलक बन करके रचो, तुम मेरे नील-वसन बनकर मुझे चारों ओर से आवृत कर लो और तब मुझे यहाँ से लौटाओ। ऐसा पागलपन केवल वसन्त में सम्भव है, वर्षा में नहीं। वसन्त में रास की इच्छा पूरी होती है। भरपूर पूरी होती है। और वर्षा में इच्छा इच्छा ही रह जाती है, कुछ भी पूरा नहीं होता, अधूरा ही बने रहने की चाह रह जाती है, क्योंकि अधूरेपन में सम्भावना है, पूरेपन में सम्भावना कहाँ?।।१।।

मंगल की स्थापना अभी नहीं हुई, अभी कवि को अपना परिचय देना है, अपने समय का परिचय देना है और अपने श्रोता का परिचय देना है। गीतगोविन्द के मंगल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविरिदानीं सकलरसज्ञजनमनोहारिहरिचरितानुवर्णनेन समुचितेष्टदेवताभावितान्तःकरणः श्रृङ्गारोत्तरं प्रबन्धं कर्तुं प्रतिजानीते—वाग्देवतेति। *जयदेवकविः* जयः श्रीकृष्णस्तं द्योतयति, महाभाग्यवतां तद्रहस्योपासने प्रवर्त्तकत्वेन प्रकाशयत्यसौ जयदेवस्तेन प्रकाशमानो वा, अत एव *कविः*। अथवा जयश्चासौ देवश्च, जयदेवो भगवान् स्वयमेवास्मिन् ग्रन्थे जयदेवव्यपदेशेन कविरित्यर्थः। जयेन श्रीराधिकाविजयेन दीव्यतीति जयदेवः स चासौ कविश्चेति वा। एतं गीतगोविन्दाख्यं प्रबन्धं प्रकर्षेण वध्यतेऽस्मिंच्छ्रोतॄणां हृदयमिति प्रबन्धस्तं करोति। तत्र हेतुगर्भं विशिनष्टि—कीदृशम्? श्रीर्वराङ्गना राधा, अथवा श्रिञ् सेवायाम्, 'क्विप् च' (पा० ३।२।७६) इति क्विप् दीर्घः सम्प्रसारणञ्च। श्रयत एतां कृष्णे रसार्थमिति श्रीः। श्रीयत अनेनेति वा सा श्रीः राधैव। वसुषु दीव्यतीति वसुदेवो नन्दः। उक्तञ्च (भाग० १०।८।४८) 'द्रोणो वसूनां प्रवरः' इत्यादि। वसुभिर्दीव्यतीति वा, तस्यापत्यं वासुदेवः कृष्णः, अनेन धनाढ्य इति नायकगुणः कथितः। अथवा वसु निवासे वसत्यस्मिन् वृन्दावने श्रीराधागणो वा इति वासुः, अथवा धातूनामनेकार्थत्वाद् वासयति सर्वमिदं स्वविलासपरिमलेनेति वासुः, औणादिक उण्-प्रत्ययः, स्वसौन्दर्यादिगुणैर्दीव्यतीति देवः, द्योतयति सर्वमिदमिति वा निजकौशलेन सर्वान् विजयते इति वा, अथवा श्रृङ्गाररसेन रुचिमान् प्रियजनान् रोचयतीति वा, स्वविलासेन प्रियजनान् मदयतीति वा, तैर्हर्षवानिति वा देवः। 'दिव् क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-

---

के बाद के तीन श्लोकों में यह बात कही गयी है। अपना परिचय जयदेव ने इस प्रकार दिया है कि मेरे चित्त का भवन वाग्देवता की अनेक प्रकार की यात्राओं और लीलाओं की चित्रशाला है, अर्थात् इस चित्र में वाणी है, जिसे गाकर चित्रलिखी-सी रह जाती है, ठगी-सी रह जाती है। यह कवि ऐसा है, जिसने निरन्तर ऐसे काव्य का अनुसन्धान किया है, जो कविता की चरम सार्थकता की खोज में लिखा गया है, अर्थात् श्रीमद्भागवत के शब्दों में जो लीला के वर्णन के लिए लिखा गया है, जो वाग् विसर्ग नहीं है, जो केवल चित्रपट नहीं है, शब्दों में सजावट नहीं है, जो निष्काम कर्मयोग की प्रशंसा नहीं है, जो निरे ज्ञानयोग की स्थापना नहीं है, जो इस प्रकार के भक्ति-भाव और भक्तिभाव के द्वारा एक चुनौती-भरा आमन्त्रण है कि हे प्रभु! यदि तुम्हें अपनी सार्थकता पानी है, तो इस क्षुद्र जीव में पाओ। ऐसे काव्यों का अभ्यास करनेवाला यह कवि है। वाग्देवता के ऐसे काव्य सजीव चित्र के रूप में उनके चित्तभवन में सजे पड़े हैं। उसका चित्त जैसे लीला-काव्य की चित्रशाला हो और भगवान् जगन्नाथ की उत्कण्ठित पत्नी पद्मावती के चरणों की वन्दना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मद-स्वप्न-कान्ति-गतिष्विति। विलासवान् गुणवान् सर्वातिशायी शृङ्गारवान् मोदमाँश्चेत्यर्थः। वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेवः, तयोः श्रीवासुदेवयो रतिकेलिकथया सुरतक्रीडानुवर्णनेन समेतं युक्तम्, रतिरनुरागस्तेन केलिषु यन्नागरयोः संवादस्तत्सहितमिति वा।

ननु तयोरत्यद्भुतानुरागिणोः श्रियादिभिर्दुर्वितर्क्यालापज्ञाने कथमधिकारः? तत्राह–किंलक्षणः कविः? वाक् चासौ देवता चेति, वाचां देवतेति वा वाग्देवता परा सरस्वती तस्याश्चरितेन प्रसादमाधुर्यादिगुणसम्पन्न-लोकोत्तरकाव्यरचनाविशेषरूपेण चित्रितं चित्ररूपं सद्म यस्य तादृशः, अत्र विचित्रभगवद्गुणवर्णनेन विचित्रकवितारूपमहाधननिधानत्वेन समस्तभक्तजन-विश्रामसुखाश्रयत्वेन च चित्तस्य गृहसाम्यम्। अथवा (तैत्तिरीयोप. २।८।१) 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते' इति श्रुतेः तदगोचरत्वादयमर्थः–वाग् वर्णनीयभगवद्-गुणरूपा वाणी, सैव परमपुरुषार्थत्वेन देवता तस्याश्चरितेनाविर्भावेन नित्यानन्दरूपात् चित्रितम् आश्चर्ययुक्तं कृतं चित्तमेव सद्म गृहं यस्य तादृशः, वाक् परा सरस्वती तस्या देवता सर्वोत्तमत्वेन सर्वोपास्यतया श्रीराधाप्रियः, तच्चरितेन विलासेन चित्रितमालेख्ययुक्तं कृतं चित्तं सद्म च यस्येति वा। अपरमपि गृहं विविधालेख्यैर्मण्डितं भवतीति ध्वनितम्। तथा चास्य गृहमपि भगवता साक्षादाविर्भावेन परमगोप्यमपि स्वहस्तलिखनेन च मण्डितमिति भागवतैः प्रसिद्धम्।

करनेवाले लोगों में सबसे ऊपर यह उल्लेखनीय है कि भगवान् जगन्नाथ अपने भाई और बहन के साथ मन्दिर में विराजते हैं और बालरूप में ही सदा रहते हैं। उसी रूप में वे तरह–तरह की लीला करते हैं। कभी वे गोचारण के लिए निकलते हैं और सबेरे–सबेरे माखन–मिश्री के लिए पुकारते हैं और कभी माँ के प्रेम से पेट नहीं भरता तो अपनी मौसी के यहाँ चले जाते हैं। कभी उन्हें ज्वर हो जाता है तो उन्हें आयुर्वेद की दवा दी जाती है और केवल खिचड़ी खाने को मिलती है, कभी उन्हें छप्पन भोग मिलते हैं। मजे की बात यह है कि वे स्वयं अधूरे हैं, काठ का जो शिल्प बना, वह पूरा नहीं हो सका, केवल पूरा–पूरा मुँह बन पाया है और सब कुछ अनभिव्यक्त रह गया है। ऐसे अधूरे व्यक्ति के साथ भला पद्मावती कहाँ रहनेवाली हैं। वे अलग मन्दिर में विराजमान हैं। उन्हें एक दिन प्रभुत्व का अवसर मिलता है। भगवान् अपनी मौसी के यहाँ से लौटते हैं, तो मन्दिर का द्वार भीतर से बन्द हो जाता है। पद्मावती कहती हैं– 'जाओ। तुम अभी नाबालिग हो, अभी जंगल में विचरो।' बहुत मनाने पर कहीं कपाट खुलते हैं और प्रभु को अपने भाई–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ननु कथं तादृशं प्रसादभाजनत्वमस्येत्यत आह–पुनः कीदृशः? पद्मं करे यस्याः सा पद्मावती 'शरादीनाञ्च' (पा० ६।३।१२०) इति दीर्घः, सर्वसौभाग्यलक्षणान्विता श्रीराधा, पद्मा भगवद्वशीकरणकान्तिर्विद्यते यस्याः सा पद्मावतीति वा, तस्याश्चरणयोश्चारणेन परिचर्यया चक्रवर्ती सर्वाधिकः प्राप्ततादृशप्रसादपात्रत्वमित्यर्थः। अथवा चरणयोर्विषयभूतयोरेव चारण-चक्रवर्त्ती नर्त्तकश्रेष्ठः, नृत्यादिना सदा तत्पादाराधनपरः, अथवा पद्मावती तस्य पत्नी तस्याश्चरणयोर्यच्चारणं नर्त्तनं तेन चक्रवद् वर्त्तितुं शीलमस्यासौ तादृशः, एतेन तद्भक्त्याधिक्यं कवेः सूचितम्। यथाह–'तद्योगयुक्ता हि गणयन्ति न लौकिकम्' इति। लौकिकश्चायमर्थः–चरणयोश्चरति परिचरतीति चरणचारणः पद्मावत्येव चरणचारणा चरणसेविका यस्य स चासौ चक्रवर्ती मुख्यश्च स इति तस्य शृङ्गारित्वं कथितम्, तेन च सरस-काव्यकरणेऽधिकारः[1]। उक्तञ्च–

'शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव चेदशृङ्गारी सर्वं विरसतां व्रजेत्'।। इति।

'आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्' इत्यमरः। 'चारणस्तु कुशीलवाः' इत्यपि। 'कविः काव्यकरे सूरौ' इति विश्वः।।२।।

बहन के साथ पुनः प्रवेश मिलता है। ऐसी चिर उत्कण्ठिता लक्ष्मी के चरणों के उपासकों में जयदेव का स्थान सबसे ऊपर बनता है। इसका तात्पर्य यह है कि वे ऐसी लक्ष्मी की आकांक्षा का ही तो काव्य रच रहे हैं, इसलिए उन्हीं की कृपा उनके ऊपर है, अन्यथा ऐसे परम रहस्य की बात कहाँ से वे दे पाते। ऐसे जयदेव प्रबन्ध रच रहे हैं, यह प्रबन्ध सर्वात्मा भगवान् वासुदेव की रतिकेलि की कथा है। इसका अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि यह सब कहानी है। श्रीराधा के मन में उठी हुई कल्पनाओं का आकलन है। कल्पनाओं का अर्थ न वसन्त है, न रास है, न मिलना है, न बिछुड़ना है। सब कुछ श्रीराधा के मन में रचा गया उत्कण्ठा का रूपायन है। वसन्त ऋतु की अधीर रातों का और उससे भी अधिक उन्मादी व्याकुलतावाले दिनों का जागता हुआ सपना है।।२।।

---

१. ध्वन्यालोकवृत्तौ (३) शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्'।। इति पाठान्तरम्।
सरस्वतीकण्ठाभरणे (५।३)– स एव चेदशृङ्गारी नीरसं सर्वमेव तत्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणुत तदा जयदेवसरस्वतीम्।।३।।

हे सज्जनगण! यदि हरिस्मरणे कृष्णानुचिन्तने मनः अखिल-व्रजजनयुवतिचित्तचौरेऽन्यविग्रहव्यावृत्त्या श्रीमत्कमनीयकिशोरव्रजेन्द्रनन्दने भक्तिरित्यर्थः। उक्तञ्च (भाग० १०।४७।५८) 'गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः' इति। किञ्च (गोपालता० १।१५) 'भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैराश्येनैवामुष्मिन् मनसः कल्पनमेतदेव नैष्कर्म्यमिति' तापन्याम्। तत्रापि सरसं रसः शृङ्गारः, तत्सहितम्; यदि च विलासकलासु विलासः स्त्रीणां भगवत्प्रेयसीनां राधादीनां हावविशेषस्तत्सत्सम्बन्धिनीषु कलासु क्रीडासु कुतूहलमौत्सुक्यम्, (दशरूपके–२।३८) 'तात्कालिको विशेषस्तु विलासोऽङ्गक्रियादिषु' इति। तदुक्तम्–

'स्खलति बहुलं पादन्यासे विलोकिनी.....न्यतः,
स्थिरमपि तदाम्भोजं प्रयाति विधूननम्।
स्मितमपि मुधा व्यर्थः क्रोधो वृथैव चमत्कृति-
र्दयितसविधं यान्त्यास्तन्व्या विलासरसोऽप्ययम्'।। इति।

एतेन भगवत्परिजनेषु भक्तिरुच्यते। 'कला स्याच्चन्द्रकलायां कला स्यात् क्रीडनादिषु' इति विश्वः। तदा जयदेवकवेः सरस्वतीम्, अथवा तदा बहुदानेन पुष्णातीत्यतिशयवन्तः शृणुत अत्यादरेणावधारयत। कलासु चतुःषष्टिरूपासु रतिकलासु। चतुःषष्टिश्चेत्थम्–

......हसितं गीतं पठितं नृत्यं तथा।
वीणा वेणुवाद्यं तालः पुस्तकज्ञानमायुषो वेदः।।१।।
धनुर्वेदश्च शिक्षा च राजशिक्षा च रत्नयोः।
कल्पो व्याकरणं शिक्षा छन्दो ज्योतिर्निरुक्तकम्।।२।।

वसन्त का रस वृन्दावन में नहीं हुआ, वसन्त का रस या तो जयदेव के काव्य में हुआ या फिर भगवान् जगन्नाथ के भीतर समायी हुई और अलग होकर उनके लिए छटपटानेवाली श्रीराधा के चित्त में हुआ; पर यह किसी घटित घटना से कम सच नहीं है। किसी लौकिक जगत् में घटित घटना से अधिक सच घटना है। ऐसी घटना को भीतर घटाने की क्षमता जिसमें हो, वह इस काव्य को पढ़े, वह इस काव्य का आस्वाद ले। इसलिए इस श्लोक में जयदेव ने कहा कि मेरी कोमलकान्तपदावली, श्रीराधा के नूपुर की तरह रुनझुन बजती पदावली को सुनना चाहते हो तो अपने भीतर जाँचो कि कहीं हरि के इस स्मरण के लिए मन में रस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परभाषा पुराणञ्च स्मृती रामायणस्तथा।
महाभारतमाख्यानं राजलक्षणवेदनाम्।।३।।
नियुद्धयुद्धोत्तरणं भूततन्त्रप्रहेलिका।
सर्पाशीविषसंरोधो भूमिदृष्टीष्टसाधनम्।।४।।
शकुनेङ्गितयोर्ज्ञानं तथा द्रव्यापकर्षणम्।
चिन्तानिवर्त्तनं पुष्टिवर्त्तनं पिण्डकर्षणम्।।५।।
देशभाषा-परिज्ञानं शुभाङ्गीकरणं तथा।
विद्वेषणोच्चाटने च मणिवस्त्रादिमण्डनम्।।६।।
विकल्पोच्चारकरणं विचित्रकरमर्दनम्।
लिखितं चित्रकविता राजनीतिस्तथा परा।।७।।
सभापाण्डित्यवक्तृत्वं दुर्गसेनारिवीक्षणम्।
अङ्गसंवहनञ्चारुदर्शनं चोपलक्षणम्।।८।।
प्रासादनन्तु रुष्टस्य स्त्रीचित्तहरणं तथा[१]।। इति।

कीदृशीं जयदेवसरस्वतीम्? मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृङ्गाररस-प्राचुर्यान्मधुरा, झटिति बोध्यत्वात् कोमला सुकुमारा, गेयत्वात् कान्ता कमनीया, मधुरा चासौ कोमला चासौ कान्ता च पदपरम्परा यस्यास्तादृशीमित्यर्थः। तत्र मधुरा यथा–

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।
येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः।।१।।इति दण्डी ।

(काव्यादर्शे–१।५१)

है भी तुम्हारे भीतर या नहीं? हरि का स्मरण करते हुए तुम्हें स्वाद मिलता है या नहीं? केवल यान्त्रिक रूप से हरि का स्मरण करते हो या हरि का स्मरण करते-करते कहीं भींगते भी हो? और यही काफी नहीं है। तुम हरि का स्मरण करो और मन से स्मरण करो। तुम्हारे भीतर संसार में प्यार के कितने रूप होते हैं– ईर्ष्या, मोह, खीझ, उत्कण्ठा, प्रतीक्षा, मिलना और एकदम लय हो जाना, लय हो जाने के बाद भी ऐसा लगना कि मिलना हुआ नहीं, फिर कब ऐसा मिलना होगा, या ऐसा मिलना नहीं होगा, इस प्रकार की चिन्ताओं की अनन्त शृंखला को जानने, समझने के लिए मन में तुम्हारे कुछ कुतूहल हैं, कुछ उत्सुकता है, कुछ अपने को

---

१. खिलशुक्रनीतिशास्त्रे तु (द्वितीयाध्याये) अन्यविधा उक्ताः (भा. १०।४५।३६) श्रीधरस्वामिभिरपि प्रकारान्तरेणोक्ताः सन्ति। तत्र तत्र द्रष्टव्यमिति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुप्रयोगैर्महच्छब्दैर्युक्तमस्पष्टसन्धिभिः।
सुकुमारार्थसंयुक्तं सुकुमारं प्रचक्षते।।२।।इति लीलारविन्दे।।
जन्मनः श्रोतृविशदं प्रह्लादजनकं भवेत्।
शब्दबन्धानुयोगेन तत् कान्तमिति कीर्तितम्।।३।।

तथा च *मधुरत्वं द्विविधम्–शब्दाश्रितमर्थाश्रितञ्च, तत्र शब्दकोमलत्वमर्थकोमलत्वञ्च परुषेऽप्यर्थेऽपरुषत्वञ्च,* तद्यथा–मृते 'यशःशेषः' इति। एवं कान्तत्वमपि। बन्धविशेषादि नाम न श्रोत्रप्रीतिप्रदत्वमुज्ज्वलत्वं शब्दाश्रितम्। अर्थाश्रितं प्रदीप्तरसवत्त्वम्। 'शृङ्गारादौ रसे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः' इत्यमरः। एभिः पद्यैर्विषयप्रयोजनसम्बन्धाधिकारिणो दर्शिताः। रहःकेलयो जयन्तीति विषयो दर्शितः, उक्तगुणवतोः श्रीराधामोहनयोः उक्तलक्षणासक्तिः प्रयोजनम्, प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः, उक्तलक्षण एतद्रसभावितान्तःकरणोऽधिकारी। एवं चत्वारो निरूपिताः।।३।।

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहाद्धुते।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः।।४।।

इदानीं ग्रन्थनिर्दोषत्वाय प्रामाण्यापादनाय च केनचिन्महाभागवतेन महाकविसभायां वर्णितं पद्यं संगृह्यते–वाच इत्यादि। उमापतिधरनामा कविः

ऐसी निरन्तर चलनेवाली लीला में झोंक देने की तैयारी है कि जहाँ इसका जोखिम बना हुआ है, वहाँ तुम न रहोगे। यदि ये दोनों तैयारियाँ तुम्हारे मन में हों, तो यह काव्य तुम्हारा ही है।।३।।

इस श्लोक में जयदेव ने अपने समय का वर्णन किया है। अपने समकालीन कवि–समाज का वर्णन किया है और उनकी खूबियों का वर्णन किया है। उन्होंने कहा है कि मेरे समय में उमापतिधर हैं, जो जानते हैं कि वाणी में कैसे नयी–नयी कोपलें आती हैं, जो वाणी के वसन्तावतार के मर्मज्ञ हैं, नयी उद्भावनाओं के आचार्य हैं। एक दूसरे कवि हैं, उन्हीं के साथ मैं हूँ, जिसे वाणी को शुद्ध करने का सन्दर्भ आता है, सामान्य प्यार को, लौकिक प्यार के व्यापार को बड़ा सन्दर्भ देना आता है। मैं इस ऐन्द्रिय अनुभव को इतना मथना जानता हूँ कि उसके भीतर से अतीन्द्रिय का माखन झलक आए। मेरे साथी हैं–शरण। मुझे बड़ी स्पृहा होती है कि कैसे वे दुरूह रचना को भी ऐसा बना देते हैं कि वह रचना प्रवाहमयी हो जाती है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मणसेनामात्यो वाचः पल्लवयति विस्तारयति। व्यङ्ग्यार्थशून्यं शब्दार्थगुणशून्यञ्चास्य कवित्वमिति ध्वनितम्; शरणः शरणनामा कविः दुरूहस्य विषमार्थकाव्यस्य शीघ्ररचने श्लाघ्यः स्तुत्यः, गूढार्थत्वादिदोषयुक्तं प्रसादादिगुणरहितञ्च तस्यापि काव्यञ्चेति; तथा च शृङ्गाररस एवोत्तरः श्रेष्ठो यत्र, शृङ्गारेण उत्तरं प्रधानं वा यत् सत्प्रमेयं तस्य स्वनैः कवितायाः ग्रथनैराचार्यगोवर्द्धनस्पर्धी गोवर्धनाचार्येण सह स्पर्धावान् कोऽपि न विश्रुतो न ख्यातः, रसान्तरप्रवेशेन माधुर्यादिगुणसम्पन्नपदरचनायां सोऽप्यशक्त एवेति भावः। इतरविधाध्यापनादिना न तु सत्कवितायामाचार्यत्वमिति सोपहासमुक्तमाचार्येति। धोयी कविक्ष्मापतिः धोयीनामा कविराजः श्रुतिधरः श्रुतिः श्रवणं तन्मात्रादेब ग्रन्थादिग्राही, न तु तस्य कवितायां कौशलमिति भावः। क्ष्मापतिपदेनाहङ्कारित्वं जाड्यञ्चेति ध्वनितम्। गिरां वचसां सन्दर्भशुद्धिं गुणालङ्कारसम्पन्नग्रथनविशेषं जयदेव एव जानीते, नान्यः। तथा च गिरां सन्दर्भशुद्धिं जयदेव एव जानाति, भगवद्गुणवर्णनाकरत्वात्, तदुक्तं श्रीभागवते (१।५।१०-११)–

'न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्यशिक्षया।।
तद्वाग् विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः'।।

इति विशिष्टशब्दार्थवत्तया च महाकाव्यत्वं दर्शितम्।

उसके प्रवाह में दुरूहता खप जाती है। मेरे वरेण्य मित्र हैं– आचार्य गोवर्धन, जिनके साधारण शृंगार के परे भी प्रेम का कोई अस्तित्व है, इसकी रचना करने में वे बेमिसाल हैं, उनका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं है और कविराज धोयी भी कम नहीं हैं। वे जो भी उत्कण्ठा का स्वर सुनते हैं, उसे तत्काल ग्रहण कर लेते हैं। वे वास्तविकता के अंकन में अप्रतिम हैं। मैं उन्हीं ऐसे लोगों का साथी हूँ, ऐसे लोगों के बीच में रहता हूँ, लेकिन मैं नहीं रहता हूँ; क्योंकि मुझे शुद्ध सन्दर्भ की तलाश है। वह शुद्ध सन्दर्भ इन सबकी परिधि से बिलकुल बाहर है। इसी भूमिका के साथ चौथे श्लोक में जयदेव पाठक से अपेक्षा करते हैं।

चार मंगल श्लोकों के बाद प्रथम दो अष्टपदियों में क्रमशः दशावतार वर्णन और विष्णु के राम और कृष्ण के रूप में अवतरण का वर्णन है। समझ में नहीं आता कि इन दोनों का उद्देश्य क्या है? दशावतारों में श्रीकृष्ण नहीं हैं; परन्तु अष्टपदी के अन्त में जो श्लोक सबको समेटनेवाला है, उसमें श्रीकृष्ण को ही नमस्कार किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशिष्ट्यं विषयनिर्दोषवत्त्वे गुणवदलङ्कारयोगित्वे सति रसवत्त्वम्। तदुक्तम् (सरस्वतीकण्ठाभरणे - १।२)–

'निर्दोषं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं भक्तिञ्च विन्दति'।।

इति, 'पल्लवः स्यात् किसलये विटपे विस्तरे बले' इति विश्वः, 'लघु क्षिप्रतरं द्रुतम्' इत्यमरः। 'उत्तरं प्रतिवाक्ये स्यादूर्ध्वोदीच्योत्तमेऽन्यवत्' इति च।।४।।

गया है और कहा गया है कि उन्हीं के ये दस रूप हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कृष्ण सर्वांगपूर्ण हैं और दश अवतार उनकी अभिव्यक्तियाँ हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को पूर्णावतार कहा गया है, षोडश कलाओं से सम्पन्न अवतार कहा गया है। षोडश कलाएँ चन्द्रमा की सोलह कलाओं के समानान्तर कलाएँ हैं। प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पन्द्रह कलाएँ और अमावास्या की एक अतिरिक्त कला। चन्द्रमा बढ़ते-बढ़ते पूर्ण होता है, पुनः क्रमशः घटते-घटते बिलकुल निष्कल हो जाता है। निष्कल कला अमृता कला कही जाती है। अमृता का एकत्व प्रत्यक्ष है–सुधा, लेकिन उसमें दूसरा गहरा अर्थ भी समाविष्ट है, न मरने का भाव, मर करके भी जीने की क्षमता। अमावस्या में लगता है कि चन्द्रमा आकाश से विदा हो गया। पुनः वह ऊपर नयी ऊर्जा लेकर उदित होता है, इसलिए उस नव उदित चन्द्रमा का बड़ा महत्त्व है। उसकी आराधना विश्व के अनेक कोनों में होती है, पर अमावस्या में सूर्य के प्रकाश में पूरी तरह अपने को डुबा देना और फिर ऊर्जा लेकर पुनः उदित होना, यही अमृता कला का तात्पर्य है, अमृता कला की शक्ति है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण में अमृता कला इस रूप में है कि वे सबको छोड़ते ही रहते हैं। उनके पास राज्य नहीं, राज्य देने-दिलाने की क्षमता है, पर वे स्वयं राज्य नहीं भोगते। वे स्वयं छोटी भूमिका में ही अपने को रखना चाहते हैं। साधारण जनों के बीच में रखना चाहते हैं, साधारण से साधारण कार्य करना चाहते हैं, गौओं की सेवा जैसे कार्य की बात तो छोड़ दीजिए, वे यज्ञ में पाँव पखारने का और जूठी पत्तल बटोरने का काम भी करते हैं। अपने को इस प्रकार शून्य या रिक्त बनानेवाले प्रभु ही इतने पूर्ण हैं। उनके दश अवतारों के वर्णन का उद्देश्य उनकी विभिन्न छटाओं को सामने रखना है, उनके विक्रम का परिचय देना है। ऐसे श्रीकृष्ण को वश में करना,वश में करनेवाली राधा का महत्त्व होगा। साधारण प्रेमी को वश में किया तो क्या किया? राधा ने तो इतने रूपों में सृष्टि के भीतर खेल-खेल में इतना पराक्रम दिखलानेवाले महापुरुष को जब अपने वश में कर लिया हो, तब उस शक्ति का, आनन्दमय शक्ति का कुछ महत्त्व होगा।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतम्- १

[मालवरागेण रूपकतालेन च गीयते]

प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदं
विहित-वहित्र-चरित्रमखेदं
केशव! धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे।।१।।

ननु पूर्वमुक्तं राधामाधवयोः रहःकेलयो जयन्ति, तेन परकीयत्वेन (भाग. १०।२९।२६)–

'अस्वर्ग्यमयशस्यञ्च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितञ्च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रियाः'।।

इति भयादिनिन्दाक्रान्तत्वात्तुच्छत्वाच्च कथं रसनिष्पत्तिः? कथं वा जयन्तीत्युक्तम्, तदेव निरतिशयात्यद्भुतशक्तिमत्त्वनिरूपणेन सर्वनियामकतया महात्यद्भुतैश्वर्येणानियम्यगोपकिशोराखिलचिन्मयरसास्वादलीलामयमूर्त्तेरवतार-गुणैर्नायकश्रेष्ठत्वापादनेन सर्वविघ्ननिवर्त्तये नमस्क्रियया मङ्गलमप्या-चरन्नित्यानन्दरूपताञ्चापादयन् उक्तदोषं परिहरति–प्रलयेत्यादिना।

उक्तञ्चास्मिन्नेवार्थे राज्ञा पृष्टेन शुकेनापि (भा. १०।३३।३५-३६)–

'गोपीनां तत्पतीनाञ्च सर्वेषामपि देहिनाम्।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्ष एष क्रीडनदेहभाक्।।
अनुग्रहाय भूतानां (?) मानुषं देहमाश्रितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्'।। इति।

पहली अष्टपदी मत्स्यावतार से प्रारम्भ होती है। इस अवतार की कथा यह है कि ऋषि के एक कमण्डलु में नदी से एक छोटी-सी मछली चली आयी। उन्होंने उसे एक अलग छोटे-से पात्र में रख दिया। मछली बढ़ी, आकार में बढ़ी और फिर उसे दूसरे और बड़े पात्र में रखा, फिर उसे छोटे-से गड्ढे में रखा, फिर तालाब में रखा, किन्तु मछली बढ़ती चली गयी। उसे नदी में रखा, नदी भी उसके लिए छोटी पड़ गयी। अन्त में उसने आज्ञा माँगी कि अब मैं समुद्र में जा रही हूँ, जब प्रलय उमड़ेगा और प्रलय का सागर लहराएगा, तब मैं तुम्हारी पुकार पर आ जाऊँगी और तुम एक नौका मेरे मोटे-मोटे केशों में बाँध देना, उसी में सृष्टि के बीज रख देना, उसी में वेद रख देना और प्रलय समाप्त होने पर मैं तुम्हें कहीं ठिकाने पर पहुँचा दूँगी। इसकी कहानी विभिन्न रूपों में विभिन्न कथारूपों में मिलती है। एक प्रकार से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तासां माहात्म्यमपि भगवतैवोक्तं तत्रैव (भाग. १०।३२।२१)–

'एवं मदर्थोज्झितलोकवेदः स्वानां हि मय्यनुवृत्तयेऽबलाः।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं, मासूयितुमर्हथ तत्प्रियं प्रियाः।।
न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां, स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या मा भजन् दुर्जरगेहशृङ्खलां, संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना।।' इति।

एतदुक्तं भवति–नायकोऽयं पुरुषोत्तमः, तास्तु नित्यप्रियाः प्रेमरसैकमूर्त्तयः, अतो निःसीमरसास्पदत्वं सर्वोत्कृष्टत्वमपि सिद्धमिति सिद्धान्तः। अस्वर्ग्यमित्यादि यदुक्तं भगवता, तत्तु प्राकृतविषयम्, रसनिष्पत्त्यै वक्रोक्त्या तद्भावपरीक्षार्थमेवेति। गीतस्यास्य मालवरागो रूपकतालः, तयोर्लक्षणम्–

नितम्बिनीचुम्बितवक्त्रपद्मः, शुकद्युतिः कुण्डलवान् प्रमत्तः।
सङ्गीतशालां प्रविशन् प्रदोषे, मालाधरो मालव-रागराजः।। इति।

'रूपके स्याद्द्रुतं लघु' इति।

गीतार्थस्तु–हे केशव! जय। कः ब्रह्मा ईशो रुद्रस्तौ वशयतीति केशवस्तादृश! भक्तसुखकारितया सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व। ननु मम भक्तसुख-सम्पादने कुतः सामर्थ्यमित्यत आह–जगदीशेति। जगतां चतुर्दशभुवनानामीश नियन्तः। तथा च चतुर्दशभुवननाथस्य ते तत्र कथं सामर्थ्यमिति भावः।

सृष्टि का आरम्भ जल में होता है। यह जल व्यक्त रूप में भी है, अव्यक्त रूप में भी है। अव्यक्त रूप में जल भी ब्रह्माण्ड का रूप है,. जिसमें सारा प्रकाश एक निराकार पिण्ड के रूप में रहता है। उसी में एक क्षणिक उद्वेलन होता है, एक क्षणिक स्पन्दन होता है, वह स्पन्दन भी सृष्टि का मूल है। स्पन्दन इतना चंचल होता है, इतना प्रसारशील होता है कि उसकी उपमा बड़े. मत्स्य से दी जाय, तो वह उचित ही है। उसी के द्वारा सृष्टि का वितान सम्भव होता है। व्यक्त-रूप में वों जल-जन्तुओं की उत्पत्ति पहले होती है। उसमें मछली भी है। स्वर्गीय रामदास गौड़ ने अपने 'हिन्दुत्व' नामक मोटे ग्रन्थ में दशावतारों के विकास की दस सीढ़ियाँ मानी हैं, पर मैं उसमें कोई विशेष तत्त्व नहीं देखता। मुझे यह लगता है कि पुराणकथाओं के अनुसार सृष्टि का बीज वहन करनेवाला यह महामत्स्य, परात्पर ब्रह्म का एक अवधारणात्मक रूप है। उसी के द्वारा समस्त सृष्टि का मूल पूर्वसंचित अनुभवों की राशि बीजरूप में प्रलय के समुद्र के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचायी जाती है। वह राशि वेद ही तो है। वेद का अर्थ मन्त्रराशि भी है और अलौकिक ज्ञानराशि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र हेत्वन्तरमप्याह–हे हरे! हरति भक्तानां क्लेशमिति हरिः, तदेव अकृत्यकरणेनापि भक्तकार्यपरत्वं भगवतो दर्शयति–धृतमीनशरीरेत्यादिना। कीदृश धृतमीनशरीर, धृतं परिगृहीतं स्वेच्छयाविष्कृतं मीनस्य मत्स्यस्य शरीरं येन तादृश। एतत्तु ध्रुवपदं प्रतिपदमनुवर्त्तमानत्वात्, तदुक्तम् (रत्ना. ५।२८।५७)–

'उद्ग्राहः प्रथमो भागस्ततो मेलापकः स्मृतः।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगश्चातिशोभनः'।।

इति चतुर्भिरवयवैः प्रबन्धो भवतीति। यद्यपि क्वचिद्धृतमीनशरीरेति क्वचिद्धृतकच्छपरूपेत्यादि-भिन्नमेव पदमस्ति, तथापि 'जय जगदीश हरे' इत्यस्य प्रतिपदमनुवर्त्तमानत्वाद् ध्रुवत्वम्।

ननु किमिति मीनशरीरं मया परिगृहीतमित्यत आह–त्वं प्रलयपयोधिजले प्रलयकालीनाः परस्परं मिलिता ये पयोधयः समुद्रास्तेषां जले वेदं निमज्जन्तं मीनशरीरमुपादाय धृतवानसि! कथं तथा स्यात्? विहितवहित्रचरित्रं विहितं कृतं वहित्रस्य पोतस्य चरित्रं यथा स्यात्, अखेदं खेदरहितं यथा स्यात्तथा परमानन्दनिदानत्वात्। अथवा वेदं ज्ञानं धृतवानसि सत्यव्रतायार्पितवानसि इत्यर्थः। अतो भक्तानुरागेणागणितखेदत्वादखेदमित्युक्तम्। अत्र पयोधिपदेनैव जलवत्त्वे प्राप्ते पुनः जलपदोपादानमन्तर्द्वीपविरहितत्वेन विश्रामस्थलाभावं सूचयितुम्। तथा च निरालम्बेऽपि पयोधौ वेदं धृतवानसीति वेदधारणार्थमेव ते शरीरपरिग्रह इति भक्तकार्यपरत्वं दर्शितम्। 'पृथु-रोमा झषो मत्स्यो मीनो वैसारिणोऽण्डजः' इत्यमरः।।१।।

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे।
केशव! धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे।।२।।

भी है। साथ-ही-साथ ज्ञान की प्रक्रिया भी है, ज्ञान की निरन्तरता भी है। प्रलय समुद्र की लहरों की चपेट में कुशलता से महामत्स्य ने नौका किनारे लगायी है और उसी के द्वारा सम्भव हुआ है कि परमतत्त्व मनुष्य को थाती में पुनः मिल गया है, वह लुप्त भी नहीं होने पाया। मनुष्य का लक्षण है सोचना, सोचने का तार कहीं टूटने नहीं पाया।।१।।

दूसरा अवतार है कच्छप-अवतार या कूर्म-अवतार, इसमें धरती कहीं टिकती नहीं है, इधर-उधर पिण्ड के रूप में दौड़ती रहती है। उसको कच्छप बनकर भगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षितिरित्यादि। हे केशव धृतकच्छपरूप धृतं कच्छपस्वरूपं येन तादृश जय। कूर्मावतारेऽपि हेतुमाह-तव पृष्ठे क्षितिः पृथ्वी तिष्ठति। तिष्ठतीति वर्त्तमानकालनिर्देशेनाधुनापि तिष्ठतीति प्रसिद्धमेवेति भावः। ननु पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तृता मम पृष्ठे कथं स्थितेत्यत आह-अतिविपुलतरे इति। अतिशयेन पृथिव्यपेक्षयाप्यधिकविस्तीर्णे। पुनः कीदृशे? धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे धरण्याः पृथिव्याः धारणेन यत् किणचक्रं चक्राऽतिरुधिरमण्डलं तेन गरिष्ठे गौरवयुक्ते, तच्छोणितग्रन्थिरूपं चक्रं गरिष्ठं यस्मिन् तादृश इति वा। 'कूर्मे कमठकच्छपौ' इत्यमरः। 'व्रणचिह्ने घुणकिणौ' इति हारावली। तथा च भक्तकृते पृथिव्यादिधारणकर्मणा भगवतो भारवहनमप्युक्तमिति भावः।।२।।

वसति दशन-शिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना।
केशव! धृतशूकररूप जय जगदीश हरे।।३।।

वसतीत्यादि। हे केशव धृतं शूकरस्य रूपं येन तादृश जय। वाराहावतार परिग्रहप्रयोजनमाह-तव दशनशिखरे दन्ताग्रे लग्ना संश्लिष्टा धरणी लोकधारणकर्त्र्यपि पृथ्वी वसति। कुत्र केव? शशिनि चन्द्रे निमग्ना लीना कलङ्ककलेव लाञ्छनलेश इव। अत्र निमग्नेति पदोपादानेन बालचन्द्रस्य दीर्घतया सादृश्यमपि सङ्गच्छते, निमग्नेति पदवैयर्थ्यमपि न। किञ्च,

---

पीठ पर धारण करते हैं। इतनी बड़ी पृथ्वी को कहीं पीठ में टिकाते हैं, तो निश्चय ही उसका कोई-न-कोई निशान हमेशा के लिए पड़ जाता है। पृथ्वी के चंचल स्वभाव के कारण वह निशान चक्र के रूप में दिखाई पड़ता है। भगवान् श्रीकृष्ण कच्छप-रूप में चंचल को स्थिर करते हैं, मनुष्य के लिए ही नहीं, समस्त जीवों के लिए एक आधार देते हैं, पर प्रतिलोम शक्तियाँ भी काम करती रहती हैं, फिर हिरण्याक्ष नाम का असुर उस पृथ्वी को चुरा करके ले जाता है और फिर सागर में ले जाकर एक तरह से अपनी कैद में रख लेता है।।२।।

भगवान् तीसरा अवतार वराह-रूप में लेते हैं और अपने दाँतों से पहले ढूँढ़ लेते हैं, हिरण्याक्ष से युद्ध करके उसका वध करते हैं और फिर उसके कब्जे में गयी पृथ्वी को अपने दाँत की नोक पर ऐसे उठाते हैं, जैसे एक छोटा-सा फूल हो, जैसे चन्द्रमा के अपने बीच में टँका हुआ कोई कलंक हो। ऐसे वराह का पराक्रम इस रूप में भी उल्लेखनीय है कि वे पंक से, कीचड़ से शस्यसम्पत्ति वहन करने में समर्थ पृथ्वी का उद्धार करते हैं और सोने की आँखवाले असुर की उपभोगी कुदृष्टि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दन्तश्लिष्टायास्तस्याः पोषणमप्युक्तमिति भावः। 'रदना दशना दन्ता रदाः' इत्यमरः। 'अग्रं शिखरमित्याहुरद्रिशृङ्गे च तन्मतम्' इति धरणिः।

'कला स्यान्मूलवृद्धौ शिल्पादावंशमात्रके।
षोडशांशे च चन्द्रस्य कलना कालयोः कला'।। इति विश्वः।।३।।

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गं
दलित-हिरण्यकशिपु-तनुभृङ्गं
केशव! धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे।।४।।

तव करेत्यादि। हे केशव! धृतं नरहरेः नरसिंहस्य रूपं येन तादृश जय। नृसिंहावतारप्रयोजनमाह–तव करकमलवरे करो हस्तः स एव कमलवरः पद्मश्रेष्ठः, तत्र नखं तिष्ठति, कीदृशम्? अद्भुतमाश्चर्यभूतं शृङ्गमग्रभागो यस्य तादृशम्। अद्भुतत्वमेवाह–दलितो विदारितो हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्य तनुर्देहः स एव भृङ्गो भ्रमरो येन तादृश। भृङ्गो हि पुष्पदलविदलनार्थं प्रवर्त्तते, विदलयति च तत्, अनेन पुनर्दलरूपनखेन भृङ्ग एव विदारित इत्यद्भुतत्वम्। तथा च बृहतोऽपि हिरण्यकशिपुकायस्य भृङ्गत्वनिरूपणेन श्रीनृसिंहकराम्बुजा-पेक्षयातिसूक्ष्मत्वं ध्वनितम्; भक्तद्रुहो हिरण्यकशिपोर्वित्रासायात्र च सिंहवपुराविष्करणीयेति भावः।

से उसका उद्धार करते हैं। इसलिए वह उद्धरित पृथ्वी भगवान् की श्री हो जाती है। वह भूदेवी और श्री हमारी कला में एक ही हैं। भगवान् इसीलिए समुद्र और पृथ्वी के पति के रूप में माने जाते हैं। पृथ्वी का दूसरा नाम ही विष्णु-पत्नी है। रूपक की भाषा थोड़ा हटा दें, तो वास्तविकता यही है कि पंक को, दलदल को कृषियोग्य उर्वरता देने का कार्य भगवान् ने किया है और ऐसे किया है जैसे उन्हें कुछ परिश्रम ही नहीं हुआ हो, न हिरण्याक्ष को मारने में हुआ और न पृथ्वी को दाँतों की नोक पर टिकाने में हुआ।।३।।

भगवान् का चौथा अवतार है–नृसिंह-अवतार। हिरण्याक्ष का ही दूसरा भाई था हिरण्यकशिपु, सोने की सेज पर सोनेवाला। उसने पृथ्वी पर अनेक उत्पात शुरू किये, सामंजस्य स्थापित करनेवाली यज्ञ की प्रक्रिया बन्द कर दी, ऋषि और देवताओं को सताने लगा, ज्ञान की प्रक्रिया बन्द कर दी और अपने को सबसे बड़ी शक्ति के रूप में पुजवाने लगा। उसके पुत्र थे प्रह्लाद। प्रह्लाद पुत्र ही नहीं थे, उसके लिए चुनौती भी थे। वे पिता के आदेश के बावजूद भगवद्भक्ति में स्वयं लगे रहे, दूसरों को लगाते रहे। पिता को क्रोध आया, उनको तरह-तरह के दण्ड दिये, किन्तु प्रह्लाद को कुछ नहीं हुआ। अन्त में प्रह्लाद से कहा, 'बुलाओ अपने भगवान् को,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'यमानिलेन्द्रार्कविष्णुसिंहाम्बुवाजिषु।
शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु'।। इत्यमरः।
शृङ्गं प्रभुत्वे शिखरे चिह्ने क्रीडाम्बुयन्त्रके।
विषाणोत्कर्षयोश्चाग्रे शृङ्गे स्यात् कूर्चशीर्षके'।। इति विश्वः।

'पुनर्भवः कररुहो नखरो नखमस्त्रियाम्' इत्यमरः। 'तनुः काये कृशे चाल्पे विरले चापि वाच्यवत्' इति च। 'द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः' इत्यमरः।।४।।

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन।
केशव! धृतवामनरूप जय जगदीश हरे।।५।।

छलयसीत्यादि। हे केशव! धृतं वामनस्य स्वरूपं येन तादृश जय। वामनावतारप्रयोजनमाह–हे अद्भुतवामन आश्चर्यरूप वामन! विक्रमणे पदाक्रमणनिमित्तमुपादाय बलिं दैत्यराजं छलयसि वञ्चयसि। भगवानुपेन्द्रो वामनरूपं धृत्वा बलेः सकाशात् पदत्रयपरिमितां भूमिं प्रार्थ्य पश्चाद्बृहद्रूपं

कहाँ है तुम्हारा भगवान्?' उन्होंने कहा, 'सामने खम्भे में है' और खम्भे को तोड़ करके भगवान् नृसिंह अवतीर्ण हुए, शरीर मनुष्य का और मुख सिंह का। उन्होंने अपने नखों से हिरण्यकशिपु को अपनी गोद में लिया, क्योंकि उसकी मृत्यु न तो पृथ्वी में होनी थी, न आकाश में और उसे अपने नखों से चीर दिया। सोना जब शक्ति बनकर आता है, तो ऐसा ही अहंकार होता है। इस अहंकार का ही विदारण भगवान् ने किया। सोने की सम्पत्ति हमेशा लोगों को विभक्त करती है और भक्ति लोगों की साझेदारी सुनिश्चित करती है, लोगों का भाव सुरक्षित रखती है और अपने को आराध्य देवता के भाव के रूप में ही देखती है। इस प्रकार नृसिंह-अवतार के उग्र रूप में, भक्त के भावुक के रूप में एक ऐसी कृपा और करुणा दिखाई पड़ती है, जो भगवान् का स्वभाव है।।४।।

पाँचवाँ अवतार है–वामन का। प्रह्लाद के पौत्र बलि ने अपने सत्कर्मों से इन्द्र को जीत लिया और जिस लोक में रहता था, उसी को स्वर्ग बना दिया। उसको उग्र रूप धारण करके वश में नहीं किया जा सकता था। उससे त्रिभुवन का राज्य, याचक बनकर ले लिया जा सकता था और भगवान् याचक बनकर गये। जब याचक बनकर जाना होता है, तो छोटा होना ही पड़ता है। बिलकुल बौने होकर गये। बलि के परदादा को सोने की सम्पत्ति का घमण्ड था, तो बलि के भीतर भी एक अभिमान जाग गया था कि मैं इतने यज्ञ कर रहा हूँ और मैं इतना लुटा रहा हूँ, सम्पत्ति बाँट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकटीकृत्य चतुर्दशभुवनैरपि पदत्रयापूरणे तं बलिं गृहीत्वा त्रिलौकीमिन्द्राया-ददादिति पुराणप्रसिद्धेरद्भुतत्वम्। स चात्मनो भगवतो भक्तपरवशत्वेन छद्मनापि भक्तकार्यसाधनमिति चाद्भुतवामनेत्युक्तं वस्तुतस्तु तद्वशो भूत्वा द्वारपालो बभूवेत्यद्भुतत्वं ध्वनितम्।

अन्यच्चाद्भुतत्वं दर्शयति– पदनखसम्बन्धि यन्नीरं गङ्गाजलं तेन जनितमुत्पादितं जनानां पावनं पावित्र्यं येन तादृश। अत्रापि प्रवर्द्धमानस्य भगवतस्त्रिविक्रमस्य चरणाङ्गुष्ठनखाग्रेण विदीर्णे ब्रह्माण्डस्य प्रथमे पार्थिवा-वरणे तेनैव वर्त्मना तच्चरणारविन्दं प्रक्षालयदेवागतं यद्द्वितीयावरणजलं ब्रह्मदत्तार्थजलेनैकीभूतं क्रमेण मर्त्यलोकं प्राप्तं गङ्गेति लोकान् प्लावयतीति पुराणप्रसिद्धेः। तथा च भूर्लोकस्थितेनातिवृद्धेन वामनेन ब्रह्माण्ड-जलस्यात्रानयनादाश्चर्याच्छद्मवतः चरणनखस्पृष्टजलेनापि शेषलोकपावनत्व-मित्यद्भुतमहिमयोगेनात्याश्चर्यमित्यपि ध्वनितम्।

किञ्च छलयसीति भूतेऽप्यद्यापि बलिसमीपे वर्त्तमानत्वाद् वर्त्तमान-प्रयोगः। पावन इति नायकगुणश्च कथितः। 'अम्भोऽर्णस्तोयपानीय-नीरक्षीराम्बुशम्बरम्' इत्यमरः।

'बलिश्चामरदण्डे स्याज्जरया श्लथचर्मणि।
उदरावयवे दैत्ये करे पूजोपहारयोः।।
गृहदारुविशेषे च गन्धके च क्वचिन्मतः'।। इति विश्वः।।५।।

रहा हूँ। भगवान् अहंकार पुण्य का भी नहीं सहते। इस अहंकार को दूर करने के लिए वे बस इतना माँगते हैं कि हमें तीन पग जमीन दे दो, तीन पग नाप की जमीन दे दो। बलि हँसता है कि क्या छोटी चीज माँगी है और भगवान् तीन पग के नाप की पृथ्वी बताने के लिए विराट् हो जाते हैं और विराट् रूप में सारा त्रिभुवन माप लेते हैं। अभी एक पग बाकी है, बलि अपनी पीठ सामने कर देते हैं– 'मेरी पीठ नाप लीजिए।' भगवान् उनके इस विनय से प्रसन्न होते हैं और उन्हें वरदान देते हैं कि आनेवाले मन्वन्तर के तुम्हीं इन्द्र होगे और तुम्हारे परिवार में भक्ति अचल रहेगी। भगवान् अपने भक्त को भी छलते हैं और उसके हित में उसे छलते हैं, सात्त्विक रूप के द्वारा छलते हैं; क्योंकि सात्त्विक रूप से ही सात्त्विक अभिमान दूर किया जा सकता है और इस रूप के द्वारा वे कई बातें दिखलाते हैं। एक तो यह कि छोटे-से-छोटे में एक बहुत बड़ी शक्ति कहीं रहती है और दूसरी बात यह कि छोटी याचना का उपहास महँगा पड़ता है। उस उपहास की दवा छल है। इसलिए यह छल बलि का कल्याण करता है और जो सन्तुलन सृष्टि में बिगड़ गया था, उसे पुनः स्थापित करता है।।५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
स्नपयसि पयसि शमितभवतापं
केशव! धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे।।६।।

क्षत्रियेति। **हे केशव धृतं भृगुपतेः परशुरामस्य रूपं येन तादृश जय। तत्प्रयोजनमाह–क्षत्रियाणां यद्रुधिरं तन्मये तद्विकारे पयसि कुरुक्षेत्राख्य-तीर्थजले जगत् प्राणिजातमपगतपापं नष्टकलुषं यथा स्यादेवं स्नपयसि स्नानं कारयसि। यदवधि परशुरामेणैकविंशतिवारान् क्षत्रियान् हत्वा तद्रुधिरैः कुरुक्षेत्रे पञ्चह्रदान् विधाय पितृतर्पणं कृतम्, तदवधि तन्महातीर्थं जातमिति पुराणप्रसिद्धेः। कीदृशं जगत्? शमितभवतापं शमितो नाशितो भवस्य संसारस्य तापः सन्तापो यस्य तादृशम्। प्राणिनां पापसम्बन्धादेव तापस्तत्तीर्थस्नानेन तु सर्वपापनाशे स तापनाश इति भावः। जले मज्जतः सन्तप्तस्य तापनाश उचित एवेति ध्वनिः। 'रुधिरोऽङ्गारके प्रोक्तो रुधिरं कुङ्कुमसृजोः' इति विश्वः। 'भवः संसारसम्प्राप्तिश्रेयःशङ्करजन्मसु' इति च। अनेनापि धर्मरक्षणाय तद् विरोधिक्षत्रकुलसंहरणरूपं भक्तकार्यं दर्शितम्, तथा च रुधिररूपे जले मज्जतां साधनकोटिसंसाध्यध्वंसलक्षणपावनत्वापा-दनेनाद्भुतपावनत्वं वीर्यञ्च कथितमिति भावः।।६।।**

भगवान् का छठाँ अवतार, परशुराम अवतार है। अब तक जिस प्रभुत्व के मद को भगवान् ने चुनौती दी, वे सभी मद आसुरी मद थे, लेकिन मनुष्य के भीतर भी प्रभुता का मद हो सकता है और ऐसा मद हो सकता है कि ऋषि की गाय पर भी लोभ हो जाय और वह उसे जबर्दस्ती छीन ले जाय और विरोध करने पर आश्रम को तहस नहस कर दे, तपस्या के वातावरण को नष्ट कर दे, एक तरह से पर्यावरण को ही नष्ट कर दे, पर्यावरण को शुद्ध करनेवाले उपाय को ही नष्ट कर दे। भगवान् हाथ में फरसा लेकर परशुराम अवतार लेते हैं और फरसे से क्षात्रमद का नाश करते हैं। वे ऐसे दुर्मद राजाओं से छीनकर सारी पृथ्वी बाँट देते हैं। अपने लिए, अपने रहने के लिए भी कोई ठौर नहीं रखते, तो समुद्रतट से छीनकर एक कोना निकालते हैं। वही कोना आज केरल कहा जाता है। जिस जगह महाभारत का युद्ध हुआ था, उस कुरुक्षेत्र में परशुराम के द्वारा फरसे से काटे गये दुर्मद राजाओं के रुधिर का कुण्ड है, जिसे समन्तपंचक तीर्थ कहा जाता है। मनुष्य के रूप में भगवान् का एक तरह से यह पहला अवतार है। वामन तो देवसन्तति हैं, देवरूप हैं और परशुराम ऋषिसन्तान हैं, क्षत्रिय माता और ऋषि पिता की सन्तान हैं। उस रूप में भगवान् का अवतरण क्रोध की अंकुश-शक्ति का प्रदर्शन है।।६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं
दशमुखमौलिबलिं रमणीयं
केशव! धृतरघुपतिरूप जय जगदीश हरे।।७।।

वितरसीत्यादि। हे केशव! धृतं रघुपतेः रामचन्द्रस्य रूपं येन तादृश जय। श्रीरामावतारकृत्यमाह–रणे सङ्ग्रामे दिक्षु दशदिशासु दिक्पदेनैव दशसङ्ख्योपस्थितिर्ज्योतिषि। दशमुखस्य रावणस्य ये मौलयो मस्तकानि तान्येव बलिम् उपहारं वितरसि ददासि। कीदृशम्? दिक्पतिकमनीयं दिशां ये पतय इन्द्रादयस्तेषां कमनीयमभीष्टम्, तत्र हेतुः–रमणीयं रावणवधद्वारा लोकाभिरामत्वात्; प्रत्येकं विभागकथनाय दशमुखपदोपादानं 'किरीट-मूर्धचूडासु मौलिः केशे च सज्जने'। अत्रापि लोकपालानां स्वभक्तानां कार्यपरत्वं तैरपि सेव्यमिति चाद्भुतवीर्यकौशलञ्च दर्शितं प्रत्येकं तन्मौल्यर्पणात्।।७।।

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभं
केशव! धृतहलधररूप जय जगदीश हरे।।८।।

वहसीति। हे केशव! धृतं हलधरस्य बलभद्रस्य रूपं येन तादृश जय। तल्लीलामाह–विशदे शुभ्रे वपुषि देहे जलदाभं सजलमेघनीलं वसनं वस्त्रं वहसि धारयसि। कीदृशम्? हलहतिभीतिमिलितयमुनाभं हलेन हतिर्हननं तद्भीत्या तद्भयेन मिलिता या यमुना तस्या इव आभा दीप्तिर्यस्य तादृशम्। इयञ्च मलयानिलवशात् कम्पमानस्य वस्त्रस्य भययुक्तयमुनया उत्प्रेक्षागर्भोपमा। भीरूणां विकम्प उचित एवेति भावः। कदाचिद्वृन्दावने वारुणीं पीत्वा

सातवाँ अवतार, जिसे हमारी परम्परा पूर्णावतार मानती है, श्रीराम का है। उनका वर्णन इस रूप में किया गया है कि वे दसों दिक्पालों को, दसों दिशाओं के अधिपतियों को रावण के दस सिरों की बलि दे रहे हैं। दसों दिशाओं के प्राणी रावण के बारे में भयाक्रान्त थे। जब रावण मारा जाता है, तो उसके सिर दसों दिशाओं में पहुँचते हैं तथा लोगों को भीतर-भीतर बड़ी राहत मालूम होती है, आतंक से और सन्त्रास देनेवाले के अहंकार से बहुत शान्ति मिलती है।।७।।

आठवाँ अवतार, कृष्ण के बड़े भाई हलधर बलराम का है। यहाँ इनका अस्त्र है हल और मूसल। यह गोरे हैं। इनकी देह पर नीला वस्त्र खिलता है। ये यमुना के ऊपर एक बार क्रुद्ध हुए थे। हल की नोक इन्होंने घुसायी और भय से यमुना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपीभिः सह विहरता बलभद्रेण जलक्रीडार्थमाहूता मत्तप्रलापोऽयमिति मत्वा गर्वेणान्तिकमनागच्छन्ती कालिन्दी रोषतो हलाग्रेण कृष्टेति पुराणप्रसिद्धेः। अस्मिन्नप्यवतारे ताभिः प्रेयसीभी रममाणस्य तत्सुखार्थं यमुनाकर्षणालीलाविष्करणात् तत्परत्वमिति। किञ्च हलधरपदेन दुष्टनिग्रहार्थमेव हलं धृतवानिति भक्तकार्यपरत्वमवतारप्रयोजनञ्च ध्वनितम्। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरञ्च कलेवरम्' इत्यमरः। 'शुक्ल-शुभ्र-शुचि-श्वेत-विशद-श्येत-पाण्डुराः' इति च। वस्त्रमाच्छादनं वासश्चेलं वसनमस्त्रियाम्' इति च। 'भीतिः साध्वसकम्पयोः' इति विश्वः।।८।।

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शितपशुघातं
केशव! धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे।।९।।

निन्दसीति। हे केशव! धृतं बुद्धशरीरं येन तादृश जय। ननु वेदनिन्दकस्य कथं स्तुतिरित्यत आह–यज्ञविधेः श्रुतिजातं क्रतुविधानसम्बन्धिवेदवाक्यसमूहं निन्दसि, न तु सर्वमित्यर्थः। सोऽपि किमिति निन्द्यते? इत्यत आह–अहह कष्टं दर्शितो बोधितः पशूनां घातो येन तादृशम्, वेदोऽपि पशूनां घातं बोधयतीत्यहह कष्टमित्येवं निन्दसीति भावः। एतादृशनिन्दायामपि हेतुमाह–सदयहृदयेति। दया कृपा तत्सहितं हृदयं यस्य तादृश। अयं भावः–रागवशान्निरङ्कुशान् दृष्ट्वाऽग्नीषोमीयं पशुमालभेतेत्यादिविधिवाक्यैः स्वर्गादिफलप्रदर्शनपुरस्कारेण गुडजिह्विकया वैदिकमार्गे प्रवर्त्त्य पश्चान्नश्वर-स्वर्गादिफलजनकं निरपराधिबहुप्राणिवधसाध्यं यागादिकं युक्तिविरोधित्वान्न तेषामत्यन्तहितमिति विचार्य परमपुरुषार्थसाधने निवृत्तिमार्गे तान् प्रवर्त्तयितुं 'न हिंस्यात् सर्वभूतानि' इत्यादिना यज्ञादिबोधकवेदस्य निन्दां करोषि, न तु सर्वथा वेदनिन्दायामेव तव तात्पर्यम्। अत एव गूढं तवैतत्तात्पर्यमज्ञात्वा दुरात्मनां वैदिकमार्गे अविश्वासः, तेषां मोहनायैव तदवतारपरिग्रह इति। स्वजनार्थं तद्विरोधिनां श्रेयसि वञ्चनरूपमवतारप्रयोजनमप्युक्तमिति।

काँप उठीं। ऐसा अवतार है भगवान् का–एक अपार बलशाली। ऐसे अवतार का नाम ही बलराम है।।८।।

नौवाँ अवतार भगवान् बुद्ध का है, जो उन श्रुतियों की निन्दा करते हैं, जो यज्ञ में पशुमेध का विधान करती हैं और इसके द्वारा दयाशील हृदय में पशुघात, पशु को मारने के प्रति, पशु को मारते समय करुणा की सृष्टि करते हैं और वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहहेत्यद्भुते वा। 'अहहेत्यद्भुते खेदे' इति विश्वः। 'वेदे श्रवसि च श्रुतिः' इत्यमरः। 'जातं जात्योघजन्मसु' इति विश्वः।।९।।

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालं
केशव! धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे।।१०।।

म्लेच्छनिवहेति। हे केशव! धृतं कल्किनः शरीरं येन तादृश जय। तच्चेष्टितमाह–त्वं म्लेच्छनिवहनिधने म्लेच्छानां निवहाः समूहास्तेषां निधने नाशनिमित्तं करवालं खड्गं कलयसि धारयसि। कीदृशम्? किमपि करालम् अतिशयेन भयङ्करम्। कमिव धूमकेतुमिव औत्पातिकरणे उदितं तत्करवाले पश्यतां म्लेच्छानां नाशो भवतीति करवालस्य धूमकेतुसाम्यं धूमकेतौ ग्रहविशेषमिव, औल्पातिकग्रहविशेषेऽप्युदिते तं पश्यतां प्राणिनां विपदो भवन्तीति भावः। यद्वा धूमः केतुश्चिह्नं यस्य स धूमकेतुर्वह्निस्तमिव, अत्र खड्गस्य नीलत्वाद्धूमसाम्यं मुष्टेश्च सुवर्णमयत्वादग्निसाम्यम्। 'म्लेच्छः पापरतौ जातिभेदे स्यादपभाषणे' इति विश्वः। 'समूह-निवह-व्यूह-सन्दोह-विसर-व्रजाः' इत्यमरः। 'निधनं स्यात् कुले नाशे' इति विश्वः। 'खड्गे तु निस्त्रंशचन्द्रहासासिरिष्टयः। कौक्षेयको मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत्' इत्यमरः। 'धूमकेतुः स्मृतो वह्नावुत्पातग्रहभेदयोः' इति विश्वः। 'करालो भीषणेऽन्यवत्' इति च।।१०।।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारं
शृणु सुखदं शुभदं भवसारं
केशव! धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे।।११।।

धृतवानसीत्यादिभिर्वर्त्तमानप्रयोगैरवताराणां भगवतश्च लीलाया नित्यत्वं दर्शितम्। एवं तत्तदवतारगुणैः स्तुतिं कृत्वा सम्प्रत्यवतारिणं स्तुवन् प्रार्थयते–

करुणामय हैं। दूसरी ओर वे एक लम्बी परम्परा का विखण्डन करने वाले और तोड़नेवाले भी हैं।।९।।

अन्तिम अवतार, जो अभी होनेवाला है, को कल्कि कहा है, जो लम्पटों को मारने के लिए, उनकी सफाई के लिए तलवार रखते हैं। ऐसा लगता है कि कई धूमकेतु भयंकर रूप लेकर आये हैं।।१०।।

इस प्रकार उनके दस अवतार हैं, जिसका गायन श्री जयदेव ने किया है। सीखने को सीख देते हैं, शुभ है और इस जन्म-मृत्यु के संसार का सार है; क्योंकि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवेति। हे केशव! धृतानि दशविधानि रूपाणि येन तादृश त्वं जय। के अखण्डानन्दसुखे शेते इति केशवः, तादृशस्यापि दशविधमत्स्यादि-रूपाण्यङ्गीकृत्यापि तादृशैः कृत्यैरपि स्वभक्तकार्यसाधनेन तादृशमहिम्न उद्घोषेण तव भजने मम महती रुचिर्जाता, अतो भक्तसुखसम्पादनेन जय। मम चेदमिति– इदं जयदेवकवेः उदितं भाषितं शृणु। कीदृशम्? सुखदं श्रोत्रमनः सन्तोषप्रदम्, पुनः कीदृशम्? शुभदं मङ्गलप्रदम्। तत्र हेतुः–भवसारं जन्मरहस्यं वर्णनीयत्वेन यत्र तादृशम्, अथवा भवे सारं श्रेष्ठं परमपुरुषार्थसाधनत्वेन जन्मसाफल्यकरत्वात्। अत एव उदारं परमार्थप्रदम्; अथवा उदारं महत्, झटिति पदार्थार्पकमिति वा, कृष्णकीर्त्तनत्वात्तत् प्रियजन-कथान्वितत्वाच्च एतानि विशेषणानि। 'उक्तं भाषितम् उदितम्' इति, 'सारो बले मज्जनि च स्थिरांशे, न्याय्ये च नीरे च धने च सारम्। वेदेऽव्ययवत् सारमुदीरयन्ति' इति विश्वः।।११।।

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः।।५।।

अंशावतारान् स्तुत्वा वर्णनीयं पूर्वतममखिलनायकशिरोरत्नं श्रीकृष्णाख्यं प्रणमति–वेदानित्यादि।

'कृषिर्भूवाचकः शब्दो नश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते'।।

इति सर्वमयोखिलपरिपूर्णमहाशक्तिमाँश्च कृष्ण इति स्वानन्यमाधुर्येण प्रियजनाकर्षणाच्च कृष्ण इति तद्रूपाच्चेति कृष्णस्तस्मै निरवधिपरमानन्द-घनरूपाय स्वप्रियजनै रममाणाय श्यामसुन्दराय शृङ्गाररससर्वस्वमूर्त्तये तुभ्यं नमः। तथा च श्रुतिः (मुण्डक. २।१।२) 'अक्षरात् परतः परः' इति, (श्वेताश्व. १।६।८) 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' इति, (गीता–१५।१८) 'अक्षरादपि चोत्तमः' इति

इस संसार में उत्पन्न होकर ही यह लीला हुई है। यह लीला ही इस नश्वर होनेवाले संसार की सहभागी है।।११।।

इस अष्टपदी के अन्त में एक श्लोक दिया है, जिसमें सब का समाहार करते हुए कहा गया है कि ऐसे कृष्ण, जिन्होंने वेदों का उद्धार किया है, जगत् को अपनी पीठ पर ढोया है, जिन्होंने पृथ्वी को फूल-से निकालकर पुनः स्थापित किया, इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवद्गीतायाम्। 'नराकृति परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः' इति च (पाद्मोत्तरे बृहद्विष्णुसहस्रनाम्नि)।

'आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिर्य एष निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो गोविन्दमादिपुरुषं तममुं भजामि'।।

इति ब्रह्मसंहितायाम् (५।३१)। वक्ष्यति च (गो. १२) 'शृङ्गारः सखि! मूर्त्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति' इति। उक्तञ्च शुकेनापि (भाग. १०।३२।२) 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' इति। ननु मीनाद्यवतारवानीश्वरः केशवः, के जले शेते, 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टानि' (पा. ६।३।१०९) यथास्थितान्येव स्युरिति केशव आदिनारायणः। उक्तञ्च (भा. १।३।६) 'एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्' इति, तस्य स्तुतिः कृतैवेदानीं गोपकिशोरं वनविहारिणं मां किमिति स्तौषीत्यत आह–दशाकृतिकृते तुभ्यमिति। मीनादिदशरूपधारिणे तुभ्यं नमः। अयमर्थः–तत्तद्दशावतार-वानीश्वरो नारायणस्तवैवांशः, तदुक्तं ब्रह्मणा (भा. १०।१४।१४) 'नारायणोऽङ्गम्' इति, श्रीभागवते (१०।४१।१) अक्रूराय वैकुण्ठदर्शने 'नटो नाट्यमिव' इति शुकोक्तिश्च। 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' इति प्रथमस्कन्धे (भा. १।३।२८) अवतारनिर्णये। ब्रह्मसंहितायाञ्च (५।४८) 'विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषः' इति। अतः परमेश्वरत्वात्त्वामेव स्तौमीति। इत्थं निश्चित्य उक्तावतारकर्मभिः संक्षेपेण पुनराह–किंलक्षणाय? मीनस्वरूपेण वेदोद्धारं कुर्वते। पुनः कीदृशाय? जगन्ति भुवनानि कच्छपरूपेण वहते धारयते। भूगोलं पृथ्वीमण्डलं वाराहरूपेण उद्बिभ्रते ऊर्द्ध्वं प्रापयते। दैत्यं हिरण्यकशिपुं दारयते नृसिंहरूपेण विदारयते। बलिं दैत्यं वामनरूपेण छलयते वञ्चयते। क्षत्रक्षयं दुष्टानां क्षत्रियाणां नाशं परशुरामरूपेण कुर्वते। पौलस्त्यं रावणं श्रीरामरूपेण जयते। हलं दुष्टनिग्रहाय आयुधत्वेन कलयते बलभद्ररूपेण धारयते। कारुण्यं कृपामातन्वते बुद्धरूपेण विस्तारयते। म्लेच्छान् कल्किरूपेण मूर्च्छयते नाशयत इत्यर्थः। एवं तत्तदवतारकर्मकर्तृत्वेन भगवतः पूर्णत्वमखिलशक्तिमत्त्वञ्च प्रतिपादितम्। 'आकृतिः कथिता रूपसामान्यवपुषोरपि' इति विश्वः।।५।।

कृष्ण ने अनेक दैत्यों का दमन किया, बलि को छला, क्षात्रमद को चूर-चूर किया, बलिष्ठ, बलशाली रावण के ऊपर विजय पायी, हल चलाकर एक नयी संस्कृति का बीज बोया, बुद्ध होकर करुणा का प्रसार किया, करुणा का सन्देश दिया और अन्त में जो म्लेच्छों के विनाश का कारण बननेवाले हैं, ऐसे दस प्रकार के रूप धारण करनेवाले श्रीकृष्ण को हमारा नमस्कार।।५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतम्- २

[गुर्जरीरागेण मण्ठतालेन गीयते]

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल हे।
कलितललितवनमाल जय जय देव हरे।।१।।

एवं तावत्तत्तदवतारचरितैस्तान् तान् नायकगुणाननुवर्ण्य इदानीं समस्तनायकचूडामणेः पुरुषोत्तमस्य प्रथमपद्ये 'रहःकेलय' इत्यनेन संक्षेपतः क्रीडां सूचयित्वा सम्प्रति सख्युक्त्या स्वाधीनभर्त्तृकावर्णनेन भगवतस्तस्य लोकोत्तरधीरललितशृङ्गारित्वादिगुणान् वर्णयन्नेव मङ्गलान्तरमप्याचरति– श्रितेत्यादिना। **किञ्च सर्वपूर्णशक्तिमत्त्वेऽप्यत्रानन्दविलासरसमय्याः शक्तेरेवोद्रिक्तत्वमन्यत्र त्वन्यासाम्, क्वचिदत्रापि तत्पोषणाय तासामप्यूह्यम्। तत्रैवं क्रमः–धीरोद्धता वामनपरशुरामादयः, तल्लक्षणम्–**

'मात्सर्यदर्पभूयिष्ठः छद्म्यहङ्कारवान् बली।
चण्डो विकत्थमानश्च धीरोद्धत उदाहृतः'।।

तद्गुणाश्च–यशस्विता दक्षता धार्मिकत्वञ्चेति। धीरोदात्तः, तल्लक्षणम्–

'क्रियावानतिगम्भीरो विनीतश्च विकत्थनः।
धीरोदात्तः स विज्ञेयो रामो दाशरथिर्यथा'।। इति।

शान्तो विनीतो धीरश्चेति धीरशान्तो मीनबुद्धादिः।

'विदग्धो नवतारुण्यः परिहासविशारदः।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात् प्रायो प्रेयसीवशः।।

इस अष्टपदी का आशय वह है जो पहले लिखा जा चुका है। जिसमें ऐसे भिन्न-भिन्न रूपों को धारण करने की क्षमता है, उसे अपनी लीला में ले जाना और उसे विवश करना कितना कठिन होगा और वही कठिन काम श्रीराधा के प्यार से सम्भव होता है। श्रीकृष्ण श्रीराधा के अनुवर्ती होते हैं। दूसरी अष्टपदी में विष्णु का स्मरण करते हुए श्रीराम का विशेष स्मरण किया गया है। यह पूर्व अष्टपदी का पूरक है। विष्णु के रूप में स्मरण इस टेक के रूप में है कि वे लक्ष्मी के स्तनों पर अपने को टिकाये हुए हैं, कानों में कुण्डल बाँधे हुए हैं और गले में सुन्दर वनमाला धारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रृङ्गारी नायकस्त्वन्यः पञ्चमः कथ्यते यथा।
विलासवान् वामशीलः सुभगः स्थिरवाक् युवा।।
पतिः सधैर्या दृष्टिश्च सविलाससस्मितं वचः'।।

इति सङ्गीतराजे (?)। इत्यादिवर्णनीयगुणवान्नायकः श्रीराधाप्रियः। तद्गीतेन वर्णयति—श्रितकमलेति। **गीतस्यास्य गुर्जरीरागः, मण्ठश्च तालः। तयोर्लक्षणम्**—

'श्यामा सुकेशी मलयद्रुमाणां मृदूल्लसत्पल्लवतल्पमध्ये।
श्रुतिस्वराणां दधती विभागं तन्त्रीमुखा दक्षिणगुर्जरीयम्'।। इति।
'गुरुर्लघुद्वयं यत्र भृङ्गतालः स कथ्यते।
मङ्गलो मण्ठके ज्ञेयो रसे चाद्भुतसंज्ञके'।। इति।

अद्भुतकेलिप्रकटनादद्भुतत्वम्; गीतार्थस्तु–हे देव दीव्यतीति देवः तत्सम्बोधनम्, श्रीराधया सह विलासासक्तेति वा। हरे स्वसौन्दर्यादिनाखिल-भुवनयुवतीचित्तचोर जय जय, आदरे द्विरुक्तिः। इदञ्च ध्रुवपदम्। अथ पदानि–श्रितमाश्रितं कमलायाः कामयत इति कमु कान्तौ पचादित्वादच्, तं लाति गृहणाति स्वगुणैर्वशीकरोतीति सा कमला, 'ला आदाने' इति। यद्वा–कमला श्रीराधैव तस्याः कुचमण्डलं स्तनरूपमेव दुर्गं कामभयादिव येन तादृश; अनेन सकलनायिकामुकुटमणेर्गुणाधिक्यं कथितम्। तथा चानेन केलिकौशलेन रतिकौशलरूपो नायिकागुणश्चोक्तः। स्वाधीनभर्तृका नायिका चेयम्, तल्लक्षणं वक्ष्यतेऽग्रे (गो. ७९)। धृतकुण्डल धृते मकराकृतिकुण्डले कर्णाभरणे येन तादृश। अथवा तदाज्ञया धृते तस्या एव श्रुत्योः कर्णाभरणे येन, अथवा पुष्पादिना तत्कर्णभूषणार्थं निर्माय उपहारीकृते कुण्डले येन तादृश। पुनः कीदृश? कलितललितवनमाल–कलिता धृता ललिता मनोहरा वनमाला चरणपर्यन्तावलम्बिनी माला येन तादृश। एतद्विशेषणद्वयेन भव्यत्वमुक्तम्। 'वनमम्भसि कानने' इत्यभिधानात् पद्ममाला वा। 'आपाद-प्रमितां मालां वनमालेति तां विदुः' इति शाश्वतः। अथवा–कलिता धृता

किये हुए हैं। अगर हम यहाँ लक्ष्मी से पृथ्वी का, लक्ष्मी से भूदेवी का तात्पर्य लें और कल्पना करें कि पर्वत-रूप में स्तनों पर जो विष्णुरूप सूर्य की सीधी किरणें पड़ती हैं, तो ऐसा लगता है कि सूर्य का प्रकाश-बिम्ब पर्वतों की चोटियों पर ही टिका हुआ है, आराम से पड़ा हुआ है और उनके कानों के दोनों कुण्डल हिमालय के बायें और दायें बाजू से सुनहरी चोटियों का आकार ले रहे हैं, तो इसका अर्थ विशेष रूप से मनोरम और व्यापक हो जाता है। एक दूसरा अर्थ यह भी है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललिता मनोहरा वनमाला पुष्पमाला पद्ममाला वा प्रेयायाः कण्ठे येन तादृश। अथवा कलिताऽवगाहिता प्रियामण्डनार्थं वनमाला चम्पकादि-वनश्रेणी येन तादृश। अथवा—कलिता धृता ललिता मनोहरा प्रियाया मण्डनस्पर्शोत्था सात्त्विकविकारेण वनमाला स्वेदजलबिन्दुसन्ततिर्येन तादृश। अथवा धृता सम्भोगश्रमजलश्रेणी येन तादृश। व्यभिचारीभावोऽयम्। प्रियामण्डनार्थं कलिता बहुविधनिर्मिता वनमाला येनेति वा। एभिर्व्याख्यानैः कुशलः कलाविद्विलासीत्यादिगुणाश्च कथिताः। 'स्यान्मण्डलं द्वादशराजके च, देशे च बिम्बे च कदम्बकेऽपि। कुष्ठप्रभेदेऽप्युपसूर्यके च, भुजङ्गभेदे शुनि मण्डलः स्यात्'।। इति विश्वः।।१।।

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन हे।
मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे।।२।।

दिनमणीत्यादि। दिनमणिः सूर्यस्तस्य मण्डलमिव ततोऽपि श्रेष्ठः कौस्तुभाख्यो मण्डनमलङ्कारो यस्य तादृश। दिनमणिमण्डलवत् मण्डनं यस्येति वा। अनेन धनाढ्य इति नायकगुणः कथितः। भवखण्डनेति-व्रजराजकुले स्वजन्मना देवादीनां भवो जन्म तं खण्डयसि तिरस्करोषीति तथाभूत। देवा अपि गोपीकुले जन्म वाञ्छन्तीति भावः। भवो रुद्रस्तं गान्धर्वविद्यया खण्डयसि पराजयं प्रापयसीति तादृश। उक्तञ्च (भा० १०।३५।१४-१५)–

'विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरणयत् स्वरजातीः।।
सर्वनरास्तदुपधार्य सुरेशाः शत्रुशर्व-परमेष्ठि-पुरोगाः।
कवय आनत-कन्धर-चित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः'।। इति।

लक्ष्मी स्वयं अपनी देह का भार उनके ऊपर डालकर लेटी हुई हैं। भगवान् के वक्षःस्थल पर लक्ष्मी ही तो रहती हैं। तीसरा अर्थ यह भी लिख सकते हैं कि विश्व की शोभा, विश्व की सुन्दरता का जो घनीभूत तत्त्व है, उसी पर भगवान् आश्रित हैं। उसके समस्त कार्यकलापों में निस्संग सुन्दरता है।।१।।

सूर्य के व्यापक रूप में जो विष्णु की आराधना होती है, अर्थात् जो रूप प्रातः से सन्ध्या तक छानेवाला है, व्याप्त करने वाला है, वह प्रकाश और ताप के द्वारा सृष्टि को आगे बढ़ानेवाला है, पौधों को, प्राणियों को ऊपर की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करनेवाला है। वह रूप श्रीकृष्ण ही है। इसमें सूर्यमण्डल शृंगार बन जाता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रियजनानां विरहदुःखादीनामुद्धवविदारणेति वा। एतेन कुलीनः कलाविच्चोक्तः। मुनिजनेति। मुनिवृत्तिर्मौनं तद्युक्तो जनः गोपीलक्षणस्तस्य मानसं चित्तं तदेव मानसं सरोवरविशेषस्तत्र हंसो मरालः। सौभाग्यमदलीलया मानादिना वा मौनयुक्तायाः श्रीराधायाश्चित्ताभिप्रायावगाहेऽत्यासक्तानन्यगत्या तत्रैव कृतस्थितिमरालेत्यर्थः। अथवा हे मुनिजनेति पृथक्पदम्, मननशीलो मुनिः स चासौ जनश्च, तस्याः प्रियायाः सौन्दर्यादिगुणगणनस्वभावेत्यर्थः। हे मानसहंस त्यक्तान्यसमस्ततद्धदि कृतनिवास। मुनीत्यारभ्यैकपदं वा- मुनिश्चासौ जनश्च स चासौ मानसहंसश्चेति; इदञ्च परम्परितरूपक-मलङ्कारः। तदाहुः (काव्यप्रकाशे-१०।९)-

'नियतारोपणोपायः स्यादारोपः परस्य यः।
तत्परम्परितं श्लिष्टे वाचके भेदभाजि वा'।। इति।

'मानसं सरसि स्वान्ते' इति विश्वः। 'हंसो विहङ्गमेऽपि स्यात् परमात्मनि योगिनि' इति च।।२।।

कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन हे।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे।।३।।

कालियेति। कालियनाम्नो विषधरस्य गञ्जन तिरस्कारक। अनेन चतुःषष्टिकलाकुशलत्वं दर्शितम्। जनान् मधुरवचनादिना रञ्जयसीति जनरञ्जनेति। अनेन शुभवचनत्वं कथितम्। अथवा सखीजनान् श्रीराधानुकूल्येनानुरक्तं करोषीति। तामेव रागादिना मण्डयसीति वा। यदुकुलेति। यदुकुलमेव नलिनं पद्मं तस्य दिनेश सूर्य, तत्प्रकाशकत्वात्। 'यादवानां हितार्थाय धृतो गोवर्धनो मया' इति वचनाद् यदुकुलमिति

और इसमें मुनियों के मन के मानसरोवर में तैरनेवाले हंस बन जाते हैं। सूर्य भी हंस ही है और वह भी प्रकाश के आराधकों का आराध्य है। इसी सूर्य-स्वभाववाले श्रीकृष्ण का कार्य है- कमलों को खिलाना, अन्धकार के बीज को दूर करना, आसुरी वातावरण को स्वच्छ करना और इनके द्वारा लोगों को प्रसन्न करना। इसी रूप में वे यमुना में घुसे हुए हैं।।२।।

कालिय को यमुना से निकालने के लिए उसके सिर पर पैर रखकर नाचते हैं और उसके सौ-सौ फन चोट खाते-खाते झुक जाते हैं। वह दीन-हीन होकर प्रार्थना करता है कि मैं स्वयं यहाँ से चला जाऊँगा। उसके जाने से यमुना का जल पुनः स्वच्छ और पेय हो जाता है। खेल-खेल में भगवान् ऐसा बड़ा काम करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपकुलमेव। 'आशीविषो विषधरश्चक्री व्यालः सरीसृपः' इत्यमरः। 'वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम्' इति च। 'रञ्जनो रागजनने रञ्जनं रक्तचन्दने' चेति विश्वः।।३।।

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन हे।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे।।४।।

मधुमुरेत्यादि। मधु-मुर-नरकादीनां विनाशकारिन्! गरुडासन गरुडः पक्षिराजः स एवासनमुपवेशनं यस्य तादृश। अथवा मधुः मधुराख्यरसस्तं मुरयति वेष्टयति स्वजनार्थमावृत्य रक्षतीति मधुमुरः, 'मुर वेष्टने' इगुपधेति कप्रत्ययः। तेन च नरकं नराणामितरसुखं विनाशयतीति तत्तुच्छीकरोतीत्यर्थः; उक्तञ्च (भा० १०।३१।१४) 'इतररागविस्मारणं नृणाम्' इति। गरुडवद्बन्धविशेष आसनं यस्येति च; अनेन रतिकौशलं कथितम्। सुरकुलेति। सुरकुलकेलीनामादिकारण। 'देवा हि क्रीडाचतुराः' इति प्रसिद्धिः, तैरपि तत्त्व एव शिक्षिता इति भावः। अनेन विलासित्वं सामर्थ्यञ्चोपपादितम्। 'सजातीयगणे गोत्रे देहेऽपि कथितं कुलम्' इति।।४।।

अमलकमलदललोचन भवमोचन हे।
त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे।।५।।

अमलेति। अमलं निर्मलं यत् कमलं तस्य यद्दलं पत्रं तत्सदृशे लोचने यस्य तादृश। अनेनापि भव्यत्वमेवोक्तम्। हे भवमोचन भवं जन्म तस्मात् प्रपन्नान् मोचयतीति तादृश। भक्तानां नित्यविग्रहप्रदानेन तस्य नित्यपरमानन्दरूपत्वाद् भजनत्वमुक्तम्। अथवा भवो रुद्रस्तं महाविपद्रूपाद् वृकासुरान्मोचयतीति तत्तथा। अथवा कमलदललोचनादिसौन्दर्येणाकृष्य रुद्रं

हैं कि इससे बड़ा कौतुक होता है और पूरे यदुकुल में हार्दिक प्रसन्नता उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार सूर्य के उदित होने पर कमल को होती है।।३।।

श्रीकृष्ण-रूप में भी जब कभी उन्हें आवश्यकता होती है; वे गरुड़ को सवारी के लिए बुलाते हैं और इसी सवारी पर चढ़कर वे मधु, मुर और नरक जैसे तीन बड़े राक्षसों का विनाश करते हैं।

एक मधु, जो मधु और कैटभ की जोड़ी में एक है, दूसरा मुर नाम का असुर भी ऐसे विश्व को व्याकुल करने वाला है और नरक तो प्रसिद्ध ही है। उसने सोलह हजार राजाओं को बन्दी किया था, उनकी पत्नियों का अपहरण किया था, उनसे बलात् विवाह किया था। भगवान् ने उसे भूमि के गर्भ से पैदा किया था और वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाध्यादियोगव्रतान्मोचयतीति स्वप्रवणं करोतीत्यर्थः। त्रिभुवनभवननिधान त्रिभुवने भवनं गृहं श्रीवृन्दावनाख्यं तदेव निधानं वासस्थानं महानिधिरिति वा यस्य तादृश। 'निधानं त्वालये निधौ' इति विश्वः। 'भवनं भाववेश्मनोः' इति च। 'पत्रं पलाशं छदनं दलं छदः पुमान्' इत्यमरः।।५।।

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण हे।
समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे।।६।।

जनकेति। हे जनकसुताकृतभूषण व्रजजनानां कं सुखं यस्मात् स जनको व्रजजनेषु प्रधानो वा श्रीवृषभानुः, तस्य सुता श्रीराधा तस्याः कृतानि भूषणान्यलङ्करणानि मकरिकापत्रादीनि येन तादृश। जितदूषण जितानि निजगुणैः स्वस्मिन् तिरस्कृतानि दूषणानि दोषा येन तादृश। अनेन सकल-कलाकौशलरूपस्तारुण्यरूपश्च नायकगुण उक्तः। समरेति। समरे रतिरणे शं कूजिताख्यं सुखमितं प्रापितं दशसंख्यातानां नायिकानां कण्ठे येन तादृश। अनेन रतौ सामर्थ्यं कथितम्। अथवा समरे सुरतसंग्रामे यत् शं तेन इता प्रापिता कूजिताख्या दशाऽवस्था नायिकायाः कण्ठे येन।।६।।

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर हे।
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे।।७।।

भूमि का ही शत्रु हो गया था। उस नरक का विनाश करके उन्होंने राजाओं को मुक्ति दी और राजकन्याओं को भी, जिन्हें बन्दी बना लिया था। श्रीकृष्ण ने उस राक्षस को मार कर सोलह हजार राजाओं को मुक्ति दिलायी और सोलह हजार राजकन्याओं को अपनी पत्नियों के रूप में स्वीकार किया।।४-५।।

यही श्रीकृष्ण श्रीराम के रूप में जानकी जी के आभूषण या यूँ कहें कि खरदूषण-दो भाइयों को मारनेवाले और यही दूषण हरनेवाले हैं। यही दस शीशवाले रावण को युद्ध में मारकर विजयी हुए। ऐसे श्रीकृष्ण का सौन्दर्य पावस के बादल की तरह हमेशा नया रहता है और यही श्रीकृष्ण कभी मन्दराचल को मथानी बनाने के लिए, कभी समुद्र-मन्थन में मथानी के रूप में अपने ऊपर धारण करते हैं, टिकाते हैं कि मथानी खिसकती नहीं और असंख्य-असंख्य साँपों को रस्सी बनाकर देवता और असुर उस समुद्र का मन्थन करते हैं। यही पुनः श्रीकृष्ण बन करके एक दूसरे पर्वत गोवर्धन को और हल्के तरीके से अपनी उँगलियों के ऊपर उठा लेते हैं। हमारी आँखें सीधे मुखचन्द्र पर पड़ती हैं।।६।।

समुद्र-मन्थन के बाद यही श्रीकृष्ण वामनावतार के विराट् रूप को धारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिनवेति। अभिनवो नूतनो यो जलधरः सजलो मेघस्तद्वत् सुन्दर महारसवर्षिन्, अनेनास्य महासौन्दर्यमेवोक्तम्। अत्र मन्दरपदेन गोवर्द्धन एव, यथा गोपालस्तवे शङ्कराचार्येणोक्तं 'धृतैकहस्तमन्दर' इति। श्रीमुखचन्द्र-चकोर श्रीयुक्तः शोभावान् श्रीराधाया मुखमेव चन्द्रः आह्लादकरत्वात् तस्य चकोर तदास्वादसर्वस्व! अत्र तस्या आननचन्द्राधरसुधापानसोत्कण्ठत्वेन भगवतश्चकोरत्वेन निरूपणम्। अनेनापि रतिकौशलमेव उक्तम्। 'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः' इत्यमरः।।७।।

एवं सप्तभिः पदैर्नायकगुणाः कथिताः, तदुक्तम्–

'त्यागी कुलीनः कुशलो रतेषु
कल्पः कलावित् तरणो धनाढ्यः।
भव्यः क्षमी स्थिररुचिः सुभगोऽभिमानी
स्त्रीणां मतः शुभवचा इह नायकः स्यात्'।।

इति शृङ्गारतिलके (१।२३)। इदानीं कविः सर्वनायकोत्कृष्टत्वेन श्रीकृष्णं स्तुत्वा प्रार्थयते–

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय हे।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे।।८।।

तव चरणे वयं प्रणताः, हे कृष्ण इति भावय चिन्तय जानीहीति। प्रणतेषु अस्मासु कुशलं कुरु विघ्नराहित्यं कुर्वित्यर्थः।।८।।

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम्।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे।।९।।

श्रीजयदेवेति। इदं जयदेवकवेः सङ्गीतविशेषं मुदं कुरुते, कीदृशम्? मङ्गलमुज्ज्वलं दोषरहितं गानं यस्य तादृशम्। गीतदोषास्तु भरते–

करके तीनों लोकों को तीन पग में नाप लेते हैं। जिनकी आँखें ताजा खिले हुए कमल के दल की तरह हैं, चमकती हुई आँखोंवाले वे स्वयं इतने रूप बदलते हैं कि उनका स्मरण करते ही अनेक जन्मों में आने-जाने का व्यापार समाप्त हो जाता है। उन्हीं में ध्यान लगता है, तो यह विवशता नहीं रहती कि हम कभी यह सोचकर नाचें, कभी वह सोचकर नाचें। हमें मुक्ति मिल जाती है।।७-८।।

श्री जयदेव ने श्रीकृष्ण को इस रूप में स्मरण करते हुए कहा कि वे ऐसे प्रभुत्वशाली होते हुए भी श्रीलक्ष्मी के मुखचन्द्र के लिए चकोर ही बने रहते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'शङ्कितं भीतमुद्‌घृष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं शिरःकम्पं तथा स्थानविवर्जितम्।।
विस्वरं विरसञ्चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्।
व्याकुलं तालहीनञ्च गीतदोषान् विदुर्बुधाः।।'

अथवा मङ्गलमिष्टप्रणतिरूपं मङ्गलाख्यतालो वेति–मङ्गलमिति।।९।।

पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्न-
काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य।
व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेद-
स्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः।।६।।

पुनर्नायिकायाः सौभाग्योद्रेकं निरूपयन्नाशीरूपं मङ्गलमाचरति–पद्मेति। मधुसूदनस्य उरुः हृदयं वो युष्माकं प्रियं वाञ्छितमनुपूरयतु सम्पूर्णं करोतु प्रतिक्षणं ददात्वित्यर्थः। नित्यविलासासक्तत्वात् तद्विशेषणविशिष्टस्य तस्य दातृत्वसामर्थ्यम्। वाञ्छितमपि तत्प्रियाणां तदेव रसानुभवमिति ध्वनितम्। मधुररसास्वादनलाभाय पद्येन मधुसूदनपदोपादानम्। कीदृशमुरः? पद्मानि विद्यन्ते यस्यात् सा पद्मा 'अर्श आदिभ्योऽच्' (पा. ५।२।१२७) इत्यच्, पद्मगुणयोगाच्च पद्मेति पद्मकोटिसौगन्ध्यवती पद्मा सौभाग्यपरिमलख्यापनात् सौकुमार्यसौन्दर्यादिगुणैरपीति तस्याः पद्मायाः पद्मिन्याः श्रीराधायाः पयोधरतटी स्तनप्रान्तदेशस्तस्याः परिरम्भेणालिङ्गनेन लग्नं यत् काश्मीरं कुङ्कुमं तेन मुद्रितं मुद्रा चिह्नविशेषः (तं प्रापितमित्यर्थः), इदं मधुसूदनस्य हृदयं ममैव, न त्वन्यस्येति ख्यापनाय निजस्तनतटीलिप्तकाश्मीरेण मुद्रेव

निरन्तर लक्ष्मी का मुख जोहा करते हैं। कभी उनके सौन्दर्य से उनकी आँखें तृप्त नहीं होतीं। इस प्रकार दूसरों को छकानेवाले कैसे एक छोटे से सुन्दर मुखड़े के प्रवाह में आ जाते हैं। यही गीत जयदेव गाकर अपने प्रबन्ध का मंगल स्थापित कर रहे हैं।।९।।

इस अष्टपदी के अन्तिम दो श्लोकों में से पहले में तो उनका मधुर रूप इस रूप में व्यंजित है कि श्रीकृष्ण का वह वक्षःस्थल जो लक्ष्मी के स्तनों के चन्दनचर्चित तटों के आलिंगन से केसर के रंग में रँग गया है और उस वक्षःस्थल पर खिलते हुए जो कामदेवता पसीना-पसीना हो गया हो, उस पसीने के झिलमिलाते कणों से ही उनका अनुरागी रूप व्यक्त हो रहा है। ऐसा वक्षःस्थल हमारे प्रिय की पूर्ति करे। इस श्लोक का तात्पर्य यह जान पड़ता है कि श्रीकृष्ण स्वभाव से ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दत्तेति भावः। तथा च पयोधरयोस्तटीपरिरम्भेण नायिकाया वामताख्यापनेन तस्या वैदग्धी प्रतिपाद्यते। पुनः कीदृशम्? खेलन् क्रीडां कुर्वन् अनङ्गः कन्दर्पस्तस्मात् खेद आयासः सुरतश्रमस्तेन यत् स्वेदाम्बु प्रस्वेदजलं तस्य पुरः प्रवाहो यत्र तादृशम्। एतेन काश्मीरस्य स्वेदसम्बन्धेन मुद्रायोग्यत्वं सम्भोगातिशयत्वञ्च ध्वनितम्। कीदृशमिव–व्यक्तानुरागमिव, व्यक्तः प्रकटीभूतोऽनुरागः स्नेहो यत्र तादृशमिव। तद्विषयकानुरागाधिक्यादभ्यन्तरे समावेशाभावात् कुङ्कुमरागव्याजेन बहिर्निःसृत इवेति भावः। मुद्रा सञ्जाताऽस्येति मुद्रितमिति तारकादित्वादितच्। 'पुरो जलप्रवाहे स्याद्व्रणसंशुद्धिखाद्ययोः' इति विश्वः। 'स्त्रीस्तनाब्धौ पयोधरौ' इति। 'कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः' इत्यमरः। पद्मिनीलक्षणम् (रतिरहस्ये)–

'कमलमुकुलमृद्वी फुल्लराजीवगन्धिः,
सुरतपयसि यस्याः सौरभं दिव्यमङ्गे।
चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे,
कुचयुगलमनर्घ्यं श्रीफलश्रीविडम्बि।।

तिलकुसुमसमानां बिभ्रती नासिकाञ्च,
द्विजगुरुसुरपूजां श्रद्दधाना सदैव।
कुवलयदलकान्तिः कापि चाम्पेयगौरी,
विकचकमलकोशाकारकामातपत्रा।।

व्रजति मृदु सलीलं राजहंसीव तन्वी,
त्रिवलिकलितमध्या हंसवाणी सुवेषा।
मृदु-शुचि-लघु भुङ्क्ते मानिनी गाढलज्जा,
धवलकुसुमवासा वल्लभा पद्मिनी स्यात्'[1]।। इति।

मधुर हैं। उनकी लीला में जो कुछ पौरुष व्यापार आये हैं, इस माधुर्य के ही कारण हैं। ऐसे वज्र की तरह कठोर छाती के भीतर ही मधुर हृदय रहता है। ऐसे हृदयवाला व्यक्ति जितना तपता है, जितना प्रकाशित होता है, उतना ही द्रवित होता है, उतना ही कहीं भीतर प्रवेश करके बस जाता है। जितना ही वह सूर्य है, उतना ही वह चन्द्र है। बल्कि यूँ कहें कि सूर्य-चन्द्र दोनों है और दोनों से कुछ अधिक है। वह एक ऐसी अवस्था है, जिसमें इन दोनों में विरोध नहीं रहता। इसमें सूर्य या ताप

---

१. द्वात्रिंशत्पुत्तलिकायां किञ्चिद् विलक्षणं वर्त्तते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्या अलौकिकगुणानां वर्णनाशक्याद् एते लोकग्राह्यत्वेनैव कथ्यन्त इति सिद्धान्तः।।६।।

एतावता ग्रन्थेनाभिधेयप्रयोजनकेलिवर्णनोपयुक्तनायकगुणप्रतिपादन-पुरःसराणि मङ्गलानि विधाय कविः शृङ्गाररसप्रधानभगवत्केलिवर्णनं चिकीर्षुस्तत्र प्रथमावसरसंक्षिप्तकेलिं निवाह्य विशेषक्रीडामारब्धुमिच्छतोः परमप्रियतमयोः कदापि निमेषमात्रमपि विप्रलम्भमनिच्छतोः श्रीराधामोहनयोः सम्भोगरसपोषणाय रसयोगादेव विप्रलम्भाख्यशृङ्गाररसाविर्भावे जाते प्रथमं तावच्छृङ्गाररससर्वस्वभूताया नायिकायाश्चरितानि वर्णयितुं प्रस्तारयति–

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै-
र्भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम्।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया
बलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी ।।७।।

वसन्त इत्यादि। तत्र सम्भोगोत्कर्षं प्रति विप्रलम्भस्योपादाने आलङ्कारिकाः (उज्ज्वले-१५।३ धृतः)–

'सम्भोगो विप्रलम्भेण न विना पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागोऽभिजायते।।' इति।

का प्रकाश ही चाँदनी का रस-प्रवाह बन जाता है। ऐसे रस-प्रवाह की पहली अभिव्यक्ति श्रीराधा के रूप में है, जिसमें विश्व की समष्टि-शोभा का अवतरण हुआ है। उसके प्यार में स्वेद के द्रवों के रूप में ऐसे प्रभावशाली व्यक्तित्व का अनुराग प्रवाह बन करके निकल पड़ता है। उस प्रवाह के ही द्वारा प्रिय का साधन होगा, इस आशा से जयदेव अपने काव्य का प्रारम्भ करते हैं और कथायोजक के रूप में वसन्तरास के सन्दर्भ की अवतारणा करते हैं। इस अष्टपदी के अन्तिम श्लोक में वही अवतारणा है।।६।।

वसन्त के फूलों की तरह कोमल अवयवोंवाली श्रीराधा श्रीकृष्ण की खोज में वन-वन घूमती हैं, कभी यहाँ कभी वहाँ झाँकती हैं, कभी दूर किसी स्वर पर चौंक कर दौड़ती हैं। उनके अंग-अंग इस दौड़-धूप में शिथिल हो जाते हैं–जैसे दौड़-धूप में काम और तीव्र हो उठता है, इच्छा और बलवती होतीं है, उत्कण्ठा और उत्तप्त होती है और अंग-अंग में व्यथा अँगड़ाई लेने लगती है। ऐसी राधा को उनकी सखी, उनके साथ-साथ चलनेवाली सखी बड़े रस के साथ यह सूचना देती है, बड़े रस के साथ उन्हें रास का दर्शन कराती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किञ्च रसयोगादिभिर्यदुक्तं तत् शृङ्गाररसानुभवमिच्छामीति, नित्येच्छा-ज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वमिति तस्य भगवतो नित्येच्छयैव रसनियामकत्वेनापि नित्यानन्तशक्तिमत्तस्तस्य न स्वातन्त्र्यभङ्ग इति सिद्धान्तः। उक्तञ्च (भा. १०।३३।२५) 'स सत्यकामः' इति। एवं नित्येच्छया कालविधानोऽपि निरस्तः।

श्लोकार्थस्तु–काचित् सहचरी तुल्यव्यसना सखी वसन्ते सरसं रसोद्बोधसहितं यथा स्यादेवं राधामिदं वक्ष्यमाणमूचे उवाच। कीदृशीम्? अवयवैरङ्गैरुपलक्षिताम्। कीदृशैरवयवैः? वासन्तीकुसुमसुकुमारैः, माधवी-लतापुष्पवत् कोमलैः, ततोऽपि मृदुलैरित्यर्थः। (३।१०।३८-३९) 'मार्दवं कोमलस्यापि संस्पर्शासहतोच्यते'। तद्यथा–अभिनवघनमालिकामयं सा शयनवरं राधिकाऽधिशिश्ये। न कुसुमपटलं दरापि जग्लौ, तदनुभवात्तनुरेव सव्रणासीदिति। न जग्लौ ग्लानिं न प्रापेत्यर्थः। पुनः कीदृशीम्? कान्तारे महारण्ये भ्रमन्तीम्, तत्र हेतुगर्भितं विशेषणमाह–बहुविहितेति। बहुवारं विहितं कृतं कृष्णस्यानुसरणमन्वेषणं यया तादृशीम्, तत्रापि हेतुगर्भं विशेषणमाह–कन्दर्पज्वरेण जनिता या चिन्ता तत्कृता या आकलता तया अमन्दमधिकं यथा स्यादेवं बलद्बाधां वर्द्धमानपीडाम्। अवयवैरित्यत्र जटाभिस्तापस इतिवद्विशेषणे तृतीया। 'महारण्ये दुर्गपथे कान्तारः पुंनपुंसकयोः', 'पीडा बाधा व्यथा दुःखम्' इत्यपि। तथा चानेनाभिलाषचिन्तारूपे दशे कथिते। तल्लक्षणम्–

यह 'रास' शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि पहले संकेत दिया जा चुका है, 'रास' शब्द रस का ही विस्तार है। यह 'रास' शब्द बड़ा अद्भुत है। पहले यह स्थापना की गयी थी कि जब चित्त हरिस्मरण में सरस हो, तभी व्यक्ति 'गीतगोविन्द' का आस्वादक हो सकता है, यह रस का चाव है। दूसरा अर्थ रस का है–चित्त की द्रुति। अगर चित्त श्रीकृष्ण-लीला में आस्वादित नहीं होता तो वह इस लीला का आस्वादक नहीं बन सकता। तीसरा अर्थ है–'चित्त का विस्तार'। यदि इस लीला को एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में आदमी नहीं देख सकता, इसे त्रिभुवनमोहन की लीला के रूप में नहीं देख सकता, तो न देखे तभी अच्छा है; क्योंकि उसका चित्त छोटे प्यार में और उसके साथ जुड़ी छोटी ईर्ष्या में, छोटे भय में और उसके कारण छोटे कलुष में ही निरन्तर घूमता रहेगा, वह बड़े प्यार की भूमिका समझ ही नहीं सकता। इस रस का एक चौथा अर्थ है–सार। सिर्फ भगवान् का स्मरण, सृष्टि के सार का स्मरण है, सृष्टि के रस-बीज का स्मरण है। रस, सृष्टि का बीज इस रूप में है कि परब्रह्म के रूप में परमतत्त्व अकेला नहीं रह सका, उसे इच्छा हुई कि दूसरा भी हो। दूसरे के द्वारा, दूसरे की पहचान के द्वारा अपने को पूरी तरह पहचानने, अपने को स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अभिलाषः स्पृहा तत्र काम्ये सर्वाङ्गसुन्दरे।
दृष्टे श्रुतेऽथ तत्रापि विस्मयानन्दसाध्वसाः'।।

इति दशरूपके (४।५३); यथा–

'कथं स वल्लभः प्राप्यः किं कुर्यां तस्य सिद्धये।
कथं भवेदसौ वश्य इति चिन्ता भवेद् यथा'।।

इति शृङ्गारतिलके (२।८)। सुकुमारावयवैः कान्तारे भ्रमन्तीमित्यनेनाभिसारेऽनुरागसौष्ठवं दर्शितम्। तद्यथा (पद्यावलौ– १९६)–

'चित्रोत्कीर्णादपि विषधराद् भीतिभाजो रजन्यां,
किं वा ब्रूमस्त्वदभिसरणे साहसं माधवास्याः।
ध्वान्ते यान्त्या यदतिनिभृतं राधयात्मप्रकाशं,
त्रासात् पाणिः पथि फणिफणारत्नरोधी व्यधायि।।'

यथा वा तत्रैव (२११)–

'द्वित्रैः केलिसरोरुहं त्रिचतुरैरन्यैर्धम्मिल्लस्रजं,
कण्ठान्मौक्तिकमालिकां तदनु च त्यक्त्वा पदैः पञ्चषैः।

देखने से बहुत कुछ दिखाई नहीं देता, अपनी आँखें ही नहीं दिखाई देतीं, एक प्रतिबिम्ब ही सही दिखाई देता है। जब कोई दर्पण सामने रखता है, तो उससे भी अधिक दिखाई देता है। जब कोई दूसरा व्यक्ति होता है और ऐसे परमतत्त्व को प्यार करता है, उस पर न्यौछावर होता है, उसके न्यौछावर होने से परमतत्त्व को अपनी पूरी पहचान मिलती है। इसी रस का प्रयोग रास में है, इसी रस का विस्तार रास में है। रास एक समूहनृत्य, एक समस्त चेतना का एक-दूसरे में मिलना-जुलना है। इस नृत्य में एक-एक के साथ श्रीकृष्ण अलग-अलग होकर नाचते हैं और बीच केन्द्र में सभी नाचनेवाले श्रीकृष्ण को राधा के साथ नाचते हुए देखते रहते हैं। श्रीराधा-कृष्ण का नृत्य इस समस्त नृत्य का केन्द्र है या उसका विस्तार है, जो चाहे कह लें, पर इस नृत्य में अकेलापन नहीं है, अकेले में वह ऐसा भाव नहीं है। सबको यही लगता है कि वे मेरे हैं और यह भी लगता है कि हम सबके हैं और उसका मूल कारण यह है कि वे श्रीराधा के हैं। दूसरी बार जब श्री जयदेव सरस शब्द का प्रयोग करते हैं, तो सन्दर्भ यही है कि सखी जो बात कहने जा रही है, उसमें रस ही रस है, रस की अभिव्यंजना, मन्मथतत्त्व से मन्थन में है। इसमें इन्द्रियाँ नहीं रह जातीं। वे इतनी मथी जाती हैं कि वे रस बन जाती हैं, वे रसिक नहीं रह जातीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णप्रेमविघूर्णितान्तरतया दूराभिसारातुरा,
तन्वङ्गी निरुपायमध्वनि परं श्रोणीभरं निन्दति'।। इति।

अथवा–अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया बहु विहितं कृष्णेनानुसरणं यस्यास्तादृशीम्। अतः कान्तारे भ्रमन्तीमित्यर्थः।।७।।

गीतम्- ३

[वसन्तराग-यतितालाभ्यां गीयते]

**ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे।।
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते।।१।।**

किमूचे? इत्यत आह—ललितेत्यादि। गीतस्यास्य वसन्तरागो यतितालः, तयोर्लक्षणम्–

'शिखण्डिबर्होच्चयबद्धचूडः पुष्णन् पिकं चूतलताङ्कुरेण।
भ्रमन् मुदा राममनङ्गमूर्त्तिर्मत्तो मतङ्गः स वसन्तरागः।।'

'लघु द्रुतौ तालश्चेति।' गीतार्थस्तु–सबाधां राधां महौषधं वचः सखी वक्ति–हे सखि राधे! इह अत्रैव श्रीमद्वृन्दावने सरसवसन्ते रसः शृङ्गारस्तेन सह वर्त्तत इति सरसः, शृङ्गारोद्बोधकत्वात्; सरसश्चासौ वसन्तश्च सरसवसन्तस्तस्मिन् तादृशे समये हरिः श्रीकृष्णो विहरति क्रीडति। क्व सति? समं सशोभं साकं वा युवतिजने नृत्यति सति; किम्भूते? मिलनार्थं हेतुगर्भं विशेषणं विरहिजनस्य दुरन्ते न इति न, अपि तु दुरन्त एवेति काक्वा दुरन्ते दारुणे दुःखेनान्तः समाप्तिर्यस्य तादृशे वा निरवधावित्यर्थः। अथवा–अनो जीवनं तेन समं दुरन्ते। अथवा हरिरिह सरसवसन्ते बहुप्रेम्णाऽभिसृते

श्रीकृष्ण के प्रति जब प्यार होता है, तो सारी मनोवृत्तियाँ श्रीकृष्ण का आकार ग्रहण कर लेती हैं। राग, द्वेष, मोह, मद, मान–ये सभी रस की केलि बन जाते हैं, जैसा कि ऊपर वाक्य में संकेत है कि कहाँ घूम रही हो। प्यारी सखी! प्रवेश करो, उस रंगभूमि में, जहाँ यह रास हो रहा है।।७।।

इस उद्घोषणा के साथ तीसरी अष्टपदी शुरू होती है और उसमें भी 'रस' शब्द आता है कि सरस वसन्त आ गया है, उत्कण्ठाओं को जन्म देनेवाला वसन्त आ गया है, कामनाओं को व्यग्र करनेवाला वसन्त आ गया है, प्रेम का तत्त्व पाने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्रूपाद्युन्मादिते युवतिजने गोपाङ्गनागणे नृत्यति सत्यपि त्वया सह नृत्यमिच्छुस्ताभिः समं न विहरति। केचित्तु हरिरिह सरसवसन्ते युवतिजनेन समं विहरति, नृत्यति चेति व्याकुर्वन्ति, तत्तु राधाभिसाराय सख्या असूया-हेतुकथनान्न सङ्गच्छते। ननु प्रथमानुरागः स्यात्, सोऽपि न घटते, पूर्वक्रीडावर्णनात्। वक्ष्यति च (गी. ५।१) 'रासे हरिमिह विहितविलासं, स्मरति मनो मम कृतपरिहासम्' इति; अतोऽत्र कृतं व्याख्यानमेव सिद्धम्। प्रकृतमनुसरामः–ताभिः समं न विहरतीत्यत्र हेतुः, विरहिजनस्य त्वद्विरहितस्य कृष्णलक्षणजनस्य दुरन्ते। ताश्च वसन्तश्च त्वां विना न तस्य विलासोत्साहप्रदा भवन्तीत्यर्थः। अत एव त्वामेव कामयतीति भावः। विहरतीत्यनेनापि श्रीराधान्वेषणरूपो विहार उच्यते। मिलनसङ्कोचपरिहाराय सामान्ययुवतीनां सङ्ग इत्यप्युक्तम्, तथा च यदि त्वं प्रियतमं नानुसरिष्यसि, तदाऽयं वसन्तस्तवापि दुरन्तो भविष्यतीति ध्वनितम्। 'समं सह' इत्यमरः, ध्रुवपदमिदम्; अत्र द्वादशलक्षणान्वितनिसृष्टार्था दूती सखी एव। तदुक्तम्–

'प्रवृत्तिकुशला दक्षा गूढमन्त्रा दृढप्रिया।
स्वतन्त्रा विधवा दासी धृष्टा प्रव्रजिता सखी।।
मालाकारादिनारी च कार्या दूतीष्टसिद्धये'।।

तस्या लक्षणानि यथा–

'कालोचितोद्यमाभिज्ञा सुवेषा दृढमित्रता।
धृष्टा इष्टा सुशीला च दक्षा चापल्यवर्जिता।।
अक्षुद्रा चाप्यनुद्विग्ना प्रशस्या द्वादशैव तु।।' इति।

किञ्च–

'विलासिनोश्च स्वान्तस्थमर्थं ज्ञात्वा यतेत या।
अनुरूपाविमौ चेति ह्याकलज्यानुकूलकृत्।।
निसृष्टार्थेति सा ज्ञेया कौतूहलसमन्विता।।' इति।

तथा च सप्तविंशतिर्दूतीकर्माणि यथा–(१) प्रोत्साहनम्, (२) अर्थदर्शनं, (३) गुणकथनं, (४) विस्रम्भणं, (५) तदनुरागख्यापनं, (६) कलानिवेदनं, (७) सौर्यप्रकटनं, (८) बहुमित्रता, (९) सुवेषता, (१०) दुःखसहिष्णुता,

---

प्रबल इच्छाओं का वसन्त आ गया है और स्वयं रस बन करके उमड़ आने का वसन्त आ गया है। ऐसा वसन्त आ गया है, जिसमें कोई अप्रिय नहीं रहता है, कोई अपने ठौर में नहीं रहता, सबका, प्रत्येक व्यक्ति का विस्थापन हो जाता है। ऐसे सरस वसन्त में हरि यहीं पर, स्वर्ग में नहीं, इसी भूतल पर विचरण कर रहे हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(११) मधुरवाग्वादिता, (१२) दृढमन्त्रिता, (१३) सौख्यवत्ता, (१४) स्वच्छन्दानुवर्त्तिता, (१५) उपायज्ञता, (१६) कालज्ञानवेदिता, (१७) देशविवेकिता, (१८) स्वभावज्ञता, (१९) सर्वकर्मकुशलता, (२०) दोषाच्छादनं, (२१) गुणनिरूपणं, (२२) सौन्दर्यशंसा, (२३) पिशुनवाक्यराहित्यं, (२४) मृदुभाषणम्, (२५) अर्थप्रदानकथनं, (२६) विचेष्टितशंसनं, (२७) परतत्त्वज्ञानञ्चेति। तत्र कालज्ञता-प्रोत्साहनार्थदर्शनादिगुणान् प्रदर्शयन्ती वसन्तस्य सरसतामाह–ललिता मनोहरा या लवङ्गलता तस्याः परिशीलनमालिङ्गनं तेन कोमलो मृदुलो मलयसमीरो मलयाचलसम्बन्धी वायुर्यत्र तादृशे। एतेन वायोस्त्रैविध्यमुक्तम्, लवङ्ग-लतानायिकायोगात् समीरस्योद्दीपनता कथिता। अन्याँश्चोद्दीपनविभावान् दर्शयति–पुनः कीदृशे वसन्ते? मधुकरनिकरेण भ्रमरसमूहेन करम्बिता मिश्रिता ये कोकिलास्तैः कूजितः मधुरशब्दयुक्तः कृतः कुञ्ज एव कुटीरोऽल्पा कुटी यत्र तादृशे। 'शीलनालिङ्गने समे' इति विश्वः। 'समीरमारुतमरुज्जगत्प्राणसमीरणाः' इत्यमरः। 'मधुव्रतो मधुकरो मधुलिन् मधुपालिनः' इति च। 'स्तोमौघनिकरव्रातवारसङ्घसञ्चयाः' इत्यपि। 'मिश्रिते करम्बितः' इति शाश्वतः। 'अल्पा कुटी कुटीरः स्यात्' इत्यपि।।१।।

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे।
अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे।।२।।

युवतियों के साथ नृत्य कर रहे हैं और जो उनके साथ नहीं हैं, उनके लिए यह वसन्त भारी पड़ रहा है। इस वसन्त का प्रवेश होता है, मलयसमीर के झोंकों से। इसका काम ही यही है कि सुन्दर लवंग की लताओं को बार-बार झुकाना और लताओं के भीतर के लवंग के फूल खिलाना। ऐसे मलयपवन, ऐसी दखिनई बयार का स्पर्श ही वसन्त का पहला स्पर्श होता है, वसन्त की सिहरन होता है। इस वसन्त में एकाएक स्वर भी फूटते हैं, केवल कलियाँ ही नहीं। और वह स्वर समवेत गान का स्वर होता है, चाहे वह स्वर भौंरों की गुंजार बनकर आये या कोयल की कूक की अनुगूँज बनकर आये। इस वसन्त में अंग-अंग अपने-आप आकांक्षाओं की दुस्सह व्यथा से आकुल हो जाता है, अपने-आप नाचने लगता है और जब श्रीकृष्ण नाचनेवाले हैं, तब सब कुछ आपा खो देता है, बस उनके साथ एक बड़े नृत्य के चक्र में घूमते रहना है, विराम नहीं है।।१।।

यह वसन्त बिलकुल पागल है, न स्वयं कभी रुकता है, ठहरता है और न किसी को रुकने देता है, ठहरने देता है। जो लोग बाहर परदेश चले गये हैं, उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वसन्तस्य दुरन्तमाह–उन्मदेति। उन्मद उद्भटो मदनो यत्र, उद्गतौ मदमदनौ यस्मिन्निति वा तादृशो मनोरथो येषां तादृशा ये पथिकानां वधूजनास्तैर्जनितो विलापो यत्र तादृशे। पुनः कीदृशे? अलिकुलैः भ्रमरसमूहैः सङ्कुलो व्याप्तो यः कुसुमसमूहस्तेन निराकुलो निःशेषेणाकुलो व्याकुलो बकुलकलापः केसरसमूहो यत्र तादृशे। अथवा बकुल एव कलापो भूषणं यस्य। कलापः

पत्नियाँ अपनी कामनाओं के पंख लगाकर उनके पास पहुँचना चाहती हैं, पहुँच नहीं पातीं, बिलखती हैं। उनके बिलखने से वसन्त का वातावरण, जो पहले से ही व्याकुल करनेवाला था, और अधिक ताप बढ़ा देता है। भौंरे मँडराने लगते हैं, जैसे उनकी बिलख ही डाल-डाल, पात-पात पर मँडरा रही हो। रस की चाह, अर्द्धचेतन प्राणियों को भी जगा गयी हो। वे झौर-झौर फलों के रस लेते हैं, चकराने लगते हैं। इस फूल के गुच्छे में रस नहीं है, पूरे वृक्ष में है। वसन्त बकुल के वृक्ष को, निराकुल वृक्ष को, भाववृक्ष को चंचल कर देता है। वह सोचने लगता है कि भौंरों के रूप में यह क्या है? अंग-अंग में यह क्या हुआ? कितने भौंरे आ गये। ऐसे वसन्त में हरि नाच रहे हैं और नचा रहे हैं, असंख्य-असंख्य युवतियों को, जो नृत्य के वश में हैं, अपने वश में नहीं। और यह नाच उनके ऊपर भारी पड़ रहा है, जिनको कोई नचानेवाला नहीं है, नचानेवाला भी बड़े भाग्य से ही मिलता है और श्रीकृष्ण जैसा नचानेवाला तो जन्म-जन्म के अर्जित तप से मिलता है। वे मिलते हैं श्रुतियों को, जो उनसे सीधे उनका अर्थ पाना चाहती हैं, उनके साथ लय-ताल मिलाकर अपना अर्थ पाना चाहती हैं। श्रीकृष्ण के साथ सोलह की संख्या बराबर लगी हुई है। सोलह कलाएँ, सोलह हजार गोपियाँ, सोलह हजार पत्नियाँ, उनकी पटरानियों के रूप में आठ और राधा की सखियों के रूप में आठ. ऐसी कुल सोलह सखियाँ, इस सोलह हजार के ऊपर अधिष्ठित हैं। श्रीकृष्ण एक हैं, श्रीराधा एक हैं। इसका अर्थ क्या है? सोलह प्रकार की चन्द्रमा की कलाओं की चर्चा तो कर चुके हैं। हम अपने दूसरे अनुष्ठानों में देखते हैं, तो सोलह श्राद्ध के पिण्ड करने से ही मृत व्यक्ति का नया सूक्ष्म शरीर पुनः निर्मित होता है। यह पूरा पिण्ड पंचमहाभूत, पंचज्ञानेन्द्रियों, पंचकर्मेन्द्रियों और मन के साथ जुड़ करके ही एक होता है, एक इकाई होता है। शृंगार भी सोलह होते हैं। पूजन के उपचार भी सोलह होते हैं। सोलह एक पूरी करने वाली संख्या है, जो वैदिक गणित में महत्त्वपूर्ण है, वैदिक यज्ञ में चतुष्क महत्त्वपूर्ण है और चार-चार चौकों का संवाह्य होने के कारण महत्त्वपूर्ण है। चार आश्रम, चार वर्ण, चार ऋण, चार पुरुषार्थ, चार चौकों का योग ही सोलह है, इसलिए श्रीकृष्ण के साथ यह लगता है कि वे सोलह को एक कर देते हैं। वे सोलह को अलग-अलग दिखने नहीं देते, सोलह में निहित भेद विचार देते हैं, सब गड़बड़ कर देते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मरशरस्तूणीरो वा। 'सङ्कुलं वाच्यवद्व्याप्ते विस्पष्टार्थवचस्यपि' इति विश्वः। 'केसरे बकुलः' इत्यमरः। 'कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतावपि' इति च।।२।।

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले।
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले।।३।।

पुनः कीदृशे? मृगमदस्य कस्तूरिकाया यः सौरभरभसः सौरभवेणुस्तस्या वशंवदा आयत्ततावादिनी नवदलमाला नूतनपत्रपङ्क्तिर्येषां तादृशास्तमाला यत्र तादृशे। पुनः कीदृशे? युवजनानां तरुणजनानां हृदयं विदारयन्तीति युवजनहृदयविदारणास्तादृशा ये मनसिजस्य कामस्य नखास्तेषामिव रुचिर्दीप्तिर्येषां तादृशा ये किंशुकाः पलाशकुसुमानि तेषां जालं समूहो यत्र तादृशे, किंशुकजालानि पलाशकलिका इति वा। अत्र पलाशकोरकस्य वक्रत्वेनारक्तत्वेन च हृदयविदारणाद्रुधिराक्तमनसिजनखस्य

हैं, सब सारे अनुमानों से मुक्त होकर, सारी भूमिकाओं से मुक्त होकर केवल श्रीकृष्ण की पुकार बन जाते हैं। जयदेव ने भी अपने सर्ग में चार अष्टपदियाँ रखी हैं। प्रत्येक अष्टपदी में चार-चार पंक्तियाँ हैं, इस प्रकार की चौबीस अष्टपदियों से यह आकार बनता है। इस प्रकार से चार, आठ, सोलह छाये हुए हैं और वह अभिनयशास्त्र छाया हुआ है, जिसमें संगीत, नृत्य और वाद्य के साथ रस जुड़े रहते हैं। ऐसे चौकड़ी भरनेवाले वसन्त में यह रास हो रहा है। इस रास का कौन-सा रूप भला सबसे अधिक व्यक्त होता है।।२।।

कस्तूरीमृग की नाभि में कस्तूरी पकती है, उसकी व्याकुलता में या जब सारे पत्ते झाड़ लेने के बाद तमाल के एक-एक छिद्र से ज्यों चम्पई रंग के फूल खिलते हैं, चम्पई रंग की कलियाँ फूटती हैं, तब उस निहंग तमाल की अपनी इस समृद्धता पर हर्ष की आकुलता में यह कस्तूरीमृग की आकुलता से भी बड़ी है। कस्तूरीमृग तो स्वयं पागल होता है अपनी गन्ध से और तमाल की गन्ध से दूसरे लोग उसका लुत्फ पाकर पागल हो जाते हैं। सोचने लगते हैं कि हवा में क्या हो गया है, यह क्यों इतनी मदमाती बह रही है? किसके ऊपर इतरा रही है? जब उसमें, प्राणियों में जो लोग सचेत हैं, वे देखते हैं, तो उन्हें लगता है कि कुछ नहीं, एक उत्कण्ठित करनेवाला व्यापार है और उस गन्ध से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। लाल-लाल नग सरीखे टेसू के फूल, सेमल के फूल भी उसी समय फूले हैं। ऐसा लगता है उस व्यापार का देवता ऊपर से मधुर, भीतर से करुण इधर से उधर नाच रहा है। इस चित्त को किसी युगल चित्त में दो भागों में विभक्त कर दें, ऐसे कि एक चित्त की शान्ति भंग हो। कैसे कोई दो होने की आकांक्षा से और दूसरे से जुड़ने की प्रबल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सादृश्यं नखसौन्दर्यञ्च कथितम्। 'मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी च' इत्यमरः। 'रभसो वेगहर्षयोः' इति विश्वः। 'रुचिर्मयूखे शोभायामभिसङ्गाभिलाषयोः' इति। 'पलाशः किंशुकः' इत्यमरः। 'जालं गवाक्ष आनाये क्षारके दन्तवृन्दयोः' इति विश्वः।।३।।

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेशरकुसुमविकाशे।
मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलासे।।४।।

मदन एव महीपतिस्तस्य यः कनकदण्डः सुवर्णघटितच्छत्रदण्डस्तस्येव रुचिर्यस्य तादृशस्य केशरस्य नागकेशरपुष्पस्य विकाशः प्रकाशो यत्र तादृशे। अत्र कनकदण्डशब्देन कनकदण्डयुक्तं छत्रमिति वा, महीपतिशब्दसाहचर्यात् अथवा विरहिणां दण्डनार्थं दण्ड इव। पुनः कीदृशे? मिलिताः शिलीमुखा भ्रमरा एव शिलीमुखा बाणा यस्मिन् तादृशं यत् पाटलिपटलं पाटलपुष्पसमूहस्तेन कृतः स्मरतूणस्य कन्दर्पतूणीरस्य विलासश्चेष्टितं यत्र तादृशे। अत्र परमर्मव्यथाजनकत्वेन भ्रमराणां बाणसाम्यम्। 'चाम्पेयः केसरो नागकेशरः काञ्चनाह्वयः' इत्यमरः। 'अलिबाणौ शिलीमुखौ' इति च। 'समूहे पटलं न ना' इत्यपि। 'तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गाः' इत्यपि।।४।।

आकांक्षा से आविद्ध हो। ऐसे पागल समय में हरि एक पागल रास रचा रहे हैं। बड़ा भारी पड़ता है सखी, यह रास हमारे लिए कि तुम वहाँ नहीं हो और मेरे लिए तुम कृष्ण को नचा नहीं रही। और अब तो ऐसा लगता है कि मदन, कामनाओं का देवता पूरी फौज लेकर आ गया है। वसन्त ही तो उसका सेनापति है। वसन्त ने पूरी शक्ति झोंक दी है, मदन के अभियान में विश्व-विजय के अभियान में ऐसा बेशर्म है यह वसन्त कि काम भस्म हो गया है शिव के क्रोध की अग्नि में और अशरीरी हो गया, अनंग हो गया, तब भी इसे लाज नहीं आती कि हारे हुए राजा की नयी विश्व-विजय में हम फिर हाथ दे रहे हैं, जबकि हमारे सभी अस्त्र-शस्त्र कहीं-न-कहीं बेकार हो जायेंगे। हमारे शस्त्र परात्पर ब्रह्म के ऊपर कहाँ चलेंगे, यह उसे विस्मरण हो जाता है।।३।।

मदन महीपति ने सुनहरा राजदण्ड हाथ में ले लिया है। केसर के खड़े-खड़े पराग के दण्ड के रूप में वह तैयार हो जाता है, शासन करने के लिए और वसन्त असंख्य-असंख्य गुलाब के फूलों में घुसे हुए भावों को अक्षय तूणीर बनाकर राजा के हाथों में दे देता है। विरही के चित्त को टूक-टूक करने वाले भाले की तरह से नोकदार केवड़े के फूल को हरा बना देता है, भाले की तरह दँतैला बना देता है।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृतहासे।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकदन्तुरिताशे।।५।।

विगलितं विशेषेण गलितं लज्जितं लज्जा यस्य तादृशस्य जगतः प्राणिगणस्य विलोकनेन दर्शनेन तरुणकरुणैः नवीनकरुणवृक्षैः पुष्प-विकासव्याजेन कृतो हासो यत्र तादृशे। अत्र हास्यरसस्य श्वेतत्वात् पुष्पविकाससाम्यम्, यदाह भरतः (नाट्यशास्त्रे- ६।४२)– 'श्वेतो हासः प्रकीर्त्तितः' इति। अथ च तरुणकरुणैरित्यनेन वृन्दावनवृक्षादीनां नित्यतारुण्यमेव प्रतिपाद्यते, भगवत्प्रियत्वात्। अथवा विगलितलज्जितानां जगतां वियोगिजनानां दर्शनेन तरुणैरर्थाद् अवियोगिभिः करुणं करुणरस-सहितं यथा स्यादेवं कृतो हासो यत्र तादृशे। हा विरहिणो वराकाः कष्टं प्राप्नुवन्तीति करुणाः, लज्जां हृत्वा विलपन्तीति च हासस्तेषामिति भावः। बाला रसानभिज्ञा एव, वृद्धाः परप्रच्यवेऽपि कृतरणाः, अतस्तरुण इत्युक्तम्। अथवा विगलितं विभिः कोकिलादिभिः पक्षिगणैः शब्दायमानैर्गलितं भुवि स्खलितमत एव लज्जितम्। गच्छतीति जगत् पथिककुलम्, विभिः गलितञ्च तल्लज्जितञ्च तज्जगच्चेति समासः। तस्यावलोकनेन तरुणैः संयोगिभिः कारुण्येन कृतो हासो यत्र तादृशे। पुनः कीदृशे वसन्ते? विरहिणां वियोगिनां निकृन्तनाय विदारणाय कुन्तमुखाकृति कुन्त आयुधविशेषस्तस्य मुखमग्र-भागस्तस्य इव आकृतिर्यस्य तादृशं यत् केतकं तेन दन्तुरिता व्याप्ता विषमीकृता वा आशा दिशो यस्मिन् तादृशे। क्वचित् 'केतकिदन्तुरिताश' इति पाठः। तदा याकारौ ह्रस्वौ क्वचिदित्यत्र क्वचिद्ग्रहणस्य लक्ष्यानुरोधार्थत्वात् कृतह्रस्वेन केतकीशब्देन समर्थनीयः। लज्जितेत्यत्र नपुंसके भावे क्तः। 'कृति छेदने' ह्रस्वोऽप्यनुबन्धोऽप्यस्तीति केचित्, तस्य युच्प्रत्ययान्तस्य निकृन्तनमिति प्रयोगः साधुः। 'करुणस्तु रसे वृक्षे कृपायां करुणा मता' इति विश्वः। 'प्रासस्तु कुन्तः' इत्यमरः। 'निम्नोन्नते तथा

वसन्त, जैसा कहा जा चुका है, निर्लज्ज है, उसने सब लाज धोकर रख दिया है। वसन्त के प्रभाव में लोग उपहास के पात्र होते हैं। उपहास से चित्त दुःखी भी होता है, परन्तु उसका दुःख कोई जानता नहीं। संसार देख-देखकर जो कुछ कहता है, कहे; परन्तु चित्त उनके वश में नहीं है। कौन भला अपना हित चाहेगा, जो प्यार की मार सहने के लिए अपने को वेध्य बनाएगा, छेद्य बनाएगा, विच्छेद्य बनाएगा। वसन्त में लताएँ भी अपने आलम्बन वृक्षों को अपनी आकांक्षाओं की, अपनी उमंगों की कलियों से आकुल करने से पीछे नहीं रहती हैं। वसन्त में माधवी लता की गन्ध, वृक्ष में नहीं, पूरे वातावरण में नशा छा देती है। उसके ऊपर नवमालिका अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याप्ते दन्तुरं कथ्यते बुधैः' इति धरणिः। 'आशा तृष्णादिशोः' इति विश्वः।।५।।

माधविकापरिमलललिते नवमालिकयातिसुगन्धौ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ।।६।।

पुनः कीदृशे? माधविकाया वासन्त्याः परिमलेन सौरभेण ललिते मनोहरे। श्लेषेण–माधवस्येयं माधविका नायिका तस्याः परिमलेन कान्तविमर्दसौरभेण ललिते मनोज्ञे। उक्तञ्च–

'आलिङ्ग्यैव प्रियं याति कामनिर्जितचेतसा।
स्फुरति प्रत्युक्तिरचना माधवी नायिकेति सा।।' इति।

माधवशब्देन वसन्त एव नायकः, कृष्णसङ्गमाय तां त्वरयति विभावोद्रेककथनेन चेति ध्वनितम्। पुनः कीदृशे? नवमालिकया नवमालिकापुष्पैः अतिसुगन्धौ अतिशयेन सौरभयुक्ते। पुनः कीदृशे? मुनिमनसामपि मोहनकारिणि मोहजनके। अन्येषां किं वक्तव्यमित्यपि-शब्दार्थः। तथा च माने मुनिवृत्तानां मानिनीनां मोहकारिणीति ध्वनितम्। पुनः कीदृशे? तरुणानां विलासियुवजनानामकारणबन्धौ स्वाभाविकमित्रे परमानन्दप्रद इत्यर्थः। नवमालिकजातीति पाठे नवमालिकं नवमालिका-

---

गन्ध का पहरा लगाती है और ध्यान में स्थित मुनियों का चित्त भी विक्षुब्ध हो उठता है।।५।।

वसन्त जो इतना परिमल बिखेरता है और हवा उस परिमल को लिये श्वास के द्वारा भीतर तक पहुँचती है, वह किससे सहा जाएगा। जन भी उस गन्ध के साथ हो लेते हैं। उनका चित्त भी गर्वित हो उठता है। कहाँ से आ रही है यह गन्ध? समझनेवाला यह समझता है कि सभी गन्धों की गन्ध तो श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण के भीतर भी गन्ध लानेवाली राधा हैं। ऐसे मौसम को श्रीकृष्ण ने चुना है, ऐसे मथनेवाले मौसम को चुना है, जिसमें सिखाना नहीं पड़ता, लोग अपने–आप थिरकने लगते हैं और जितना ही सहज चित्त होगा, वे उतना ही थिरक उठेंगे। सखि! तुम्हारा चित्त भी थिरक रहा होगा और मेरा चित्त भी थिरक रहा है। यह तो इस विश्व–थिरकन के साथ में ही है। इस सारे वातावरण के ऊपर सबसे अधिक भारी पड़नेवाला वातावरण रचा जाता है आम्रमंजरियों से, जिसकी अरघान दूर–दूर तक जाती है। और यह गन्ध कहाँ से आती है, उसमें लिपटी हुई अतिमसृणता के रोम–रोम के फूटने से एक–एक अंगुल के भार पर फूल फूलने से आती है। इतना उच्छल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुसुमञ्च जातिश्चेति ताभ्यामित्यर्थः। 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे' इत्यमरः।।६।।

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते।।७।।

पुनः कीदृशे वसन्ते? स्फुरन्ती कम्पमाना शोभमाना वा या अतिमुक्तलता वासन्तीलता तस्याः परिरम्भणेनालिङ्गनेन मुकुलितपुलकितो मुकुलितं मुकुलं तदेव पुलको रोमाञ्चस्तद्युक्तश्चूत आम्रो यत्र तादृशे। अत्र कान्तस्य सङ्गमरसेन सात्त्विकोद्रेकात् कम्पमानाया लताया नायिकायाः परिरम्भेण चूतनायकस्यापि रोमोद्गमेन अचेतनयोरपि कामोन्मेषः कथितः। तेन वसन्तस्यातिदुरन्तत्वं कथितम्। तथा चातिमुक्तपदेनातिशयमुक्तानामपि परिरम्भणौत्सुक्यमिति ध्वनितम्। अतिमुक्तायाः कस्याश्चिद्भगवन्माधुर्य-भराकृष्टायास्तदुपासनार्थं वृन्दावने लतारूपत्वमिति वा, तदा अतिमुक्ता चासौ लता चेति समासः। अनेनातिमुक्तैर्वैकुण्ठवासिभिरपि वृन्दावने लतात्वं स्पृहणीयमित्यत्र माधुर्यभरो निरूपितः। उक्तञ्च (भा. १०।४७।६१) 'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्' इति। एतावता वसन्तस्य सरसतां दुरन्तताञ्चोक्त्वा सम्प्रति क्रीडायाः स्थानविशेषमाह–वृन्दावनेत्यादि। वृन्दावननाम्नि विपिने हरिर्विहरतीत्यन्वयः। कीदृशे विपिने? परिसरे समीपप्रदेशे परितः सर्वतो गतेन व्याप्तेन यमुनाया जलेन पूते पवित्रे। परिसरपरिगतञ्च तद् यमुनाजलञ्च तच्च पूतं यत्र तस्मिन्निति वा, पावनस्य यमुनाजलस्याप्यधिकपावनत्वेन, किं वक्तव्यं तत्पावनत्व-मित्यर्थः। तथा च (पाद्मे पातालखण्डे मरीचिसर्गे)–

'रसो यः परमाधारः सच्चिदानन्दलक्षणः।
ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतः स एव यमुना स्वयम्।।'

इति वचनात्, एवम्भूतमहिम्नोपलक्षितायास्तस्याः पावनत्वेनातिमुक्तैः स्पृहणीयत्वं तस्य सिद्धमिति दर्शितम्। पावनत्वमत्र भगवद्रसविशेषानु-भवादुच्यते, न तु पापमात्रक्षयादिति। वृन्दमवतीति वृन्दावनं चम्पकादिवृन्दं,

---

प्यार पाकर आम भी बौरा जाता है और उसके बौर में ऐसी मादक गन्ध होती है कि बयार उसे ले जाते समय, दूर-दूर तक ले जाते समय बौरा जाती है।।६।।

ऐसे अपूर्व वसन्त के रास में वृन्दावन का कुसुमित और खिला-खिला वन, एक-दूसरे से बँधा-बँधा और यमुना की पवित्र धारा से, पवित्र धारा के छींटों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपीवृन्दं वा भगवत्केलिसुखसम्पादनात्। 'अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवीलता' इत्यमरः। 'पर्यन्तभूः परिसरः' इत्यपि।।७।।

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम्।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम्।।८।।

सम्प्रति गीतार्थमुपसंहरन् स्वभणितेरुत्कर्षमाह–श्रीजयदेवेत्यादि। श्रीजयदेवकवेरिदं भणितमुदयति राजते, अयतेरुभयपदित्वात् परस्मैपदम्, तत्र हेतुः–हरिचरणयोः स्मृतिः स्मरणं तेन सारं श्रेष्ठम्। अथवा–हरिचरण-स्मृतिरेव सारो यत्र तादृशम्। पुनः कीदृशम्? सरसं शृङ्गाररसप्रधानं वसन्तसमयसम्बन्धिनो वनस्य वर्णनं यत्र तादृशम्। अत एवानुगतमदनविकारम् अनुगतः सम्बद्धोऽनुस्यूतो मदनस्य विकारो भावोद्रेको राधां प्रति सख्या वर्णनेनानुगतो यस्मिन् ममोदिते तादृशं मदनसम्बन्धिविकारोऽनुगतः श्रोतृहृदि यस्मात्तदिति वा, सरसवसन्तसमयवनवर्णनमित्यस्य विशेषणं वानुगतमदन-विकारमिति।।८।।

दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्पराग-
प्रकटितपटवासैर्वासयन् काननानि।
इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः
प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः।।८।।

निरन्तर सिहरा-सिहरा, ऐसे वन के भीतर, ऐसे वसन्त में हरि नाच रहे हैं और नचा रहे हैं। सखि! कैसे सह रही हो?।।७।।

जयदेव ने इस अष्टपदी के द्वारा जिस हरि का स्मरण किया है वही हरि का तात्त्विक रूप है। स्वयं गतिशील, दूसरों को गतिशील करनेवाला, स्वयं सरस, दूसरों को सरस बनानेवाला और दूसरों के सरस बनने में अपनी तत्त्ववत्ता पानेवाला रूप ही स्मरण किया जाता है। तो व्यक्ति में रस बनने की आकांक्षा उत्पन्न होती है हरिस्मरण से; क्योंकि यह वसन्त-स्मरण, सरस वसन्त और सरस वसन्त के कारण सरस हुए वृक्ष, वल्लरी, नदी, आकाश, पृथ्वी और वायु के बीच में यह रास घटता है, इसलिए इसका स्मरण मन में वही आमोद भरता है, वही परिमल भरता है और उस परिमल की वही बेसुधी भरता है, यही बेसुधी ही तो इस रास का चरम चरितार्थ है। इस अष्टपदी के बाद दो श्लोकों में वसन्त की बयार का और वसन्त के उस दिन का, जिसमें रास की अवतारणा हुई है, वर्णन है।।८।।

बयार कैसी है? जिसने आतंकित करके मुकुलित मल्लिका को अपने पटल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं वसन्तकालीनवायोरपि विरहिजनसन्तापकत्वमाह–दरविदलितेत्यादि। इह हि अस्मिन्नेव वसन्ते गन्धवाहो वायुश्चेतो दहति अर्थाद् विरहिणाम्, किं कुर्वन्? काननानि वनानि वासयन् सुरभीकुर्वन्। कैः? दर ईषद्विदलिता वा मल्लीवल्लिस्तस्याः सकाशात् चञ्चन्त उद्गच्छन्तो ये परागाः पुष्परेणवस्त एव प्रकटिताः पटवासाः पिष्टातकास्तैः। कीदृशो गन्धवाहः? केतकीगन्धबन्धुः केतकीसौरभसहचारी। पुनः कीदृशः? प्रसरतः प्रतिदिशं सञ्चरतोऽसमबाणस्य प्राणवत् प्राणसदृशः। अथवा प्रसरता असमबाणेन प्राणवान् शक्तिसम्पन्नो यो गन्धवाह इत्येकमेव पदम्। अथवा किम्भूतं चेतः? प्रसरद् अर्थाद् मनोरथं प्रति, असमबाणप्राणवत् कामस्य जीवितमिव। 'ईषदर्थे दराव्ययम्' इति विश्वः। 'परागः पुष्परजसि' इति च। 'पिष्टातः पटवासकः' इत्यमरः। 'गन्धवाहानिलाशुगाः' इति च।।८।।

अद्रोत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचलं
प्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः।
किञ्च स्निग्धरसालमौलिमुकुलान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति कलोत्तालाः पिकानां गिरः।।९।।

श्रीखण्डशैलानिलो मलयपर्वतसम्बन्धी पवन ईशाचलमीशस्य महादेवस्य अचलं पर्वतं हिमालयमनुसरति। कस्मादिव? अद्रेः मलयस्य उत्सङ्गे क्रोडे वसन्तो ये भुजङ्गाः सर्पास्तेषां कवलेन जनितो यः क्लेशः सन्तापस्तस्मादिव तर्हि हिमाद्रिं किमिति व्रजतीत्यत आह–प्रालेयेत्यादि। प्रालेयं तुषारस्तस्य प्लवनमवगाहनं तस्येच्छया। अत्र सर्पैः कवलितोद्गीर्णस्य पवनस्य तद्विषसम्पर्कादधिकं विरहिणां सन्तापकत्वं ध्वनितम्। वस्तुतस्तु दक्षिणवायोः शीतलत्वात् सुखकरत्वाच्च विरहिणां दुःसहपरिणामेन सर्पग्रसनहिमाप्लवमित्याक्रोशः। न केवलमिदमेव दुःसहम्, वसन्ते अपरमपीत्याह–किञ्चेति। पिकानां कोकिलानां कुहूः कुहूरिति गिरः कुहूः कुहूरित्येवंरूपाः शब्दा उन्मीलन्ति प्रकटीभवन्ति। कीदृश्यः? कलोत्तालाः कला अव्यक्तमधुरा उत्ताला

खोलने को, पट खोलने को विवश किया है और प्रेमलीला पूरी तरह खिल उठी है, डरते-डरते खिली है, धीरे-धीरे खिली है और इसीलिए उसके भीतर का पराग भी काँपता रहता है और वह पराग हवा में उड़-उड़कर सारे वन में बयार देती है। यही पर्याप्त कारण नहीं था केवड़े की बेधक गन्ध का, जो सबकी सहायता ले करके वसन्ती बयार विचित्र-सा दाहक चित्र पैदा करती है। ऐसा लगता है कि यह बयार पाँच बाणोंवाले कामदेव का प्राण हो। यह बयार नहीं बहे, तो काम सजीव न हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्भटाः। कस्मात्? स्निग्धा ये रसाला आम्रवृक्षास्तेषां ये मौलयोऽग्रभागास्तत्र यानि मुकुलानि तानि आलोक्य वीक्ष्य यो हर्षोदय आनन्दस्याविर्भावस्तस्मात्। अत्र क्वचिदद्योत्सङ्गे इति पाठः, तदा अद्य वसन्त इत्यर्थः। 'तुषारस्तुहिनं हिमं प्रालेयं मिहिका च' इत्यमरः।

'चषालो होमकुण्डे स्याद् गर्त्ते चोत्ताल उत्कटे।
श्रेष्ठेऽपि विकरालेऽपि स्यादुत्तालः प्लवङ्गमे'।। इति विश्वः।।९।।

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः।।१०।।

सम्प्रति वसन्तदिवसानामपि दुरन्तत्वमाह–उन्मीलदित्यादि। अमी वसन्तसम्बन्धिनो वासरा दिवसाः पथिकैः कथमपि महता कष्टेन नीयन्ते समाप्यन्ते। कीदृशा वासराः? उद्गीर्णः प्रकटीकृतः कर्णज्वरः श्रोत्रसन्तापो येषु तादृशाः। कैः? उन्मीलन्ति प्रकटीभवन्ति यानि मधूनि गन्धाश्च तेषु लुब्धा लोलुपा भ्रमरास्तैर्व्याधूताः कम्पिता ये चूताङ्कुरा आम्रमुकुलानि तेषु क्रीडतां कोकिलानां याः काकल्योऽव्यक्तमधुरध्वनयस्ताभिः कृता ये कलकलाः कोलाहलास्तैः। तदुक्तं 'वसन्ते पञ्चमं वदति कोकिलः' इति उद्दीपनविभावो दर्शितः। केन प्रकारेणानीयन्त इत्यत आह–ध्यानेत्यादि। स्वप्रियाचिन्तने

और यह बयार भी ऐसी है जो कामनाओं का, कामना के विस्तार का और विस्तार से जरा-सी चिनगारी को दावानल बनाने का व्यापार रचती है। ऐसी बयार बह रही है और उसकी लहक पाकर श्रीराधा का चित्त दहक उठता है।।८-९।।

ऐसे दिन आये हैं, जिनमें वृक्षों के पुष्पों ने अपना अनुभव उँड़ेल दिया है। उसकी गन्ध पाकर लोलुप भौंरों ने सब विवेक छोड़ दिया है और उन्हें गन्ध की तलाश है, आम के बौरों की। आम में बौर भी आये हैं। यदि उसमें एक अंकुर भी बौर का आया है, तो उसे वे झकझोर रहे हैं। इन बौरों के उत्पात से मन में वैसे ही ज्वर हो रहा था, उसके ऊपर आम के बौरों पर कुहकनेवाले कोकिल की कूक एक शोर बन जाती है और कान कहने लगते हैं कि तुम्हारी पुकार नहीं सही जा सकती है। जो लोग दूर परदेश गये हुए हैं, वे लौटना चाहते हैं पर पैर बढ़ते नहीं; जैसे वहीं ये दिन ही उन्हें खींचते हैं और उन्हें विवश करते हैं कि चलो, ऐसे नहीं पहुँच पाते हो, तो एकचित्त ध्यान करके अपनी प्रिया का मन और तुमने, जो प्राणों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदवधानं तत्परता तेन तत्क्षणं प्राप्तो यः प्राणसमाया जीविततुल्यायाः कान्तायाः समागमरूपो रसस्तस्मादुत्पन्ना ये उल्लासा उत्साहास्तैः। पथिक-विशेषणं वा, कीदृशैः? ध्यानावधानेन क्षणं प्राप्तो यः प्राणसमायाः समागमरसस्तस्मिन्नुल्लासो येषां तादृशैरिति। अनेन श्रीकृष्णस्यापि प्रियाध्यानेन कष्टेन वसन्तवासरनिर्वाह इति ध्वनितम्। 'काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ' इत्यमरः। 'कोलाहलः कलकलः' इति च।।१०।।

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रम-स्फुरन्मनोहारिविलासलालसम्।
मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ सखी समक्षं पुनराह राधिकाम्।।११।।

अनेकनारीत्यादि। असौ सखी राधिकां पुनराह पुनः कथितवती। किं कुर्वती? आराद् दूरे समक्षं प्रत्यक्षं मुरारिमुपदर्शयन्ती। कीदृशम्? अनेकनारीणां परिरम्भसम्भ्रमेण आलिङ्गनादरेण स्फुरन् यो मनोहारी विलासोऽनङ्गविकारस्तेन लालसा औत्सुक्यम्, अर्थाद् राधायां यस्य तादृशम्। अथवा अनेकनारीणां परिरम्भसम्भ्रमेण स्फुरन् चित्तारूढो भवन् यो मनोहारी हरेश्चित्तापहारी श्रीराधाया विलासो हावादिलक्षणस्तस्मिन् लालसा यस्य। परिरम्भसम्भ्रमोऽन्योन्यसख्यालिङ्गनेक्षणाभियोगस्तेन स्मारितश्रीराधाविलासेन तत्सखीषु लालसं प्रार्थनमिति वा। अथवा मुरारिमारात् कृष्ण एव कामस्तस्मादनेकनारीणां परिरम्भसम्भ्रमेण स्फुरन्नाविर्भवन् यो मनोहारी विलासस्तेन लालसमौत्सुक्यं भावविकारं दर्शयन्तीत्यर्थः। अनेन तदभिसरणाय तासां भावक्रियानिरूपणेन नायकगुणाधिक्यं दर्शितम्। वक्ष्यति चाग्रे (गी. ४।२) पीनपयोधरेत्यादिना। 'सम्भ्रमे एवमिच्छन्ति भयमुद्वेगमादरम्। त्वयायामपि सम्भ्रमः' इति। 'लालसो लालसापि स्याद्

के रहने की आशा छोड़ दी है, वे प्राण, प्राणप्रिया के समागम में ध्यान-बल से सामने प्रत्यक्ष जैसे स्फुट हो जाने से लौट आये हों और उनमें रस का उल्लास, रस का भी एक आप्लावन, एक महारास उपस्थित हो जाएगा। आशा रखो, व्यथा ही निश्चित है, दुरन्त व्यथा ही नहीं है, अपितु वह दुर्निवार आशा भी है कि वसन्त का दिन उत्कण्ठा का दिन है और उत्कण्ठा के साथ-साथ दुर्दम्य आशा के दिन हैं।।१०।।

अन्तिम श्लोक में आगे की अष्टपदी की कड़ी जोड़नेवाली उद्घोषणा है। अब सखी घूमते-घूमते उस जगह आ पहुँची है, जहाँ से कृष्ण साफ-साफ दिख रहे हैं। इतनी असंख्य नारियों के इतने प्रकार के आलिंगनों से श्रीकृष्ण घबरा गये हैं। वे अपने भीतर-ही-भीतर एक अतृप्त लालसा का अनुभव करते हैं। जिस आलिंगन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याच्आतृष्णातिरेकयोः। औत्सुक्ये च' इति विश्वः। 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः। तथा च सम्भ्रमपदोपादानात् लालसमित्यनेन च तासामालिङ्गनो-पेक्षया तदालिङ्गनादराधिक्यं दर्शितम्। किञ्च आराद्दूरे समीपे वा तस्याः प्रत्यक्षं यथा स्यात्तथेति।।११।।

गीतम्-४

[रामकरीरागेण यतितालेन गीयते]

चन्दनचर्चित-नीलकलेवर-पीतवसन-वनमाली।
केलिचलन्मणिकुण्डल-मण्डित-गण्डयुग-स्मितशाली।।
हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे।।ध्रुवम्।।१।।

तदेव गीतेन प्रपञ्चयति- चन्दनेत्यादिना। रागलक्षणम्-

'स्वर्णप्रभा भास्वरभूषणा च, नीलं निचोलं सुतनौ वहन्ती।
कान्ते पदोपान्तमधिश्रितेऽपि, मानोन्नता रामकरी प्रदिष्टा।।' इति।

ताललक्षणं प्रागुक्तम्। गीतार्थस्तु-हे विलासिनि विलासशीले! इह वृन्दावने मुग्धवधूनिकरे सुन्दरवधूनिचये हरिर्विलसति क्रीडां करोति। कीदृशे वधूनिकरे? केलिपरे क्रीडापरायणे; अत्र मुग्धपदेन हावाद्यनभिज्ञत्वं केलिपर इत्यनेन सामान्यक्रीडापरत्वञ्च तासां ध्वनितम्; तथा च विलासिनीत्यनेन हावाद्यभिज्ञां त्वामेव सकलकलाभिज्ञोऽपेक्षत इति भावः। 'मुग्धः सुन्दर-मूढयोः' इति विश्वः। विलासो हावविशेषः, तल्लक्षणम् (नाट्यसूत्रे-२४।१५)-

'यान-स्थानासनादीनां नेत्रवक्त्रादिकर्मणाम्।
उत्पद्यते विशेषो यः स विलासः प्रकीर्त्तितः'।। इति भरते।

से सम्बन्ध था, वह तो मिला ही नहीं। अभी विलसने की लालसा पूरी ही नहीं हुई। ऐसे निर्बल श्रीकृष्ण की ओर निर्देश करती हुई सखी फिर श्रीराधिका को सम्बोधित करती है और उनके तरह-तरह के विलास का सजीव चित्र उपस्थित करती है।।११।।

ऐसे हैं वनमाली। वन ही जिनकी माला है, वे वन के ही स्वभाव के तो होंगे। वे कृष्ण ही तो होंगे, तभी तो अपने नीलकलेवर पर चन्दन का लेप लगाये हुए हैं। भला चन्दन का लेप करने से कहाँ से वे अपनी नीलिमा धोयेंगे। चन्दन से सन्तोष नहीं होता तो पीताम्बर से अपने को ढँक लेते हैं। पीताम्बर भी नीलिमा को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा केलिः परा उत्कृष्टा सर्वातिशायिनी यस्यास्तत्सम्बोधनम्- केलिपरे इत्यपि। मुग्धाश्च ता वध्वश्च मुग्धवध्वः, मुग्धेति नायिका-लक्षणान्वितास्तासां निचये। हरिः स्वविलासकौशलैरखिलनागरीमनोहारीति; सकलकलाकुशलस्य तासु मुग्धासु तादृशहावाद्यनुपपत्त्या त्वयैव तस्याभिलषितक्रीडापर्याप्तेस्त्वामेव कामयत इति त्वया तत्र गन्तव्यमिति भावः। मुग्धाया लक्षणं शृङ्गारतिलके (१।३५)-

'मुग्धा नववधूस्तत्र नवयौवनभूषिता।
नवानङ्गरहस्यापि लज्जाप्रायरतिर्यथा'।। इति।

किञ्च (उ. ५।१४)-

कृतापराधे दयिते वाष्परुद्धावलोकना।
प्रिया प्रियाक्तौ चाशक्ता माने च विमुखी सदा'।। इति।

नवयौवनवत्वेनापि-

'ईषच्चपलनेत्रान्तं स्मरस्मेरमुखाम्बुजम्।
सगर्वजरजोगण्डमसमग्रारुणाधरम्।।
लावण्योद्भेदरम्याङ्गं विलसद्भावसौरभम्।
उन्मीलिताङ्कुरकुचमस्फुटाङ्गकसन्धिकम्।।
प्रथमं यौवनं तत्र वर्त्तमाना मृगेक्षणा।
अपेक्षते मृदुस्पर्शं सहते नोद्धतां रतिम्।।
सखीकेलिरता स्वाङ्गसंस्कारकलितादरा।
न कोपहर्षौ भजते सपत्नीदर्शनादिषु।।
नातिरज्यति कान्तस्य सङ्गमे किं नु रुन्धति''।।

इति (रसार्णवसुधाकरे- १।१६५-१६८) तल्लक्षणात्। अथवात्र दाक्षिण्यरूपो नायकगुणो युक्तः, तदुक्तं तत्रैव (उ. १।३२, ३४)-

'यो गौरवं भयं प्रेम सद्भावं पूर्वयोषिति।
न मुञ्चत्यन्यचित्तोऽपि ज्ञेयोऽसौ दक्षिणो यथा'।। इति।

ढँकने में कहीं समर्थ हुआ है? श्रीकृष्ण तो कृष्ण ही रहते हैं, ऐसे कृष्ण सहज और भोली-भाली गोपवधुओं के बीच में विलस रहे हैं, इसलिए कि इस विलसने से उनका विलास सम्पन्न हो रहा है और तरह-तरह की केलि कर रहे हैं। उस केलि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केचित्तु 'नायिकास्वप्यनेकासु तुल्यो दक्षिण उच्यते' इत्यत्र न घटते, श्रीराधायामनुरागातिशयश्रवणात्। तथा 'सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त-वल्लभा' इति पाद्मे। श्रीभागवते च (१०।३०।२८) 'अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः'।।१।।

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम्।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम्।।२।।

...... रो मधुराङ्गविचेष्टितैः' इति। किञ्च कृष्णस्यानुगानेन गीतशिक्षापि न्यूनेति ध्वनितम्। समशिक्षयैव रसोत्पत्तिः, तद्यथा (भा० १०।३३।१०)–

'काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयतां साधु साध्विति।।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्मै मानञ्च बह्वदात्'।। इति श्रीभागवते।

अथवा सरागमित्यादि हरेर्विशेषणं, कीदृशं हरिम्? सरागं रागेण तव सम्भोगे स्खलितसिन्दूरेण सह वर्तमानः सरागस्तम्, त्वयि सानुरागं सरागमिति वा। तत्र हेतुमाह–पुनः किं लक्षणम्? उदञ्चितपञ्चमरागम् उदञ्चितः आताराविधि ऊर्ध्वं नीतः पञ्चमः स्वरो येन तादृशम्; तदुक्तं भरतेन (नाट्यशास्त्रे– २९।१३) 'मध्यं पञ्चमभूयिष्ठं हास्यशृङ्गारयोर्भवेत्' इति। शृङ्गारे पञ्चमः स्वरो बाहुल्येन भवतीति त्वदनुरागेण त्वदाह्वानसङ्केतेनैव गायतीति भावः। अथवा पञ्चमे उदञ्चितोऽनुरागो येन तादृशम्। उक्तञ्च (अमरकोषे)–

'निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्ततन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः।।
निषादं ह्रेषते वाजी गावस्तु वृषभभाषिणः।
अजाविकन्तु गान्धारं धैवतं बृंहते गजः।।
षड्जं मयूरा ब्रुवते मृगा मध्यमभाषिणः।
पुष्पसाधारणे काले कोकिला रौति पञ्चमम्'।।

में, उस क्रीड़ा में जो मणि का कुण्डल है, वह हिलता रहता है, एक दीप्ति पैदा करता है, नीलाभ गालों पर एक कौंध पैदा करता है। उस कौंध के साथ श्रीकृष्ण की जादुई मुस्कान अलग कौंधती है।।१।।

पूरा वातावरण एक विशाल रूपान्तरण का चित्र उपस्थित करता है। इसमें सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्वचिच्च–

'षड्जं वदेन्मयूरः ऋषभं चातको वदेत्।
अजा वदति गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम्।।
पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पञ्चमं वदेत्।
दर्दुरो धैवतञ्चैव निषादञ्च वदेद्गजः'।। इति।
'हास्यशृङ्गारयोर्ज्ञेयौ स्वरौ पञ्चममध्यमौ।
षड्जर्षभौ तथा ज्ञेयौ वीरे रौद्राद्भुते रसे।।
गान्धारश्च निषादश्च कर्त्तव्यौ करुणे रसे।
धैवतश्चैव कर्त्तव्यो बीभत्से च भयानके।।
भैरवः पञ्चमो मेघमल्लारो गौडमालवाः।
देशाख्यश्चेति षड्रागाः प्रोच्यन्ते लोकविश्रुताः।।
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः।
श्रुतीनां द्वाविंशतिश्चैव तानाः पञ्चाशदूनकाः'।। इति।

एवं तद्रागमोहितायास्तव सम्भोगचिह्नितेन त्वत्सङ्केतं गायता सहालिङ्गनानुगानेन तस्या मौग्ध्यं स्फुटमेव कथितमिति भावः। तथा च स्त्रियो हि गीतेन मोहिता भवन्ति, तदुक्तम् (भा. १०।३४।२५)–

'गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्नृप।
स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः।।'

इति श्रीभागवते; श्रुतिश्च–

'अपक्रम्यातिष्ठत् तद्रोहि जन्म ते देवा
अब्रुवन्नयं युष्मदक्रमीन्नास्मानुपावर्त्तते।
बिह्वयामहा इति ब्रह्मगन्धर्वा अतदन्न
गायन् देवाः सा देवानुगायत।
उपावर्त्तत, तस्माद् गायन्तस्त्रिषु कामयते
कामुका एताः स्त्रियो भवन्तीति'।।

सुधि खो देते हैं और यह बेसुधी अलग-अलग रूपों में व्यक्त होती है। कोई तो प्रेमवश उन्हें अपने बाहुपाश में कसती है और इस परिरम्भण में ही अपने को कृतार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराधाया अग्रे तस्या अगौरवसूचनाय काचिदित्युक्तम्।

'पञ्चमो रागभेदे स्यात् पञ्चानामपि पूरणे।
पञ्चमश्चतुरे हृद्ये पञ्चमः पाण्डवोऽस्त्रियाम्।।' इति विश्वः।।२।।

कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम्।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम्।।३।।

कापीत्यादि। कापि मुग्धवधूः मधुसूदनस्य वदनसरोजं मुखपद्ममधिकं यथा स्यात्तथा ध्यायति चिन्तयति। कीदृशम्? विलासेन विलोलयोश्चञ्चलयोर्विलोचनयोर्यत् खेलनं तेन जनित उत्पादितो मनोजः कामो येन अर्थात् तस्यामेव, ताम्। अधिकमित्यपि मुखस्य विशेषणं वा, तदा पुनः कीदृशं मुखपद्मम्? अतुललावण्यास्पदमित्यर्थः। सौगन्ध्यादिगुणख्यापनाय मधुररसस्यानन्देनापि कामोद्बोधकत्वाच्च स्वापहारकत्वाच्च वदनस्य सरोजोपमा। मधुसूदनपदेन तस्यामनुरागस्यास्थिरत्वं ध्वनितम्। तथा च प्रत्यक्षस्य ध्यानादकौशलेन मुग्धवधूरित्युक्तम्।।३।।

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले।।४।।

कापि कपोलेत्यादि। कापि नितम्बवती दयितं श्रेष्ठं कपोलतले चारु मनोहरं यथा स्यात्तथा चुचुम्ब चुम्बनं कृतवती। किंलक्षणा? किमपि कार्यं लपितुं मन्त्रयितुं श्रुतिमूले कर्णमूले मिलिता संलग्ना। कीदृशे? पुलकैः रोमाञ्चैः अनुकूले प्रियाभिलाषसूचके। औत्सुक्येन सहसा कान्तमुखचुम्बनं सखीजनहास्यकरं भवतीति व्याजेन चातुर्यं प्रसार्य तदारब्धमिति भावः।

बना लेती है। एक दूसरी है, जो उनके साथ-साथ पंचम राग की तान उठाकर गाती है, वह कोयल की विह्वल पुकार बनना चाहती है।।२।।

कोई केवल श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र को ही निरखती रह जाती है, अपलक भाव से निहारती रह जाती है। विशेषकर ऐसी आँखों से देखती है, जो स्थिर नहीं रह पातीं, तरह-तरह के विलास के लिए आतुर हो जाती हैं। ऐसा लगता है कि उन आँखों में ही काम का देवता तरह-तरह के खेल खेल रहा हो। आँखें ही जैसे कामना की भाषा बोल रही हों। ऐसे विलस रहे हैं हरि, सब कुछ हरने वाले हरि, सब कुछ ले लेनेवाले हरि और इस विलास में भोली-भाली चित्तभूमि को विलसा रहे हैं।।३।।

एक दूसरी युवती भी है, जो उनके गाल से सट जाती है मानो उनके कान में कुछ रहस्य कहना चाहती है। इसी बहाने वह उनके गाल को छूते समय जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्रापि स्वयमेव प्रथमं चुम्बनेन तस्या अधीरत्वं ध्वनितम्। नितम्बवतीत्यनेन सौन्दर्याधिक्यञ्च कथितम्। अथवा कापि नितम्बवती सुन्दरी परमविदग्धा तव सखी श्रुतिमूले लग्ना, किमर्थम्? किमपि तव सङ्गमवार्त्तां लपितुं कथनार्थमित्यर्थः। तदा किं कृतवती? तदाह–दयितं पुलकैरनुकूले कपोलतले चारु चुचुम्ब, तव कथाश्रवणोदितसात्त्विकविकारेव त्वय्यनुगतत्वसूचके कपोलतले अत एव चारु यथा स्यात्तथा चुचुम्ब अनुमोदनं कृतवती। अयं भावः–यदा तव वार्त्ताश्रवणेनापि एतादृशो भवति, तदा किं वक्तव्यं तव सङ्गमानुरागः, ततो मिलनमेव कार्यम्।।४।।

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले।
मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले।।५।।

केलीत्यादि। काचिद् गोपी अमुं कृष्णं केलिकलाकुतुकेन दुकूले पट्टवस्त्रे विषये विचकर्ष आकृष्टवती। दुकूले गृहीत्वामुं विचकर्षेति केचिद् योजयन्ति। कीदृशम्? मञ्जुलो मनोहरो वञ्जुलो वेतसो यत्र तादृशो यः कुञ्जस्तत्र गतं तव सखीशिक्षया तासां वञ्चनाय प्राप्तम्। कुत्र विचकर्ष? यमुनाजलकूले यमुनाया जलयुक्ते रोधसि। तवागमनाशया निलीय वञ्जुलकुञ्जस्थं श्रीकृष्णं यमुनाकूलं प्रति क्रीडार्थमाकृष्टवतीत्यर्थः। अत्राप्यनुरक्तस्य वस्त्राकर्षणादधीरत्वं व्यङ्ग्यम्। अथवा केलिकलाकुतुकेन तव विलासौत्सुक्येन तासां वञ्चनं कृत्वा यमुनाजलकूले तटे यो वञ्जुलकुञ्जस्तत्र गतममुं काचित् करेण दुकूलं विचकर्षेत्यन्वयः। 'कुतुकञ्च कुतूहलम्' इत्यमरः। 'मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्' इति च। 'वञ्जुलो वकुले ख्यातो वञ्जुलो वेतसे मतः' इति धरणिः। 'दुकूलं क्षौमे सूक्ष्मांशुकेऽपि'।।५।।

देखती है कि वहाँ रोमांच छाया है, तो अनुकूल अवसर पाकर उन्हें भरपूर चूम लेती है, भले ही चूमते समय उसका पृष्ठभाग तक हिला जा रहा हो, जैसे चूमते समय वह स्वयं अपना भार सँभाल न पा रही हो।।४।।

एक दूसरी है, जो और ढीठ है। वह कुछ और तरह के खेल करना चाहती है और उन्हें खींच ले जाना चाहती है, यमुना के बलुहे झुरमुट में, जिसमें कोई साझीदार नहीं हो और वह उनके रेशमी पीताम्बर को हाथ में खींचती है। चलो, मेरे साथ। श्रीकृष्ण ऐसी उत्कण्ठा के साथ खिंचे चले जाते हैं, यह सोचते हुए कि इसको क्या पता कि मैं खिंच रहा हूँ या यह अपने ही चित्त के क्षोभ से खिंची चली जा रही है। मुझे एकान्त में पाना चाहती है, मेरा एकान्त है कहाँ? मेरा प्यार एक निर्बाध खुला प्यार है। इसमें एकान्त कहाँ? अनेक प्रकार के तो विलास कर रहा हूँ, इसमें एकान्त कहाँ? पर एकान्त का यह भ्रम पालती है।।५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे।।६।।

करतलेत्यादि। ननु गोपीभिः सह क्रीडां कुर्वतः श्रीकृष्णस्य कुत्र मय्यनुरागः, कथं वृथा प्रलापं करोषीत्यत आह–स्वयमेव शृणु, काचिद् युवतिर्वराङ्गना राधाभिधाना हरिणा श्रीकृष्णेन प्रशशंसे स्तुता। कीदृशी? रासरसे रससमूहो रासः स चासौ रसश्च तस्मिन् रासे बहुनर्त्तकनर्त्तकीणां नृत्यविशेषो रासस्तस्मिन् यो रसः सङ्गीतकौशलेन चमत्कारविशेषस्तत्र वा। सहनृत्यपरा कृष्णेन सह तुल्यं नृत्यन्ती। कीदृशे रासरसे? करतलयोस्तालेन परस्परं वादनेन तरला चञ्चला या वलयावलिः कङ्कणपङ्क्तिस्तथा कलितो मिश्रितः कलस्वनोऽव्यक्तमधुरशब्दस्तत्सहितो वंशो वेणुर्यत्र तादृशे। अयमभिप्रायः–श्रीराधां विनाऽन्ययुवतिगणे रासोत्सुके सति श्रीकृष्णः पूर्ववृत्तप्रस्तावेन श्रीराधिकास्तोत्रेणाखिलगोपीगणं निर्वर्णयतीति। अथवा–रासरसे रासानुरागे सति सहनृत्यपरा युवतिः हरिणा प्रशशंसे। कस्मिन्? करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे। सम्प्रति तत्करतलताल-मिलिते वेणुकलध्वनौ केनापि सङ्केतेन तव स्तुतिं करोत्येव ताभिर्न लक्ष्यते, अतस्तासां मौग्ध्यमिति भावः। 'द्रुमभेदे करास्फाले तालन्तु हरितालके' इति विश्वः। 'तरलश्चञ्चले खड्गे हारमध्यमणावपि' इति च।

'वंशो वेणौ कुले वर्गे पृष्ठस्यावयवेऽपि च'। 'रासरसस्तु रासे स्यात्' इति च। 'रासस्तु गोदुहां क्रीडा' इति हारावली।।६।।

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम्।
पश्यति सस्मितचारुपरामपरामनुगच्छति वामाम्।।७।।

इन सबसे आगे निकली वह गोपी, जो बाँसुरी की ताल मिलाती हुई बाँसुरी के साथ हाथ से ताल देती है और ताल देते समय अपने-आप चूड़ियाँ हिलती हैं और फिर उसी ताल को दूसरा स्वर देने लगती है। ऐसे सधे तालवाली गोपी जब साथ-साथ नाचती है, तो वह रास में रस की सृष्टि करती है, रस में नयी उत्कण्ठा की सृष्टि करती है, रास के एक मूल तत्त्व की ओर संकेत करती है। ताल मिलाओ, स्वर मिलाओ, समवादी बनो, संवादी न बनो। इसलिए नटवर हरि उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। ऐसे हैं वनमाली और अनेक-अनेक युवतियों के साथ ऐसा है उनका सधा हुआ नृत्य। युवतियाँ बेसुध हैं, नृत्य बेसुध नहीं है। ऐसे रास में श्रीकृष्ण भी गोपियों की भिन्न-भिन्न चित्ताकृतियों के अनुकूल भिन्न-भिन्न प्रकार की चेष्टा में लग जाते हैं।।६।।

कोई आलिंगन के लिए उत्कण्ठित है, उसका आलिंगन करते हैं। कोई चूमना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिलष्यतीत्यादि। कामपि रामां क्रीडाशीलां श्लिष्यति आलिङ्गति, कामपि चुम्बति, कामपि मधुररचनादिना रमयति क्रीडयति। स श्रीकृष्णः स्मितेन ईषद्धसितेन चारु यथा स्यात्तथा परां गोपीं पश्यति, एवं तास्वभिसृतासु दाक्षिण्येनालिङ्गनादिकं दृष्ट्वा रोषेण गच्छन्तीम् अपरां वामां वक्रस्वभावां मनोहरस्वभावां वा तव सखीमनुगच्छति अनुनयार्थमनुगतिं करोति। अथवा– एवं सस्मितावलोकनादिमात्रेण तासां वञ्चनं कृत्वा वामां त्वामनुगच्छति अनुनयार्थमनुरागः (?), अतः सङ्गमार्थं विलम्बं मा कृथा इति भावः। 'सुन्दरी रमणी रामा' इत्यमरः।।७।।

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकेलिरहस्यम्।
वृन्दावनविपिने वलितं वितनोतु शुभानि यशस्यम्।।८।।

श्रीजयदेवेत्यादि। श्रीजयदेवकवेः इदं सर्वस्वरूपं गीतं शुभानि वितनोतु विस्तारयतु। कीदृशम्? अद्भुतकेशवस्य केलिरहस्यं क्रीडाकौशलं यत्र तादृशम्, राधारसाकृष्टस्यापि अनेकविलासवतीनामनुरञ्जकत्वादद्भुतत्वम्। केशवपदेन सौन्दर्यञ्च कथितम्। पुनः कीदृशम्? विपिनविनोदकलया वनविहारकौशलेन वलितं संसक्तम्। पुनः कीदृशम्? यशस्यं यशःप्रदम्। वृन्दावनविपिने ललितमिति पाठे तदा इदं ललितं गीतं शृङ्गारचेष्टितं वा वृन्दावने अद्भुतकेलिरहस्यम्।

अत्राभिसारिका एव नायिका, धृष्टदक्षिणानुकूलशठश्च नायकः। तत्र कामपि रमयति रामां सरागमित्यनेन च धृष्टः। तद्यथा (शृ.ति. १।२७)–

चाहती है, उसे चूमते हैं, कोई रमना चाहती है, तो उसके साथ रमण करते हैं। जो भर दीठ देख रही है, उसे भर दीठ देखते हैं और जो उन्हें ले जा रही है, उसके पीछे-पीछे जाते हैं। सबका मन भरते हैं। सबको पहले खाली कर देते हैं, दूसरी आकांक्षाओं से, दूसरे सन्दर्भों से, दूसरे वातावरण से अलग कर देते हैं और फिर भर देते हैं।।७।।

श्री जयदेव की इस अष्टपदी में हरि के अनन्त रूपों में हरने का ही व्यापार करनेवाले रहस्य का उन्मीलन है। यह रहस्य है क्या? हरि की केलि उन्हीं भक्तों में विभक्त करना, अपने को अपने प्रेमियों में बाँटना और बाँट करके पूरा होना। यही है इस केलि का रहस्य। इस रहस्य को जो गाएगा, जो इसका अभिनय करेगा, वृन्दावन के इस रहस्य को, लालित्यभरे रहस्य को, जो रूपायित करेगा, मुखरित करेगा, उसका सब कुछ शुभ होगा, सब कुछ यश बढ़ानेवाला होगा; क्योंकि यश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अभिव्यक्तान्यतरुणीभोगलक्ष्मापि निर्भयः।
मिथ्यावचनदक्षश्च धृष्टोऽयं खलु कथ्यते।।'

दक्षिणस्तु कथितः, प्राक् (गी. ४।१)। शठस्तु यथा (शृ.ति. १।२८)–

'प्रियं वक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम्।
निगूढमपराद्धञ्च शठोऽयं कथितो बुधैः'।।

मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतमिति रमयति रामाञ्चेत्यनेनोक्तः। अपरां रामामनुगच्छतीत्यनुकूलश्च कथितः।. तल्लक्षणं वक्ष्यतेऽग्रे (गो. १६)। श्रीराधायामनुकूलोऽयं सदा। धीरोदात्तानुकूलताप्यस्यात्र सङ्घटते। तद्यथा (उ० १।२८)–कुवलयदृशः सङ्केतस्था दृगञ्चलकौशलैर्मनसिजकलनादि-प्रस्तावनामभितन्वताम्। न किल घटते राधारङ्गप्रसङ्गविधायिता, व्रतविलसिते शैथिल्यस्य च्छटाप्यघविद्विषः।' यद्यपि धीरललितानुकूलोऽयं नायकः, तथापि सर्वे नायकगुणाः श्रीराधारसपोषणाय तत्तद्भावैः श्रीकृष्णे सम्भजन्ति।।८।।

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम्।।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि! मूर्त्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति।।१२।।

ननु सकलकलाभिज्ञः श्रीकृष्णः कथं हावाद्यनभिज्ञाभिर्गोपीभिः सह केलिं कृतवान्? इत्यत आह–विश्वेषामित्यादि।

हे सखि राधे! मधौ वसन्ते मुग्धो मनोहरो हरिः क्रीडति। किं कुर्वन्? विश्वेषां गोपीजनानां सर्वेषां प्राणिनां वा अनुरञ्जनेन आनन्दं जनयन्। पुनः

की भी तो सार्थकता यही है कि सुख-सीमाओं का अतिक्रमण कर जाए, देश और काल को लाँघ जाए। अपने देश-काल में जो यश मिलता है वह यश है कहाँ? इस अष्टपदी के बाद दो और श्लोक हैं, जिनमें पूरी लीला को, नाट्य-प्रबन्ध को जोड़नेवाली टिप्पणी है।।८।।

अब तक की अष्टपदियों में नाचनेवाली गोपवधुएँ मुग्धा थीं, पर उन मुग्धाओं में बढ़ते-बढ़ते श्रीकृष्ण भी मुग्ध हो जाते हैं, श्रीकृष्ण भी भोले बन जाते हैं। चतुर नागर श्रीकृष्ण की सब चतुराई चली जाती है। इस नाच से वह स्वयं भोले-भाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किं कुर्वन्? इन्दीवराणां नीलकमलानां या श्रेणी पङ्क्तिस्तद्वत् श्यामलैः नीलैः कोमलैः सुकुमारैरङ्गैरवयवैः अनङ्गस्य कामस्य उत्सवं उपनयन्नुपस्थापयन् स्वावयवांशभूतैरवयवैस्तस्यापि साङ्गीकरणात्। सौकुमार्यञ्च कोमलस्यापि स्पर्शासहतोच्यते, तदुदाहृतिः प्राक्कृतैव। अङ्गैरिति सौन्दर्यं कथितम्, तदुक्तम् (र.सु. १।१८२)–

'अङ्गप्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशो यथोचितम्।
सुश्लिष्ट-सन्धिबन्धः स्यात्तत् सौन्दर्यमुदीर्यते'।। इति।

कीदृशो हरिः? अभितः सर्वतो बाह्यैरवयवैः अन्तश्चेतसा उभयतः प्रत्यङ्गमङ्गमङ्गं प्रति स्वच्छन्दं यथास्यादेवं व्रजसुन्दरीभिरालिङ्गितः। क इव? मूर्त्तिमान् शरीरी शृङ्गार इव शृङ्गाररस इव। तथा च शृङ्गाररसस्य श्यामत्वात् श्रीकृष्णसादृश्यम्। तदुक्तं भरतेन (नाट्यशास्त्रे- ६।४२)–

'श्यामो भवति शृङ्गारः सितो हासः प्रकीर्त्तितः।' इति।

यथा मुग्धो मनोहरः शृङ्गारो रसो मधौ वसन्ते क्रीडति सर्वत्र विलसति, किं कुर्वन्? अङ्गैः शृङ्गाररसस्याङ्गभूतैः कटाक्षादिभिः सञ्चारिभावैश्च अनङ्गोत्सवमुपनयन्, न केवलमेतैः, विभावैरपीत्याह–इन्दीवरेत्यादि। इन्दीवरश्रेणीभिर्नीलोत्पलपङ्क्तिभिः श्यामलैः गाढान्धकारो नीलनिचोलतमालवनादिभिः स्यादेवं मृदुशय्यादिभिः। अत्र हेतुगर्भविशेषणमाह–स्वच्छन्दमित्यादि। स्वच्छन्दं यथा कोमलैर्व्रजसुन्दरीभिः अङ्गमङ्गं प्रति आलिङ्गितः आश्रितः; शृङ्गाररसस्याङ्गानां विभावादीनां मध्ये कयाचित्ताम्बूलस्रक्चन्दनाद्युद्दीपनविभावरूपं, कयाचित् स्मितकटाक्षाद्यनुभावरूपं, कयाचिच्च शङ्कासूयादिसञ्चारिभावरूपं कयाचिच्च रोमाञ्चस्वेदादिसात्त्विकभावरूपं शृङ्गाररसस्याङ्गमाश्रितमिति भावः। विभावादीनामङ्गत्वं प्रति तु भरतः (ना. शा. ६।६)–

'विभावैरनुभावैश्च भावः सञ्चारिसात्त्विकैः।
जनितो बोधितः स्फीतो वृद्धः शृङ्गार इष्यते'।। इति।

विह्वल किशोर बन जाते हैं। वे साक्षात् शृंगाररस बन जाते हैं और शृंगाररस तो भोला होता ही है, उसमें छल कहाँ? कहाँ दुराव? भोले न होते तो ऐसी क्रीड़ा को सारे संसार में प्रकटित क्यों कर देते, इतना खुला क्यों कर देते? वे तो चाहते हैं कि इस केलि के रहस्य को समझो, इसे वासना के कलुष के रूप में न लो, इसे विश्वव्यापी महारास के रूप में लो। इसमें इसका उद्देश्य सबको आनन्द देना है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभावस्य सामान्यलक्षणन्तु रसरत्नदीपिकायाम् (३।१)–

'भावयन्ति विशेषेण ये रसान् वै मनोहरान्।
ते विभावास्तु कथ्यन्ते नाट्यशास्त्रविशारदैः।।'

तत्र शृङ्गारविभावा भरतेनोक्ताः (नाट्यशास्त्रे- ६।४७)–

'ऋतुमाल्यालङ्कारैः प्रियजनगान्धर्वकाव्यसेवाभिः।
उपवनगमनविहारैः शृङ्गाररसः समुद्भवति।।'

अनुभावसामान्यलक्षणं (रसरत्नदी. ३।१०)–

'क्रियन्ते यै रसाः सम्यक् लोकानुभवगोचराः।
तेऽनुभावास्तु कथ्यन्ते नाट्यशास्त्रविशारदैः।।'

तत्र शृङ्गारानुभावाः (नाट्यशास्त्रे- ६।४८)–

'नयनवदनप्रसादैः स्मितमधुरवचोध्वनिप्रमोदैश्च।
मधुरैश्चाङ्गविकारैस्तस्याभिनयः प्रयोक्तव्यः'।।

व्यभिचारिसामान्यलक्षणं दशरूपके (४।७)–

'विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।'

तत्र शृङ्गारव्यभिचारिणः शृङ्गारतिलके (३।२८-२९)–

'शङ्कासूया तथा ग्लानिर्व्याधिश्चिन्ता स्मृतिर्धृतिः।
औत्सुक्यं विस्मयो हर्षो व्रीडोन्मादौ भयन्तथा।।
विषादो जडतोन्निद्रावहित्था चापलं मतिः।
इति भावाः प्रयोक्तव्याः शृङ्गारे व्यभिचारिणः।।' इति।

सात्त्विकभावाः शृङ्गारतिलके (१।१५)–

'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः।।' इति।

किसी एक को नहीं। श्रीकृष्ण इसी भाव से ऐसा उत्सव रचते हैं। वसन्त में ऐसा मदनोत्सव रचते हैं, जो दूसरे मदनोत्सवों से बिलकुल भिन्न है, क्योंकि इसमें विभिन्न मनोवृत्तियाँ एक हो गयी हैं, एक की ओर ही अभिमुख हो गयी हैं, एक के ही वश में हो गयी हैं और यह तो सम्भव हुआ है, श्रीकृष्ण के नीलकमल जैसे शुद्ध और श्यामल, नीलकमल की पंक्तियों जैसे स्निग्ध श्यामल अंगों की तरह-तरह की गति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतेषामवान्तरलक्षणानि ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यन्ते। अत्र सकलकलाभिज्ञस्यापि व्रजसुन्दरीभिः सह तत्तदनुसारेण क्रीडतः कृष्णस्य न दक्षत्वहानिः, तासां तथैवानुरञ्जनात्; अत एव विश्वेषामनुरञ्जनेनेत्यनेन विश्वानुरञ्जकत्वं कृष्णस्योक्तम्, तेन च तासु साधारणप्रेमकथनेन तस्या एवोत्कर्षः कथित इति भावः। अथवा हे सखि! तवानुरञ्जनेन प्रीत्युत्पादनेन विश्वेषां सर्वेषां सखीजनानां नः आनन्दं जनयन् क्रीडतीत्यर्थः। स्त्रीसंयोगेनास्मिन्नसूया न कर्त्तव्येति भाभिः स्वातन्त्र्येणालिङ्गितत्वात्; तस्य तु तवालिङ्गने प्रीतिरिति भावः। अन्यत् समानम्। 'शृङ्गारः सुरते नाट्यरसे च गजमण्डने' इति विश्वः। 'विश्वं सर्वं भवश्चापि' इति च। 'इन्दीवरन्तु नीलेऽस्मिन्' इत्यमरः। 'कालश्यामलमेचकाः' इति च। 'मूर्त्तिः काठिन्यकाययोः' इति च।

'पुंसः स्त्रियां स्त्रियाः पुंसि सम्भोगं प्रति या स्पृहा।
स शृङ्गार इति प्रोक्तो रतिक्रीडादिकारणम्।।'

इति (अमरटीकायां भरतः)। तथा च व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गित इत्यनेनाभितः सर्वतो यदङ्गं या आलिङ्गितवती तदङ्गं माधुर्यातिरेकात् सा त्यक्तुं समर्था न बभूवेति भावः। उक्तञ्च (भाग. १०।३२।२,४) 'साक्षान्मन्मथमन्मथः', 'काचित् कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा' इत्यादि। स्वच्छन्दमिति च यथेष्टविलासास्पदत्वं तस्य कथितम्।।१२।।

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवा-
मभ्यर्णे परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया।
साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति-
व्याजादुद्भटचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः।।१३।।

से। इसी कारण वे एक ही समय चारों ओर सुन्दरियों से घिरे हुए हैं और चारों ओर अंग-अंग से उनका आलिंगन करते हैं। इसे हम मूर्तिमान् शृंगार नहीं कह सकते। कैसे कहेंगे? सबको अपने में भरने वाला और सबके द्वारा भरा जानेवाला जो भाव है वह शृंगार का सार है, शृंगार का परमतत्त्व है। ऐसे परमतत्त्व के साकार रूप श्रीकृष्ण ने एक खेल खेला है।।१२।।

श्रीकृष्ण के इस रास के कारण श्रीकृष्ण में निहित परम प्रेमतत्त्व, परम पुरुषार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं सर्गान्ते कविराशिषं प्रयुङ्क्ते– हरिः श्रीकृष्णो वो युष्मान् पातु रक्षतु। किम्भूतो हरिः? स्मितेन मन्दहसितेनैवान्यनारीणां मनो हर्तुं शीलमस्य स तथा। पुनः किम्भूतः? राधया उद्भटं प्रकटमेव यथा स्यात्तथा चुम्बितः। किं कृत्वा? आभीरवामभ्रुवां गोपसुभ्रुवामभ्यर्णे समीपे उरो वक्षो निर्भरं गाढं यथा भवत्येवं परिरभ्यालिङ्ग्य। किंलक्षणानां गोपाङ्गनानाम्? रासे रासक्रीडायामुल्लासभरेण हर्षातिशयेन विभ्रमभृतां विलासवतीनां विभ्रमभृत् न पश्यतीति; ननु भवतु तासु विभ्रमः, प्रत्यक्षं युवतिगणं पश्यन्त्या तया कथं चुम्बितः? तत्राह–प्रेमान्धया प्रेम्णा हर्षातिशयेनान्धया। श्रीकृष्णं विनाऽन्यन्न पश्यतीति तया। लज्जाजनकस्य द्वितीयस्यादर्शनादेव निर्भरमालिङ्ग्य चुम्बनं कृतवतीति भावः। तत्रापि न केवलं ग्राम्यतया कृतवती, किन्तु सचातुर्यमित्याह–त्वद्वदनं त्वन्मुखं सुधामयममृतमयं साधु शोभनमिति व्याहृत्य गीतस्तुतिव्याजाद् गानप्रशंसाच्छलेन। यद्गीतममृतमयं तत्तद्वदनं सुधानिधानमिति साधु युक्तमेतदिति चातुरीमारचय्य चुम्बनं कृतवतीति भावः।।१३।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्ये सामोद-दामोदरो नाम प्रथमः सर्गः।।१।।

के इस प्रकार के खुले प्रकाश के कारण मलयाचल से चन्दनवन में आनेवाली बयार कृतार्थ हो गयी है। ऐसा लगता है कि कहाँ तो चन्दनवन में अंग-अंग में साँप लिपटे रहते थे और कहाँ उस चन्दन के कानन से निकलने को मन? उस चन्दन की गन्ध को, उन भुजंगों के विष से चन्दन की छटपटाती हुई गन्ध को, भुजंगों के विशद जाल से मुक्त करने का एक अवसर मिला है। चलो, उत्तर की ओर जहाँ हिमालय की छाया है, जहाँ ताप भी ठण्डा हो जाता है। यहाँ वृन्दावन में उसी शीतलता की ऐसी बयार आती है, तो रस को आत्मसात् करनेवाले रसाल के शिखर पर रसाल का मुकुट आम की मंजरी की कलियों से रचने लगता है। कोयल उसे देखते ही हर्ष से भर कर कुहू-कुहू करने लगती है। बुलाने लगती है कि वसन्त, अब तुम कितनी दूर रहोगे? वसन्त है क्या? प्राणों की विह्वल पुकार है।।१३।।

।।इति प्रथमः सर्गः।।१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ द्वितीयः सर्गः।।

अक्लेश-केशवः

विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ
विगलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यतः।
क्वचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रतमण्डली-
मुखरशिखरे लीना दीनाप्युवाच रहः सखीम्।।१४।।

पूर्वसर्गेऽभिलाषचिन्तारूपां दशाञ्च निरूप्येदानीं स्मरणरूपां दशां वर्णयति, तल्लक्षणं वर्ण्यतेऽग्रे (गी० ७।२, ८।१)। तत्तद्वचनैः सख्या प्रेरिता राधा समक्षमन्याभिः सह वर्तमानं कृष्णं द्रष्टुमसहमाना क्वचित् कुञ्जान्तरे गत्वा सखीमाह। तदेव दर्शयति–विहरतीत्यादि।

श्रीराधा सखीं रहोऽपि गोप्यमपि वक्ष्यमाणमुवाच उक्तवती। कीदृशी सा? ईर्ष्यावशेनासहिष्णुतया अन्यतः अन्यत्र गता। ईर्ष्यायां हेतुमाह— विगलितेत्यादि। विगलितो गतो निजः स्वीय उत्कर्षोऽहमेवास्याति-प्रणयिनीत्येवंरूपस्तस्मात्। अन्यस्त्रीभ्यो निजातिरेकापगमादित्यर्थः। क्व सति? हरौ कृष्णे वने विहरति सति। कीदृशे हरौ? साधारणो राधायामन्यगोपाङ्गनासमानः प्रणयः प्रेमा यस्य तादृशे, असाधारणप्रणये इति वा अतुलितप्रेमवतीत्यर्थः। अतो दीना दुःखिता, पुनः कीदृशी? क्वचिदपि लताकुञ्जे लताभिरतिनिविडे कुञ्जे लीनाऽदृश्यतयैव स्थिता। कीदृशे कुञ्जे? गुञ्जन्तः शब्दायमाना ये मधुव्रता भ्रमरास्तेषां मण्डली पङ्क्तिस्तया मुखरं वाचालं शिखरमग्रभागो यस्य तादृशे। अत्र कुञ्जेनैव लताच्छादितगृहप्राप्तौ लतापदमतिनिविडत्वसूचनाय। 'प्रणयः प्रेम्णि विश्रम्भे' इति विश्वः। 'ईर्ष्यामाहुः समानेषु मानदानादमर्षणम्।' तथा च भ्रमराणां शब्देनाधिक-

---

श्रीकृष्ण के आमोद-प्रमोद से और उसकी चर्चा से श्रीराधा मन में और अधिक कातर हो गयीं– मेरे अनन्य प्रेमी हरि ऐसे कैसे हो गये? ऐसे मेरे बिना कैसे विहार में उनका मन लग रहा है? कैसे उन्होंने मेरे प्रेम को साधारण मान लिया है? कैसे उन्होंने साधारण में ही अपनी रुचि जगा ली है? मेरे रहते हुए मेरी प्रतीक्षा उनसे नहीं हुई और उन्होंने रास शुरू कर दिया। मेरा तो सब कुछ मान ही घट गया। यह सब सोचते-सोचते राधा ईर्ष्या से जल उठीं और उस स्थान से खिसक गयीं। 'मुझे नहीं देखना है यह सब कुछ। मुझे नहीं सुनना है गोपियों से श्रीकृष्ण के विहार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावोद्रेकः कथित इति भावः। ईर्ष्यावशेनेत्यनेन व्यभिचारिभावानां प्रवेशः कथितः।।१४।।

गीतम्-५

[गुर्जरीरागप्रतिमण्ठतालाभ्यां गीयते]

सञ्चरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम्।
चलितदृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम्।।
रासे हरिमिह विहितविलासं
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम्।।ध्रुवम्।।१।।

किमुवाचेत्यत आह— सञ्चरदित्यादि। **गीतस्यास्य गुर्जरी रागः, तालस्तु प्रतिमण्ठकः। रागलक्षणं प्राक् कथितम् (गी. २।१)।ताललक्षणम्–**

'तारश्चाप्यपरश्चैव विचारः कन्दुसंज्ञकः।
चत्वारः कथिता ह्येते प्रतिमण्ठा विचक्षणैः।।
विरामान्तद्रुतद्वन्द्वं गुरुश्चैकस्ततः परम्।
सुरङ्गतालः गातव्यस्तालस्तु प्रतिमण्ठकः।।
गुरुरेको भवेद्यत्र सन्निपातः स कथ्यते।
अपरप्रतिमण्ठोऽसौ विद्वद्भिस्तेन गीयते।।
लघुद्वयं विरामान्तं ताले कन्दुकसंज्ञके।
विचारो गीयते तेन विलम्बश्चाल्पशो भवेत्।।
द्रुतमेकं भवेद्यत्र स तालः खण्डसंज्ञितः।
द्रुतत्रयेण गातव्यः कुन्दश्च प्रतिमण्ठकः'।।

की चर्चा और कहीं किसी दूसरे लतामण्डप में जहाँ पर चारों ओर से भँवरे मँडरा रहे हैं और गुनगुना रहे हैं।।१४।।

उनकी गुनगुनाहट से लताकुंज की चोटी मुखरित हो उठी है। उसके भीतर छिपे रहने में बड़ी राहत है। बाहर के शोर से बचेंगे, बाहर की चर्चा से बचेंगे, पर चर्चा से बचा भी कैसे जाय? श्रीकृष्ण के ध्यान से कैसे बचा जा सकता है? उनके ध्यान से बचने की कोई जगह है ही नहीं । सबसे छिपा जा सकता है, श्रीकृष्ण से नहीं। श्रीकृष्ण तो उपस्थित ही हो जाते हैं और वे सीधे उपस्थित न हों, तो उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरङ्गः सन्निपातः कन्दुकः खण्ड इति प्रतिमण्ठश्चतुर्विधः। श्रीराधायाः सुष्ठु रङ्गवर्णनात् सुरङ्गोऽयं प्रतिमण्ठकः। अपरेऽग्रिमप्रबन्धेषु ज्ञेयाः। गीतार्थस्तु– हे सखि! मम मनो हरिं चित्तवृत्तिचौरं स्मरति स्मृतिगोचरं करोति, पूर्वानुभूतविषयत्वात्; कीदृशम्? इह वने रासक्रीडायां विहितविलासं विहितः कृतो विलासो मया सह क्रीडा येन तादृशम्। पुनः कीदृशम्? कृतः परिहासो नर्मकेलिर्येन स तथा तम्। अथवान्यगोपाङ्गनानां कृतपरिहासं यथा स्यात्तथा मया सह विहितो विविधविभ्रमो येन तादृशं हरिं चित्तचौरमिह लताकुञ्जे लीनाया अपि मम मनः स्मरति। अथवा विहितः कृतो मम विलासो विभ्रमो येनासावित्यनुरागेण मत्तः कारित इत्यर्थः। तदुक्तञ्च (उ. ११।४२-४३)–

'अधीनस्यापि सेवायां कान्तस्यानभिनन्दनम्।
विभ्रमो वामतोद्रेकात् स्यादित्याख्याति कश्चन'।।

तद्यथा–

'त्वं गोविन्द मयासि किं नु कबरीबन्धार्थमभ्यर्थितः,
क्लेशेनालमबद्ध एव चिकुरस्तोमो मुदं दोग्धि मे।
वक्त्रस्यापि न मार्जनं कुरु घनं घर्माम्बु मे रोचते,
नैवोत्तंसय मालतीर्मम शिरःखेदं भरेणाप्स्यति।।' इत्युज्ज्वले।
स्त्रीणां विलासविव्वोकविभ्रमा ललितं तथा।
हेला लीलेत्यमी भावा क्रियाः शृङ्गारभावजाः।।' इत्यमरः।

तथा च स्मरतीत्यनेनाष्टविधसम्भोगेच्छैव ध्वन्यते, यतस्तस्याष्टविधस्य स्मरणमेव साधनम्। यथा–

'स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्'।। इति।

लिए प्यार तो उस अनुपस्थिति में और अधिक उमड़ने लगता है। ऐसी कतरायी हुई राधा एक अत्यन्त गोपन रूप में सखी से कहती हैं कि किसी से कहना मत, मेरी हँसी उड़ेगी, पर तुम ही कुछ उपाय करना कि यह सब कुछ देखा, सब कुछ सुना, सब कुछ दूसरा था, पर मेरा मन यही कहता है कि मैं भी उनके साथ रमूँ। सखि!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र केलिः मानसी क्रीडा, दिदृक्षया प्रकर्षेण ईक्षणं प्रेक्षणम्, कथं मिलिष्यतीति विचारः सङ्कल्पः, अध्यवसायो मिलननिश्चयः, सुरतसुखप्राप्तिः क्रियानिवृत्तिः। केचित्तु इह रासे इति व्याकुर्वन्ति, तत्तु न समीचीनम्, अनुपपत्तिग्रस्तत्वात्, इहपदार्थस्य प्रत्यक्षे शक्तत्वात्; तदुक्तं भट्टैः– 'इदमः प्रत्यक्षगतमिति।' तस्मान्न चात्र रासः प्रत्यक्षस्तस्यातीतत्वात्, राधायाश्च लताकुञ्जे लीनत्वात्, न तद्विना रासस्य सम्भव इति। एतच्च ध्रुवपदम्। उत्तमामध्येयं नायिका; तल्लक्षणम्–

'दोषानुरूपकोपा यानुनीता च प्रसीदति।
रज्यते च भृशं नाथे गुणहार्य्योत्तमा यथा।।

कान्ते किं कुपितासि कः परजने प्राणेश कोपो भवेत्
कोऽयं सुभ्रु परस्त्वमेव दयिते दासोऽस्मि कस्ते परः।
इत्युक्त्वा प्रणतं प्रियः क्षितितलादुत्थाप्य सानन्दया
नेत्राम्भःकणिकाङ्किते स्तनतटे तन्व्या समारोपितः।।'

इति शृङ्गारतिलके (१।८९)। यथा वा (उ० ५।९८)–

'कर्तुं शर्म क्षणिकमपि मे साध्यमुज्झत्यशेषं,
चित्तोत्सङ्गे न भजति मया दत्तखेदाप्यसूयाम्।
श्रुत्वा चान्तर्विदलति मृषाप्यन्यवार्त्तालवं मे,
राधा मूर्द्धन्यखिलसुदृशां राजते सद्गुणेन।।' इति।

किञ्च (उ० ५।२७)–

'समानलज्जामदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी।
किञ्चित् प्रगल्भवचना मोहान्तसुरतक्षमा।।
मध्या स्यात् कोमला क्वापि माने कुत्रापि कर्कशा'।। इति।

अथ पदानि–कीदृशं हरिम्? सञ्चरता तानप्रतानक्रमेण स्फुरता अधरेण ओष्ठेन सुधामधुध्वनिमुखरितो वादितो मोहनवंशः परमोहकारी वेणुर्येन

ऐसा कर। भले ही यह रास रचाकर प्रियतम ने मेरे हृदय का उपहास किया है, पर ईर्ष्या से मेरा मन यही कहता है,जैसे भी हो,तुम ऐसी जुगत लगाओ कि वे मेरे साथ वैसे ही रमें जैसे रमते थे। श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए तो मुझे यह लगता है– अधर फरक रहे हैं, उनका अमृत बाँसुरी में ढलता जा रहा है और मधुर ध्वनि बनकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तादृशम्। अथवा सञ्चरन्त्या संक्रममाणया अधरसुधया मधुरध्वनिर्यत्र तद्यथा स्यात्तथा मुखरितो मोहनाख्यो वेणुर्येन तादृशम्। सञ्चरदधरसुधामधुरध्वनीति क्रियाविशेषणम्, क्रियाऽव्ययविशेषणानां क्लीबत्वमेकवचनान्तत्वं वाच्यमिति। तदुक्तम् (भाग० १०।२१।५)-'रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन्' इति। (भाग० १०।२९।४०) 'का स्त्र्यङ्ग ते कलपदामृतवेणुगीत-सम्मोहितार्थचरितान्न चलेत्' इति वा। यथा वा (पद्यावल्यां २३३)-

'सत्यं शृणोमि सखि! नित्यनवप्रियोऽसौ,
गोपस्तथापि हृदयं मदनो दुनोति।
युक्त्या कथञ्चन शमं गमितेऽपि तस्मिन्,
मां तस्य कालमुरली कवलीकरोति।।'

इति तद्वंशरवमोहितं मम मनः साम्प्रतं कृतापराधमपि तं स्मरतीति भावः। पुनः कीदृशम्? चलितः केनापि भावविशेषेण मत्सम्माननाय घूर्णितो दृगञ्चलोऽपाङ्गो यत्र एवं यथा स्यात्तथा चञ्चलो दोलायमानो मौलिः शेखरो यस्य कपोलयोर्विलोलौ चञ्चलौ वतंसौ कर्णाभरणे च यस्य तादृशम्। अनेन शिरःकम्पदोषं विनैव शेखरकुण्डलचालनेन वादकवैचित्री कथिता। तथा चाधरसुधापदोपादानेन तदाननस्य चन्द्रादप्यानन्दकरत्वं द्योतितम्। 'पुंस्युत्तंसावतंसौ द्वौ कर्णपूरे च शेखरे' इति, वतंसः अवतंसः 'वष्टि भागुरिरल्लोपमिति' अवस्याकारलोपः।।१।।

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम्।
प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम्।।२।।

बजता जा रहा है, विश्व को मोहित करता जा रहा है। बाँसुरी बजाते समय आँखें भी उनकी नाचती रहती हैं। इसके साथ-साथ सिर भी हिलता रहता है और सिर के हिलने से उनके कान में खुसा हुआ आभूषण उनके गालों पर हिलता रहता है। ऐसे श्रीकृष्ण से मुझे मिलाओ। मुझे उनके साथ रमाओ। मुझसे रहा नहीं जाता। श्रीकृष्ण मोर का पंख अपने सिर में मुकुट बनाकर धारण किये हैं और उनके केश, मोरपंख में जो गोल-गोल, बीच-बीच में छिटका हुआ रहता है, उसे कवि चन्द्रक कहते हैं- छोटा चन्द्रमा कहते हैं।।१।।

ऐसे असंख्य चन्द्रमा उनके केशों को घेरे हुए हैं। बड़ी तरस और आशा से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ननु व्यासङ्गादिना स विस्मर्यतामित्यत आह—चन्द्रकेत्यादि। चन्द्रकेण विचित्रवर्णचिह्नितेनाग्रभागेन चारूणां मनोहराणां मयूरशिखण्डकानां मयूरपिच्छानां मण्डलेन समूहेन वलयिता वेष्टिताः केशा येन तादृशम्, तथा चात्र मयूरादिदर्शनेनापि तस्यैव स्मरणं भवतीति ध्वनितम्। पुनः कीदृशम्? प्रचुरैर्बाहुल्यैः पुरन्दरधनुर्भिरनुरञ्जितः चित्रितो यो मेदुरः सान्द्रस्निग्धो मुदिरो मेघस्तद्वत् शोभनो वेश आकृतिर्यस्यास्तादृशम्। अत्र नानामणिखचितहार-मुकुटकेयूरादीनामिन्द्रधनुभिः साम्यम्, श्रीकृष्णस्य च मेघसाम्यं बोध्यम्। इयञ्चाभूतोपमा प्रचुरपुरन्दरधनुर्भिरनुरञ्जनस्याप्रसिद्धेः। अथवा केशानां कृष्णस्य वा मेघसाम्यं, शिखण्डकानां धनुर्भिः साम्यं वनमालाकृष्णयोर्वा। 'समौ चन्द्रकमेचकौ' इत्यमरः। 'शिखण्डस्तु पिच्छबर्हे नपुंसके' इत्यमरः। 'वेष्टितं स्याद्वलयितम्' इत्यपि। 'मुदिरः कामुकेऽम्बुदे' इति विश्वः। 'मुदिरो जलदः प्रोक्तो मुदिरो हर्षसम्मतः' इत्यनेकार्थः। 'वेशो वेश्यागृहे प्रोक्तो नेपथ्ये गृहमात्रके' इत्यपि।।२।।

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्भितलोभम्।
बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मितशोभम्।।३।।

गोपेत्यादि। गोपकदम्बस्याभीरसमूहस्य या नितम्बवत्यः प्रशस्तनितम्ब-शालिन्यः स्त्रियस्तासां चुम्बने लम्भितः प्रापितो लोभो येन तम्। अथवा गोपकदम्बनितम्बवतीनां मध्ये मम मुखचुम्बने लम्भितो लोभो येन तम्। लम्बितेति पाठे लम्बितो लम्बीकृतो विस्तारित इत्यर्थः। गोपकदम्ब-नितम्बवतीभिर्मुखचुम्बने लम्भितः प्रापितो लोभो यस्य तमिति वा। तस्य तु प्रणयो मय्येव स्वाभाविकस्ताभिर्बलात्कारित इति भावः। पुनः कीदृशम्?

घेरे हुए हैं कि कुछ मिल जाय। इस मोरपंख के कारण और इसकी आभा पीत वसन पर पड़ने के कारण ऐसा लगता है कि जैसे हजारों इन्द्रधनुष श्रीकृष्ण के लिए नील कलेवर के आकाश में उग आये हों और श्रीकृष्ण इन्द्रधनुष का वेश पहने खड़े हों। ऐसे श्रीकृष्ण ने मेरे बिना रास किया है,तो भी मुझे उन्हीं के साथ रमना है। कुछ उपाय करो।।२।।

वह जानती हैं कि हजारों-हजार श्रोणीभारवाली, अलस गतिवाली, गोपललनाएँ उन्हें चूम रही हैं और चूमने का उनका लोभ कम ही नहीं होता। मुझे उन्हीं अधरों के चुम्बन का लोभ हो जाता है। बन्धूक पुष्प की तरह से लाल-लाल रसीले अधरों के कारण ही तो श्रीकृष्ण ऐसे आकर्षक हैं। इन्हीं अधरों से उनकी कुटिल मुस्कान बीच-बीच में दीप्त रहती है। बन्धूक का एक नाम बन्धुजीव भी है। उसका सीधा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्धुजीवपुष्पवन्मधुरो मनोहरोऽधरपल्लवाकृतिरधरो यस्य तम्। अथवा बन्धुं जीवयतीति बन्धुजीवः प्रियजनस्य जीवनममृतनिधानत्वात्, स चासौ मधुरोऽधरपल्लवो यस्य तम्। मधुरपदेन सरसता, पल्लवपदेन सुकुमारतारुणता च कथिता। उल्लसितेन विकसितेन स्मितेन शोभा यस्य तम्। अनेन इन्दीवरे बन्धूकोद्भवस्तत्र कुन्दोदय उपमीयते; तथा च बन्धूकादिभिः स एव स्मर्यत इति भावः। 'रक्तकस्तु बन्धूको बन्धुजीवकः' इत्यमरः। 'सरसोऽपि मधुरः प्रोक्तो मधुरोऽथ मनोहरः' इत्यनेकार्थः।।३।।

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितवल्लवयुवतिसहस्रम्।
करचरणोरसि मणिगणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम्।।४।।

विपुलेति। विपुलो विस्तीर्णः पुलको रोमाञ्चो यत्र तादृशाभ्यां भुजपल्लवाभ्यां पल्लववत् कोमलाभ्यां बाहुभ्यां वलयितं वेष्टितं वल्लवयुवतीनामाभीरकान्तानां सहस्रं येन तादृशम्। अत्र वलयितमित्यनेनापि अवज्ञया तासां वेष्टनमात्रं, सरहस्यालिङ्गनादिकं तस्य तु मय्येवेति ध्वनितम्। पुनः कीदृशम्? करयोश्चरणयोरुरसि च यानि मणिमयानि भूषणानि अलङ्करणानि तेषां किरणैर्विभिन्नं नाशितं तमिस्रं तमो येन तम्। 'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः। अथवा विपुलः पुलको यासां तास्ताश्च भुजपल्लवेन वलयिता वेष्टिताश्च एवम्भूता या वल्लवयुवतयस्ताभिः सह समकालमेव स्रवतीति सहस्रमिति। एवंविधं का युवती न स्मरतीति भावः। करचरणोरसि मणिगणभूषणकिरणैर्विभिन्नं तं विशेषेण विभिद् भेदो येभ्यस्ते विभिदः सपत्नरूपा शत्रवो नता यस्मात्तं

सादा अर्थ होता है, अपने बन्धु को जीवन देनेवाला। इन अधरों में अपने साथ बँधे हुए विशेष व्यक्ति से हमारी जैसी जीवन की प्यासी नारियों को या कहें उन्हीं की चित्तवृत्तियों को प्राणरस मिलता है। कई प्रकार से मिलता है। इन अधरों के रस से सिंचित वंशी के स्वर से मिलता है।।३।।

इन अधरों के साक्षात् रस से मिलता है। ऐसा होता है रस। जैसा रस नये लाल आम के पल्लवों का होता है, कुछ-कुछ खट्टा-सा, कुछ कसैला, कुछ पी लेने पर मुँह में मीठा-मीठा-सा होता है और कुछ केवल आँखों से उनके अधरों पर खिलती हुई मुस्कान के निरखने से होता है। सखि! मुझे वह रस इस वसन्त में नहीं मिला, मेरा तो जन्म व्यर्थ है। मैं देख रही हूँ श्रीकृष्ण की बाँहें हजार-हजार युवतियों को अपने घेरे में लिये हुए हटती नहीं और पुलकित होती रहती हैं। उनके हाथों में, पैरों में, छाती पर तमाम मणिमय आभूषण हैं। इन मणियों की कान्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्भूषणैर्भूषितां मां दृष्ट्वा सपत्नीनां पराभवोऽभवदित्यर्थः। उस्रमिति पाठान्तरेण उस्रशब्दः किरणवाची, तत उस्रं प्रकाशमानमित्यर्थः-केचिदेवं व्याकुर्वन्ति।।४।।

जलदपटलवलदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम्।
पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकवाटम्।।५।।

जलदपटलेत्यादि। पुनः कीदृशम्? जलदपटले सजलमेघसमूहे वलतः सम्भजमानस्य इन्दोश्चन्द्रस्य विनिन्दकस्तच्छोभातिशायी चन्दनतिलको ललाटे यस्य तम्। क्वचित् जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचन्दनबिन्दुललाटमिति पाठः। तदा जलदपटले चलन् सञ्चरन् य इन्दुश्चन्द्रस्तस्य विशेषेण निन्दकस्तिरस्कारकः, चन्दनबिन्दु(र्मण्डलाकृतितिलकं यत्र तादृशं ललाटं यस्य तम्)।।५।।

मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम्।
पीतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम्।।६।।

मणिमयेत्यादि। मणिमयमकरमनोहरे कुण्डले मण्डिते याभ्यां तादृशौ कपोलौ यस्य तम्; तदुक्तं (भाग० ३।२।१२) 'भूषणभूषणाङ्गम्' इति; किञ्च (सिन्धु. २।१।३३८) 'विभूषणं विभूष्यां स्याद् येन तद्रूपमुच्यते' इति, रूपं लावण्यमपि कथितम् (उ० १०।२८)-

---

छिटकती है तो सारा अन्धकार दूर हो जाता है, बाहर का और भीतर का भी। मैं उनके इस चंचल, बलशाली रूप का स्मरण करती हूँ और विलोपित हो जाती हूँ। सखि! मुझे उनके साथ रमाओ।।४।।

मुझे यहीं से दिख रहा है कि उनके ललाट पर चन्दन का तिलक ऐसे लगा है जैसे बादलों के बीच में चन्द्रमा टाँक दिया गया हो। शायद चन्द्रमा भी इतना सुन्दर कहाँ होगा, बादल भी इतने सुन्दर कहाँ होंगे जैसा इस काले ललाट पर चन्दन का तिलक है और उनका वक्षःस्थल कैसा कठोर है, कैसा निर्दय है। इतनी-इतनी युवतियों को आलिंगन में ले रहा है और उनके वक्षःस्थल मसल कर रख देता है। हरि के वक्ष का तो कुछ बनता-बिगड़ता ही नहीं। वह कठोर को भी मृदु बना देता है और स्वयं कठोर बना रहता है। ऐसे कृष्ण के साथ जुड़ने का मन होता है, उनसे अपनी कठोरता को मृदु कराने का मन होता है।।५।।

श्रीकृष्ण के कानों में मकर की आकृति के मणिमय कुण्डल हैं। मकर तो काम के ध्वज में रहता है। ऐसे लगता है जैसे काम की ध्वजा ही उनके कानों में फहरती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते'।। इति।

तद्यथा–

'शृणु सखि! तव कर्णे वर्णयाम्यत्र नीचै-
र्विरचय मुखचन्द्रं मा वृथाराद्विवर्णम्।
इयमुरसि मुरारेरस्ति नान्या मृगाक्षी,
मरकतमुकुराभे बिम्बितासि त्वमेव'।।

इत्युज्ज्वले (१०।३०); अत एव उदारं सुन्दरमित्यर्थः। तथा च एतादृशं सुन्दरवरं कथं न स्मरामीति भावः। (उ० ११।२३) 'उदार्यं विनयं प्राहुः सर्वावस्थागतं बुधाः' इति विनयगुणयुक्तं वा। अथवा मणिमयमकर-मनोहरकुण्डलाभ्यां मण्डितौ अलङ्कृतौ मम कपोलौ येन तम्, अत एव उदारम् औदार्यगुणयुक्तम्, रहसि ममाभिलषितं सर्वं तत्क्षणमेव पूरितवानिति स कथं न स्मर्यत इति ध्वनितम्। पुनः कीदृशम्? पीतं वसनं वस्त्रं यस्य तादृशम्, पुनः कीदृशम्? औदार्योपपादकं विशेषणमाह—अनुगतेत्यादि। अनुगता आश्रिता ये मुनिवराद्यसुरवरान्तास्त एव परिवारः परिजना यस्य तम्। अथवा अनुगतानामाश्रितानां मुनिवराद्यसुरवरान्तानां परिवारः प्रकर्षो यस्मात्तम्। 'परिवारः परिकरे परिक्लेशप्रकर्षयोः' इति विश्वः (?)। द्वन्द्वान्ते वरपदस्य मुन्यादिपदैः प्रत्येकमभिसम्बन्धः। तथा च तैरपि अधिगतस्व-स्वाभिमतफलैः सततं सेव्यत इति तस्यौदार्यं ख्यातमेवेति भावः। तत्र मुनिवराः शुकनारदाद्याः, मनुजवराः परीक्षितादयः, सुरवरा ब्रह्मरुद्रादयः, असुरवराः प्रह्लादादयः। अथवा अनुगता ये मुनिमनुजसुरासुरास्तेभ्योऽपि वरः श्रेष्ठो गोपलक्षणो गोपीलक्षणो वा परिवारो यस्य तम्। अथवा अनुगतः

है और वह उनके गालों तक लहराती है। उनका यह कुण्डल मुझे बुला रहा है। उनका पीताम्बर मुझे बुला रहा है। इस पीताम्बर के पीछे न जाने कितने लोग मोहित हैं। देवता, असुर, मनुष्य, ऋषि-मुनि, कोई तो ऐसा नहीं जो इस पीताम्बर की एक झलक पाने के लिए पागल न हो। विचित्र तो यह है कि मित्र भी पागल रहते हैं, शत्रु भी पागल रहते हैं। मैं यह जानती हूँ कि वे पीताम्बर क्यों पहनते हैं। पीताम्बर के द्वारा वह मुझे पहनते हैं और अनुभव करना चाहते हैं कि राधा मुझे लपेटे हुए हैं। मुझे उस पीताम्बर बनी राधा के ऊपर और ईर्ष्या होती है। मैं पीताम्बर बनकर सन्तुष्ट नहीं हूँ। मैं उनमें बिलकुल ही लीन होना चाहती हूँ, जैसे सकोरे में पानी जज्ब हो जाता है। मैं अपना सारा रस इस नीलकान्ति में एक बार जज्ब कर देना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुसृतः माधुर्यभरेणाकर्षणात् मुन्यादीनां वरपरिवारः श्रेष्ठपरिग्रहो येन तम्। उक्तञ्च 'आरुन्धानमरुन्धतां हृदयमप्यार्द्रस्मितार्द्रश्रियेति'। 'का स्त्री तद्गुरापा' इति च। अनुगतो मुन्यादीनां परिग्रहो यस्मात्तमिति वा।

'दानमभ्युपपत्तिश्च तथा च प्रियभाषणम्।
स्वजनेऽपि परे वापि तदौदार्यमिति स्मृतम्'।।

इति नायकौदार्यगुणलक्षणम् (नाट्यशास्त्रे- २२।३८)।।६।।

विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम्।
मामपि किमपि तरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम्।।७।।

विशदेति। पुनः कीदृशम्? विशदस्य निर्मलस्य कदम्बस्य तले मूले मिलितं संलग्नम्, मत्सङ्केतितकदम्बतले मदपेक्षया अग्रत एव गत्वा काचिन्मां मा पश्यत्विति मया सह नर्मार्थं वा निलीय स्थितम्। पुनः कीदृशम्? कलिः प्रणयकलहस्तस्माद्यत् कलुषं चित्ते कश्मलम् 'अहं सङ्केते समागता, अयं नागतः, प्रायशोऽन्यनारीसक्तो भविष्यतीति; अतःपरं यद्यायास्यति तदा मया न सम्भाषणीय' इत्येवंरूपम्। एकाकिनी कथमत्र तिष्ठामीति च भयम्। अथवा मन्मानाद् यद्भयम्, एतद्द्वयं कदम्बमूलाद् उपेत्य चाटूक्तिभिः शमयन्तम्। पुनः कीदृशम्? किमप्यनिर्वचनीयं यथा स्यादेवं तरङ्गत् तरङ्ग इवाचरद् वारं वारमुद्गच्छन् अनङ्गः कामो यत्र एतादृग् यादृक्तया दृशा दृष्ट्या मनसा च मामपि रमयन्तम्। यद्वा मत्सन्निधौ विश्वस्मिन् तरङ्गदनङ्गमेव पश्यतीति तरङ्गदनङ्गदृक्, तादृशेन मनसा मामपि रमयन्तमित्यर्थः।

चाहती हूँ मुझे मिलाओ, मुझे लग रहा है कि वह मुझे बड़ी प्रेमदृष्टि से देख रहे हैं, बुला रहे हैं, उसी जगह बुला रहे हैं जहाँ पहले मिलते थे।।६।।

उस कदम्ब के पेड़ के नीचे उसकी घनी छाँह में हमारी भेंट हुई थी, वहीं संकेत देकर बुला रहे हैं। वे बुलाते हैं तो भीतर के सहज प्यार से बुलाते हैं और दूसरे भाव को शान्त कर देते हैं। एक हल्की-सी मुस्काती दृष्टि सें वे मुझे बुलाते हैं। मन में पाप का कोई भाव नहीं रहता कि उनसे मिलने जाना है। कोई लोक का भय नहीं रहता; क्योंकि उनका बुलाना एक ऐसा आह्वान है कि अपने ही भीतर से कोई पुकारने लगता हो, तुम कहाँ भटक रही हो, इधर आओ, तब कहाँ का भय, कहाँ की चिन्ता, कहाँ की कातरता। निर्भय भाव से, शुद्ध भाव से, सहज भाव से उनसे मिलना है, मिलाने का उपाय करो। उन्होंने किया तो बहुत बड़ा अपकार, लेकिन सखि! मैं विवश हूँ, उनके बिना रहा भी तो नहीं जाता है। आग घर में लगती है, सब कुछ जला देती है, लेकिन उसी आग से घर में सुबह-शाम काम पड़ता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मामपीत्यपिशब्देन सोत्कण्ठोक्त्या अहमपि तस्य कदाचिल्लोकोत्तरप्रणयस्य पात्रमासमिति ध्वनितम्। एवम्भूतं कृष्णं मे मनः स्मरतीति भावः। 'कलिः स्यात् कलहे शूरे कलिरन्त्ययुगे युधि' इति विश्वः। 'कलुषं त्वाविलैनसोः' इति च।।७।।

श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दरमोहनमधुरिपुरूपम्।
हरिचरणस्मरणं प्रति सम्प्रति पुण्यवतामनुरूपम्।।८।।

श्रीजयदेवेत्यादि। श्रीजयदेवकवेरिदं भणितं पुण्यवतां श्रीकृष्णचरणस्मरणजनकपुण्यविशिष्टानां हरिचरणस्मरणं प्रति श्रीराधाकथितरासक्रीडाद्याचरणं तस्य स्मरणं प्रति इदानीमपि अनुरूपं योग्यं तादृशभावविशेषेणास्वादनीयमिति भावः। कीदृशम्? अतिसुन्दरं मोहनं गोपवधूमोहकारि मधुरिपोः कृष्णस्य रूपं वर्णनीयत्वेन यत्र तादृशम्।।८।।

गणयति गुणग्रामं भामं भ्रमादपि नेहते
वहति च परितोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः।
युवतिषु बलत्तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना
पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किम्।।१५।।

है। उस आग के बिना कुछ नहीं होता। वे तो मेरे लिए आग से भी अधिक हैं, वे तो मेरे लिए शरीर की ऊष्मा हैं, मेरे जन्म-जन्म के तप की आँच हैं। सब कुछ जल जाय, तो भी उनके बिना काम कैसे चलेगा। सखि! उस आग का बड़ा आकर्षण है, उससे झुलसने का भी आकर्षण है और झुलसकर, जलकर, दहककर, अपने को परीक्षित करने का भी आकर्षण है।।७।।

श्री जयदेव ने इस अष्टपदी में मधुरिपु के मोहक रूप का वर्णन किया है। मधु असुर के वे शत्रु तो हैं ही, हर प्रकार के मद के भी वे शत्रु हैं। वे मद नहीं रहने देते। वे हर प्रकार के मधुसंचय के शत्रु हैं, क्योंकि वह अधिकार उनका एक ऐकान्तिक है, कोई दूसरा कैसे मधुसंचय कर सकता है। वे सारी मिठास, सारा व्यसन अपने से बाहर जाने देना नहीं चाहते हैं। इसलिए उनकी ओर सहज आकर्षण हो जाता है। वे सारी मधुराई के केन्द्र हैं। वे एक बार मिल जाँय, तो जीवन भर के व्यसन बरज जाते हैं, ऐसे व्यसन जिनके बिना रहा न जा सके। उनका यह रूप उनके चरणों में झुकने का मन बनाता है, पर यह मन केवल पुण्यवान् लोगों का बनता है। बड़े पुण्य से बनता है। श्रीराधा अपने मन से लाचार हैं, यही सोचती रहती हैं।।८।।

ऐसा है यह मन जो केवल श्रीकृष्ण के गुण देखता है। कभी सपने में भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ननु कृष्णस्त्वां विनान्यगोपीभिः सह विहरति, त्वं किमिति त्वं स्मरसीत्यत आह—गणयतीत्यादि। मम मनः कृष्णे पुनरपि काममभिलाषं करोति, तत् किं करोमि। कीदृशे कृष्णे? युवतिषु बह्वीषु गोपवधूषु बलवन्ती वर्द्धमाना तृष्णा यस्य तादृशे, अत एव मां विना विहारिणि वारं वारं विहरणशीले। कीदृशं मनः? वामं प्रतिकूलम्, वामत्वे हेत्वन्तरमप्याह—गणयतीत्यादि। तस्य गुणानां सौन्दर्यादीनां ग्रामं समूहं गणयति परिसंख्याति, भामं क्रोधं भ्रमादपि नेहते नेच्छति। दोषं मद्विधप्रणयिन्यवधीरणादिकं दूरतो विमुञ्चति। तत्र हेतुमाह–परितोषं सन्तोषं वहति। अत्र विभावनाविशेषोक्ती अलङ्कारौ। निजानुसरणरूपानुरागहेतुं विनाप्यनुरागप्रकाशनात्, अन्याङ्गनासक्तिरूपवैगुण्यकथनाच्च। तथा च काव्यप्रकाशव्याख्याकारिका (१०।२१)–

'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।
विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फला वचः'।।

एषा च काव्यप्रकाशकृता व्याख्याता—हेतुरूपक्रियाप्रतिषेधेऽपि फलप्रकाशनं विभावना। मिलितेष्वपि कारणेषु कार्यस्याकथनं विशेषोक्तिरिति। 'ग्रामः स्वरे संवसथे वृन्दे शब्दादिपूर्वके' इति विश्वः। 'भामः क्रोधे रवौ दीप्तौ' इति च। 'वामं सव्ये प्रतीपे च' इति। 'कामः स्मरेऽभिलाषे च' इत्यपि।।१५।।

उनके दोष नहीं देखता। इतना अपकार किया, इसकी कोई गिनती ही नहीं करता। कैसा बावला है मन। उनकी एक दृष्टि मात्र से परम सन्तोष पा जाता है और इतना अधिक सताने पर भी, उस दुःख को दूर से ही भगा देता है। मेरे बिना उन्होंने विहार किया और उनकी तृष्णा इन गँवार गोपियों के लिए हो गयी। लेकिन मैं करूँ क्या? बार-बार यह मेरे प्रतिकूल जानेवाला मन, मेरी बात न सुननेवाला मन उन्हीं की चाह करता है, उसे कोई दूसरी चाह ही नहीं है। उनसे वह अलग ही नहीं हो पाता।

फिर राधा अपनी सखी से आग्रह करती हैं। सखी भी भीतर-भीतर सोचती है कि यह प्यार है ही ऐसा सर्वनाशी, सत्यानाशी, जो 'स्व' नहीं रहने देता, कोई निजता नहीं रहने देता, अपने मन तक को भी अपना नहीं रहने देता, तन की तो बात ही क्या है। राधा सखी से फिर कहती हैं, 'सखि! मैं अपने प्रथम मिलन की याद करती हूँ। उस समय मैं क्या थी और मेरे प्रिय कैसे-कैसे थे। मुझे उसी प्रथम समागम के प्रिय से फिर मिलाओ, फिर रमाओ, क्योंकि यह रमना ही जीवन का सब कुछ है।।१५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतम्-६

[मालवगौडरागेणैकतालीतालेन च गीयते]

निभृतनिकुञ्जगृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम्।
चकितविलोकितसकलदिशा रतिरभसरसेन हसन्तम्।।
सखि हे केशिमथनमुदारं
रमय मया सह मदनमनोरथभावितया सविकारम्।।ध्रुवम्।।१।।

अथोत्कण्ठिता रसमयी श्रीराधा सखीं स्वमनोरथानाह—निभृतेत्यादि। **गीतस्यास्य मालवगौडरागः (भैरवरागेणेति कौम्भसम्प्रदायः), एकतालीतालः। रागलक्षणं कथितं प्राक् (गी० १।१), ताललक्षणम्**–

'एकताली त्रिधा प्रोक्ता गीतशास्त्रविशारदैः।
रामचन्द्रिका तद्वद् विपुलेत्यथ लक्षणम्।।

द्रुतमेकं भवेद्यत्र तालोऽयं खण्डसंज्ञितः।
रामानेनैकताली तु कीर्त्यते गायनोत्तमैः।।

गुरुद्वयं भवेद्यत्र तालो ललितसंज्ञकः।
चन्द्रिका चैकताली स्यात्तेन सौभाग्यदायिनी।।

कोकिलप्रियताले वै द्रुतं त्रयमुदाहृतम्।
विपुला चैकताली स्यात्तेन गीतज्ञसम्मता'।।

खण्डललितकोकिलप्रिया इति भेदास्तत्र ज्ञेयाः। उत्कण्ठितायाश्च लक्षणम्–

मैं एकदम निपट एकान्त कुंज में उनसे मिलने गयी और रात में वे छुपे हुए थे। मैं चारों ओर चौंक-चौंककर देखती रही। वे दिख नहीं रहे थे, अन्धे अन्धकार के साथ एकात्म हो रहे थे। वे प्यार के आवेग के रस से, प्यार के रस से हँस पड़े और तब मैंने उन्हें देखा। मैं अपने प्यार की आपूर्ति के लिए इतनी तन्मय हो गयी थी कि अपने को भूल गयी थी और वे भी प्यार से कहीं-न-कहीं अस्थिर हो गये थे। मैंने अपना स्वरूप खो दिया था, उन्होंने भी अपना स्वरूप खोना शुरू किया था। सखि! मुझे उस प्रियतम से मिलाओ। उस कृपालु उदार मनवाले प्रियतम से मिलाओ, जो केशी असुर का मथन करनेवाले हैं। केशी घोड़े का आकार लेकर आया था, इन्द्रियाँ भी तो घोड़ा ही हैं। वे इन्द्रियों का भी तो मथन करनेवाले हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'उद्दाममन्मथमहाज्वरवेपमानां,
रोमाञ्चकण्टकितमङ्गमुद्वहन्तीम्।
संवेगवेपथुघनोत्कलिकाकुलाङ्गी-
मुत्कण्ठितां वदति तां भरतः कवीन्द्रः'।। इति।

गीतार्थस्तु–हे सखि! मया सह केशिमथनं श्रीकृष्णं रमय क्रीडय। कीदृश्या मया? मदनस्य यो मनोरथ इच्छा तद्युक्तो रत्याख्यः सञ्जातो यस्यास्तादृश्या। अथवा मदनमनोरथेन भावितया प्राप्तया। ननु केनेदं मया प्रार्थने कृते कदाचिन्नायातीत्यत आह–उदारम् औदार्यगुणयुक्तं त्वत्प्रार्थितम्–वश्यं दास्यत्वमेवेति भावः। अथवा मदनः श्रीकृष्णस्तत्क्षोभकत्वात्, तस्य यो मनोरथः सम्भोगेच्छा तयैव भावितया। ननु कथं तस्येच्छा ज्ञातव्येत्यत आह—सविकारमिति। **विकारो मानसो भावस्तत्सहितम्। एवमन्योन्यानुराग-पूर्वकत्वेन शृङ्गाररसपोषणमुक्तम्। यथाह–**

'अनुरागोऽनुरक्तायां रसावह इति स्थितिः।
अभावे त्वनुरागस्य रसाभासं जगुर्बुधाः।।' इति।

तथा चात्र महाभावमयी उत्तमा नायिका ज्ञेया, नायकश्चोत्तमः, तद्गुणा निरूपिताः प्राक्। सविकारमिति क्रियाविशोषणं वा, तदा विकारः स्तनप्रान्तादिप्रकटनं तत्सहितं यथा स्यादेवं मदनमनोरथभावितयेत्यन्वयः। तदुक्तं रसिकसर्वस्वे—

'नाभीमूलकुचोदरप्रकटनव्याजेन यद्योषितां,
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षणं स्खलितता नीवीनिबन्धस्य च।
केशभ्रंशनसंयमौ च कमितुर्मित्रादिसन्दर्शनैः,
सौभाग्यादिगुणप्रशस्तिकथनैस्तासां तु रागेङ्गितम्'।। इति।

अत्र सामर्थ्यख्यापनाय केशिमथनपदोपादानं, तत्प्रयोजनञ्च निःशङ्क-

---

जैसे दुष्ट घोड़े को सवार तरह-तरह की चाल में दौड़ा कर तोड़ देता है, वैसे ही वे इन्द्रियों को तोड़ते हैं।

इसमें भगवान् का एक नाम केशिमथन दिया गया है। केशी असुर को थका-थकाकर मारनेवाले हैं। कृष्ण को केशिमथन कहना उपयुक्त है, पर यहाँ और सन्दर्भ भी हैं, केशी घोड़े का रूप लेकर आया था और भगवान् ने ही इन्द्रियों को घोड़ा कहा है। उन्होंने केशी के भीतर के असुर को तो मारा ही, असंख्य-असंख्य युवतियों के इन्द्रिय-परिवार को पूरी तरह मथा, इन्द्रियाँ श्लथ हो गयीं। इन्द्रियाँ चली थीं श्रीकृष्ण को चलाने और उनसे नहीं चला जा रहा है। श्रीकृष्ण ही उन्हें चलायें, तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केलिप्रतिपादनम्। अथवा प्रशस्ताः केशा यस्य स केशी तं मथ्नातीति केशिमथनस्तम्, स्वसौन्दर्येणाशेषसुन्दरीणां क्षोभकमित्यर्थः। केशी चासौ मथनश्च केशिमथन इति वा, स्वसौन्दर्येणाशेषनागरीणां चित्तक्षोभकमित्यर्थः। उक्तञ्च (भाग० १०।२९।३९) 'वीक्ष्यालकावृतमुखमि'त्यादि। अथवा कं काममीशितुं शीलमस्यासौ केशी। 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (पा० ३।२।७८) अजात्यर्थे सुपिधातोर्णिनिः स्यात्ताच्छील्ये इति। 'मथ विलोडने' 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यः' (पा० ३।१।१३४) इति ल्युः, मथ्नातीति मथनः। केशी चासौ मथनश्चेति कामस्यापि कामं मम मानसक्षोभकञ्चेत्यर्थः। उक्तञ्च (भा० १०।३२।२) 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' इति। अथवा केशिनं कामनियन्तारं योगिवर्यमपि स्वमाधुर्येण क्षोभयतीति तथाभूतं केशिमथनं किं पुनः रागिणमिति भावः।

'मूर्ध्नि मत्ते जले काये सुखे ब्रह्मणि मारुते।
कामे काले सुवर्णे च कशब्दः'।।

इत्यनेकार्थः। 'भावितं वासिते प्राप्ते' इति विश्वः। ध्रुवपदम्। अथ पदानि– पुनः कीदृश्या मया? निभृतमेकान्तं यन्निकुञ्जरूपं गृहं तत्र गतया। कीदृशं कृष्णम्? निशि रात्रौ रहसि एकान्ते निलीय तिरोहितीभूय वसन्तम्। एवम्भूतं मां राधा मा पश्यत्विति कुतुकेन मया परिहसितुं सङ्कुचितमात्मानं कृत्वावस्थितमिति भावः। अन्या काचिन्मा पश्यत्विति वा। पुनः कीदृश्या? चकितं यथा स्यादेवं विलोकिताः सकला दिशो यया तादृश्या, कुत्र कृष्णो निलीय तिष्ठतीति कृत्वाभिसरन्तीं मां मा कश्चन पश्यत्विति वा चकितं पश्यन्त्येति भावः। इयञ्च विभ्रान्ता दृष्टिः। तदुक्तं सङ्गीतरत्नाकरे–

उनसे चला जाएगा। श्रीकृष्ण उन्हें चलायेंगे, तो अपना स्वार्थ साधेंगे, अर्थात् उन्हें चलायेंगे तो दूसरे सारे विषयों से उन्हें दूर कर देंगे, केवल अपनी ओर मोड़ देंगे और इन्द्रियाँ ही श्रीकृष्ण का स्पर्श करेंगी, उनमें श्रीकृष्ण का ही भाव रहेगा। श्रीकृष्ण का ही पान करेंगी या जो कुछ भी पान करेंगी उसमें श्रीकृष्ण का ही पान रहेगा। श्रीकृष्ण का ही रस रहेगा। श्रीकृष्ण को ही सूँघेंगी। अपनी घ्राणेन्द्रिय में कोई दूसरी गन्ध महसूस नहीं करेंगी, सिवाय श्रीकृष्ण की गन्ध के। श्रीकृष्ण की गन्ध तुलसी की माला की गन्ध से जुड़ी हुई है, तुलसी की माला सनातन प्रीति से जुड़ी हुई है। ये इन्द्रियाँ जो कुछ भी देखेंगी वह श्रीकृष्ण होगा या जिसे भी देखेंगी उसमें श्रीकृष्ण का ही भाव होगा, जो भी सुनेंगी वह श्रीकृष्ण होगा, उनकी वंशी का स्वर होगा, उनके मधुर आलाप का स्वर होगा या जो कुछ सुनेंगी, उसमें यही भान होगा कि श्रीकृष्ण बाँसुरी बजा रहे हैं। इसीलिए केशिमथन के रूप में उनका स्मरण करना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'या तु क्वचिदविश्रान्तमविषह्यं विलोकने।

विस्तीर्णचञ्चलोत्फुल्लतारा सा दृष्टिरुच्यते।।

विभ्रान्ता विभ्रमे वेगे सम्भ्रमे च भवेदसौ।।' इति।

कीदृशं कृष्णम्? रत्यानुरागेण अथवा रतौ सम्भोगे यो रभस उत्साहस्तद्युक्तो यो रसः शृङ्गाराख्यस्तेन हसन्तम्। क्रीडायां कालापेक्षा-सहिष्णुतयात्मप्रकटनार्थं पुरःस्थितमपि मामियं न पश्यतीति कृत्वा हसन्तमिति भावः। 'निभृतं रह एकान्तम्' इति धरणिः। 'रभसो वेग उत्साहः' इत्यमरः।।१।।

प्रथमसमागमलज्जितया पटुचाटुशतैरनुकूलम्।

मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम्।।२।।

पुनः कीदृश्या मया? प्रथमसमागमेन लज्जितया व्रीडितया, नित्योपभुक्तचरेऽपि हरौ केनापि रसविशेषमाधुर्येण नित्यनित्यनूतनतया प्रथमसमागमेत्युक्तम्। यथा श्रीभागवते (१।११।३४)–

'यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम्।

पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यं श्रीर्न जहाति कर्हिचित्।।' इति।

तथा च प्रथमसमागमे कामिन्यो लज्जन्ते, वामतामावहन्ति च। यथाह भरतः (शृङ्गारशतके, अमरौ च ५८)–

'शिलष्टः कण्ठे किमिति न मया मूढया प्राणनाथ-

श्चुम्बत्यस्मिन् वदनविकृतिः किं कृता वा न दृष्टः।

नोक्तः कस्मादिति नववधूश्चेष्टितं चिन्तयन्ती,

पश्चात्तापं वहति तरुणी प्रेम्णि जाते रसज्ञा।।'

बड़ा सार्थक है। श्रीराधा की तैयारी हो चुकी है। इस रास के बाद अब इन इन्द्रियों का मनोरथ ऐसा पूरा हो, ऐसा पूरा हो कि फिर कोई मनोरथ अधूरा न रह जाय, इन्द्रिय-व्यापार ही समाप्त हो जाय। वह व्यापार ही ऐसा शिथिल हो जाय, ऐसा निष्प्राण हो जाय कि अपने-आप झुक जाय, रह जाय केवल इन्द्रियों के अणु-अणु में व्याप्त श्रीकृष्ण के लिए चाह।।१।।

प्रथम समागम में तो लजा रही थी, लाज से मरी जा रही थी और श्रीकृष्ण ऐसे कि वे एक-से-एक मीठी बातें करते जा रहे थे और ऐसा लगता था कि वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति प्रथमसमागमवत् लज्जितयेति वा योजनीयम्। कीदृशं कृष्णम्? पटु नायिकाप्रसादनक्षमं यच्चाटुशतं प्रियवचनशतं तेनानुकूलं विनयोक्तिशतैरनुनयपरमित्यर्थः। तत् (गी० २३।१) क्षणमधुनेत्यादिना प्रकटयिष्यति, शृङ्गारशास्त्रे च तद्यथा (शृङ्गारविवेके)–

'प्रथममिह हि देयं पुष्पपूगादिकं स्यात्,
मृदुमधुरवचोभिर्योजयेत् सन्निधाने।
करतलमथ गात्रे भ्रामयेच्छश्वदस्या-
श्छुरितमुदरपृष्ठे मन्दमाश्लिष्य दद्यात्।।'

इति। एवं वा वैलक्ष्यापनोदनचातुर्यम्, तदुक्तम्–

'मुग्धामनुनयत्येष मृदूपायेन सान्त्वयन्।
नातिभीतिकरैर्भावैर्निबन्धैर्बालभीषकैः।।'

तद्यथा–

'सरति सरसस्तीरादेषा भ्रमद् भ्रमरावली,
सुमुखी विमुखी पद्मे मन्ये तवास्य पिपासया।
इति निगदिते किञ्चिदभीत्या विवर्त्तितकन्धरा
वदनकमले बाला भर्त्रा चिरं परिचुम्बिता।।'

इति (शृङ्गारतिलके-१।३७)।

पुनः कीदृश्या मया? मृदु कोमलं माधुर्यगुणयुक्तं मृद्वल्पं मधुरं रसवद् वा स्मितयुक्तं च भाषितं यस्यास्तया। तदीयचाटूक्तिभिरपहतलज्जायाः। किञ्च–

'श्रुतं रसविशेषेण ह्यभिलाषं नयेच्छ्रुतिम्।
यन्नायिकामुखगतं मार्दवं तदुदीरितम्।।
माधुर्यञ्च भवेद्यत्र शब्देऽर्थे चास्फुटो रसः।।' इति।

कीदृशं कृष्णम्? शिथिलीकृतं स्मितादिनानुकूलां मां ज्ञात्वा श्लथीकृतं जघनस्थितं दुकूलं पट्टवस्त्रं येन तादृशम्; अशेषनायकशिरोमणेः श्रीकृष्णस्य दर्शनेन दृढबन्धापि नीवी स्वयमेव स्खलिष्यति, ततो मेखलावलम्बितं जघनस्थितमेव वासन्तेनापहरणीयमिति जघनदुकूलमित्युपात्तम्। तदुक्तं रतिरहस्ये (सामान्य० २६)–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओष्ठाग्रं स्फुरतीक्षणे विचलतः कूपोदरे मत्स्यवत्,
धम्मिल्लः कुसुमाकुलो विगलति प्राप्नोति बन्धं पुनः।
प्रच्छन्नौ व्रजतः स्तनौ प्रकटतां श्रोणीतटं दृश्यते,
नीवी च स्खलति स्थितापि सुदृढा कामेङ्गिते योषिताम्।।

इति। यथा वा (अमरौ-१०१)-

'कान्ते तल्पमुपागते विगलिता नीवी स्वयं बन्धनाद्,
वासो विश्लथमेखलागुणधृतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम्।
एतावत् सखि! वेद्मि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः,
कोऽसौ कास्मि रतं च कीदृशमिति स्वल्पापि मे न स्मृतिः'।। इति भरतः।

रतेः पूर्वावस्थेयं सूचिता-

'त्रुटत्यङ्गं स्फुरद्वक्षः विकसन्मुखपङ्कजम्।
निमीलन्नयनं नीविनाभिशैथिल्यमेव च।।' इति।

'चाटुर्नारीप्रियोक्तिः स्यात्' इति रत्नमाला। 'जघनं कटेरधोभागे' इति हारावली।।२।।

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम्।
कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम्।।३।।

पुनः कीदृश्या मया? किसलयशयने पल्लवशय्यायां निवेशितया। शयानं सुप्तम्। एतेनालिङ्गनविशेष उक्तः। तदुक्तं पञ्चसायके-

'गात्रोपरिष्टादथ तल्पमध्ये संलीयते यन्मिथुनं शरीरम्।
कामाभिमानाक्षतपूर्णचेष्टं तत् क्षीरनीराख्यमिदं प्रदिष्टम्'।। इति।

पुनः कीदृश्या मया? कृते परिरम्भणचुम्बने यया तादृश्या, एतच्च जघनोपश्लेषरूपालिङ्गनाभिप्रायेण। तदुक्तं रतिरहस्ये (आलि० ११)-

---

मेरे लिए आकुल हैं। मैं उनसे कुछ सँभलकर मीठी-मीठी मुस्कान के साथ कुछ बोली, तो वे ढीठ हो गये। उन्होंने मेरे वस्त्र शिथिल करने शुरू कर दिये। मुझे अवश कर दिया।।२।।

मुझे तो उन्होंने नये-नये पल्लवों की सेज पर लिटा दिया और स्वयं मेरे ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जघनकलितकान्ता श्रेणिरङ्गोपरिष्टाद्,
व्रजति यदिह नारी स्रस्तकेशोत्तरीया।
करजरदनकृत्यं चुम्बनं वा विधित्सुः,
कलयति जघनोपश्लेषमेनं मुनीन्द्रः।।' इति।

चुम्बनमपि पञ्चसायके यथा–

'ओष्ठेन कान्तस्य मुखोष्ठयुग्मं, निपीड्य जिह्वाञ्चिततालुभागम्।
चुम्बोत्सवं नृत्यति यत्र नारी प्रोक्तं समौष्ठं मुनिभिः पुराणैः।।'

कीदृशं कृष्णम्? परिरभ्यालिङ्ग्य कृतं मदीयाधरपानं येन तम्। अनेन लालाटिकमालिङ्गनमुक्तम्। तदुक्तं पञ्चसायके–

'अन्योन्यसंसक्तमुखं कपोलं नेत्रं ललाटं हृदयञ्च बाहुम्।
सानन्दभावश्रममीलिताक्षं लालाटिकं तत्त्वविदो वदन्ति।।' इति।

यथा वा–

'सङ्केततल्पे च सुखोपविष्टां, गाढं पतिः श्लिष्यति सापि कान्तम्।
अन्योन्यगात्रे विशतीव रागाद् द्वन्द्वं तदाकृष्टजलाभिधानम्।।' इति।

'पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' इत्यमरः।।३।।

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम्।
श्रमजलसकलकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम्।।४।।

पुनः कीदृश्या मया? अलसेन आलस्येन निमीलिते लोचने यस्यास्तया। एतेनाङ्गिकः कामविकारः कथितः।

'यत्र मूर्धानमारभ्य पादपर्यन्तिकाः क्रियाः।
अङ्गेन विहिता यस्मात्तस्मादाङ्गिकमुच्यते।।'

इति नायिकालक्षणे। तदङ्गसङ्गमरसस्पन्दे मुकुला दृष्टिश्च कथिता। तदुक्तं सङ्गीतरत्नाकरे–

वक्षःस्थल पर लेटे रहे। मैं कुछ और ढीठ हुई। मैंने उन्हें बाँहों में कसा और चूमा और उन्होंने मेरे अधरों का पान करते हुए और कस लिया।।३।।

मेरी आँखें इस अप्रत्याशित सुख से मुँद गयीं, अलसा गयीं। श्रीकृष्ण के गालों पर रोमांच प्रकट हो गया। मैं प्यार की इस लीला में थककर पसीने-पसीने हो गयी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'स्फुरत्संश्लिष्टपक्ष्माग्रा सुखविश्रान्ततारका।
मुकुला दृष्टिरानन्दैरुच्छ्रयोः स्पर्शगन्धयोः।।' इति।

अथवा अलसे आलस्ययुक्ते अत एव निमीलिते मुद्रिते लोचने यथा। अत्र निमीलितेत्याद्युपादानादवधृष्टाख्यं चुम्बनमुक्तम्। तदुक्तं पञ्चसायके-

'हस्तेन नेत्रे च निमील्य भर्त्तुः, सम्मीलिताक्षी वदने स्वजिह्वाम्।
निक्षिप्य च क्रीडति यत्र लोला, ख्यातं रसज्ञैरवधृष्टसंज्ञम्।।' इति।

कीदृशं कृष्णम्? पुलकावल्या रोमाञ्चपङ्क्त्या ललितौ मनोहरौ कपोलौ यस्य तम्, अनेन सात्त्विकविकारः कथितः। तदुक्तं भरतेन (शृङ्गारतिलके)-

'स्मरणे सङ्गमे चैव प्रियस्यालोकने तथा।
हेतुत्रयं समासाद्य सात्त्विकः सम्प्रवर्त्तते।।' इति।

पुनः कीदृश्या मया? श्रमजलेन सुरतायासजनितश्रमवारिणा स्वेदेन सकलं सशोभं पूर्णं वा कलेवरमङ्गं यस्यास्तया। श्रमजलशकलकलेवरयेति पाठे श्रमजलशकलानि स्वेदविन्दवः कलेवरे यस्यास्तया। क्वचिच्च श्रमजलसिक्तेत्यपि पाठः। कीदृशं कृष्णम्? वर उत्कृष्टो यो मदनकृतो मदो हर्षस्तेनातिशयेन लोलं चञ्चलम्। वरः प्रचुरो यो मदनस्तेन यो मदो मत्तता तयातिलोलमिति वा। 'प्रचुरश्रेष्ठयोः वरः' इति विश्वः। श्रमजलेत्यादिना निराकुला प्रगल्भेयं नायिका चोक्ता; यथा-

'धन्यास्ताः सखि! योषितः प्रियतमे सर्वाङ्गलग्नेऽपि याः,
प्रागल्भ्यं प्रथयन्ति मोहनविधावालम्ब्य धैर्यं महत्।
अस्माकं तु तदीयपाणिकमलेऽप्युन्मोचयत्यंशुकं,
कोऽयं का वयमत्र किं नु सुरतं नैव स्मृतिर्जायते'।। इति।।४।।

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम्।
श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम्।।५।।

सारा शरीर स्वेद का समुद्र हो गया। श्रीकृष्ण भी इस शरीर के साथ खेलने के लिए प्यार के नशे में और चंचल हो उठे।।४।।

मैं कोयल की तरह कुहुक उठी और उन्होंने काम की सारी विधियों को प्रयोग में लाना शुरू किया, बड़े सिद्ध कामतत्त्व के जानकार के रूप में। मेरे केशपाश ढीले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुनः कीदृश्या मया? कोकिलस्य कलोऽव्यक्तमधुरो यो रवः शब्दस्तद्वत्ः कूजितं शब्दितं यस्यास्तया। अथवा कलरवः पारावतपर्यायः, तदा कोकिलकलरवयोः कूजितमिव कूजितं यस्यास्तया। अनेन कूजिताख्यं बाह्यरतमुक्तम्। तदुक्तं पञ्चसायके–

'पिकशिखिकलहंसप्रायपक्षिव्रजानां,
स्वनितमनुकरोति ह्यङ्गना मन्मथार्त्ता।
मुखदशनविवर्त्ता तत् कवीन्द्रा वदन्ति,
स्तनितमिति समासाच्चित्रसम्भोगकाले।।'

यथा वा रसिकसर्वस्वे–

'दात्यूहलावकमयूरकपोतहंस-
पारावतादिरुतवद् ध्वनितं रताख्ये।
तन्मिश्रनिःश्वसितसीत्कृतहानिनादैः,
संयोजयेन्मदनचुम्बनमैथुनादौ'।।

तथा चोक्तम्–

'कान्ते तथा कथमपि प्रथितं मृगाक्ष्या,
चातुर्यमुद्धतमनोभवया रतेषु।
तत् कूजितं मृदु वदद्भिरनेकवारं
शिक्षायितं गृहकपोतशतैर्यथा स्यात्।।'

'ननु वात्स्यायनेनादिशास्त्रेऽन्य एव क्रम उक्तः, तदुक्तम्–

आश्लेषं प्रथमं कुर्याद् द्वितीयं चुम्बनं तथा।
तृतीयं नखदानञ्च दंष्ट्राघातं चतुर्थकम्।।
पञ्चमं क्षेपणं प्रोक्तं षष्ठं प्रहरणं तथा।
सप्तमं कण्ठशब्दश्च बन्धनं चाष्टमं रतम्।।'

इत्यत्र कण्ठशब्दस्य सप्तमरतस्याग्रे वक्ष्यमाणनखदानादिना श्रीकृष्णस्य रसिकताभङ्गः स्यात्? इत्यत आह–जितेति। **कीदृशं कृष्णम्? जितो वशीकृतः कामशास्त्रविचारो येन तम्; तत्र कामशास्त्रविचारप्रवीणता, तद्यथा–**

चतुर्दशविधा भार्या स्वीया सेव्या परा न तु।
परकीयामपि भजन्नुत्तमामेव कामयेत्।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परापि बाला मध्या च प्रौढा वृद्धा चतुर्विधा।
बाला बलकराश्लिष्टा मध्याश्लिष्टा रतिप्रदा।।
प्रौढ़ा बलक्षयकरी वृद्धा पुंस्त्वविनाशिनी'।।

एवं चतुर्दशविधानां देवादिसत्त्वानां मध्ये गान्धर्वसत्त्वां मध्यां रममाणं तु जितकामशास्त्रविचार इत्युक्तम्। गान्धर्वसत्त्वाया लक्षणम्–

'उद्यानकाननरता गीतवाद्यरता तथा।
शिवभक्ता च सुस्नाता गान्धर्वी सा प्रकीर्त्तिता'।।

तत्सेवनं यथा–

'स्नात्वा सुगन्धद्रव्यैस्तु सङ्गीतध्वनिपूर्वकम्।
मृद्वालिङ्गनदानेन गान्धर्वीं कामयेद्बुधः'।। इति।

अथवा मनसिजतन्त्रविचारं बन्धादिकौशलम्, आनन्दावाप्तेः स्थितिरिति वा। अथवा जितोऽवज्ञातो मनसिजतन्त्राणां कामपरायणानामन्यविलासिनां विचारः सिद्धान्तो येन। तदुक्तं (भा० १०।३२।२) 'साक्षान्मन्मथमन्मथः', (भा० १०।३०।३५) 'कामिनां दर्शयन् दैन्यम्' इति। जितोऽभिभूतो विस्मारितो मनसिजतन्त्रस्य विचारो येन तमिति वा। अयं भावः– चतुष्षष्टिकलाकुशलस्यापि परमरसिकनायकस्य पुरुषोत्तमस्य स्वानुकूलोत्तमा-नायिकासन्निधौ रसमग्नतया क्रमस्मरणाभावान्न दोषः, न च रसहानिः। तदुक्तम् (कामसूत्रे-६।२।३२)–'रतिचक्रे प्रवृत्तस्य नैव शास्त्रं न च क्रमः।' इति। पुनः कीदृश्या मया? श्लथाः केशग्रहणचुम्बनदानेन शिथिलाः कुसुमैराकुला व्याप्ताश्च कुन्तलाः केशकलापा यस्यास्तया। अथवा श्लथकुसुमैराकुलाः कुन्तला यस्यास्तया। कीदृशम्? नखैर्लिखितोऽङ्कितो घनो निविडः स्तनभारो येन तम्। अत्र लिखितपदोपादानात् पङ्कजपत्राख्यं नखदानमुक्तम्। तदुक्तं पञ्चसायके–

'अत्यूर्ध्वमेकं स्फुरितोर्ध्वरेखं, प्राहुः क्षतं पङ्कजपत्रसंज्ञम्।
दोर्मूलवक्षःस्तननाभिसन्धावस्योपयोगं मनुते महेशः'।। इति।

'तन्त्रं प्रधानशास्त्रयोः' इति विश्वः। 'चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः।।५।।

हो गये, उसमें से फूल झरने लगे, उसमें गुँथे हुए फूल इधर-उधर छितरा गये और उन्हें अवसर मिला। मेरे वक्ष पर उन्होंने नख से जाने क्या-क्या लिख दिया।।५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरतवितानम्।
मुखरविशृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम्।।६।।

एतावत्पर्यन्तं पञ्चपद्यालिङ्गनादिसप्तविधं बाह्यरतमुक्तम्, सम्प्रति बन्धाख्यमष्टमरतमाह—चरणेत्यादि। चरणयो रणितौ शब्दायमानौ मणिखचितौ नूपुरौ यस्यास्तया। नायककृतबन्धविशेषो दर्शितः। यद्वा एतच्च भ्रामरकनाम विपरीतरताभिप्रायेणोक्तम्। तदुक्तं रतिरहस्ये (सुरत० ४७)–

'चक्रवद्भ्रमति कुञ्चिताङ्घ्रिका, भ्रामरकं नृजघने समुच्छ्रिते।।' इति।

कीदृशम्? परिपूरितः सर्वतः सम्पूर्णतां नीतः सुरतवितानो रतिविस्तारो येन तम्। अनेन नायककर्तृका बन्धाः कथिताः। पक्षान्तरे भ्रामरकबन्धश्रान्तां विदित्वा किसलयस्थितां मां स्वयमपि रमयिष्यतीति भावः।

पुनः कीदृश्या मया? पूर्वं मुखरा शब्दायमाना पश्चाद्विशृङ्खला त्रुटित-गुणा मेखला काञ्ची यस्यास्तया। अनेन प्रेङ्खोलितनामकं विपरीतरतमुक्तम्। तदुक्तं वात्स्यायनीये पुरुषायितप्रकरणे (६।८।२७) 'स्वजघनमेव दोलायमानं सर्वत्र भ्रामयेदिति प्रेङ्खोलितम्' इति। तत्र सर्वत्र-शब्दो मनोरमाकारेण व्याख्यातः–मध्यात् पूर्वपश्चिमभागे दक्षिणोत्तरभागे चेति। रतिरहस्येऽपि (सुरत. ४८) 'सर्वतः कटितटभ्रमणं यदि प्रेङ्खपूर्वमिदमुक्तमूलितम्' इति। अत्रापि सर्वशब्दार्थः स एव। कीदृशं कृष्णम्? सकचग्रहं केशग्रहणसहितं चुम्बनदानं यस्य तम्, केशग्रहपूर्वकं चुम्बनं विपरीतरत एवोक्तम्। तदुक्तम्–

'शृङ्गारे चुम्बनं कार्यं पुंसालिङ्गनपूर्वकम्।
विपरीतग्रहे नार्याः सकचग्रहचुम्बनम्'।। इति।

'मेखला खड्गबन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयोः' इति विश्वः। 'शृङ्खला कुमुदे(?) काञ्च्या वस्त्रे च क्रमबन्धने' इति।।६।।

रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयनसरोजम्।
निःसहनिपतिततनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम्।।७।।

मेरे नूपुर पैरों के ऊपर उठने से बज उठे। उन्होंने रति की लीला पूरी कर ली। मेरी करधनी चंचल हो उठी और वह भी जैसे कुछ माँगने लगी हो, छोड़ो-छोड़ो। लेकिन वे और अधिक निर्दय हो उठे और उन्होंने मेरे केश हाथों में कसे। वे उन्हें लेकर चूमने लगे।।६।।

मैं रति के सुख से एकदम अलसा कर पड़ गयी। उसका रस गहते-गहते जैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुनः कीदृश्या मया? रतिसुखसमये सुरतसुखप्राप्तिकाले लोकोत्तरानुभवकाष्ठां प्राप्तो यः सम्भोगशृङ्गाराख्यो रसः, तेनालसया मन्थरया। कीदृशं कृष्णम्? दर ईषत् मुकुलिते मुद्रिते नयनसरोजे नेत्रकमले यस्य तम्। अनेन द्वयोरानन्दावाप्तिर्युगपदेव सूचिता। तदुक्तं रतिरहस्ये–

'मूर्च्छना मीलनञ्चाक्ष्णोश्च्युतिकालस्य लक्षणम्।
सर्वमेतत् परिज्ञाय साधयेत्तत् स्वयं ततः।।' इति।

पुनः कथम्भूतया? निःसहा असमर्था अत एव किसलयशयने निपतिता तनुलता यस्यास्तया। अनेन सुरतान्तसमय उक्तः। तदुक्तम्–

'अङ्गे स्वेदः श्लथत्वञ्च केशवस्त्रादिसंवृतिः।
जाते च्युतिसुखे नार्या विरामेच्छा च जायते।।' इति भरतः।

तथा च विपरीतरतान्ते कोकः–

'स्वेच्छया मिलितवल्लभोऽथवा योषिदाचरति पुरुषायितम्।
आदितो घटितमेव यन्त्रितं, भूपतनुकरणञ्च चेष्टते'[1]।। इति।

तद्यथा–

'अतिप्रयत्नेन रतान्ततान्ता कृष्णेन तल्पादवरोपिता सा।
आलम्ब्य तस्यैव करं करेण ज्योत्स्नाकृतानन्दमलिन्दमाप'।।

इति रसार्णवसुधाकरे (२।१४)। कीदृशं मधुसूदनम्? मधुररसास्वाद-लम्पटम्, अत्र मधुसूदनशब्दो भ्रमरपर्यायः। तदेव विशेषणेन स्पष्टयति– कीदृशं मधुसूदनम्? उदितमनोजम्, उदितस्तत्कालत्रुटितमुक्ताहारकाञ्ची-गुणस्वस्वस्थानसंघटनसञ्जातपयोधरश्रोणिपरिसरस्पर्शादिना। सलज्जस्मित-राधापाङ्गविलोकनादिना च पुनराविर्भूतो मनोजः कामो यस्य तम्। तदुक्तं वात्स्यायनेन (६।१०।२३)–

'अवसानेऽपि च प्रीतिरुपचारैरुपस्कृता।
सविश्रम्भकथायोगै रतिं जनयते पराम्'।। इति।

अनेन द्वयोर्माधुर्यभरः कथितः। अथवा 'षूद-क्षर श्रुतिहत्योः' इति नन्द्यादेर्ल्युट्, इति मधु माधुर्यं क्षरतीति मधुसूदनः, स चासौ मुदितमनोजश्च, मुदितो माधुर्यभराच्छृङ्गाररसकौशलेनानन्दितो मनोजः कामो येनेति तमित्यर्थः।

लगा सब कुछ उसी में समा गया। उनके भी नयन-कमल थोड़े से मुँदने लगे। आँखें

---

१. अत्र रसिकप्रियाधृतपाठः—'आदितो घटितयन्त्रमेव गात्रं निपात्य नखवद्विचेष्टते' इति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केचिच्च सामर्थ्यद्योतनाय मधुनामानं दैत्यं सूदितवानिति मधुसूदन इति व्याकुर्वन्ति।।७।।

श्रीजयदेवभणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम्।
सुखमुत्कण्ठितगोपवधूकथितं वितनोतु सलीलम्।।८।।

श्रीजयदेवेति। इदं श्रीजयदेवकविना भणितं वर्णितं यदुत्कण्ठिताया गोपवध्वा राधिकायाः कथितं वचनं तत् सुखं वितनोतु विस्तारयतु, पठतां शृण्वतामिति शेषः। कीदृशम्? अतिशयेन मधुरिपोः कृष्णस्य निधुवनं सुरतक्रीडां शीलयतीत्येवंरूपम्, सलीलमिति लीला शृङ्गारजा क्रिया तत्सहितमित्यर्थः। सलीलं यथा स्यादिति वा। 'आयोधनं निधुवनं सुरतञ्च रतं सभम्' इत्यमरः (?)। कथितमित्यत्र भावे क्तः।।८।।

हस्तस्त्रस्तविलासवंशमनृजुभ्रूवल्लिमद्बल्लवी-
वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम्।
मामुद्वीक्ष्य विलज्जितस्मितसुधामुग्धाननं कानने
गोविन्दं व्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ।।१६।।

इदानीमत्युत्कण्ठया सख्या नीयमाना गोपीगणावृतं कृष्णं दृष्ट्वा परावृत्य सखीमाह—हस्तेत्यादिना। हे सखि। अहं गोविन्दं कानने पश्यामि हृष्यामि च। पश्यामीति वर्त्तमानसामीप्याद्वर्तमानता। कीदृशम्? व्रजसुन्दरीगणवृतं

पूरी खुली नहीं रह सकीं, मैं निढाल होकर गिर पड़ी और मधुसूदन का प्यार कृतार्थ हो गया।।७।।

श्री जयदेव ने मधुसूदन के प्यार की लीला का जो गीत गाया वह गीत सुख हो जाएगा, ऐसा सुख जो लीला का सुख होगा, एक बड़े महारास का उत्सव होगा। साधारण सुख नहीं होगा, इस प्रथम समागम की चर्चा से जो एक दूसरी लीला की भूमिका उपस्थित होती है, उसके लिए मन को तैयार करेगा। यह दूसरी लीला काव्यलोक की लीला है। यह साधारण लोक की लीला नहीं है। इसमें चित्त की एक दूसरी भूमि होती है। यहाँ पर देह, देह नहीं रहती, देह लीला बन जाती है, देह पदावली बन जाती है।।८।।

छठीं अष्टपदी के बाद दो श्लोक हैं, दोनों श्लोक सूत्र-संयोजक हैं। रासलीला तो अभिनय के लिए है। श्लोक केवल नेपथ्य में अभिनय की वस्तु को समेटने के लिए अथवा आगे के प्रबन्धसूत्र को संयोजित करने के लिए होता है। इन दोनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपवधूकदम्बपरिवृतम्। ननु सपत्नीभिः परिवृतं दृष्ट्वा कथं ते हर्षः? इत्यत आह–मामिति। मामुद्वीक्ष्य दृष्ट्वा विलज्जितमन्यवधूभिः परिवृतोऽहमनया दृष्ट इति हेतोः लज्जासहितं यत् स्मितं तदेव सुधा शुभ्रत्वादतिस्पृहणीयत्वाच्च तथा मुग्धं मनोहरमाननं यस्य तम्। तथा च सुन्दरीवशवृतोऽपि सापराधमात्मानं मन्यमानो मत्तो बिभेतीति हर्ष उचित एवेति भावः। पुनः कीदृशम्? अनृजुः कुटिला भ्रूवल्लिर्भ्रूलता यासामेतादृश्यो या वल्लव्यो गोपवध्वस्तासां वृन्दमुत्सारयत्यपसारयतीत्येवंशीलं दृगन्तवीक्षितं नेत्रास्तेनावलोकितं यस्य तम्। मय्यागतायां भिया दृगन्तचेष्टयाऽन्य-गोपीरपसारयन्तमित्यर्थः। पुनः कीदृशम्? हस्तात् स्रस्तो मद्दर्शनेन साध्वसवशात् स्खलितो विलासवंशः क्रीडावेणुर्यस्य तम्। पुनः कीदृशम्? अतिशयेन स्वेदैः प्रस्वेदैरार्द्रं गण्डस्थलं यस्य तम्। सर्वत्र मामुद्वीक्ष्येत्यस्य सम्बन्धः। अनृजुभ्रूवल्लिमद्वल्लवीत्यनेन तासां सौन्दर्यमुक्तम्। अथवा अनृजुः कुटिला मदाधिक्यदर्शनेन वक्रा भ्रूलता यासां तासां वृन्दमपसारयतीत्येवम्भूतं दृगन्तवीक्षितं यस्य। अथवा अनृजुभ्रूवल्लिमत्कटाक्षावलोकितमपि यस्य, अत एव वल्लवीवृन्दमपसारयतीत्यर्थः। अत्रानृजुभ्रूवल्लीति प्रियादर्शनेन भ्रूनर्त्तनं कथितम्, तत्सौन्दर्यमपि। अथवा अनृजुभ्रूवल्लिमद्वल्लवीवृन्दं तद्भावोद्बोध-कत्वेन उद् अधिकं सारि विस्तारणशीलं कटाक्षवीक्षितं यस्य तद्भाव-विस्तारकमित्यर्थः। तासामेवाभिसारकमिति वा। अथवा अनृजुभ्रूवल्लि-मद्वल्लवीवृन्देन मद्गुणदर्शनेनोत्सारि ऊर्ध्वप्रसरणशीलं दृगन्तवीक्षितं कटाक्षेक्षणं यस्य। एवं सकलगुणसम्पन्ननायिकामुकुटमणेर्दर्शनादेव कृष्णे साङ्गरसोत्पत्तिर्दर्शिता। तत्र राधामोहनावालम्बनविभावौ। अनुकूलप्रतिकूल-भाववशकारिणी रतिः स्थायिभावः। वनाद्युद्दीपनविभावाः, स्मित-कटाक्षाद्यनुभावाः, स्मितसुधामुग्धाननमिति दृगन्तवीक्षितमिति दर्शिताः। स्वेदकम्पादयः सात्त्विका अतिस्वेदार्द्रेऽप्युद्रिक्तत्वं तेषां दर्शितम्। हस्तस्रस्त-विलासवंशमिति वेपथुना सूद्दीप्तसात्त्विकः, साध्वसादिति व्यभिचारिभावः, लज्जाभयादिकाश्च व्यभिचारिणः। इति महाकविना श्रीवृन्दावनेश्वर्याः परमविदग्धायाः कृष्णेन साङ्गो रससम्राट् शृङ्गारो वर्णितः। अलमतिविस्तरेण। अनुकूलश्चात्र नायकः। तदुक्तम् (उ० १।२५-२७)–

श्लोकों का भाव यह है–सखी ने जरा-सा उचककर श्रीकृष्ण को दूर से झाँका तो देखा एकदम से उदास हो गये, हाथ से बाँसुरी खिसक गयी और उन्होंने कटाक्ष के साथ भौंहें टेढ़ी करके गोपियों के समूह को हटा दिया और चारों दिशाओं में देखते-देखते पसीने की बूँदें उनके गालों पर झलक आयीं। ऐसे कृष्ण के हल्की-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अतिरक्ततया नार्यां व्यक्तान्यललनास्पृहः।
सीतायां रामवत् सोऽयमनुकूलः प्रकीर्त्तितः।।
राधायामेव कृष्णस्य सुप्रसिद्धानुकूलता।
तदालोके कदाप्यस्य नान्यासङ्गः स्मृतिं व्रजेत्'।। इति।

तद्यथा–

'वैदग्धीनिकुरम्बचुम्बितधियः सौन्दर्यसारोज्ज्वलाः
कामिन्यः कति नाद्य वल्लवपतेर्दीव्यन्ति गोष्ठान्तरे।
राधे! पुण्यवतीशिखामणिरसि क्षामोदरि! त्वां विना
प्रेङ्खन्ती न परासु यद्बकरिपोर्दृष्टाऽत्र दृष्टिर्मया।।' इति।

प्रेयोनामायमलङ्कारश्च। तदुक्तं दण्डिना (काव्यादर्शे-२।२।७९)– 'प्रीतिप्रकाशनं यत्तत् प्रेय इत्यभिधीयते' इति।।१६।।

दुरालोकः स्तोकस्तबकनवकाशोकलतिका-
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति।
अपि भ्राम्यद्भृङ्गीरणितरमणीया न मुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति।।१७।।

पुनर्विभावानाह—दुरालोक इत्यादि। हे सखि! स्तोकोऽल्पः स्तबको गुच्छो यस्या एतादृशी या नवकाऽतिनवा अशोकलतिकाऽनुकम्प्याशोकशाखा तस्या विकास उद्बोधो दुरालोको दुःखेनालोकितुं शक्यः। नखेत्यत्र 'केऽणः' (पा० ७।४।१३) इति ह्रस्वः। लतिकेत्यत्र 'अनुकम्पायाम्' (पा० ५।३।७६) कन्। मद्धस्तपालिताऽत एवानुकम्प्याऽशोकलतिका दुरालोकेति भावः। किमयं कासारसरसी तत्सम्बन्धि यदुपवनं तत्सम्बन्धी यः पवनो वायुः सोऽपि व्यथयति दुःखं ददाति। कासार इत्यनेन वायोः शैत्यं कथितम्,

---

सी खीस की या लज्जा की मुस्कान से भोले लगनेवाले मुँह को देख रही हो। चारों ओर से घिरे हुए हैं सुन्दरियों से और वहाँ नहीं हैं। एकदम अन्यत्र विस्थापित हो गये हैं। इस कृष्ण, इस गोविन्द के नेत्र इन्द्रियों और गौवों की तलाश में वन-वन घूमनेवाले गोविन्द को देखते हैं, बड़ा अच्छा लगता है।।१६।।

अच्छा तो इसलिए लगता है कि शीघ्र अगर मिलते नहीं, भर मन मिलते नहीं, तो यह वसन्त अच्छा नहीं लगता। यह अशोक की नयी लतिका में इतने फूल आ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपवनसम्बन्धित्वेन च सौगन्ध्यं मान्द्यञ्च ध्वनितम्, यतो वृक्षैरुपहतगतित्वेन मन्द एव वायुर्भवतीति। अथवा स्तोकेत्यादि वायोरेव विशेषणम्, तदा स्तोकस्तबकनवकाशोकलतिकां विकासयतीत्येवम्भूतः पवनो व्यथयतीत्यन्वयः। नन्वभिमुखमागच्छन् पवनोऽञ्चलादिना निवार्यताम्? इत्यत आह–दुरालोकोऽतीन्द्रिय इत्यर्थः। तथा चाकस्मादेवापतन्न दृश्यत इति भावः। अपिशब्देन तद्विकासिताशोकलतिकापि व्यथयतीति ध्वनितम्। अपि चेयं शिखरिणी गोवर्द्धनपर्वते वर्त्तमाना चूतानामाम्राणां मुकुलप्रसूतिः कुड्मलोद्गमोऽपि न सुखयति, विकासदशायां तु को वेद, किं करिष्यतीत्यपि ध्वनितम्। अथवा कीदृशी मुकुलप्रसूतिः? शिखरिणी प्रशस्ताग्रभागवतीव्यर्थः; शिखरिणीति प्रशंसायामिन्। अथवा शिखरिणी मल्लिका न सुखयतीत्यर्थः। कीदृशी? भ्राम्यन्तीनां भृङ्गीणां भ्रमराङ्गनानां रणितैर्गुञ्जितै रमणीया। भृङ्गाङ्गनानां भ्रमणं नायकान्वेषणार्थमिति ध्वनितम्। शिखरिणीनामकं छन्द इदमित्यपि सूचितम्। 'स्तोकोऽल्पे चातके' इति विश्वः। 'स्याद्गुच्छकस्तु स्तबकः' इत्यमरः। 'लता ज्योतिष्मती वृक्षशाखावल्लिप्रियङ्गुषु' इति विश्वः। 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः। 'स्त्रीरत्ने मल्लिकायाञ्च प्रोक्ता शिखरिणी बुधैः' इति विश्वः।।१७।।

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित-
भ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलार्द्धहस्तस्तनम्।
गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य गमिताकाङ्क्षश्चिरं चिन्तय-
न्नन्तर्मुग्धमनोहरं हरतु वः क्लेशं नवः केशवः।।१८।।

साकूतस्मितमित्यादि। केशवो हरिर्वो युष्माकं क्लेशं हरतु। किंलक्षणः? गमिताकाङ्क्षः श्रीराधायां प्राप्ताभिलाषः, अन्यासु गोपीषु तद्दर्शनाद् गमिता निरस्ताकाङ्क्षा यस्य स इति वा। किं कुर्वन्? निभृतं यथा स्यात्तथा निरीक्ष्य, निभृतं रहस्यं भावप्रकाशनमिति यावन्निरीक्ष्येति वा। अन्तः हृदये चिरं चिन्तयन्। किं निरीक्ष्येत्यपेक्षायामाह–साकूतस्मितं साभिप्रायमीषद्धसितम्। पुनः किम्? आकुलाकुलोऽत्यन्तास्तव्यस्तो गलन् उन्मुक्तीभवन् धम्मिल्लः केशपाशस्तं कामोद्रेकाद रोमोद्गमादिहेतुना, पुनः किम्? उल्लासित-

---

गये हैं, गुच्छे-के-गुच्छे का खिलना अच्छा नहीं लगता और इस तालाब के पास के बगीचे से जो बयार आ रही है वह भी अंग-अंग दुखा रही है। इधर-उधर भ्रमण करते हुए भौंरों की सुन्दर गूँज भी अच्छी नहीं लगती। आमों के नये-नये बौर अच्छे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रूवल्लीकम् उत्क्षिप्तभ्रूवल्लीकम्। अलीकेन छलेन दर्शिता भुजामूलार्द्ध-हस्तस्तना यत्र कर्मणि तत्। अत्रार्द्धशब्दो हस्तस्तनाभ्यामभिसम्बध्यते। हस्तौ च स्तनौ चेति द्वन्द्वसमासो जृम्भणादिव्याजेन भुजामूलार्द्धहस्तस्तनप्रकटनमिति भावः। किञ्चार्द्धजृम्भणमप्यत्र ज्ञेयम्। तदुक्तम्-

'वामबाहुः शिरोलग्नो यत्र वामस्तनोन्नतिः।
सालसभ्रूविलासञ्च तदुक्तं त्वर्द्धजृम्भणम्'।। इति।

कासामित्यत आह-गोपीनाम्। किम्भूतं तच्चतुष्टयम्? मुग्धं मनोहरमिति मुग्धानां मनो हरतीति तथा। किंलक्षणो हरिः? नवस्तरुणः, तरुणं दृष्ट्वा स्त्रीणां कामविकारोऽभिजायत इति, अथवा नवः श्रीराधां दृष्ट्वाऽन्यादृश इव जातः, अत्यद्भुतगुणप्रकटनात्। अथवा नवः नूयते नायकगुणैः स्तूयत इति; अथवा नवः नित्यनूतनः, नित्यानुभूयमानस्यापि नानुभूत इति प्रतीतेः। तद्यथा (ललितमाधवे-१।५२)-

'कुलवरतनुधर्मग्राववृन्दानि भिन्दन्,
सुमुखि! निशितदीर्घापाङ्गटङ्कच्छटाभिः।
युगपदयमपूर्वः कः पुरो विश्वकर्मा,
मरकतमणिलक्षैर्गोष्ठकक्षां चिनोति'।।

निभृतं भावप्रकाशनमिति व्याख्याने साकूतस्मितेत्यादिचतुर्णामपि पदानां भावविशेषणत्वम्। मुग्धमनोहरमिति च क्रियावत्। प्रियजनानां क्लेशापहारी केशवो यत्र तादृशः, राधादर्शनाह्लादेन गतक्लेश इति वा।।१८।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्ये अक्लेशकेशवो नाम द्वितीयः सर्गः।।२।।

नहीं लगते और न अब शिखरिणी की छोटी-सी टोलियाँ सुख देती हैं, जहाँ मैं खड़ी हूँ, जहाँ से बैठे-बैठे यह सब देख रही हूँ।।१७-१८।।

।।इति द्वितीयः सर्गः।।२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ तृतीयः सर्गः।।

मुग्ध-मधुसूदनः

कंसारिरपि संसारवासनाबन्धशृङ्खलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः।।१९।।

सर्गद्वयेन श्रीराधायाः श्रीकृष्णविषयिणीमुत्कण्ठामुक्त्वा सम्प्रति कृष्णस्यापि तस्यामाह—कंसारिरपीत्यादि। कंसारिरपि कृष्णोऽपि व्रजसुन्दरीस्तत्याज। त्यागे हेतुमाह—राधामिति। राधां हृदये आधायारोप्य सौन्दर्यवतीर्बह्वीरपि तत्याजेति कृष्णस्य श्रीराधायामनुरागातिशयो ध्वनितः। कीदृशीं राधाम्? संसारविषयिणी या वासना संस्कारस्तस्य बन्धाय शृङ्खलामिव। अनेनाभिलाषाख्या प्रथमावस्था कथिता। तल्लक्षणं कथितं प्राक् (गो० ७)। किञ्च–

'सङ्गमोपायरचितप्रारब्धव्यवसायतः।
सङ्कल्पेच्छासमुद्भूतिरभिलाषोऽत्र विक्रिया।।
प्रवेशनिर्गमौ तूष्णीं तद्दृष्टिपथगामिनौ।
रागप्रकाशनपराश्चेष्टाः स्वात्मप्रसाधनम्।।
व्याजोक्तयश्च विजने स्थितिरित्यादयो मताः'।।

इति (र०सु० २।१८०-१८२)। सकार्यस्यास्य पूर्वास्वप्यवस्थासु प्रवेशो ज्ञेयः, प्रथमकारणत्वात्, प्रेम्णो माधुर्यभरसम्पादकत्वाच्चेति। अथवा सम्यक् सारः संसारः आनन्दचिन्मयो मधुराख्यो रसः, भगवद्विषयत्वात्; तद्विषयिणी या वासना नित्यसंस्कारस्तस्मिन् बन्धाय शृङ्खलामिव निगडरूपामिवेत्यर्थः। उक्तञ्च–

'आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिस्ताभिर्य एष निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि'।।

इति ब्रह्मसंहितायाम् (५।३७)। अथवा सर्वात्मभावेनाभिसरणं श्रीराधामिति संसारः, तद्विषयिणी या वासना निरन्तरा हृदयवृत्तिस्तया बन्धाय स्ववशीकाराय शृङ्खलामिव। तथा च कं सुखं सारयति विस्तारयतीति

श्रीकृष्ण ने जब राधा को इतनी दूर देखा और रास से राधा को मुड़ते हुए देखा, तो फिर उनका वहाँ रहना दुस्सह हो गया। राधा तो संसार की वासना के बन्धन की शृंखला से मुक्ति है। कहाँ वे देखते! एकदम जहाँ थे, वहाँ से जैसे संसार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कंसारिः 'औणदिक इन्' इति; कंसोऽपि यस्माद्बिभेतीति सामर्थ्यद्योतनाय कंसारिरिति वा। उक्तञ्च (भा० ७।१।३०) 'भयात् कंस' इति। 'शृङ्खला पुंस्कटीवस्त्रबन्धेऽपि निगडे च' इति विश्वः।।१९।।

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः।
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनीतटान्तकुञ्जे विषसाद माधवः।।२०।।

पुनः किं कृतवाँस्तत्राह—इतस्तत इत्यादि। स माधवः कलिन्दनन्दिन्या यमुनायास्तटान्तकुञ्जे तीरप्रान्तलतापिहितोदरगृहे विषसाद विषादं चकार। अत्र माधवपदेन मा लक्ष्मीस्तस्या अपि धवः स्वामी यद्विरहव्याकुलो बभूवेति राधायाः सौभाग्याधिक्यं ध्वनितम्। किं कृत्वा? इतस्ततः तेषु तेषु सङ्केतस्थानेषु तामखिलपरिजनत्यागेन स्वहृदि विनिहितां राधिकामनुसृत्यान्विष्य। कीदृशः? अनङ्गः कामस्तद्बाणस्य यद्व्रणं क्षतं तेन खिन्नं दुःखितं मानसं यस्य सः। पुनः कीदृशः? कृतानुतापः पूर्वमेव कथं मया नानुनीतेदानीं तद्विना कथमवस्थातुं शक्यत इति पश्चात्तापः कृतो येन सः। अनङ्गपदेनानिवार्यत्वं ध्वनितम्। अनेन श्लोकेन चिन्ताख्या द्वितीयावस्था कथिता। तल्लक्षणं कथितं प्राक् (गो० ७)।।२०।।

गीतम्-७

[गुर्जरीरागेण प्रतिमण्ठतालेन च गीयते]

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन।
सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन।।
हरि-हरि हतादरतया गता सा कुपितेव।।ध्रुवम्।।१।।

से पहले सर्ग से एकदम उखड़ गये। अब वे सुन्दरियों को वहीं इस रूप में छोड़कर कहीं चले गये।।१९।।

चले नहीं गये, वे राधा की खोज करते रहे और खोज करते-करते उन्हें ऐसा लगा कि काम के बाणों के आघात और तीखे पड़ रहे हैं। मन में पहले पछतावा हुआ। राधा नहीं मिलीं, वे यमुना के किनारे के पहले के एक ऐसे परिचित कुंज में चले गये, जहाँ उनसे राधा से भेंट हुआ करती थी। माधव, ऐसे माधव भीतर-भीतर विषाद से भर उठे-'मुझसे बड़ी भूल हुई।।२०।।

'हाय, मन नहीं मिला। वह नाराज-सी कहीं चली गयी। मुझे उसने यहाँ देखा, गोप-वधुओं के समूह से घिरा हुआ हूँ और मुझसे गलती हो ही गयी थी, चूक हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा (गो. ७) वसन्ते वासन्तीत्यादिना राधाया अनुसरणं कथितम्, तथैवात्र इतस्तत इत्यादिना कृष्णस्यानुसरणं प्रदर्शितम्। इदानीं 'कृतानुताप' इति यदुक्तम्, तदेव गीतेन वर्णयति—मामियमित्यादि। गीतस्यास्य गुर्जरीरागः, तालस्तु प्रतिमण्ठः, तयोर्लक्षणं कथितं प्राक् (गी० २।१, ५।१)। गीतार्थस्तु–हरि हरि हा कष्टम्! सा मत्प्राणकोटिवल्लभा प्रख्यातगुणा राधा हतादरतया नष्टबहुमानतया कुपितेव गता। विश्रम्भेण कुपितेवेत्युक्तम्, प्रणययोगेन समग्रकोपाभावात्। व्यभिचारीभावोऽयं कोप इति ज्ञेयम्। इति ध्रुवपदम्। ननु सा कुपिता गतेति कथं त्वया ज्ञातमित्यत आह—मामियमित्यादि। मां वधूनिचयेन गोपवधूसमूहेन वृतं वेष्टितं विलोक्य दृष्ट्वा चलिता प्रस्थिता, विलोक्येत्यव्यवहितपूर्वकाले क्त्वाप्रत्ययस्तेन गोपवधू-वेष्टितं मां दृष्ट्वाऽव्यवहितकाल एव यतश्चलिता, ततो ज्ञायते कुपितेवेति भावः। ननु सा गच्छन्ती त्वया किमिति न निवारितेत्यत आह—सापराधतयेति। मयातिभयेनातिशयितभीत्या सा न निवारिता, अस्या अग्रे कथं वक्तुं शक्यत इति। भये हेतुमाह—सापराधतयेति। अपराधो राधां विहायान्यगोपीभिः सह क्रीडारूपस्तद्युक्ततया।।१।।

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण।
किं जनेन धनेन किं मम जीवितेन सुखेन।।२।।

किं करिष्यतीति। सा चिरं विरहेण चिरकालीनमद्विश्लेषेण किं करिष्यति विरहतापशान्त्यर्थं कमुपायं करिष्यतीत्यर्थः। अनेन स्वविरहमहाज्वालामधीर्य तद्दुःखाक्रान्तत्वेन सुष्ठु प्रणयोत्कर्षो दर्शितः। तद्यथा (भाग. १०।३१।१९)–

'यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु,
भीताः शनैः प्रिय! दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि, तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः।।' इति।

गयी थी। मैं इतना सहम गया था कि मैं उसे रोक नहीं सका। उसी समय वह नाराज होकर चली गयी।।१।।

'वह इस क्रोध में क्या कर बैठेगी, क्या खाएगी? इतना भारी पड़ेगा उसे यह विरह। इसलिए प्रणयकोप के कारण भी असह्य है, और यह एक दोहरा विरह है– अपने ही मन की तरंगों से प्रेरित होकर मोल लिया हुआ विरह। इस विरह के भार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा चिरं विरहेण तप्तं मां ज्ञात्वा ममाङ्गीकारं किं करिष्यति यथाकथञ्चिदपीति शेषः। किमिति वितर्के। अत्र क्षणस्यापि विश्लेषे बहुकालस्फूर्त्तिः। तदुक्तं श्रीभागवते (१०।१९।१६) 'क्षणं शतयुगमिव यासां येन विनाभवत्।' इति महाभावस्यानुभावोऽयं चिरमित्यनेन कथितः। अथ च किं वदिष्यति? अपराधक्षमापनार्थं चरणौ निपतितं मां दृष्ट्वा किं कोपेन तिरस्कारकवचनमपि कथयिष्यति? अथवा किं मया सह कदाचिन्माधुर्यवर्षिण्या वाण्या सद्वार्तां कथयिष्यति; अथवा किं मम सत्कथां वा वदिष्यति, दोषान् वा वदिष्यतीत्यर्थः। अथवा मयि चाटूक्तिभिर्मिलिते किं कोपादिकं करिष्यति किं परुषं वा वदिष्यति। अपि तु कोपं विहाय प्रसन्ना सती मधुरमेव वदिष्यतीत्यर्थः। एवं मानादिप्रकरणेऽस्मिन् रसे मुनिना हरिवंशे, जयदेवेन चात्रैव श्रीकृष्णस्य रसास्वादलीलामयमूर्त्तेर्बहुधा चेष्टितं निरूपितम्; तेन एषु व्याख्यानेषु कल्पना नाशङ्कनीया। ननु एतावता को वाग्रहः, अन्यगोपीजनानुशीलनेन चित्तव्यावर्त्तनं कर्त्तव्यमित्यंत आह–किं जनेनेति, तया विना मम जनेन गोपीरूपपरिजनेन किम्? गोपाङ्गनारूप-परिजनोऽप्यकिञ्चित्कर इत्यर्थः। जनेनाशेषपरिजनेन किमिति वा, तद्वियोगेन सर्वपरिजनत्यागात्। अपि च धनेन किम्? धनेन पितुः श्रीव्रजेश्वरस्याखिल-लोकातिशायिन्या सम्पत्त्या मम किम्? न किमपीत्यर्थः। तद्वियोगे विविध-विचित्रालङ्करणानामपि सन्तापकत्वेन परित्यागात्। अतः सैव मम भूषणरूपा महाधनरूपा चेति भावः। वक्ष्यते चाग्रे (गी० १९।३) 'त्वमसि' इत्यादि। ननु धनं विना गृहसौख्यं न स्यादिति चेत्तत्राह गृहेण किम्? तथा विना सुखं न स्यात्, अत आह–मम सुखेन किम्? तथा विनान्यसुखेनापि मम किं प्रयोजनम्? सैव मम सुखरूपेति भावः। अथवा मम सुखेनात्मसम्बन्धिसुखेन किम्? क्व मम सुखम्? तद्दुःखानुभवेन सुखप्रदानामपि दुःखप्रदत्वात् तत्सुखेनैव मम सुखमित्यर्थः। किं जनेन धनेन किं मम जीवितेन गृहेणेति पाठे मम जीवितेन किम्? तद्दुःखासहिष्णुतया मम जीवितमप्यकिञ्चित्कर-मित्यर्थः। स्मृत्याख्या तृतीयावस्थेयं कथिता। तदुक्तं रसार्णवसुधाकरे (२।१८५-८६)–

'अर्थानामनुभूतानां देशकालानुवर्त्तिनाम्।
सातत्येन परामर्शो मानसः स्यादनुस्मृतिः।।'
'अत्रानुभावो निःश्वासो ध्यानं कृत्यविहस्तता।
शय्यासनादिविद्वेष इत्याद्याः स्मरकल्पिताः'।।२।।

में क्या कर बैठेगी, नहीं सोच पाता। उसके बिना धन, जीवन सब बेकार है। वह घर ही क्या उसके बिना, सब बेकार है, राधा ही तो मेरा घर है।।२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रु कोपभरेण।
शोणपद्ममिवोपरि भ्रमताकुलं भ्रमरेण।।३।।

इदानीं तद्दुःखाक्रान्तस्यापि कुपिताया अपि तस्या एवैकचिन्तनपरत्वेन प्रेमसौष्ठवं दर्शयति—चिन्तयामीति। अहं तदाननं चिन्तयामि स्मरामि। कीदृशम्? कोपभरेण रोषभरेण आकुलं व्याप्तं शोणपद्ममिव रक्तपद्ममिव, अत्र शेषारुणे मुखे शोणपद्मसाम्यं बोध्यम्। वारं वारं वक्रीभवन्त्योश्च भ्रुवोः भ्रमद्भ्रमरोपमा बोध्या। अनेन गुणकीर्त्तनाख्या चतुर्थ्यवस्था कथिता। तदुक्तम्–

'अङ्गप्रत्यङ्गलीलाभिर्वाक्चेष्टाहसितेक्षणैः।
न तस्य सदृशः कश्चिदित्यादिगुणकीर्त्तनम्।।' इति।

'शोणः कोकनदच्छविः' इत्यमरः। अनेनाव्यभिचारिसौन्दर्यं दर्शितम्, क्रुधापि शोभाप्रदत्वात्; किञ्च माधुर्यं नामैतदेव। तदुक्तं (उ. ११।१९) 'माधुर्यं नाम चेष्टानां सर्वावस्थासु चारुता' इति।।३।।

तामहं हृदि सङ्गतामनिशं भृशं रमयामि।
किं वनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि।।४।।

तामहमित्यादि। अहं वने किं तामनुसरामि, किमिति तस्या अनुसरणं करोमि, इह किं वृथा विलापं करोमि। हृदि सङ्गतां हृदये लग्नां तामनिशं निरन्तरं भृशमतिशयेन रमयामि क्रीडयामि, वियोगे संयोगस्फूर्त्तिः। महाभव-विकारोऽयम्। अथवा किंशब्दः प्रश्ने, अहं तां हृदि सङ्गतामनिशं किं रमयामि? किं वा वने तामनुसरामि? वृथा विलपामीत्यर्थः।।४।।

तन्वि! खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि।
तन्न वेद्मि कुतो गतासि नतेन तेऽनुनयामि।।५।।

यही चित्त का घर है। वह चली गयी तो इस जीवन में रखा क्या है? मैं जब सोचता हूँ कि कैसा होगा उसका मुख? भौंहें टेढ़ी मानो कोप के भार से टेढ़ी हो गयी हों, मानो लाल-लाल कमल के ऊपर भौंरों की पंक्ति से और काली हो गयी हों। मैं तो सोचता हूँ और सिहर जाता हूँ। हाय उसे जो मान मिलना था, नहीं मिला, नाराज होकर चली गयी।।३।।

आज भी मैं उसे हृदय से संलग्न पाता हूँ और रात-रात उस हृदयरूपी राधा को रमाना चाहता हूँ। अब क्या मैं बिलकुल उसके पीछे-पीछे चलूँ? यहीं बैठे-बैठे व्यर्थ विलाप करूँ, वह तो चली गयी। हे प्रिये, मैं सब जानता हूँ।।४।।

तुम्हारा हृदय मेरे प्रति कितना खिन्न हुआ होगा। कुछ सोच सकता हूँ, ऐसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे तन्वि कृशाङ्गि! तव हृदयमसूयया मयि दोषाविष्करणेन खिन्नं खेदयुक्तमाकलयामि पश्यामि जानामीत्यर्थः। इयञ्चोद्वेगावस्था, तदुक्तं शृङ्गारतिलके (२।११)–

'यस्मिन् रम्यमरम्यं स्यान्न च हर्षाय किञ्चन।
विद्वेषः प्राणितव्येऽपि स उद्वेगः स्मृतो यथा।।' इति।

इयं तु श्रीराधायां युज्यते। तथा च मनसः खेदयुक्तत्वात् तन्वीति सम्बोधनमुचितमेवेति। तन्न वेद्मीत्यादि त्वं कुतो गतासि तदहं न वेद्मि। तव नतेन प्रणत्यानुनयामि त्वामित्यर्थः। क्वचित् नुतेनेति पाठः, तदा ते नुतेन तव स्तुत्याऽनुनयामि त्वामित्यर्थः। अथवा 'नु' इति वितर्के। तेनेति लक्षणेऽव्ययम्, तथा च यं मार्गं लक्ष्यीकृत्यागतासि, तेन तं मार्गं लक्ष्यीकृत्य गत्वा तेऽनुनयामि तवानुनयं करोमि। ते इति सम्बन्धमात्रविवक्षया षष्ठी। अनेन विलापावस्था कथिता, तदुक्तं शृङ्गारतिलके (२।१२)–

बम्भ्रमीति मनो यस्मिन्नत्यौत्सुक्यादितस्ततः।
वाचः प्रियाश्रिता एव स प्रलापः स्मृतो यथा'।। इति ।।५।।

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि।
किं पुरेव ससम्भ्रमं परिरम्भणं न ददासि?।।६।।

दृश्यस इत्यादि। हे सुन्दरि! पुरेव पूर्वमिव ससम्भ्रमं सादरं भङ्ग्या सचकितं वा, परिरम्भणमालिङ्गनं किं किमिति न ददासि न प्रयच्छसीत्यर्थः। सम्भ्रममिति स्वाभीष्टेऽपि प्रियतमाश्लेषे उद्वेगमिव व्यञ्जनाद्विवेवाकोऽनुभावविशेषो ध्वनितः। तदुक्तम् (उ. ११।५२-५४)–'इष्टेऽपि गर्वमानाभ्यां विवेवाकः स्यादनादरः' इति। तद्यथा–

'प्रियोक्तिलक्षेण विपक्षसन्निधौ स्वीकारितां पश्य शिखण्डमौलिना।
श्यामातिवामा हृदयङ्गमामपि स्रजं दराघ्राय निरास हेलया।।'

यथा वा–

स्फुरत्यग्रे तिष्ठन् सखि! तव मुखक्षिप्तनयनः,
प्रतीक्षां कृत्वायं भवदवसरस्याघदमनः।
दृशा गर्वग्रामोद्गरणगुरुहेलागहनया,
हसन्तीव क्षीबे त्वमिह वनमालां रचयसि।।' इति।

उपेक्षा का मैं क्या करूँ? मैं जानता ही नहीं तुम कहाँ गयी? जानता तो मैं तुम्हें मनाता, पर तुम तो एक अवसर भी न दे सकी और तुरन्त तिनककर चली गयी।।५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वं ते मम पुरतोऽग्रतो दृश्यसे गतागतं यातायातं विदधासि करोषि। विरहिणो हि चित्तानुसङ्गातो सर्वतस्तामेव पश्यन्ति। यथा (अमरुशतके-१०२)–

'प्रासादे सा दिशि दिशि नु सा पृष्ठतः सा पुरः सा,
पर्यङ्के सा पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्य।
हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा,
सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैववादः।।६।।

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि।
देहि सुन्दरि! दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि।।७।।

क्षम्यतामित्यादि। हे सुन्दरि! दर्शनीयरूपे! क्षम्यताममिममपराधं क्षमस्व। कदापि तव ईदृशमपरं विप्रियं न करोमि करिष्यामि। इयञ्चोन्मादावस्था, तदुक्तं रसार्णवसुधाकरे (२।१९३)–'अतस्मिंस्तदिति भ्रान्तिरुन्मादो विरहोद्भवः' इति। पुनः किञ्चित्सञ्जातविवेकः कथयति—देहीत्यादि। हे सुन्दरि! मम मत्कृते, सम्बन्धमात्रे षष्ठी, दर्शनं देहि प्रयच्छ। त्वद्दर्शन-सम्प्रदानत्वायोग्यत्वेऽपि मम कृपयापि दर्शनं देहीति योगेऽपि न चतुर्थीति ज्ञेयम्। तथा च सुन्दरीति सम्बोधनेन प्रोत्साहयति। मन्मथेन कामेन अहं दुनोमि सन्तप्तो भवामि।।७।।

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन।
केन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन।।८।।

जयदेवकेन जयदेवेन स्वार्थे कः। इदं हरेश्चरितं वर्णितम्। कीदृशेन? प्रणतेन अर्थाद् हरिमित्यर्थः। प्रवणेनेति पाठे हरिपरायणेनेत्यर्थः। पुनः

तुम बिलकुल सामने ही आती-जाती दिख रही हो। पर क्या कारण है कि तुम पहले की तरह घबराकर अपने आलिंगन में मुझे कस नहीं रही हो।।६।।

राधा, तुम आ जाओ। संकेत दो, कहाँ हो। क्षमा करना। अब ऐसा अपराध मुझसे आगे कभी नहीं होगा। सुन्दरी, दर्शन दो। मैं काम के ताप से झुलसा जा रहा हूँ।।७।।

जयदेव कवि ने यहाँ श्रीकृष्ण के आकुल होने का वर्णन किया। जयदेव जो स्वयं किन्दुबिल्व कणों के गाँव के समुद्र में पैदा हुए चन्द्रमा हैं, जो रोहिणी-रमण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीदृशेन? केन्दुबिल्वो जयदेवकुलवृत्तिग्रामः स एव महत्त्वात् समुद्र इव तत्र सम्भवो यस्य तादृशेन रोहिणीरमणेन चन्द्रेण। यथा समुद्रोत्पन्नेन पूर्वचन्द्रेण तस्योन्नतिः क्रियते, तथा तत्कुलस्योन्नतिर्जयदेवेनाक्रियतेति चन्द्रसाम्यम्; केन्दुबिल्वनाम जयदेवस्य कुलमेव। केचित्तु किन्दुबिल्वनामा कश्चिन्महाभागवतः समृद्धः कविश्च जयदेवस्य पूर्वपुरुष इति कथयन्ति। 'ग्लौरिन्दुरेणतिलको हरिरोहिणीशौ' इति हारावली। तथा च पद्मावत्या उत्कर्षकथनाय रोहिणीरमणेत्युक्तम्।।८।।

हृदि बिसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग! क्रुधा किमु धावसि?।।२१।।

इदानीं काम एव मे दुःखं प्रयच्छतीति तमेव उपालम्भगोचरं करोमीत्याशयेनाह—हृदीत्यादि। हे अनङ्ग! कन्दर्प मयि न प्रहर प्रहारं मा कुरु, किमु इति वितर्के, मयि हरभ्रान्त्या महादेवभ्रमेण क्रुधा क्रोधात् त्वं धावसीति किमु तर्कयामि। अथवा 'उ' इति हे अनङ्ग! हरभ्रान्त्या मयि किमिति धावसि? कीदृशे मयि? प्रियारहिते विरहिते; हरः सर्वदा प्रियायुतोऽहं त्वधुना प्रियारहित इति मयि हरभ्रमो न युक्त इति भावः। तथा च प्रियाविरहसन्तप्ते मयि प्रहरणमपि नोचितमिति ध्वनितम्। कामः, पूर्वं हरेण तच्छरीरं दग्ध्वाङ्गरहितः कृत इति हरेः कामस्य महद्वैरसूचनायानङ्गपदेन सम्बोधनम्। भ्रमबीजं निरस्यति-हृदि अयं बिसलताया मृणाललताया हारस्तद्विरहजन्यसन्तापशान्त्यर्थं धृतः। न तु भुजङ्गनायकः सर्पराजो वासुकिः। इयं कण्ठे कुवलयदलानां नीलोत्पलपत्राणां श्रेणी पङ्क्तिः, शैत्याय धृता, न तु सा गरलद्युतिः विषकान्तिः। इदं सर्वाङ्गे तापशान्त्यर्थं धृतं मलयज-

---

श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण करते हैं, रोहिणी नक्षत्र के चन्द्रमा हैं, जिसमें वे ज्योतिषियों को ऊँचे लगते हैं।।८।।

जयदेव सूत्रधार के रूप में कृष्ण के विलाप का विशद वर्णन पाँच श्लोकों में करते हैं। कृष्ण तो विह्वल बावले हो गये हैं। प्रलाप करते हैं—'यह मेरे हृदय के कमल के नाल के सूतों से बनी माला नहीं है, यह तो लगता है कोई काला साँप है, मेरे हृदय पर लोट रहा है। यह मेरे गले में लाल कमल की पंक्ति नहीं है, यह तो विष की चमक है। लाल-लाल जलती हुई विष की चमक है। मेरे शरीर पर लेप किया हुआ चन्दन, चन्दन नहीं है, यह प्रिया के बिना अब चिताभस्म है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रजश्चन्दनधूलिः, न तु भस्म विभूतिः, अङ्गे लिप्तः प्रशिथिलचन्दनद्रवोऽपि। विरहतापवशाद् धूलीभूत इति रजःपदेन सूचितम्; तथा च बिसलतायां शैत्यदीर्घत्वादिदर्शनात्तव वासुकिभ्रमात्, नीलोत्पलदलपङ्क्तौ श्यामत्वादि-धर्मदर्शनाद् गरलभ्रमाच्चन्दनरजसि भस्मभ्रमाच्च मयि महादेवभ्रमस्तव न युक्त इति भावः। अयं च भ्रान्तिमानलङ्कारः, 'सादृश्याद्वस्त्वन्तरप्रतीतिर्भ्रान्तिमान्' इति तल्लक्षणात्। 'वितर्के किं किमुत च' इत्यमरः। 'उ सम्बुद्धौ रोषोक्तौ च' इति विश्वः।।२१।।

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्व! मूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम्।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिज! प्रेङ्खत्कटाक्षाशुग-
श्रेणीजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते।।२२।।

कुसुमसायकत्वेन कामः प्रसिद्धोऽत इमान्नवचूतमञ्जरीरूपान् बाणान् धनुष्यारोप्य मां ताडयिष्यतीति शङ्कया पुनरपि कामायैव दैन्यं करोति— पाणावित्यादिना। हे मनसिज मदन! अमुं पुरःस्थितं चूतसायकमाम्रपुष्परूपं बाणं पाणौ हस्ते मा कुरु, वसन्तकालीनपुष्पोद्गमं दृष्ट्वाह–चापं धनुर्मा रोपय प्रत्यञ्चायुक्तं मा कुरु; यद्वा चूतसायकं हस्ते मा कुरु, हस्तेऽपि चेत् करोषि, तदाऽमुं सायकं मा आरोपय मा सन्धेहीत्यर्थः। अत्र मनसिजपदेन मन्मनसो जातस्य ते मत्सन्तापकारित्वमनुचितमिति ध्वनितम्। हे क्रीडानिर्जितविश्व क्रीडया लीलया निर्जितं विश्वं जगद् येन तादृशस्य मूर्च्छितस्य मूर्च्छाप्राप्तस्य जनस्य मादृशस्य आघातेन प्रहारेण तव किं पौरुषम्, अपि तु न किमपीत्यर्थः। अथवा मूर्च्छितजनाघातेन तव किंपौरुषं कुत्सितं पौरुषमित्यर्थः। मूर्च्छितत्वे हेतुमाह—तस्या एवेति। तस्या एव मृगीदृशो हरिणीदृशः, तस्या एवेति विरहाधिक्येन राधानामग्रहणासक्तिः प्रतिपाद्यते;

कामदेव से कहते हैं कि 'तुम क्यों मुझे शंकर समझकर बार–बार मेरे ऊपर आघात करने के लिए दौड़ रहे हो।।२१।।

तुम्हें जो यह साँप की तरह कमलनाल के सूतों की माला दिखती है, इसके कारण भ्रम में नहीं पड़ो, यह मेरे गले में नीले कमलों की पंक्ति है, यह विष की नीलिमा नहीं है, यह मेरे शरीर में आलिप्त चन्दन है, चिताभस्म नहीं है। कुछ वैसे ही मैं प्रिया के बिना निष्प्राण हो रहा हूँ। क्यों मेरे ऊपर प्रहार कर रहे हो? मत लो हाथ में आम के बौरों का बाण। मत इसे अपने धनुष पर चढ़ाओ। यह तुम्हारा कौन–सा पौरुष है कि जो आदमी आधा मर चुका है, बेहोश हो रहा है, उसके ऊपर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेङ्खन्तः प्रसर्पन्तो ये कटाक्षास्त एवाशुगाः बाणास्तेषां श्रेणिभिः पङ्क्तिभिर्जर्जरितं खण्डखण्डीकृतं मनो मनागपि स्वल्पमपि न सन्धुक्षते न जीवतीत्यर्थः। तथा च तत्कटाक्षरूपबाणैरहं मूर्च्छितः, सम्प्रति मयि चूतमञ्जरीरूपसायकप्रहारो मृतमारणमिवाचरतीति लीलयैव येन विश्वमपि जितं तस्य ते मूर्च्छितजनेषु प्रहारो यशोहानिकर इति ध्वनितम्। 'सायकः शरखड्गयोः' इति विश्वः। 'अथास्त्रियां धनुश्चापौ' इत्यमरः। किंपौरुषमित्यत्र द्वितीयव्याख्यानपक्षे 'किं क्षेपे' (पा २।१।६४) इत्यनेन निन्दायां समासः। 'आशुगो मारुते बाणे' इति विश्वः।।२२।।

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि
बाणा गुणः श्रवणपालिरिति स्मरेण।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवताया-
मस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि।।२३।।

ननु तत्कटाक्षादिस्मरणादेव तव दुःखं भवति, कामस्य तत्र कोऽपराध इत्यत आह—भ्रूपल्लवमित्यादि। किमित्याक्षेपे। तस्यां राधायां स्मरेण कामेन अस्त्राणि अर्पितानि स्थापितानीति तर्कयामि। नन्वस्त्राणि वीरेण हस्ते स्थापयितुमुचितानि, न त्वन्यत्रेत्यत आह—निर्जितेत्यादि। निर्जितानि जगन्ति यैस्तानि। तथा च तैरेवास्त्रैर्जगत्त्रयं जित्वा तत्र स्थापितानीति भावः। तर्ह्यन्यत्र किमिति न स्थापितानीत्यत आह–अनङ्गेत्यादि। अनङ्गस्य कामस्य जयाय जङ्गमदेवतायां गमनशीलदेवतायां तथा च तयैव त्रैलोक्यजयायास्त्राणि दत्तानि, अतो जातप्रयोजनानि, तत्रैव स्थापितानीति भावः। देवतया यदस्त्रं दीयते, तत् केनापि न प्रतिहन्तुं शक्यत इति ध्वनितम्। अहो देवताया माहात्म्यम्! अङ्गं विनैव यत्प्रसादेन जगज्जितम्, अत एवानङ्गस्तज्जितत्वादेव ईशं कृष्णं विहाय तामेवाश्रितवानिति ज्ञेयम्। कानि तान्यस्त्राणीत्यत आह—भ्रूपल्लवमित्यादि।

असाध्य विष! अपने और अपने खेल से विश्व को जीत लेनेवाले कामदेव! क्यों मुझे पहले ही से आहत होने पर भी आघात कर रहे हो। मैं तो पहले ही से उस मृगनयनी के कटाक्षों के बाणों से, जो तुम्हारे बाणों से अधिक तीखे हैं, जर्जर हो उठा हूँ। मेरा मन पता नहीं आज भी इतने आघात के बाद भड़क क्यों नहीं उठा है'।।२२।।

'तुम्हारी नये-नये कोपल की तरह कुछ लाल, कुछ घनी नीली भौंहें धनुष हैं। तुम्हारे कटाक्ष की लहरें बाण हैं। तुम्हारे कानों में लटकती हुई लट की डोरी से ऐसा लगता है कि कामदेव ने तुम्हें अपने सारे अस्त्र सारे संसार को जीतकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रूपल्लवं तदेव धनुः, अपाङ्गतरङ्गितानि कटाक्षस्य गतागतानि बाणाः; श्रवणपालिः कर्णलताप्रान्तमेव गुणः प्रत्यञ्चा। अत्र नीलस्निग्धत्वाद् भ्रुवः पल्लवत्वेन रूपणम्, वक्रत्वेन च धनुस्त्वेन रूपणम्, अपाङ्गस्य परमर्मभेदकत्वाद् बाणत्वेन रूपणम्। कर्णपालिश्च दीर्घत्वात् प्रत्यञ्चिकात्वेन रूपिता। 'अपाङ्गोऽङ्गहीने स्यान्नेत्रान्ते तिलकेऽपि च' इति विश्वः। 'पालिः कर्णलताग्रेऽस्त्रौ पङ्क्तावङ्कप्रभेदयोः' इति च।।२३।।

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम्।
मोहं तावदयञ्च तन्वि! तनुतां बिम्बाधरो रागवान्
सद्वृत्तस्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति।।२४।।

सम्प्रति राधाङ्गविलसितान्येव स्मररूपाणि मां पीडयन्तीति तस्या एवोपालम्भं करोमीत्याशयेन काममुपेक्ष्य पुरःस्थितामिव राधां सम्बोध्याह— भ्रूचाप इति। भ्रूचापे भ्रूरूपे धनुषि निहितोऽर्पितः कटाक्षविशिखः कटाक्षरूपो बाणो मर्मव्यथां मर्मपीडां निर्मातु करोतु, धनुष्यारोपितस्य बाणस्य परमर्म-पीडनमेव धर्म्यमिति तदुचितमेव। अथ च कुटिलो वक्रः श्याम आत्मा स्वरूपं यस्य एतादृशः कबरीभारोऽपि ग्रथितवेणीसञ्चयोऽपि मारोद्यमं माराय मारणायोद्यमं पराक्रमं करोतु। अथवा मारस्य कामस्य उद्यमं करोतु, योऽन्तर्मलिनः कुटिलश्च भवति, सोऽन्यमारणाय यतत इत्यपि नानुचितम्। अथ च हे तन्वि! अयं बिम्बाधरो बिम्बफलतुल्योऽधरो मोहं मूर्च्छां तनुतां तनोतु। कीदृशो रागवान् रक्तताविशिष्टः। इदमपि नानुचितम्, यतो मात्सर्ययुक्तः स परमोहं करोत्येवेति। अयं तव सद्वृत्तः सद्वर्त्तुलः स्तनमण्डलः कुचविस्तारो मम प्राणैः कथं किमिति क्रीडति प्राणग्रहणरूपां क्रीडां किमिति करोति? सद्वृत्तस्य सच्चरितस्य परप्राणग्राहित्वमनुचितमिति भावः। विरोधनामायमलङ्कारः, सद्वृत्तरूपगुणस्य परप्राणग्रहणक्रियया

यह मानकर समर्पित कर दिये हैं कि तुम तो काम को भी जीतनेवाली हो, अब इन अस्त्रों को लेकर क्या करूँगा'।।२३।।

एकाएक श्रीकृष्ण अदृश्य राधा को सम्बोधित करते हैं—'हे छरहरे शरीरवाली, हे छरहरी देहयष्टिवाली राधा, सोचो—तुम क्यों अपनी भौंहों को धनुष बनाकर कटाक्ष के बाण फेंक रही हो, जिससे मेरा मन वेधित हो उठे। अरे, तुम्हारा केशपाश जो खुल गया है, काला-काला, कुंचित केशपाश, वही पर्याप्त है काम को जगाने में और उसकी मारक पीड़ा देने में यह लाल-लाल तुम्हारा अधर ही मुझे मूर्च्छित कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरोधकथनात्। तदुक्तं काव्यप्रकाशे (१०।२८)–'विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः' इति। 'विशिखस्तोमरे शरे' इति विश्वः। 'श्यामो निन्दितकृष्णयोः' इति धरणिः। 'कबरी केशपाशे स्यात्' इति हारावली। 'कबरी केशवेशः' इत्यमरः। 'मारो मृतौ विषेऽनङ्गे इति विश्वः। 'बिम्बं फले बिम्बिकायाः प्रतिबिम्बे च मण्डले, देहच्छायायामपि'। 'रागोऽनुरक्तौ मात्सर्ये रञ्जनेऽपि निगद्यते' इति विश्वः। 'चरिते वर्त्तुले वृत्तम्' इति शाश्वतः। 'आत्मा देहमनोब्रह्मस्वभावधृतिबुद्धिषु' इति विश्वः।।२४।।

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलाः स्निग्धा दृशोर्विभ्रमा-
स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधास्यन्दी गिरां वक्रिमा।
सा बिम्बाधरमाधुरीति विषयासङ्गेऽपि चेन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि हन्त! विरहव्याधिः कथं वर्द्धते।।२५।।

ननु तस्या अपि नापराधो न वा स्मरस्य, किन्तु तदङ्गस्पर्शादि-विषयालाभाच्चञ्चलं त्वच्चेतस्त्वां दुःखीकरोतीत्यतोऽनुभूयमानां तां मन्वान आह—तानीत्यादि। स्पर्शसुखानि तदङ्गस्पर्शजन्यानि सुखानि, इदानीमनुभूयमानानि तान्येव पूर्वानुभूतान्येव, एतेन त्वगिन्द्रियविषयलाभः कथितः। दृशोर्नेत्रयोस्तरलाश्चञ्चलाः स्निग्धाः स्नेहगर्भा विभ्रमा विलासास्त एव पूर्वानुभूता एव, अनेन चक्षुर्विषयलाभ उक्तः। वक्त्राम्बुजसौरभं तस्या मुखपद्मसौरभं तदेव। अनेन घ्राणस्य विषयप्राप्तिरुक्ता। गिरां तद्वचसां सुधाममृतं स्यन्दते स्रवतीत्येवंशीलो वक्रिमा वक्रत्वमिदानीं श्रोत्रेण गृह्यमाणः स एव पूर्वानुभूत एव। अनेन श्रोत्रेन्द्रियविषयसान्निध्यमुक्तम्; बिम्बाधरमाधुरी तस्य बिम्बफलप्रायस्य या माधुरी मधुरता अधुना मयास्वाद्यमाना सैव पूर्वानुभूतैव; अनेन रसनेन्द्रियस्य विषयलाभः कथितः। इत्येवंप्रकारेण विषयासङ्गेऽपि तत्तदिन्द्रियाणां स्वस्वविषयासक्तावपि मानसं मन्मनश्च तस्यां राधायां लग्नसमाधि तदेकाग्रं यदि हन्तेति खेदे तदा विरहव्याधिः तद्विश्लेषजन्यो व्याधिः कथं वर्द्धते? अपिशब्दो विरोधाभासालङ्कार-

---

रहा है। यह तुम्हारे गोल-गोल स्तन मेरे प्राणों से क्यों खेल रहे हैं? क्यों मुझे इस तरह और रह-रहकर इतनी पीड़ा पहुँचा रही हो?'।।२४।।

'मैं तो उस क्षण को पाना चाहता हूँ, जब तुम्हारा स्पर्श पुलकित करता था। तुम्हारी आँखों की प्रीति, एकदम तरल प्रीति रसधार बनती हुई मुझे संजीवित कर रही थी। तुम्हारे बदन-कमल का सौरभ मुझे आप्लावित कर रहा था, तुम्हारी बाँकी बातें अमृत बरसा रही थीं, तुम्हारे लाल अधरों की माधुरी मुझे अमृत का आस्वाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूचनार्थः। बाह्येन्द्रियविषयासङ्गे समाधेः सम्भवात्। बाह्येन्द्रियवृत्तिनिरोधे सति मनस एकाग्रताया एव समाधिपदार्थत्वात्। तथा च तत्तदिन्द्रियाणां स्वस्वाभिमतविषयालाभ एव विरहः सम्भवति, मम च तत्तदिन्द्रियाणां विषयविच्छेदस्याभावान्मनसश्च तच्चिन्तनैकपरत्वात्तया सह विश्लेष एव नास्तीति कथं विरहजन्यव्याधिसम्भव इति भावः। समाधौ व्याधेरनुभव इति ध्वनितम्। 'गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाश्च विषया अमी' इत्यमरः। तस्मात् कोऽप्यद्भुतो दुर्वितर्क्यस्तत्प्रेमविवर्त्त इति सिद्धान्तः।।२५।।

तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य वंशोच्चरद्
गीतिस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः।
सम्मुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदु-
स्पन्दं कन्दलिताश्चिरं दधतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः।।२६।।

इदानीं सर्गान्ते आशिषमाशास्ते—तिर्यगित्यादि। मधुसूदनस्य कृष्णस्य कटाक्षोर्मयो नेत्रान्तदर्शनतरङ्गा वो युष्माकं क्षेमं दधतु कल्याणं प्रयच्छन्तु। दुरिता सद्भावेन क्षेमदातृत्वं सम्भवतीति दुरितदारणसामर्थ्यद्योतनाय मधुसूदनपदोपादानम्। अतिचापल्यसूचनायेति वा। किंलक्षणा? मधुरे अमृतादपि मधुरिमाश्रये राधाया मुखमिन्दुरिव तस्मिन् मृदुस्पन्दमीषच्चलनं सम्मुग्धमव्यक्तं च सुन्दरं च यथा स्यात्तथा कन्दलिताः पल्लविताः, तथा चेन्दुदर्शनात्तरङ्गा अतीवपल्लविता भवन्तीति कटाक्षाणां तरङ्गसाम्यम्। क्वचिच्च 'प्रेम्णा कन्दलिताः सुमुग्धमधुरे राधाननेन्दौ सुधासारे वो मधुसूदनस्य ददतु क्षेमं कटाक्षोर्मयः' इति पाठः, तदा किंविशिष्टे मुखेन्दौ?

दे रही थी और मैंने तो तब समाधि में विषयासक्ति छोड़ दी। इस समय विरह की व्याधि क्यों तुम्हारी पीड़ा दे रही है, क्यों क्षण-क्षण बढ़ती जा रही है?'।।२५।।

श्रीकृष्ण का यह विलाप इस काव्य की एक नयी दृष्टि से योजना है। इस काव्य का उद्देश्य ही है कि राधा को केन्द्र में लाकर कृष्ण को धीरे-धीरे उनके वश में करना, उनके अधीन करना। प्रारम्भ का रास तो कृष्ण की उपेक्षा का है, पर उनकी यह उपेक्षा उनके लिए इतनी भारी पड़ती है कि वे पूरी रात अपने को अपने उस निकुंज में बिलखते हुए बिता देते हैं और उन्हें लगता है कि श्रीकृष्ण होना सार्थक तभी है, जब राधा अनुकूल हो। श्रीकृष्ण को विश्वमोहन को मोहित करनेवाला यह तत्त्व स्थापित करने के लिए ही वसन्त के रास का आरम्भ है और वसन्त के रास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुष्ठु मुग्धश्च तन्मधुरश्च तत्तस्मिन् रम्ये नव्ये चेत्यर्थः। 'मधुरस्तु प्रिये स्वादौ' इति। पुनः किम्भूते? सुधासारे सुधायाः सारे। नन्वन्यासु पश्यन्तीषु कथं राधामुखचन्द्र एव पल्लविता ऊर्मयः? अत आह–वंशे उच्चरद गीतिस्थानेषु गानपादेषु स्वरग्रामादिषु कृतावधानैः समर्पितचित्तवृत्तिभिर्ललनालक्षैः कामिनीकदम्बैर्न संलक्षिता नावलोकिताः। तथा च सकल एव कलत्रकदम्बो वंशध्वनिमोहितो न किञ्चिदपश्यदिति तत्रैव पल्लविता इति भावः। वंशपूरणे स्वभावमनुवर्णयति–किम्भूतस्य? तिर्यग् वक्रः कण्ठो यस्य, विलोलश्चञ्चलो मौलिः किरीटो यस्य, तरलश्चञ्चल उत्तंसः कर्णाभरणं यस्य सः। तिर्यक्कण्ठश्चासौ विलोलमौलिश्चासौ तरलोत्तंसश्चेति कर्मधारयस्तथा-विधस्येत्यर्थः। 'गीतिर्गानम्', 'ललना तु नितम्बिनी' इत्यमरः। 'उत्तंसः कर्णपूरेऽपि सुन्दरे नायकेऽपि च' इति धरणिः। 'कन्दलन्तु नवाङ्कुरे कल-ध्वनौ उपरागे च' इति।

'ऊर्मिस्तरङ्गे पीडायां वेगभङ्गप्रकाशयोः।
उत्कण्ठावस्त्रसङ्कोचलेखयोरपि कीर्त्तिता'।। इति विश्वः।।२६।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्ये मुग्धमधुसूदनो नाम तृतीयः सर्गः।।३।।

में एक प्रमाद है, जो राधा के बिना है। मुझे ऐसा लगता है, यह सब राधा के चित्त में घटित हुआ है। राधा के चित्त में ही यह रास होता है। इस रास में उपेक्षा की प्रतीति होती है। उस प्रतीति से मन में एक बिलगाव आता है, प्रेम होता है, यह बिलगाव मिलने के लिए आतुर करता है, जो विरह को ही बढ़ाता है। मिलन की स्मृति ही विरह को और बढ़ाती है। विरह के बढ़ते ही मिलन की स्मृति और वेधक हो जाती है। उसी स्मृति के साथ-साथ राधा को भी यही लगता है और उन्हें भी तो लगा होगा कि राधा नहीं है। ऐसा रास, किस प्रयोजन का रास! वे भी तो नहीं होंगे और मिलकर उन्होंने भी तो अनुभव किया होगा। अब वे क्यों नहीं मिलते।।२६।।

।।इति तृतीयः सर्गः।।३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ चतुर्थः सर्गः।।

स्निग्धमधुसूदनः

यमुनातीरवानीरनिकुञ्जे मन्दमास्थितम्।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिकासखी।।२७।।

पूर्वसर्गे श्रीकृष्णस्य विरहजनितावस्था वर्णिता। अत्र तु राधाविरहावस्थां श्रीकृष्णं प्रत्याह—यमुनेत्यादि। राधिकायाः सखी माधवं कृष्णं प्राह वक्ष्यमाणमुवाच, राधिकेत्यनुकम्पायां कः। कीदृशम्? प्रेमभरेण राधाविषयकस्नेहाधिक्येन उद्भ्रान्तमुत्क्षिप्तं चलनादिक्रियां कर्त्तुमशक्तम्, अत एव तदन्वेषणं विहाय यमुनायास्तीरे यद्वानीरनिकुञ्जं तत्र मन्दं निरुत्साहमा-स्थितमासीनम्। अमन्दमिति वचनविशेषणं वा, अतिशयव्याकुलां राधां दृष्ट्वा अमन्दं सवेगमाहेत्यर्थः। 'मन्दः खले मन्दगते मूर्खे स्वैरिणि रोगिणि' इति विश्वः। 'स प्रेमा भेदरहितं यूनोर्यद्भावबन्धनम्' इति रसार्णवसुधाकरे (२।११०)।।२७।।

गीतम्-८

[कर्णाटरागेणैकतालीतालेन च]

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम्।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम्।।
सा विरहे तव दीना
माधव! मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना।।ध्रुवम्।।१।।

तदेव गीतेन दर्शयति—निन्दतीत्यादिना। गीतस्यास्य कर्णाटरागः, तल्लक्षणम्–

इसलिए सोचती है राधा कि सखी को भेजें, उन्हें बुला लें,'उनको खोजकर बुला लें। वह जानती तो है कि वह हैं कहाँ? वे वहीं होंगे, जहाँ उन्होंने मुझे पहले बुलाया था। वहीं अभिसार का स्थल है। इसलिए वहाँ यमुना के किनारे के बेंत के झुरमुट में एकदम निढाल पड़े हुए माधव के पास आकर गोपी, राधिका की सखी सन्देश देने लगी। कृष्ण तो पहले ही प्रेम के नये उफान से ऊभचूभ हो रहे थे।।२७।।

सखी कहती है– 'हे माधव! वह तुम्हारे विरह में एकदम दीनहीन हो गयी है। एकदम असहाय हो गयी है। चन्दन लगाते हैं तो चिल्ला उठती है कि यह क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कृपाणपाणिर्गजदन्तपत्रमेकं वहन् दक्षिणकर्णपूरे।
संस्तूयमानः सुरचारणौघैः कर्णाटरागः शिखिकण्ठनीलः'।। इति।

एकतालीतालश्च, तल्लक्षणं (गी० ६।१) प्राक्कथितम्। विरहोत्कण्ठिनी नायिका चेयम्।

'नैवागतः समुचितेष्वपि वासरेषु
प्राणेश्वरः स्वगुरुकार्यवशेन यस्याः।
दुर्धारवृत्तविरहज्वरतापिताङ्गी-
मुत्कण्ठितां वदति तां भरतः कवीन्द्रः।।' इति।

गीतार्थस्तु–'हे माधव! सा राधा तव विरहे दीना दुःखिता; तथा च सा दुःखिता, भवांस्तु सस्त्रीक एवेति न तद्दुःखं जानातीति माधवपदेन कटाक्षितम्। हा कष्टं! यदि दुःखिता, तर्हि सा कथं वरीवर्त्ति? तदाह–त्वयि लीना मग्ना। कस्मादिव? मनसिजस्य कामस्य ये विशिखा बाणास्तद्भयादिव। भवतो मनसो जात इति त्वयि लीने सति तस्माद् भयं न भवतीति मनसिजेति ध्वनितम्। ननु मयि कथं लीनेत्यत आह—भावनयेति। **भावनया सर्वविषयनिन्दापूर्वकत्वत्स्मरणेनेत्यर्थः। विषयनिन्दामाह–चन्दनं मलयजं निन्दति, विरहिणाम् उपतापकरो वृथा शैत्यधाराभिधं बिभर्त्तीति निन्दां करोति। किञ्च इन्दुकिरणं सुधांशुकिरणमनु लक्ष्यीकृत्य खेदं कष्टं विन्दति प्राप्नोति। तत्रापि अधीरमनल्पम्। 'धीरस्तु कुङ्कुमे स्वल्पे बुधे धैर्यवर्तिषु' इति विश्वः। अधीरं धैर्यरहितं यथा स्यात्तथा निन्दतीति वा। अधिकमीरति कामशरान् प्रेरयतीति चन्दनविशेषं वा। अपि च मलयसमीरं मलयपर्वतसम्बन्धिवातं व्यालनिलयमिलनेन व्यालानां सर्पाणां निलयो निवासश्चन्दनवृक्षस्तस्य संसर्गेण गरलमिव विषमिव कलयति मन्यते। चन्दनवृक्षस्थितसर्पैः पीतोद्गीर्णा एते मलयवायवोऽत एव समीरयन्ति स्थानात् स्थानान्तरं वस्त्विति समीरा वस्तुचालकस्वभावाद् विषमयाः, कथमन्यथा शरीरसम्पर्कादेव मूर्च्छां जनयन्तीति गरलमिव मन्यत इति भावः। तथा च**

कर रही हो, यह चन्दन तो ताप दे रहा है। चन्द्रमा की किरणें आसपास पड़ती हैं, तो उसे लगता है, जाने क्या नया आक्रमण हो रहा है, नया आघात हो रहा है, जाने कितनी सुइयाँ विंध रही हैं। दक्षिण की बयार चलती है, तो लगता है कि जहर उगल रही है। आखिर है तो उसी मलयाचल की न, जहाँ चन्दन पर साँप लिपटे रहते हैं। यह बयार थोड़े ही है, यह तो साँप की, अगणित सर्पों की फुंकार है। उसे इतना डर लगा है कामदेव के बाणों से, वसन्त के फूलों से, वसन्त की चन्द्रिका से (यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुःखितस्य विरहिणो हि सुखहेतवोऽपि दुःखायैव भवन्तीति ध्वनितम्। विरहोत्कण्ठेन स्मरणरूपां दशां प्राप्नोति; तदुक्तं शृङ्गारतिलके (२।९)–

'द्वेषो यत्रान्यकार्येषु तदेकाग्रञ्च मानसम्।
श्वासैर्मनोरथैश्चापि चेष्टा तत् स्मरणं यथा।।' इति।

'इन्दुं निन्दति पद्मकन्दलदलीतल्पं न वा मन्यते,
कर्पूरं किरति प्रयाति न रतिं प्रालेयधारागृहे।
श्वासैः केवलमेव खिद्यति तनुर्जाताप्यसौ बालिका,
यत्तत् कोऽपि युवा सखि! स्मरसखश्चेतस्यमुष्याः स्थितः।।'

'व्यालो भुजङ्गमे क्रूरे श्वापदे कुष्टदन्तिनि' इति विश्वः। 'गरलं तु विषे माने गरलं तृणपूरके' इत्यपि।।१।।

अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम्।
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनीदलजालम्।।२।।

अविरलेत्यादि। सा स्वहृदयमर्मणि हृदयरूपमर्मस्थाने सजलनलिनीदलजालं जलसहितपद्मिनीपत्रसमूहं वर्म कवचं करोति। कीदृशम्? विशालम्। किमर्थमिव? अविरलं यथा स्यादेवं निपतितो यो मदनशरः कामबाणस्तस्माद् भवदवनायैव भवतो रक्षणायैव। तस्या हृदये त्वं सर्वदा तिष्ठसि, अतोऽविरलनिपतद्भिर्मदनशरैस्ते पीडा माभूदिति कमलिनीपत्रैः सन्नाहमिव करोतीति भावः। केचित्तु कीदृशं वर्म? अविरलनिपतितमदनशरादवनाय स्वरक्षणाय (भय), भवदिव सम्पद्यमानमिवेति व्याकुर्वन्ति। 'अवनं रक्षणे प्रीतौ' इति विश्वप्रकाशः। 'व्यथाऽसहं स्थलं मर्म' इत्यपि। विशालं विस्तीर्णमपि। भवदवनायेति प्रथमव्याख्याने सख्याः स्नेहाधिक्यं सूचितम्। तेन दूतीकर्मकुशलत्वमपि कथितम्।।२।।

सब काम की सेना ही तो है), वसन्त की बयार से, वसन्त की खिली हुई चाँदनी से, वह घबराकर ध्यान के द्वारा तुममें लीन हो रही है। तुममें लीन होने का अर्थ ही है कि कामदेव फिर उसे न पा सके।।१।।

कामदेव निरन्तर बाणों की वर्षा कर रहा है, ऐसा लग़ता है कि उसका तूणीर अक्षय है और एक बाण निकालने के बाद दूसरा बाण धनुष में चढ़ाने में जरा भी देर नहीं लग रही है। बाण पर बाण फेंके जा रहे हैं, जिससे सारे संसार में कम-से-कम मेरे संसार में आग लग जाय। राधा यह देखती है तो अपने हृदय को मर्म के आधात से बचाने के लिए कमल के दलों से एक जाल बुनती है कि यह कवच का काम करेगा।।२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम्।
व्रतमिव तव परिरम्भसुखाय करोति कुसुमशयनीयम्।।३।।

कुसुमविशिखेत्यादि। सा कुसुमशयनीयं पुष्पशय्यां करोति रचयति। कीदृशम्? अनल्पविलासकलायां बहुतरक्रीडाकलायां कमनीयं काङ्क्षणीयम्। एवम्भूतावस्थायामपि त्वदागमनाशया अनुरागातिशयेन कुसुमशय्यामारचय्य त्वन्मार्गदत्तदृष्टिरेव तिष्ठतीति भावः। कमिव? कुसुमविशिखः कामस्तस्य ये शराः कुसुमस्वरूपास्तेषां शय्या यत्र तादृशं व्रतमिव। किमर्थम्? तव परिरम्भसुखाय आलिङ्गनसुखप्राप्तये। 'तल्पं च शयनीये स्यात् तल्पमट्टकलत्रयोः' इति विश्वः। एभिस्त्रिभिः पदैरुद्वेगाख्या पञ्चम्यवस्था कथिता। सुखस्पर्शं पुष्पमपि बाणतुल्यं भवतीति ध्वनितम्। अथवा सा अनल्पविलासकलाकमनीयं कुसुमशयनीयं तव परिरम्भसुखाय कुसुमविशिखशरतल्पं व्रतमिव करोतीत्यर्थः।।३।।

वहति च वलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम्।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृतधारम्।।४।।

वहतीत्यादि। सा उदारं सुन्दरमाननकमलं मुखपद्मं वहति धारयति। प्रेमामृताश्रुदातृत्वेनोदारमिति वा। कीदृशम्? वलिते त्वन्मार्गप्रेक्षणाय तिर्यक्प्रसारिते विलोचने नेत्रे एव जलधरौ रसवर्षिणौ मेघौ यत्र तादृशम्।

माधव! तुम्हारे विरह में वह निरुपाय होकर उपाय भी सोचती है, तो क्या सोचती है! कमलदल तो वैसे ही उसके बाण हैं और वह कवच कहाँ से होगा? उसे अपना कवच बनाकर अपना कष्ट और बढ़ा रही हैं। पहले ही उसमें जल टपक रहा है। सतही तौर पर वह शीतल लग रहा है, परन्तु प्रभाव तो उसका और ताप पहुँचानेवाला है। वह फूलों की सेज बिछाती है और फूलों की सेज बाणों की शय्या बन जाती है और ऐसी शय्या बन जाती है, जिसमें बाण एक क्षण भी विराम नहीं लेते, तरह-तरह की कला का प्रयोग करते हैं, तरह-तरह से चुभते हैं। ऐसा लगता है कि यह शय्या उसने एक तप के रूप में स्वीकारी है। बिना बाणों की सेज पर सोये बाणों की सेज सदृश शेष के फणों पर सोनेवाले कृष्ण मिलेंगे, कृष्ण का आलिंगन मिलेगा।।३।।

बिना बाणों की शय्या का क्षण-क्षण का वेध सहे श्रीकृष्ण कहाँ मिलेंगे। वे तो सूली की सेज पर ही मिलते हैं। वे मेरे चित्त में अभिमान का एक-एक कण विदीर्ण करके रख देंगे, तभी मिलेंगे। माधव, राधा एकदम निरुपाय हो गयी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र निरन्तराश्रुवर्षित्वेन नेत्रयोर्जलधरत्वेन रूपणम्। कमिव? चन्द्रमिव, कीदृशम्? विकटाः कराला विशाला वा ये विधुन्तुदस्य राहोर्दन्तास्तैर्यद्दलनं पीडनं तस्माद्गलिता प्रत्युतामृतस्य धारा यतस्तादृशम्। अत्र मुखस्य विधुना नेत्रजलस्य चामृतधारया सादृश्याद्वाक्यार्थोपमा बोध्या। तथा चानेन वैवर्ण्यमपि ध्वनितम्। 'विकटः सुन्दरे प्रोक्तो विशालविकरालयोः' इति विश्वः। तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः' इत्यमरः।।४।।

विलिखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम्।
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम्।।५।।

विलिखतीत्यादि। किञ्च रहसि एकान्ते कुरङ्गमदेन कस्तूर्या भवन्तं विलिखति। कीदृशम्? असमशरभूतं कामरूपिणम्, तेऽधः आसनस्थाने मकरं विनिधाय धृत्वा तव करे नवचूतं नूतनाम्रमञ्जरीरूपं शरं बाणं च विनिधाय प्रणमति नमस्करोति। मकरवाहनस्त्वमेव मां किमिति सन्तापयसीति प्रणम्येष्टं त्वां याचत इति भावः। तथा च वाहनारूढः प्रियतमः शीघ्रमागमिष्यतीति वाहनलिखनमिति ध्वनितम्। विरहिण्या व्यापारश्च कथितः। तदाह भरतः–

'देवतापूजनं कुर्याद्दद्याद्बलिभुजे बलिम्।
लिखेत् कान्तप्रतिकृतिं पाठयेच्छुकशारिकाम्।।
गणयेच्चावधिदिनं गीतं गायेत्तदङ्ककम्।
एवंविधविनोदेन नयेत् कालं वियोगिनी'।। इति।

उसकी आँखों से आँसू का तार टूटता नहीं और ऐसा लगता है कि आँखें गल गयी हों और उनकी आर्द्रता चुकने को न आ रही हो। मुखकमल पर ढुलनेवाले आँसू उसे सुन्दर बना देते हैं। ऐसा लगता है जैसे वह कमल न हो चन्द्रमा हो, जिसको राहु अपने दाँतों से धीरे-धीरे चबा रहा हो और एक-एक घाव से अनन्त अमृत की धार चूस रहा हो।।४।।

राधा क्या सोचे कि उसका मुख कमल है कि चन्द्रमा है? वह तो एकदम उद्भ्रान्त हो रही है। प्रेम के भँवर में डूब-उतरा गयी है। एकान्त पाती है तो कस्तूरी के रस से आपको लिखती है, आपको रचती है और आपको ऐसे रचती है कि आपका रूपान्तरण (आप ही कामदेव हैं) काम रूप में हो, बाण के रूप में हो। उस बाण की तरह से आप कुटिल हो गये हो और आपको प्रणाम करती है, फिर आपके हाथ में काम का सबसे शक्तिशाली बाण आम्र की बौर अंकित कर देती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी गन्धशेखरः' इति हारावली। यद्यपि वियोगिन्याः काममूर्त्तिलिखनं न घटेत, तथाप्यत्र कृष्णस्य कन्दर्पस्वरूपत्वात्तदाक्रान्तचित्तत्वेन तद्रूपेण लिखनम्।।५।।

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव! तव चरणे पतिताहम्।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि कुरुते[1] तनुदाहम्।।६।।

प्रतिपदेत्यादि। प्रतिपदमितस्ततश्चलन्ती पदं पदं प्रति, वचनं वचनं प्रतीति वा इति निगदति जल्पति–हे माधव! तव चरणे अहं पतिता, त्वां नमामीत्यर्थः। त्वयि विमुखे विश्लेषे सति सुधानिधिरपि अमृतनिधिश्चन्द्रोऽपि तनुदाहं मच्छरीरसन्तापं तनुते विस्तारयति। अतनुदाहं स्मरतापं वा, अतनु यथा स्यात्तथा वा, तनु दुर्लक्ष्यं वा त्वं मायाः लक्ष्म्याः धवः स्वामी चन्द्रश्च समुद्रोत्पन्नत्वात् लक्ष्म्याः सहोदर इति त्वयि निकटे स्थिते सति लक्ष्मीः सपत्न्यपि किमपि कर्त्तुं न शक्नोति; त्वयि प्रतिकूले च सति स्वभगिनीसापत्न्यं मयि स्मरन् सुधानिधिरपि मे तनुदाहं तनुत इति माधवपदेन ध्वनितम्। सुधानिधेस्तापकारित्वं विरुद्धमिति विरोधनामायमलङ्कारः।।६।।

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीवदुरापम्।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम्।।७।।

ध्यानेत्यादि। अतिशयेन दुःखेन प्राप्यमतीवदुरापं भवन्तं ध्यानलयेन एकाग्रतया पुरः परिकल्प्य अग्रे लिखित्वा; अथवा अतीवदुरापं दौत्यादिना अतिदुर्लभं त्वां ध्यानलयेन ध्यानं चिन्तनं तत्र यो लयस्तत्परत्वं तेन पुरोऽग्रे

है। वह भूल जाती है कि इससे तो प्यार और वेधक होगा, मार और गहरी होगी।।५।।

आप कामदेव का रूप ले लेंगे तो फिर मेरा कुछ भी नहीं बचेगा। पर माधव बनी राधा एकदम सुध-बुध खो देती है। क्षण-क्षण बात-बात में यही कहती है कि माधव! तुम्हारे चरणों में पड़ी हूँ। तुम्हारे विमुख होने पर यह अमृत-कलश चन्द्रमा मेरे शरीर में दाह ही पैदा करता है। क्यों मुझे ऐसे तपा रहे हो।।६।।

एकाएक वह फिर ध्यान लगाती है और आपको उस ध्यान में बिलकुल सामने उपस्थित पा जाती है, योगी जिसे भले ही कठिन तप करके भी न पायें। बिलखने लगती है और ऐसा उन्माद चढ़ा हुआ है कि दूसरे ही क्षण अट्टहास कर उठती है।

---

१. तनुते इति वा पाठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिकल्प्य साक्षात्कृत्वा। प्रथमपक्षे तु विलिखति 'रहसि' इत्युक्तत्वान्न कल्पना। सा विलपति (उ० ११।८३) 'विलापो दुःखजं वचः'। 'शठ! इयत्कालं यदर्थे विलम्बितोऽसि, तत्रैव गच्छ' इत्याद्युक्त्वा हसति उपहसति। विषीदति पुरः स्थितेऽपि चरणौ गृहीत्वानुनयतीत्येवं विषादं प्राप्नोति। पुनः कथमयं वश्यः स्यादिति रोदिति, तदुक्तं 'रुदितमुदितमस्त्रं योषितां विग्रहेषु' इति माघे। चञ्चति चाटूक्तिभिरनुसृतं दृष्ट्वा गच्छति, पश्चादनुनीयालिङ्गिता तापं मुञ्चति स्वविश्लेषदुःखं त्यजति। यद्वा रोदिति पश्चादनुनयन्तं प्रणयरोषान्मुञ्चति तिरस्करोति। अत एव तापं चञ्चति प्राप्नोतीत्यर्थः। अलङ्कारोऽत्र दीपकः (गी. ८।४)। रहसीत्यारभ्य उन्मादावस्था कथिता। तदुक्तम् (शृ०ति० २।१३)-

'श्वासप्ररोदनोत्कम्पवसुधोल्लेखनैरपि।
व्यापारो जायते यत्र स उन्मादः स्मृतो यथा'।। इति।।

किलकिञ्चिताख्यश्चायं भावः। तदुक्तं दशरूपके (२।३९)-

'क्रोधाश्रुहर्षभीत्यादेः सङ्करः किलकिञ्चितम्'।

अलङ्कारलक्षणं काव्यप्रकाशे (१०।१०३)-

'सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम्।'

अयमर्थः-बह्वीषु क्रियाषु कारकस्य सैव सकृद्वृत्तिरेव दीपकमिति।।७।।

श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम्।
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम्।।८।।

कहती है आज मिले हो तो तुम्हें देखूँगी, तुम्हें शिक्षा दूँगी। तुमने ऐसा अपराध क्यों किया? फिर दूसरे ही क्षण विषाद करने लगती है। क्या मेरा कुछ बचा रह गया है कि मैं कुछ करूँगी और दुर्बल पड़कर रोने लगती है। इधर से उधर छटपटाने लगती है। छनछनाने लगती है और उसके शरीर से ऐसा लगता है कि भाप निकल रही है, भीतर के ताप की आँच बाहर आ रही है। इसे इस रूप में भी ले सकते हैं कि ध्यान के द्वारा अपने को लीन करके राधा इन समस्त व्यापारों और व्याधियों को झोंककर सारे तापों से रहित हो जाती है।।७।।

श्री जयदेव की यह अष्टपदी मन से अभिनय में उतारने योग्य है और इसके साथ ही बार-बार हरि के विरह में व्याकुल राधा की सखी का वचन पढ़ने योग्य है। इसके साथ अभिनय के द्वारा, वाचन या ज्ञान के द्वारा जो जुड़ेगा, वह बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवेत्यादि। **श्रीजयदेवभणितं यदि मनसा नटनीयमभिनेतव्यं भावनयास्वादनीयमित्यर्थः। तदा इः कामस्तं ददातीति इदस्तं कृष्णे तादृशाभिलाषप्रदमित्यर्थः। अत एवाधिकं सुखमधिकृत्य वर्त्तमानं हरिविरहेण आकुला या वल्लवयुवतिस्तस्या या सखी दूतीत्वेन प्रेषिता तस्या वचनं पठनीयम्।।८।।**

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते।
सापि त्वद्विरहेण हन्त! हरिणीरूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयन् शार्दूलविक्रीडितम्।।२८।।

सा त्वां विना कुत्रापि निर्वृतिं न लभत इत्याह—आवास इत्यादि। **त्वद्विरहेण सा हरिणीरूपायते मृगीरूपामिवाचरति विश्लेषव्याधिजनिता पाण्डुवर्णा हरिणीरूपेण उपमीयते; तथा च यथा मृगवधूर्वने समन्तात् प्रदीप्तदावाग्निज्वालोद्विग्ना व्याघ्रेण त्रासिताऽग्रे व्याधजालं विततं पश्यन्ती दशदिशश्चकितचकितं विलोकमाना क्वापि मन्दिरं विपिनायतेऽरण्यमिवाचरति, इयं सखीपङ्क्तिरपि जालायते वियोगदुःखासहिष्णुतया प्राणमपि त्यक्तुं प्रवृत्तायास्तद्रोधकत्वात्। यद्वा, तापशान्त्यर्थं प्रियसखीदत्ता मालापि जालायते यथा हरिणीबन्धनार्थं जालं क्षिप्यते तद्वदाचरति। तापोऽपि विरहजनितः सन्तापोऽपि श्वसितेन निःश्वासेन सहायभूतेन श्वासवायुना वनाग्निज्वालावलीवाचरति। एवं खेदमभिनयन्त्याह–हा कष्टं! सा कथं वर्त्तते यतः कन्दर्पोऽपि शार्दूलविक्रीडितं विरचयन् कृतान्त इवाचरति–हा कथं**

पुण्यवान् होगा। वह साधारण चित्त की भूमि से नहीं जुड़ पाएगा। जुड़ने पर उसे संसार अयथार्थ लगेगा, अवास्तविक लगेगा। जब वह यमुना के तट के बालू में भरे हुए रस से सिक्त होकर जुड़ेगा तो उसे वही सच लगेगा और दूसरे सच एकदम झूठ लगेंगे। सखी के ही मुख से जयदेव पूरी अष्टपदी का अर्थ समेटते हैं।।८।।

तुम्हारे विरह में घर जंगल हो जाता है। सखियों की पंक्ति एक बड़ा जाल-सी लगती है, फँसाव लगती है। गरम-गरम साँस लेने से जो ताप व्यक्त होता है, वही साँस लेती है तो जो भाप बाहर आती है वह दावानल की ज्वाला जैसी लगती है और वह उस ज्वाला में फँसी हुई एक मासूम हरिणी जैसी लगती है। हाय, कैसे यह कामदेव यमराज जैसा लगता है। शार्दूलविक्रीडित काम है, बाघ की तरह झपट्टा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमानन्दजनकोऽपि कामस्त्वद्विश्लेषे विपरीतमाचरति। हरिणीशब्देन एवम्भूतायामवस्थायां मत्सख्या मृग्या इव त्वयि स्नेहाधिक्यमिति सूचितम्। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। प्रथमपदे उद्वेगाख्यावस्था, रोषेऽष्टमी व्याध्यवस्था कथिता। तल्लक्षणम् (र० सु० २।११५)–

'अभीष्टसङ्गमाभावाद्व्याधिः सन्तापलक्षणः।
अत्र सन्तापनिःश्वासौ शीतवस्तुनिषेवणम्।।
नोत्तरं भाषते प्रश्ने नेक्षते न शृणोति च'।। इति ।।२८।।

गीतम्-९

[देशाख्यरागेणैकतालीतालेन च]

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम्।
सा मनुते कृशतनुरतिभारम्।।
राधिका विरहे तव केशव।।ध्रुवम् ।।१।।

तदेव गीतेन प्रपञ्चयति—स्तनविनिहितमित्यादि। गीतस्यास्य देशाख्यरागः–

'आस्फोटनाविष्कृतरोमहर्षो नियुद्धसन्नद्धविशालबाहुः।
प्रांशुः प्रचण्डद्युतिरिन्दुगौरो देशाख्यरागः किल मल्लमूर्त्तिः'।। इति।

एकतालीतालश्च, तल्लक्षणं (गी. ६।१) प्राक्कथितम्। गीतार्थस्तु–हे केशव! तव विरहे सा राधिकाऽनुकम्प्या राधा स्तनविनिहितमपि स्तनयोरुपरि धृतमपि उदारं मनोहरं सम्भोगादौ स्वाङ्गसंसर्गितया दत्तं तव हारम्। अथवा पूर्वं येन स्वकण्ठधृतेन तव सङ्गमः प्राप्तस्तमत एव उदारं बहुप्रदमपि अतिभारं मनुते; तत्र हेतुः–कृशा तनुर्यस्या इति। अतिकृशतया

मारता हुआ, और इस श्लोक का छन्द है शार्दूलविक्रीडित और यह पूरा छन्द ही जैसे कामदेव की क्रीड़ा हो।।२८।।

अभी सखी पूरा सन्देश दे नहीं पायी, सखी पूरी बात कह नहीं पायी। नये सिरे से राधा की व्यथा का वर्णन करने लगती है। देशराग में गाने लगती है। 'केशव! राधा तुम्हारे विरह में ऐसी अटपटी बातें सोचती है कि उसकी बात कही नहीं जाती। अपने वक्षःस्थल पर जो मृणाल-सूत्रों की माला रखी हुई है, उसको अपने कृश शरीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सखीजनैः प्राणरक्षार्थं वक्षसि समर्पितं तद्धारणेऽशक्त्या सा त्वया प्रीणनीयेति भावः। अनेन कार्श्यरूपो व्याधिरुक्तः, कृशतारूपोऽनुभावश्चायम्; तथा च कं सुखं तस्येशो नियन्ता केशः सर्वेषां सुखप्रद इति वममृतं मृतयुवतिजीवनं तद्रूपः केशश्चासौ वश्च केशवः; एतादृशेन त्वया एवंभूता प्रणयिनी मत्सखी दुःखिता भवति, तन्नोचितमिति केशवेति सम्बोधनेन ध्वनितम्।।१।।

सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम्।
पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम्।।२।।

सरसमसृणमित्यादि। अपि च, सा मलयजपङ्कं चन्दनद्रवं वपुषि देहे सशङ्कं यथा स्यादेवं विषमिव पश्यति। कीदृशम्? स्निग्धार्द्रमपि। 'मसृणः कर्कशे स्निग्धे' इति विश्वः। सरसः रसोद्बोधक इति वा।।२।।

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम्।
मदनदहनमिव वहति सदाहम्।।३।।

श्वसितेत्यादि। श्वसितपवनं निःश्वासवायुं वहति धारयति, कीदृशम्? अनुपमपरिणाहमुपमारहितः परिणाहो दैर्घ्यं यस्य तादृशम्। किमिव? कामाग्निमिव। कीदृशम्? सदाहं यथा स्यात्तथा वहतीति वा।।३।।

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम्।
नयननलिनमिव विगलितनालम्।।४।।

दिशि दिशीत्यादि। सा दिशि दिशि नयननलिनं नेत्रपद्मं किरति क्षिपति। कीदृशम्? सजलकणजालं जलकणजालैरश्रुजलकणिकासमूहैः सहितम्।

के लिए भार मानती है, उसे फेंक देना चाहती है। तुम्हारे विरह में सारे आभूषण भारी नहीं हो गये हैं, एक तरह से शाप हो गये हैं।।१।।

कितना तो शीतल होता है मलय चन्दन का लेप, इतना चिकना, इतना सरस और उसे समझती है कि यह विष से लेपन किया जा रहा है।।२।।

उसे इतना डर हो गया कि विरह को दूर करने के उपायों से अपनी गरम-गरम उसाँस छोड़ती है तो लगता है कि सारा शरीर धधक रहा है, मदन की आग में धधक रहा है या यों सोचें कि मदन ही इस आग में धधक रहा है।।३।।

राधिका तुम्हारे विरह में कैसी हो गयी है क्या बताऊँ? इधर देखती हूँ, उधर आँसू देखते-देखते ढलकने लगते हैं, एक तरह से उसके आँसुओं के तारों से दिशाएँ आबद्ध हो जाती हैं, एक जाल-सा तन जाता है, दिशाएँ उसके आँसुओं में अवरुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किमिव? विगलितं नालं यस्य एवम्भूतं नलिनमिव, आर्त्या साश्रुस्थानाद-बहिर्भूतप्रायनयनावलोकनं त्यक्तनालसजलप्रक्षिप्तपद्मेनोत्प्रेक्षितम्; तथा च स्नेहात् स्वनेत्रपद्मेन त्वदागमनमार्गसेचनं करोतीत्यपि ध्वनितम्।।४।।

नयनविषयमपि किसलयतल्पम्।
कलयति विहितहुताशनकल्पम्।।५।।

नयनेत्यादि। किञ्च, किसलयतल्पं नवपल्लवशयनीयम्, विहितो हुताशनस्याग्नेर्विकल्पः संशयो यत्र तादृशं कलयति। किम्भूतम्? नयनविषयमपि दर्शनीयमपि प्रत्यक्षोपलभमानमपीति वा; अथवा दृग्गोचरमपि एवं भवति, स्पर्शे किं वक्तव्यम्? त्वद्विश्लेषे मत्सख्या त्यक्तं शयनादिकमित्यपि ध्वनितम्। उद्वेगावस्था चेयं कथिता।।५।।

त्यजति न पाणितलेन कपोलम्।
बालशशिनमिव सायमलोलम्।।६।।

त्यजतीत्यादि। सा सायं सन्ध्यासमये पाणितलेन कपोलं न त्यजति। कीदृशम्? अलोलमचञ्चलम्, दिवसस्तु यथाकथञ्चिन्नीतो, रात्रिस्तु युगायमाना कथं नेतव्येति कपोले पाणिं कृत्वा सायं चिन्तयतीति भावः। कमिव? बालशशिनमिव द्वितीयाचन्द्रमिव। मुखार्द्धस्य करतलच्छन्नतया अर्द्धस्य दृश्यमानतया विरहेण पाण्डुतया सायमुदयेनालोलतया, कृशत्वेन च द्वितीयाचन्द्रसादृश्यम्। इयञ्च जडतावस्था। तदुक्तम् (र.सु. २।११८)–

'यत्र ध्यायति निःसंज्ञं जडता सा प्रकीर्त्तिता।
अत्र स्पर्शानभिज्ञत्वं वैवर्ण्यं शिथिलाङ्गता।।
अकाण्डहुङ्कृतिः स्तम्भो निःश्वासकृशतादयः।।इति।।६।।

हो जाती हैं, तब उसकी आँखें ऐसी लगती हैं जैसे एक कमल हो, पर उसका नाल विगलित हो गया हो और नाल जब गल जाय तो कमल की भी स्थिति नहीं रहती है।।४।।

वैसी ही इन आँखों की कोई स्थिति नहीं है। कहीं ठहरती नहीं, कोई आधार नहीं है, जिस पर टिक करके कुछ देख सकें। सामने नये-नये लाल-लाल किसलयों की शय्या दिखती है, उसे लगता है कि यह तो चिता रची गयी है, आग जिसमें धधक रही है।।५।।

उसकी एक हथेली बराबर उसके गालों पर लगी रहती है। हथेली कभी छोड़ती नहीं। उसे सुरक्षा-सी प्रदान करती रहती है, जैसे सन्ध्या बालचन्द्र को टिकाये रखती है, उसे छोड़ती नहीं। यह बच्चा है, रात के अँधेरे में खो न जाए।।६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम्।
विरहविहितमरणेव निकामम्।।७।।

हरिरित्यादि। **सा निकाममतिशयेन हरिरिति हरिरिति जपति, केव? विरहेण त्वद्वियोगेन विहितमारब्धं मरणं यस्याः सेव। कथं यथा स्यात् सकामं साभिलाषम्। एवं क्रमाद्दशम्यवस्थां प्राप्तायामपि साभिलाषमिति नवानुरागं कुर्वाणास्मिन्नेव शरीरे तव सङ्गमामृतं कामयमाना चिन्तामणिरूपं स्वसर्वस्वभूतं तव नाममङ्गलं जपति परमेष्टमन्त्रवदावर्त्तयतीत्यर्थः। मनोहारिगुणविशिष्टत्वाद्धरिरिति, अखिलक्लेशहरत्वाद्वा। अत्र प्राप्त्यभावो जन्मान्तरेऽपि स एव वल्लभो भूयादन्ते या मतिः सा गतिरिति न्यायात्। एवमनुरागे दशावस्था निरूपिताः। तदुक्तम्–**

'अलोकालापसंरूढसंरागाकुलचेतसोः।
तयोर्भवेदसम्प्राप्तौ दशावस्थः स्मरो यथा'।। इति।

'अभिलाषोऽथ चिन्ता स्यात् स्मृतिश्च गुणकीर्त्तनम्।
उद्वेगोऽथ प्रलापः स्यादुन्मादो व्याधिरेव च।।

जडता मरणञ्चेति दशमी जायते क्रमात्।
असम्प्राप्तौ भवन्त्येतास्तयोर्दश दशा यथा'।।

इति शृङ्गारतिलके (२।४-६)।

अत्र तु नित्यानन्दरूपयोर्मधुररससर्वस्वविग्रहयोर्नवावस्था एव सम्मताः। अनुरागकाष्ठां दर्शयन् तदाभासोऽत्र दर्शितः। साक्षात्तु केष्वेव श्रीकृष्णस्य माधुर्यभरदर्शनायैव शुकादिभिस्तादृशाधिकारिजनेषु निरूपिता, तेन नवानामिह लक्षणं कृतम्। तत्र (शृ.ति. २।१४) व्याधिलक्षणम्–

सन्तापवेदनाप्रायो दीर्घश्वाससमाकुलः।
तनूकृततनूर्व्याधिरष्टमो जायते यथा'।।इति।

शेषाणां भेदाः पूर्वमेव दर्शिताः। यद्यपि कटुपरिणामा इव एते प्रभासन्ते, तदप्यानन्दरूपानुरागमूलत्वात् परमानन्दनिधानश्रीमद्भगवदाश्रयत्वाच्चमत्कारिमहानन्दरसविकारत्वाच्च तत्पोषकत्वाच्चानन्दसन्दोहा एव ह्येते भावा इति सिद्धान्तः, वस्तुतस्तु न दुःखमयाः।।७।।

निरन्तर 'हरि–हरि' ही जपती रहती है। बड़े प्यार से जपती रहती है। मानो उसने निश्चय कर लिया है कि मरना है। विरह का यही विधान है। यह विरह जीने नहीं देगा। अब हरि का ही स्मरण करना ठीक है।।७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम्।
सुखयतु केशवपदमुपनीतम्।।८।।

श्रीजयदेवेत्यादि। इति अमुना प्रकारेण श्रीजयदेवभणितं श्रीराधिकासख्या गीतं श्रीकृष्णं प्रति उपनीतं प्रापितं केशवपदं सुखयतु। त्वरया श्रीराधाभिसरणेन श्रीकृष्णस्य चरणं प्रति शं विदधातु। अथवा यत्सख्याः श्रीकृष्णं प्रति कथितम्, तदेव श्रीजयदेवेन रागतालादिना बद्धं गीतं गायतां शृण्वतां सुखयतु। केशवपदमुपनीतं समर्पितम्, केशवस्य पदं स्थानं वैकुण्ठलोकं तत्रोपनीतं वा, वैकुण्ठलोकेऽपि गीयत इति भावः। अथवा उपनीतमुपस्थितीकृतं गीतं केशवपदं केशवः पदं त्राणं यस्य वैष्णवस्तं सुखयतु। केशवस्य पदं स्थानमपि वा। 'पदं स्थाने च वाक्ये च सन्निधि-व्यवसाययोः। त्राणेऽपि पदमाख्यातम्' इति विश्वः।।८।।

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि।
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसात्
स्ववैंद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः।।२९।।

एवं दशम्यवस्थापर्यन्तं विरहोद्रेकं श्रुत्वा निरुपायस्थगितचित्तं प्रत्याह— सा रोमाञ्चतीत्यादि। हे स्ववैंद्यप्रतिम! स्ववैंद्यो धन्वन्तरिः प्रतिमा प्रतिबिम्बो यस्य तादृशरूपश्रियादिभिर्विरहव्याधिचिकित्सकतया त्वञ्चेत् प्रसीदसि प्रसन्नो भवसि, तदा एतावत्यतनुज्वरे कामसन्तापे सा वरतनुर्वरा त्वद्योग्या सौन्दर्यादिभिः श्रेष्ठा तनुर्यस्यास्ते रसात् सम्भोगशृङ्गाररसरूपामृत-सञ्जीवनमहौषधात् किं न जीवेत्? अपि तु जीवेदेव। अन्यथा त्वद्रस-व्यतिरेकेण तया हस्तकोऽपि त्यक्तस्त्यक्तप्रायो भविष्यतीत्यर्थः। सम्प्रति मूर्च्छायां वक्तुमपारयन्त्या तया हस्तकेन सखीषु व्यवह्रियते, त्वत्सङ्गमाभावे

श्री जयदेव के द्वारा गाया हुआ यह गीत 'भक्तजनों को सुख देगा', राधा की इस चित्त-भूमि का स्मरण सीधे केशव-चरणों में पहुँचेगा।।८।।

इस अष्टपदी के अन्त में चार श्लोकों में राधा के विरह की कथावस्तु पुनः बतलायी जाती है। यह पुनरावृत्ति नहीं है, अतिरिक्त बल के साथ बार-बार जोर देकर यह कहने का प्रयत्न है कि इतना सब कुछ कैसे कह रहे हैं? हम अभी पूरी तरह से राधा के विरह को अपनी बाणी में उतार नहीं पा रहे हैं, ऐसा बार-बार कहना पड़ता है। इसके पहले राधा की दशा का वर्णन कर चुके हैं, अब श्रीकृष्ण की दशा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोऽपि त्यक्ष्यत इति भावः। अथवा अन्यथा परो हस्तको हस्तक्रियाप्रकारो वैद्यकोपचारस्त्यक्त इत्यर्थः। क्वचित्त्वत्तोऽन्यथानान्तक इति पाठः, तदान्यथा यदि न प्रसीदसि तदा त्वत्तस्तवापेक्षयान्तको न, अपि तु त्वमेवान्तक इत्यर्थः। तदेव कामज्वरजनितचेष्टितमनुवर्णयति–सा रोमाञ्चतीत्यादि। रोमाञ्चति पुलकमुद्गमयतीत्यर्थः। शीत्करोति शीत्कारशब्दमनुकुरुते, साभिलाष-रोमोद्गमेन कण्ठध्वनिं करोतीत्यर्थः। विलपति शठो न मिलित इत्यादि-विलापं करोति, विशेषेणोत्कण्ठया त्वद्गणानालपति कथयतीति वा। उत्कम्पते कथमस्य विश्लेषः सोढव्य इति कम्पयुक्ता सती ताम्यति ग्लाना भवति। अनेन वेपथुर्वैवर्ण्यरूपश्च सात्त्विकः कथितः। ध्यायति कथं लभ्यतेति चिन्तयति तीव्रचिन्तया उद्भ्रमति भ्रमं करोति। अनेनोन्मादः कथितः। तस्य विशेषणानि–प्रमीलति बाह्यभ्रमेण चक्षुर्मीलनं कृत्वा त्वयि मनो धारयति, हृदि स्फुरिते उद्याति गच्छति, कार्श्येन क्षीणतया पतति, त्वय्यप्राप्ते मूर्च्छति मूर्च्छां प्राप्नोति। अनेन मूर्च्छा कथिता। अपिशब्देन एतावत्यामपि व्यवस्थायां सकलगुणगणालयमशेषनायकशिरोरत्नं त्वामेव परमरसज्ञा सा पुलकादिभिः सात्त्विकैः शीत्कारादिभिरनुभावैः चिन्तादिव्यभिचारिभिरभिलाषाद्यवस्थाभिः साङ्गरसोदयेन कामयते, सा सर्वथैव त्वया प्रीणनीया। तथा च तस्याः सङ्गमे अद्भुतमधुररसोत्सव आस्वादनीय इति भावः। वरतनुरित्यनेन त्वयापि तद्विरहः सोढुमशक्य इति ध्वनितम्। ज्वरव्याधौ एवम्भूतानि लक्षणानि भवन्ति–शीतादिना रोमाञ्चति, वेदनया शीत्कारं करोति, विलपति मोहाद् यत्किञ्चिद्वदति, कम्पयुक्ता भवति, चिन्तयते कथं जीवामीत्यादिना, भ्रमति, ग्लानिमाप्नोति, मूर्च्छां प्राप्नोति। एवंविधेऽपि ज्वरे महावैद्यप्रयुक्तसिद्धरसात् जीवेदेव, तथा त्वत्सङ्गमरसादस्या अपि जीवितम्। क्रियादीपकोऽयमलङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं छन्दोऽपि ज्ञेयम्।।२९।।

का वर्णन करेंगे। ऐसे क्षण में क्या देह की स्थिति रहती है, रोमांच बन जाती है। सारा शरीर पुलक बन जाता है। इसके बाद सिसकने लगती है और रोने लगती है, काँपने लगती है और यह सब करते हुए भीतर-भीतर जलती रहती है। इसी ताप में वह ध्यान करती है। ध्यान में ही उनके साथ ध्यान करते-करते वह बजने लगती है, जैसे मृदंग बन जाती हो। आँखे मूँद लेती है, मानो सारे इन्द्रिय-व्यापार स्थगित कर देती है। निस्सह होकर उन पर पड़ जाती है। उठती है, उठते ही फिर मूर्च्छित हो जाती है। ऐसा है भयंकर कामज्वर, बोलो कैसे जिएगी? तुम तो साक्षात् दिव्य वैद्य हो। तुम्हीं अपने रस से उसे जिला सकते हो।।२९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य! त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्याम्।
निवृत्तबाधां कुरुषे न राधामुपेन्द्रवज्राधिकदारुणोऽसि।।३०।।

स्मरातुरामित्यादि। हे दैवतवैद्यहृद्य देववैद्यौ अश्विनीकुमारौ ताभ्यामपि मनोहरमूर्त्ते! मृतयुवतिजीवनरसज्ञेति वा। अथवा अस्माकमिष्टदेवतारूपमनोज्ञ वैद्य! पुनः पुनः विरहव्याधेः रक्षणात्। उप समीपेऽस्मिन्नेव वने निकटे वर्त्तमानां राधाम्, कथम्भूताम्? स्मरातुरां कामेन रुग्णां विमुक्तबाधां विगतपीठां न कुरुषे न करोषि, इन्द्रवज्रादपि दारुणोऽसि कठिनोऽसि। अथवा हे उपेन्द्र! वज्रेणाप्यशक्यं कर्म येन त्वया साध्यते, अतः स्वरक्षणार्थमिन्द्रेण त्वं वृतः, तेन वज्रादपि कठिन इत्यर्थः। नन्वौषधं विचार्य सम्पादनीयम्, किमेवमुपालभसे? इत्यत आह–त्वदङ्गसङ्गः शरीरसम्बन्धः स एवामृतं परमानन्दरसरूपजीवनौषधं तन्मात्रसाध्यां तदेकप्रतीकार्याम्। अथवा त्वदङ्गस्य सङ्गः आसक्तिः सैवामृतं जीवनं तन्मात्रसाध्याम्। जीवनं सम्पाद्यमानामित्यर्थः। त्वदङ्गसङ्गः तवाङ्गसुखमिति वा। 'सङ्गः सुखं तथासक्तिः' इति रत्नकोशः। उपेन्द्रवज्रानामैतच्छन्दोऽपि।।३०।।

कन्दर्पज्वरसंज्वराकुलतनोराश्चर्यमस्याश्चिरं
चेतश्चन्दनचन्द्रमःकमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति।
किन्तु क्षान्तिरसेन शीतलतरं त्वामेकमेव प्रियं
ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमपि क्षीणा क्षणं प्राणिति।।३१।।

ननु यावदहमागमिष्ये, तावच्छीतोपचारैरुपचर्यतामित्यत आह—कन्दर्पेत्यादि। अहो आश्चर्यम्! अस्याश्चेतः चन्दनचन्द्रमःकमलिनीचिन्तासु

तुम्हारा रस, तुम्हारा यह रस ही एक उसकी संजीवनी होगा। तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, कृपा करो। तुमने रस छोड़ दिया तो मृत्यु ही उपस्थित है। इस अवस्था में वह पहुँच गयी है कि काम उसका रोग बन गया है। उसकी आधि आधि ही नहीं रही है, शरीर की व्याधि हो गयी है। अब तो सिवाय तुम्हारे अंग-स्पर्श के अमृत के वह रोग ठीक नहीं होगा। वह असाध्य हो चुका है, इसलिए हे वैद्यदेव! तुम्हीं उसके लिए हृदयस्पर्शी औषध देने में समर्थ होगे। यदि तुम उसकी बाधा न दूर करोगे तो निश्चय ही यह मानूँगी कि तुम इन्द्र के वज्र से भी अधिक कठोर हो।।३०।।

कामज्वर अब सन्निपात की अवस्था को प्राप्त हो गया है और आश्चर्य तो यह है कि अभी तक इसके ज्वर को दूर करने के सारे उपाय व्यर्थ हो गये हैं। न चन्दन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मलयजसुधांशुपद्मिनीस्मरणेऽपि सन्ताम्यति ग्लानिं प्राप्नोति, तत्रापि चिरम्; किम्भूतायाः? कन्दर्पज्वरेण यः संज्वरः सन्तापस्तेन आतुरतनोर्व्यथित-देहायाः। विरोधोऽयमलङ्कारः। नन्वेतादृशसन्तापेन कथं जीवतीति अन्यदप्याश्चर्यमाह—किन्त्विति। रहस्येकान्ते स्थिता त्वामेकमेव प्रियमेकमेवा-द्वितीयमन्यनिरपेक्षमित्यर्थः। प्रियम् आत्मवल्लभम्, अत एव क्षान्तिरसेन शीतलतरमननुभूतमपि त्वामेव एकमेव। प्रियम् अनन्यवल्लभमिति वा ध्यायन्ती कथमपि महता कष्टेन। क्षीणाऽशक्ता क्षणं प्राणिति क्षणमात्रं जीवति। अस्मिन्नेव क्षणे त्वया तत्समीपे गन्तव्यमिति भावः। पुनस्तस्या दर्शनमपि ते दुर्लभमिति त्वरयति। अथवा क्षणं प्रतिक्षणं ध्यायन्तीति योज्यम्, यस्य चिन्तनेन जीवति तद्दर्शनेन नीरुजा भविष्यतीति किं वक्तव्यम्। शीतला ताम्यति जीवति चेति आश्चर्यं दर्शितम्। क्लान्तिवशेन शीतलतनुमिति पाठे क्लान्तिवशेन श्रमाधिक्येन इन हे प्रभो! क्लान्तिवशेन वा। 'इनः सूर्ये नृपे पतौ' इति विश्वः। शीतला कामज्वरजनितसन्तापहरा तनुर्यस्य तमिति। ज्वरे विरुद्धशीतलादपि जीवतीति अत्याश्चर्यम्, शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।।३१।।

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेऽपि विलोक्य पुष्पिताग्राम्।।३२।।

पुनरप्युद्दीपनविभावेन विरहोद्रेकमाह—क्षणमपीत्यादि। यया श्रीराधया तव सङ्गमेऽपि विरहः क्षणमपि न सेहे न सोढः, कथम्भूतया? नयनयोर्यन्निमीलनं निमेषस्तेन खिन्नया खेदयुक्तया–किमिति धात्रा चक्षुषोर्निमेषः सृष्टो यतः प्रियतमावलोके प्रत्यूहो भवतीति। तदुक्तञ्च (भाग. १०।३१।१५) 'जड

का लेप काम करता है और न चन्द्रमा की शीतल चाँदनी, न कमलिनी। इसके कारण स्थिति तो यह हो गयी है कि इन उपायों को सोचकर वह और अधिक जलने लगती है। ज्वर कभी-कभी चढ़ते-चढ़ते, तोड़ते-तोड़ते इतना थका देता है कि शरीर एकदम स्वेद के प्रभाव के कारण शीतल हो जाता है। इस अवस्था में वह केवल तुम्हारा ही ध्यान करती है।।३१।।

विरह में क्षीण होकर भी वह उस ध्यान के क्षण को उत्सव मानकर प्राण पाती है। उसके लिए और कोई सुख है ही नहीं, जो कभी तुमसे एक क्षण अलग रहना सह नहीं पाती थी। कभी-कभी जब आँख-मिचौनी खेलते थे और आँखें मूँद लेते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम्' इति। साऽसौ चिरविरहेण रसालस्याग्रस्य शाखां पुष्पितोऽग्रभागो यस्यास्तां दृष्ट्वा वसन्ते कथं श्वसिति केन कारणेन जीवेत्? दुःखवलितानि निःश्वसितानि वहतीति वा। छन्दोऽपि पुष्पिताग्रा-नामकमिदम्।।३२।।

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसादुद्धृत्य गोवर्द्धनं
बिभ्रद् गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः।
तर्पेणेव तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुर्वल्लववल्लभाभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः।।३३।।

वृष्टीत्यादि। कंसद्विषः श्रीकृष्णस्य बाहुर्भवतः शुश्रूषोः श्रेयांसि कल्याणानि तनोतु विस्तारयतु। अन्येऽपि हस्तेनैव दित्सितं प्रयच्छतीति बाहोः कर्त्तृत्वम्, सामर्थ्यसूचनार्थमत्र कंसद्विषपदोपादानम्। कथम्भूतस्य? गोपतनोः परमोदारश्रीगोपराजकुलोत्पन्नस्य। दातृत्वं दर्शयति–उद्धृत्य गोवर्द्धनं गिरिं बिभ्रत्, कुतः? वृष्ट्या व्याकुलं यद्गोकुलं तस्या यदवनं पालनं तत्र रसो रागो वीर्यं वा तस्मात्। कथम्भूतो बाहुः? वल्लववल्लभाभिस्तत्प्रियाभिः अधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः। पुनः कीदृशः? दर्पेण सौभाग्यमदेन ताभिः चुम्बनार्थमर्पिता याऽधरतटी तया सिन्दूरमुद्रयाङ्कितः चिह्नितः। अधरतट्य एव सिन्दूरवद्रक्तास्ताभिरिति वा। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।।३३।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दे स्निग्धमधुसूदनो[1] नाम चतुर्थः सर्गः।।४।।

थे, तुम दिखते नहीं थे। इतने में ही व्याकुल हो जाती थी। सोचिए, वह इस समय कैसे साँस ले रही है, कैसे जी रही है? विशेष रूप से यह देखकर कि रसाल की शाखा, आम की डाल के सिरे पर बौर आ गये हैं। बौरे हुए आम की डाल पुष्पिताग्र हो उठी हो, उसकी हर डाल को देखकर भी जीना कितना कठिन है।।३२-३३।।

।।इति चतुर्थः सर्गः।।४।।

---

१. स्निग्धमधुसूदनेति—श्रीराधाभावश्रवणेन स्नेहवानित्यर्थः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ पञ्चमः सर्गः।।

साकाङ्क्ष-पुण्डरीकाक्षः

अहमिह निवसामि याहि राधा-
मनुनय मद्वचनेन चानयेथाः।
इति मधुरिपुणा सखी नियुक्ता
स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम्।।३४।।

पूर्वसर्गे श्रीराधायाः प्रेमचेष्टितं निरूप्येदानीं पञ्चमे सर्गे श्रीकृष्णचेष्टितं वर्णयति। तत्र प्रियाया विरहचरितं श्रुत्वा तामभिसृत्य सङ्केतनिकुञ्जे स्थितः सन् सापराधतया शङ्कमानहृदयः स्वयमागच्छन् विरहदुःखनिवेदनेनानुनीय आनयनाय तामेव सखीं प्रहितवान्– अहमित्यादि। **मधुरिपुणा इति एवं प्रकारेण स्वयं नियुक्ता आज्ञप्ता सखी एत्य राधामिदं वक्ष्यमाणं जगाद उवाच! स्वयं मधुरिपुणेति आर्त्तिभरः कथितः। इति किम्? त्वं राधां याहि गच्छ, मद्वचनेन तामनुनय; ननु सा मानवती, स्वयमेव गत्वानुनीयताम्? (तत्राह) कृतापराधेन मया साक्षाद्वक्तुं न शक्यतेऽतः त्वमनुनयेति भावः। आनयेथाः मत्समीपमानय, ननु कदाचिद् यद्यायास्यति चपलस्त्वं न लभ्यसे चेत्तत्र सदैन्यमाह–अहं तदेकनिष्ठ इहैव त्वां बहुकालं प्रतीक्षमाण-स्तिष्ठामि।।३४।।**

यहाँ यह स्मरण दिलाना आवश्यक है कि यह सब वर्णन अपर्याप्त है। राधा-माधव का विरह साधारण विरह नहीं है। वह एक व्याकुल आत्मानुसन्धान है। इसके हर सोपान पर ऐसा लगता है कि अब आगे नहीं चढ़ा जाएगा, लेकिन नीचे उतरा भी नहीं जाएगा। वह हर सोपान प्राणों का संकट है और जीवन की चुनौती है। कवि की लाचारी है। उसके पास कुछ शब्द हैं और कुछ नहीं। शब्दों की लाचारी है। कुछ शब्दों के विचार इस संसार के प्रीति-व्यापार के हैं, इन्द्रिय-व्यापार के हैं। इसी से अर्थ लेना है, अनवरत। और अर्थ देने के लिए जयदेव ने शब्द-साधना की है। यह अर्थ उन भक्तों के संगीत से निकलते हैं, उन शब्दों के संयोजन से निकलते हैं, अलग-अलग शब्दों से नहीं। शब्दों के द्वारा उपस्थापित बिम्बों से भी नहीं। ये अर्थ निकलते हैं एक समवेत लय के बोध से। कहीं जयदेव का लय एक उस लय की भूमि से मिला हुआ है, जिसमें उनकी स्थापना इस काल में की जा रही है। पंचम स्वर में माधव परवश हो जाते हैं, एकदम द्रवित हो जाते हैं। दूती से कहते हैं– 'अकेला मैं ही बैठा हूँ, जाओ राधा को मनाकर ले आओ और मेरे सन्देश से मनाकर ले आओ'।।३४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतम्-१०

[वराडीरागेण रूपकतालेन]

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय।
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय।।
तव विरहे वनमाली सखि हे! सीदति।।ध्रुवम्।।१।।

यत् सखी जगाद तदेव गीतेन कथयति– वहतीत्यादि। **गीतस्यास्य वराडीरागो रूपकतालश्च। रागलक्षणस्तु–**

'विनोदयन्ती दयितं सुकेशी सुकङ्कणा चामरचालनेन।
कर्णे दधाना सुरपुष्पगुच्छं वराङ्गनेयं कथिता वराडी।।' इति।

उद्दीपनविभावैर्विरहोद्रेकमाह–हे सखि! वनमाली कृष्णस्तव विरहे सीदति अवसन्नो भवति। सुरतोत्सवे बहुयाच्ञाभिः प्राप्तां त्वदङ्गसंसर्गिणीं मालां धारयन् त्वयि प्रवणः सीदतीत्यतस्त्वमभिसरेति वनमालीपदोपादानम्। अथवा त्यक्तान्यसङ्गस्तव सङ्केतमनोरमनिकुञ्जे वनमालाद्वितीयो वर्त्तते, अतोऽवश्यं गन्तव्यमिति भावः। ध्रुवपदम्। क्व सति? मलयसमीरे मलयाचलसम्बन्धिवाते वहति सति। किं कृत्वा? मदनं काममुपनिधाय समीपवर्त्तिनं कृत्वा। पुनः क्व सति? कुसुमनिकरे पुष्पसमूहे विरहिणां हृदयदलनाय मर्मपीडनाय स्फुटति विकसति सति। मदयतीति मदनः, अन्यान् मदयति स्वयं मत्तः सन्धितपुष्पबाणः। तदनुवर्त्तिवायोस्तत्प्रेषितबाणानाञ्च परमर्मविदारणत्वमुचितमेव। अथवा मदनस्य स्पृहामासाद्य समीरे वहति सति कुसुमसमूहे स्फुटति सति सीदतीति।।१।।

सखी उनका आदेश पाकर राधा के पास पहुँची और फिर राधा से बोली– 'सखि! तुम क्या जानती हो कि तुम्हारे विरह में वनमाली कैसे सीझ रहे हैं? भीतर–ही–भीतर गलते जा रहे हैं। प्रिय उस दखिनइया के बहते ही जान जाते हैं, समझ जाते हैं कि अब मुझे सताने काम आ गया है। और फ़ूलों की सेज पर, अंगारे पर जैसे कोई चीज रखी जाए, भड़क उठती है, वैसे ही विरह से और तड़फड़ाने लगते हैं।।१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति।
पतति मदनविशिखे विलपति विकलतरोऽपि।।२।।

दहतीत्यादि। किञ्च शिशिरमयूखे हिमकरे दहति सन्तापं जनयति सति मरणमनुकरोति दशम्यवस्थाजनितपीडामनुभवति। त्वन्मुखानुभवेऽतितिरस्कृतश्चन्द्रः समस्तजनसन्तापहरोऽपि त्वद्विश्लेषे लब्धावसरो दहतीति भावः। अनुकरोतीत्यनेनानिष्टं वारितम्। दशम्यवस्थासदृशीं पीडामनुभवतीति त्वत्प्राप्त्याशया कष्टेन जीवनं धारयतीत्यर्थः। अथ च मदनविशिखे पतति सति कामबाणे पतनमारचयति सति विह्वलतरोऽतिविलपति अतिशयेन विलापं करोति–क्व प्रिये! क्वासि रक्ष रक्षेति।।२।।

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपिदधाति।
मनसि कलितविरहे निशि निशि रुजमुपयाति।।३।।

ध्वनतीत्यादि। किञ्च, मधुपसमूहे मधु पिबन्तीति मधुपा भ्रमरास्तेषां सङ्घे ध्वनति गुञ्जति सति श्रवणं कर्णौ अपिदधाति हस्ताभ्यामाच्छादयति– एतेऽपि कामानुगा मधुपानेन मत्ताः, कामजयघोषमुद्घोषयन्त्यतस्त्रस्तः कर्णमुद्रणं करोति। त्वदेकनिष्ठया त्वत्प्राप्त्यर्थमखिलशब्दादिविषयत्यागेन त्वामेवाहर्निशं कामयत इति भावः। महामधुरमोहनं ते वचनामृतं निपीय केनान्यशब्दः श्रुतिगोचरः क्रियत इति वा। ननु दिवा दिवा दृष्टश्रुतेनोद्विग्नो व्यक्तेन्द्रियविषयो यदि रात्रौ सुखी स्यात्? तत्राह– त्वद्विरहयुक्ते मनसि रात्रौ रात्रौ अधिकपीडामुपयाति प्राप्नोति। निशि विरहव्याधेरुद्रेकात् निशि निशीति तद्वृद्ध्यभिप्रायेण क्षणस्यापि युगायमानत्वात्।।३।।

उन्हें लगता है कि वह कामज्वर उनके विरही हृदय को टूक-टूक कर देखने आया है। वनमाली सीझ रहे हैं। वे भी तुम्हारी तरह, चन्द्रमा की किरणों में से आग निकल रही है, यह अनुभव करते हुए मृत्यु की उपस्थिति हुई है, यह सोचने लगते हैं; और वे कुसुमशय्या पर पड़ जाते हैं, जैसे बाणों की शय्या हो और अधिक विकल होकर बिलखने लगते हैं'।।२।।

'जब भौंरे झौर के झौर गुनगुनाने लगते हैं तो वे कान मूँद लेते हैं। हृदय में विरह जब करवटें बदलने लगता है तो रात-रात तो छटपटाते रहते हैं, इसी अव्यक्त पीड़ा में छटपटाते रहते हैं।।३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वसति विपिनविताने त्यजति झटिति धाम।
लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम।।४।।

वसतीत्यादि। ननु बहुभिरपेक्षितोऽसौ तैः कथं न सुखीक्रियते? अत आह–ललितं मनोहरं धाम पितुः श्रीव्रजराजस्य व्रजरूपस्थानं गृहं वा त्यजति जहाति। विपिनविताने वनविस्तारे वसति सन्तिष्ठते सकलपरिजनत्यागेन योगीव कान्तारे निगूढं वसतस्तैः कथं सुखमिति भावः। अथवा धाम शरीरमखिललावण्यास्पदं श्रीविग्रहमपि त्वां विना नाशास्त इत्यर्थः। 'धाम देहे गृहे रश्मौ स्थाने जन्मप्रभावयोः' इति विश्वप्रकाशः। धामशब्दार्थान् सर्वानपि त्यजतीति ध्वनितम्। ननु किं प्रमाणं मय्येवैतावती प्रीतिः? तदनुभावेन दर्शयति—स तव वल्लभो धरणिशयने भूशय्यायां लुठति त्वच्चरणारविन्दमकरन्दसंसिक्तश्रीवृन्दारण्यभूमौ लुण्ठनं करोति। अपि च तव नाम हे प्राणेश्वरि! हे प्रिये राधे! इत्येवं बहु वारं वारं विलपति विशेषेण लपति; अन्यत् साधनं साध्यं त्यक्त्वा त्वदेकनिष्ठः, त्वया न निन्दनीय इति भावः।।४।।

भणति कविजयदेवे विरहविलसितेन।
मनसि रभसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन।।५।।

भणतीत्यादि। कविजयदेवे भणति कथयति सति विरहविलसितेन वियोगविलासेन हरिः उदयतु आविर्भवतु अर्थाद् गायतां शृण्वतां मनसि।

वनमाली तुम्हारे विरह में उसी तरह से सीझ रहे हैं जैसे उन्हें अपना सुन्दर घर अच्छा नहीं लग रहा है। जंगल के वितान में ही रहना चाहते हैं, भूमि पर ही वे सोना चाहते हैं। तुम्हारे स्पर्श का जहाँ आभास है, चाहे वह स्पर्श तुम्हारे हाथों का हो, तुम्हारे पैरों का हो, तुम्हारी आँखों का हो। जहाँ तुम्हारी आँखों की दृष्टि है, तुम्हारे विलाप की जहाँ गूँज है, और तुम्हारी बातों के रस की जहाँ तृप्ति है या ठीक कहें अतृप्ति है, वहीं वन में, वृन्दावन में वे बसते हैं और बार-बार तुम्हारा नाम ले-लेकर बिलखते हैं'।।४।।

जयदेव जब विरहगीत गाते हैं, विरह के विलास की पदावली सुनाते हैं, तो बड़ा पुण्य करते हैं, उसी के मन में अपनी छवि उतारते हैं। श्री जयदेव के इस विरहगीत का अर्थ उसी को लगेगा, जिसका हृदय इस लीला के लिए, लीला के रहस्य को जानने के लिए आकुल हो गया है, अवश हो गया है। इस रस को जाने बिना जीवन में कोई रस नहीं है। दूसरे को इस लीला का क्या अर्थ लगेगा? उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीदृशे मनसि? रभसः प्रेमोत्साहस्तस्य विभवः प्राचुर्यं यत्र तादृशे। केन? सुकृतेन सुष्ठु भगवदाराधनरूपाचरणं सुकृतं तेन। अथवा शोभनं यज्जयदेवकृतं गीतं तेन।।५।।

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः।
ध्यायंस्त्वामनिशं लपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलीं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति।।३५।।

परमप्रेष्ठदुःखश्रवणासहिष्णुतयाकुलचित्तां श्रीराधां दृष्ट्वा सखी स्थगितवाग् बभूवेति पञ्चपदीयं दशमी। पूर्वं यदुक्तं त्वदेकनिष्ठस्त्वामेव वाञ्छति, तदेव श्लोकेन दर्शयति— पूर्वमित्यादि। हे सखि! माधवः कृष्णो

लगेगा कि यह तो केवल किशोर-किशोरियों का प्यार है या प्यार का नाटक है, उसको गम्भीरता से लेने की बात नहीं है। पर उसे जब ध्यान होगा कि यह किशोर की जोड़ी सनातन किशोरों की जोड़ी है, जो ऐसे रूप में वृन्दावन में आज भी रहते हैं। वह आज भी, इस लीला का समय आते ही लीला करने लगते हैं। आज भी वृन्दावन की गलियाँ राधे की टेर लगाती हैं और उस कृष्ण को खोजती हैं, रात में कृष्ण को जपती हैं, कृष्ण को आमन्त्रित करती हैं। गलियाँ सोती नहीं, कृष्ण आनेवाले हैं, उदग्र भाव से हर पदचाप को सुनती रहती हैं, ध्यान से सुनती रहती हैं कि कृष्ण कहीं चोरी से न आ रहे हों और हम सुन न पायें और वे निकल जायें, पर ऐसा होगा नहीं। वे निकलेंगे तो हम अपने कण-कण में उनको अनुभव करने से वंचित न होंगे, बस उन्हें जपते रहेंगे, उनकी बाट जोहती रहें, आते होंगे-आते होंगे। शायद रात अभी गहरी नहीं हुई है, शायद चन्द्रमा अभी ऊपर नहीं आया है, शायद आम की बौरों की अरघान अभी पूरी तरह व्याप्त नहीं हुई है। माधव उनकी प्रतीक्षा नहीं कर रहे हैं, बल्कि यह सभी माधव की प्रतीक्षा कर रहे हैं।।५।।

इस अष्टपदी के अन्त में सखी निवेदन करती है कि 'प्यारे! तुमसे भीख माँगती हूँ, तुम ही वहाँ चलो, जहाँ सबसे पहले तुमने कामदेवता से कामकला की सारी सिद्धियाँ एक रात में सीख ली थीं। वे सारी सिद्धियाँ काम के देवता काम की नहीं थीं। वे सिद्धियाँ श्रीराधा के शरीर के साथ, शरीर में अपने-आप छायी हुई थीं। उस शरीर की पहचान, भीतरी पहचान से ही सारी सिद्धियाँ तुम्हें मिल गयी थीं, इसीलिए उस स्थान पर चलो। वह निकुंज, प्रथम समागम का स्थल, कामदेव का महातीर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूयः पुनः त्वदीयौ कुम्भाविव कुचौ तयोर्निर्भरं गाढं यः परिरम्भ आलिङ्गनं तदेवामृतममृतवत् स्वादु जीवनसम्पादकञ्च परमानन्दसन्दोहलक्षणं तद् वाञ्छति। अनेनामृतरसपूर्णावमृतमयस्वर्णकलशाविति ध्वनितम्। माधवपदेन पूर्वोक्तगुणविशिष्टोऽपि त्वया वशीकृतः, कथञ्चेष्टदेवताराधनव्यतिरेकेण परमानन्दं कामयते? तत्राह–त्वामेवेष्टदेवतामनिशं निरन्तरं ध्यायन् अपि च तवालापा एव महामाधुर्यवर्षिणो रहसि सम्भाषणानि त एव मन्त्रा हृदि मनुरिवावर्त्तनत्वात्, तेषामावलिं श्रेणीं जपन्। ननु जपादिकमिष्ट-देवतासम्बन्धितीर्थे कृतं झटिति सिद्ध्यति? इत्यत आह–निकुञ्ज-मन्मथमहातीर्थे। मनो मथ्नातीति मन्मथस्तद्रूपो निकुञ्जः लतापिहितोदरः। मन्मथस्य विलासो साध्यते यत्रेति वा। तन्महातीर्थं झटिति सिद्धिकरं तस्मिन् वसन् सन्। महत्त्वं दर्शयति–पूर्वं पुरा यत्र यस्मिन् तीर्थे त्वया प्राणकोटिवल्लभया सह रतिपतेः कामस्य सिद्धय आसादिताः प्राप्ताः। अत्रावलीपदोपादानात् मालामन्त्रत्वमस्य प्रतिपादितम्, तेन सिद्धत्वात्तत्काल-फलप्रदानसामर्थ्यञ्च निकुञ्जेत्यनेनापि। तदुक्तम् (हरिभक्तिविलासे–१।२११)—

'स्वप्नप्राप्ते स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे तथैव च।
वैदिकेषु च सर्वेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत्'।।

'गृहगोष्ठवनारामनदीनगसुरालये।
समीपे वा गुरोः सिद्धिः शीघ्रं स्यादुत्तरोत्तरा'।। इति।

एवशब्देन निष्ठा दर्शिता, वसन्निति यावत्सिद्धिस्तावत् स्थैर्यञ्च। एवशब्देन त्वां ध्यायन् सिद्धक्षेत्रे सिद्धमन्त्रान् जपन् अनन्यः स्थिरः आशु सिद्धिं प्राप्नोतीति ध्वनितम्। इदन्तु रसोद्बोधकं वर्णनचातुर्यम्, तयोस्तु मुख्यशृङ्गार एव रसः।।३५।।

है। उसमें तुम दोनों के स्वेदरस के प्रवाह में डुबकी लगाकर कामदेव नवजीवन पाता है। उस कुंज में तुम्हारा ही ध्यान करते हुए, नाम जपते हुए और तुमसे क्या-क्या बात करनी है, इस पूरे वार्तालाप को मन-ही-मन दोहराते हुए राधा प्रतीक्षा कर रही हैं। मन-ही-मन चाहती हैं कि कब तुम्हारे अमृत-कलश का स्पर्श मिलेगा। कब उस आलिंगन के रस से नये प्राण लौटेंगे। तुम वहीं चलो'।।३५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतम्-११

[गुर्जरीरागेणैकतालीतालेन च]

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम्।
न कुरु नितम्बिनि! गमनविलम्बनमनुसर त्वं हृदयेशम्।।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
पीनपयोधरपरिसरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली।।ध्रुवम्।।१।।

एवंविषयकानुरागं श्रुत्वा प्रसन्नां तामभिसारयितुमुद्दीपनविभावं दर्शयन् कृष्णस्याभिसारमाह—रतिसुखसारेत्यादिना। गीतस्यास्य गुर्जरीरागः, एकतालीतालश्च। गीतार्थस्तु— हे नितम्बिनि प्रशस्तनितम्बवति! हृदयेशं प्राणकोटिप्रियमभिसरानुगच्छ। यथा श्रीकृष्णेन त्वां विना क्षणमपि स्थातुं न शक्यते, तथा त्वमपि तेन वशीकृतचित्ताऽसीति हृदयेशमित्यनेन ध्वनितम्। तव हृदयमीशो यस्येति वा। त्वं तव हृदयानुवर्त्तिनमित्यर्थः। किञ्च बृहन्नितम्बत्वात् मन्दगामिन्यास्ते विलम्बनमकार्यमिति ध्वनितम्। नितम्बिनीति सम्बोधनम्। अतो विलम्बनमभिसाराय कालातिक्रमं न कुरु मा कृथाः। कीदृशं तम्? अभिसारे गतम्, अभिस्रियतेऽस्मिन्निति अभिसारः सङ्केतस्थानं तत्र गतं प्राप्तम्। कीदृशे अभिसारे? रतिसुखं सम्भोगसुखं सारमुत्कृष्टं यत्र तादृशे। अथवा सम्भोगसुखाय सारे यूनोः सुरतसम्पत्तिसम्पादनेन सर्वस्वरूपे इत्यर्थः। कथम्भूतं त्वम्? मदनो जगन्मोहनः कामस्तस्यापि मनश्चित्तं हरतीति

राधा से पुनः सखी अनुरोध करती है– 'प्यारी! अब विलम्ब न करो। वे अभिसार के लिए वहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं और वह अभिसार, साधारण अभिसार नहीं है, वह प्यार के सुख का सर्वस्व है। वे ऐसा मनोहर वेश पहने हुए हैं, जिससे मदन का मन भी मोहित हो जाय, यह जानती हो तुम। श्रोणीभार से धीरे-धीरे मन्द-मन्द चलती हो, इसलिए तुम्हें देर लगेगी। अब चलने में विलम्ब न करो, उनके पीछे-पीछे तुम वहाँ पहुँचो, वे तुम्हारे हृदयेश हैं। तुम्हारा हृदय, तुम्हारा हृदय नहीं है, उन्हीं का हृदय है। इस समय हवा कुछ थिर गयी है। यमुना के किनारे वनमाली वन में तुम्हारी बाट जोह रहे हैं।' अष्टपदी की पहली कड़ी में कवि ने यह सूचित कर दिया है कि मदन उनके वेश के आगे प्रविष्ट नहीं हो सकता। वेश से ही मोहित होकर मूर्च्छित हो गया है; क्योंकि मदन की वहाँ गति नहीं है। इस अभिसार में साधारण कामव्यापार की गति नहीं है। भागवतकार ने इसीलिए इस रति को काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथाभूतो वेशोऽभिसारोचितमण्डनप्रक्रिया यस्य तम्, किं वक्तव्यमङ्गसौष्ठवमिति भावः। अथवा मदनं कामकदनं मनश्च हरतीति तथा तम्। अथवा मदनं व्रजाङ्गनानङ्गं मनोहरवेशं शकटभञ्जनमूर्तिम्। अनेन वीर्यवानिति नायकगुण उक्तः। मदनादपि मनोहारी वेशो यस्येति वा। व्रजाङ्गनानङ्गत्वेन महाचित्ताकर्षकत्वाच्छीघ्रमभिसरणीयमिति भावः। सङ्केतस्थलं दर्शयति– यमुनायास्तीरे वने गहनकानने वनमाली कृतवनमालादिवेषो वसति अशेषाभिसारिका वञ्चयित्वा वनमालाद्वितीयः त्वत्प्राप्तिनिमित्तमात्मानं सङ्गोप्य गहने सन्तिष्ठत इत्यर्थः। वनमालीत्यनेनालिङ्गनौत्सुक्यं ध्वनितम्। कीदृशे? धीरो मन्दः समीरो वायुर्यत्र तादृशे। यमुनातीरे वने इत्यनेन शैत्यं सौगन्ध्यञ्च कथितम्, त्रैगुण्ययुक्तवायुना सेवित इत्यर्थः। धीरश्चतुरो वा। भवत्याः सेवनाय स्वगुणैः सावधान इति। 'धीरः पण्डितमन्दयोः' इति। ध्रुवपदम्।।१।।

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम्।
बहु मनुते ननु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम्।।२।।

ननु कथं मदर्थमेवाभिसारे तिष्ठति, मय्यनुरक्तश्च? इत्यत आह— नामसमेतमित्यादि। सम्प्रति तव वल्लभो मृदु अन्या मा जानात्वेवं त्वन्नाम-कीर्त्तनेनार्द्रचित्ततया पूर्य्यमाणत्वाद्वा कोमलं यथा स्यात्तथा वंशं ध्वनयति। तवानुरागानुभावोऽयम्। अभिसारसङ्केतं दर्शयति—हे राधे हा प्राणेश्वरीति त्वन्नामसहितं यथा स्यादेवं कृतः सङ्केतः सङ्गोपनार्थसंज्ञा गीतादिना यत्र तादृशम्। मया सह कृतसङ्केतो यत्रेति वा यदा मया वेणुर्वाद्यते, तदा तत्र त्वया राधा आनेया इति एवं कृतः सङ्केतो यत्र तादृशं

का काम कहा है, कामनाओं की कामना कहा है, अभिलाषाओं की अभिलाषा कहा है। यहाँ सारी इच्छाएँ भस्म हो जाती हैं और इच्छाओं के इस भस्म में से एक ऐसा अंकुर निकलता है, जो अपने-आप में विचित्र है। इच्छा भी है और इच्छा की पूर्ति भी है। इच्छा की पूर्ति होने पर भी इच्छा की निरन्तरता भी है। ऐसी इच्छा संसार में, सांसारिक सम्बन्धों में हो नहीं सकती। इसलिए इस अभिसार के लिए जयदेव के काव्यदेवता की सखी, एक तरह से जयदेव की ही आत्मा राधा से अनुरोध कर रही है। वह अभिसार ब्रह्माण्डव्यापी प्यार की लीला है।।१।।

'प्यारी! वे दूर से ही सुनाई पड़ेंगे। तुम्हारा नाम वंशी में टेर रहे होंगे और उसी में, वंशी के टेर में राह बतला रहे हैं। और बालू के उस कण को जाने कौन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तवाभिसारायानुनयपूर्वकं वादयत इत्यर्थः। अथवा नामसमेतमित्यादिना तव सौभाग्यख्यापनाय एव सा मम प्राणकोटिवल्लभा तदर्थमेवाभिसारे तिष्ठामीति अन्या मा यातु, सा भ्रमादन्यत्र मा यात्विति वादयते। किञ्च नन्विति सम्बोधने। ते तनुसङ्गतस्त्वदङ्गसम्बन्धी यः स्वल्पमपि सम्बन्धी वा यथाकथञ्चिदस्त्रादिसंसर्गवान् पवनो वायुस्तेन स्वभावादेव चलितं न तु तव प्रेरणात् तत्रापि तवाटव्या रेणुमपि बहु मनुते यदृच्छया प्राप्तमधिकं यथा स्यादेवमाद्रियते– अयं रेणुः धन्यो यस्तदङ्गसङ्गिना मरुता स्पृश्यते। धन्योऽहं तत्संसर्गिमरुता स्पृष्टेन रजसा यत् स्पृश्यते मादृशो जन इति। यद्येवं तदा किं वक्तव्यं त्वदङ्गसङ्गमरसः। तन्विति पाठे हे तनु तन्वि! तनूशब्दस्य सम्बोधने ह्रस्वः। अथवा पूर्वं बहु मनुते ततश्च तनुते तानप्रतानमुद्रया शीतः परमानन्दप्रदश्चायं रेणुरिति गायति। अतनु अनल्पं यथा भवेदेवमिति क्रियाविशेषणं वा।।२।।

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम्।।३।।

किञ्च तस्य सर्वेन्द्रियाणां मनश्च वृत्तिस्त्वयार्पितास्ते (इत्याह)— पततीत्यादिना। हे मोहन! परमकोमलपल्लवैः पुष्पदलैश्च परमसुकुमाराभ्यां स्वकरपल्लवाभ्यां त्वदर्थं शयनं कन्दर्पलीलोचितां शय्यां विविधविचित्र-सौगन्ध्यसंसिक्तोपधानादिभिः रचयति निर्माति। रत्यावेगेनार्त्त्या सचकितनयनं चञ्चलावलोकनसहितं यथा स्यादेवं तव पन्थानं त्वदागमनवर्त्म पश्यति। एतेन चक्षुरादीन्द्रियाणां तत्परत्वं कथितम्। तदेवाभिनयेन दर्शयति—कथम्भूतं पन्थानम्? शङ्कितम् आयाता मे प्राणेश्वरीति भवदुपायनं भवत्या उपयानं समीपे गमनं यत्र तादृशम्। सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव इति भवतीशब्दस्य

सा रत्न समझ रहे हैं, जो तुम्हारे पैरों के आघात से हवा के साथ उनके पास पहुँचा है। वे उस कण को पहचान रहे हैं; क्योंकि उस कण को तुम्हारे चरणकमलों का स्पर्श मिला हुआ है। वह स्पर्श उनका पहचाना हुआ है। सखि! तुम उनके पास चलो।।२।।

एक पक्षी भी उड़ता है तो पत्ते हिलते हैं और वे समझते हैं कि कहीं तुम आ रही हो। पक्षी को इस रात में इतना उत्साह कैसे आया कि उड़ान भरे। रात में कहाँ उड़ता है, पर तुम्हारे आने का क्षण स्वागत का क्षण है। वह तैयारी करने लगता है और पत्ता-पत्ता हिल उठता है, खड़कता है और कोई कारण हो ही नहीं सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुंस्त्वम्। क्व सति? पतत्रे पक्षिणि पतति वृक्षाद् वृक्षान्तरं गच्छति सति। पुनः क्व सति? पत्रे वृक्षपत्रे विचलति सति। अनेन मनसस्तादात्म्यं दर्शितम्।।३।।

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिषु लोलम्।
चल सखि! कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम्।।४।।

यथा श्रीकृष्णोऽभिसृतस्तथा त्वमप्यभिसारोचितव्यापारवती भवेत्याह— मुखरमिति। हे सखि! कुञ्जं चल गच्छ, नीलनिचोलं प्रच्छदपटं शीलय परिधेहि। सतिमिरपुञ्जं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। उद्योते हि अभिसारप्रतिबन्धः स्यादिति। अथवा कीदृशं कुञ्जम्? तिमिरपुञ्जेनान्धकार-समूहेन सहितम्, तिमिरकुञ्जनीलनिचोलैः अभिसारानुकूलरसपोषकसामग्री कथिता। गौराङ्ग्या त्वया नीलवस्त्रादिभिः शोभाविशेषतया मोहनस्यापि मोहनत्वं भविष्यतीत्यपि ध्वनितम्। प्रतिकूलं वारयति—मञ्जीरं नूपुरं त्यज। किंलक्षणम्? अधीरमज्ञं मन्दं वा प्रगल्भमित्यर्थः। अत एवाभिसारे मुखरं वाचालं समयोचितं न जानातीति तथाभूतम्। न केवलमेवं किन्तु केलिषु लोलं चञ्चलम्, केलिसुलोलमिति पाठे केलौ क्रीडायामतिचञ्चलमित्यर्थः। कमिव? रिपुमिव सम्भोगक्रीडासु नर्मगोष्ठीसुधास्वादप्रतिबन्धकत्वाद् रिपुमिव त्याज्यमिति भावः। क्वचित्तु शृङ्गारोपयोगित्वान्मुखमण्डलधारणे तात्पर्यमिति।।४।।

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलवलाके।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके।।५।।

ननु मण्डनत्यागेन शोभाहानिः स्यादिति परस्परमिलितैर्भूषणभूषणाङ्गैरेव परमशोभा भविष्यतीत्युत्कण्ठां जनयन्नाह— उरसीति। हे पीते नवपुरट-

---

बस यही हो सकता है कि तुम आ रही हो और इधर-उधर चौंक-चौंक कर देखते हुए कि तुम आ रही हो, फूलों की सेज रचने लगते हैं।।३।।

चलो सखि, उस सेज पर चलो। हाँ, इतना करो। तुम्हारे नूपुर चंचल हो रहे हैं, तुम्हारी केलि में साथ देने के लिए पहले ही से जोर-जोर से घोषणा कर रहे हैं। इन्हें निकाल दो, इन्हें पैरों से निकाल दो, ये तुम्हारे शत्रु हैं। ये तुम्हारे चुपके से वहाँ पहुँचने का सन्देश पहुँचा देंगे,तो तुम जाने किनसे-किनसे घिर जाओगी। तुम इन्हें उतार दो, अब अपना नील वसन और अवगुण्ठन डाल लो।।४।।

तुम्हारा गोरा-गोरा चेहरा उनमें एकाकार हो जाएगा, श्याम हो जाएगा और इस अँधियारे निकुंज के साथ भी एकाकार हो जाय, इस कुंज की गहरी अँधेरी रात से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौराङ्गि! मुरारेः मुरयति वेष्टयति स्वभुजाभ्यां गाढालिङ्गनतृष्णयेति 'मुर-वेष्टने' औणादिक आरि-प्रत्ययः, मुरारिः श्रीकृष्णस्तस्य उरसि वक्षसि राजसि राजिष्यसीत्यर्थः। 'वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा' (पा. ३।३।१३१) इति लृट्योगे लट्। कदा? रतिविपरीते पुरुषायितसुरतसमये। किंविशिष्टे उरसि? उपहितहारे पुंभावमापन्नतया त्वया त्वदालिङ्गनव्यवधानकृद्भूषणरहिते, अथवा स्वकीयकण्ठस्थितः आलिङ्गनचातुर्येणैव शोभाविशेषदर्शनाय उपहितोऽर्पितो हारो मुक्ताहारो यस्मिन् तादृशे। तत्रोत्प्रेक्षते—कीदृश इव? घन इव तरलवलाके तरला चञ्चला वलाका वकपङ्क्तिर्यत्र तादृशे घन इव मेघ इव। पुम्भावचरितेन हारस्यापि चाञ्चल्यं ध्वनितम्। केव? तडिदिव विचित्रविविधचमत्कारवती विद्युदिव। दृष्टान्तेनानेन सौरतकौशलं ध्वनितम्। अभूतोपमा चेयं कथितेति—दिवि मण्डितसजलमेघोपरि चञ्चला वकपङ्क्तिस्तदुपरि चञ्चला अबहुकालस्थैर्यवती विविधविचित्रचमत्कारवती च विद्युद् यदि स्यात्तदा एवं भवति। तदा भावात् तत्रान्यदपि प्रलोभनीयं विशेषणमाह—कीदृशे उरसि? सुकृतविपाके सुकृतस्य शोभनचरितस्य विपाके विचित्रपरमफलरूपे इत्यर्थः। विपरीतरतौ सुकृतस्य सुष्ठु विलासरूपचरितस्य विपाको यस्मिन्निति वा। तरलवलाक इत्यादिपदेऽपि तद्विशेषणानीति वा, तरला चञ्चला वलाका कामुकी सम्भोगरसाक्रान्ता वरस्त्री यत्र तादृशे। पुनः कीदृशे? पीते गिरिधातुभिः कुङ्कुमादिना वा मण्डितत्वात्, तत्कान्त्या तत्त्वाद्वा। रतिविपरीते स्त्रियाः पुरुषायितं यत्र तादृशे। सुकृतविपाके तस्य सुकृतस्य विपाके, श्रीराधायास्तादृशचेष्टितरूपफल-सिद्धिर्यस्मिन्निति वा। अथवा नायिकायाः सम्बोधनानि उपहितहारे इत्यादि। उपहितः प्रथमसमागमे श्रीकृष्णेन उपहारीकृतो हारो यस्यास्तादृशि। अनेन दानादिकोपायो दर्शितः। तथा च तव कण्ठधृतस्तदुरसि तस्मिन् समये

एकाकार हो जाय, तुम निभृत निकुंज बन जाओ। तो चलो। तुम श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर ऐसे दीपोगी जैसे बिजली की रेखा और उनके वक्षःस्थल पर जो हार, मोती है, वह तुम्हारे आश्लेष से ऐसे आधा टूटकर दिखेगा जैसे बादलों के ऊपर या बादलों की छाती पर बकुलों की पाँत बीच में से टूट गयी हो और वे विशृंखल हो गये हों। तुम अवसर न दो कि श्रीकृष्ण ही प्यार की शुरुआत करें। तुम स्वयं प्यार करनेवाली हो जाओ। तुम इस स्थिति में अपने पुण्यों के परिपाक-स्वरूप अद्वितीय शोभा पाओगी और अवर्णनीय आनन्द पाओगी।'

भूमिका में कहा जा चुका है कि श्रीकृष्ण महात्रिपुरसुन्दरी के अवतार हैं, अपने प्रिय कामेश्वर के साथ वे पूर्ण भाव से प्यार में जुड़ना चाहते हैं, और राधा कामेश्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तादृशशोभाप्रदो भविष्यतीति भावः। तरलवलाके अतिपुरुषायितं यस्यास्तादृशीत्यर्थः। अत एव हे रतिविपरीते इति, सुकृतविपाके तस्य सुकृतस्य परमफलरूपे तेनाभीप्सितत्वात्। विपरीतरतेरेवैतानि विशेषणानि वा; तदा कीदृशे रतिविपरीते? सुकृतविपाके उभयोः पुण्यपरिपाकरूपे, तत्र हेतुः– तरलवलाके अत एवोपहितहारे इति।

'वलाका वकपङ्क्तौ स्याद्बलाका विषकण्ठिका।

वलाका कामुकी प्रोक्ता वलाकश्च वको मतः।।' इति शाश्वतः।

'विपाकः कीर्त्यते स्वादौ परिणामे च दुर्गतौ'।। इति विश्वः।।५।।

विगलितवसनं परिहृतरसनं घटय जघनमपिधानम्।

किसलयशयने पङ्कजनयने निधिमिव हर्षनिधानम्।।६।।

पुरुषायितं निरूप्येदानीं नायककर्तृकं सूचयति—विगलितेत्यादि। हे पद्मनयने! श्रीकृष्णरचितनवपल्लवशय्यायां जघनमारोपय। कीदृशं जघनम्? विगलितवसनं विशेषेण स्खलितं स्वयमेव कन्दर्पकोटिरमणीयकान्तस्य सङ्गमे परमरसज्ञायाः शृङ्गाररसविक्रमेण वस्त्रमेव यस्मात्तम्। अतोऽपिधानं पिधानमावरणं तद्रहितम्। पुनः कीदृशम्? परिहृतरसनं पङ्कजनयनेन मन्मथशरमथितचित्तप्रेष्ठेन दूरीकृता क्षुद्रघण्टिका यस्मात्तादृशं तमेव वा, विगलितवसनमिति च। पुनः कीदृशम्? हर्षनिधानं परमानन्दस्या-व्यभिचारिगृहम्। कमिव? निधिमिव नायकशिरोमणेरभीष्टधनमिव। अथवा विपरीतरतमेव वर्णयति–तदा हे सखि! किसलयशय्यायां पङ्कजनयने श्रीकृष्णे परिहृतरसनादिलक्षणं स्वजघनं तस्मिन् योजय इत्यन्वयः। तादृशावसरे शब्दायमानरसनाया अनुपयोगित्वात्, विगलितवसनमित्यपि युक्तमेव, अन्यत् समानम्।।६।।

हैं; तो आज ऐसा क्षण आये कि सहज कामेश्वरभाव, सहजभाव ललिता त्रिपुरसुन्दरी के ऊपर छा जाय और उनका माँगा हुआ पुंभाव विगलित हो जाय।।५।।

'सखी यह अवसर न खोना, उस पल्लव की सेज पर–वसन्त की सम्पदा–पल्लव की सेज पर अपने को लिटा लो, करधनी उतार दो, वस्त्र खिसका दो, हरि और अपने बीच अन्तराल न रहने दो। जाँघें वैसे ही उत्कण्ठा से पसीज रही होंगी, उन्हें व्यर्थ का आवरण न दो। अपने को प्रिय के हर्ष का उत्सव बनाओ, जैसे कोई निधिरत्न सम्पुट से खोलकर रखा जाता है, वैसे ही अपने को खोलकर रख दो। तुम उनकी निधि हो, जो तुम्हें यमुनातट के पीछे कुंज में बुला रहे हैं।।६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम्।
कुरु मम वचनं सत्त्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम्।।७।।

विलम्बमानां दृष्ट्वा भेदरूपमुपायं दर्शयति—हरिरिति। हरिः सुन्दरवरः अभिमानी अभितः सर्वतोभावेन त्वां प्रियां मानयतीत्यभिमानी, त्वय्यतिशयेन प्रेम्णाभिमानवान् इति वा। अयमर्थः- यथा त्वमस्यातुलितवल्लभाऽहमिति अभिमानवती, तथा सोऽपि इयं ममातिवल्लभा ममाभिलषितं पूरयिष्यतीत्यभिमानवानिति। अतो मधुरिपोः मधुर्वसन्तः क्षोभकत्वेन रिपुर्यस्य तादृशस्य कामं त्वद्रमणरूपाभिलाषं पूरय परिपूर्णतां प्रापय, रिपुणाक्रान्तः प्रियः (त्वत्) सहायेन आनन्दितस्तथा वशीकृतो भविष्यतीति भावः। इयं रजनिः रात्रिरपि इदानीं सम्प्रति विरामं याति अवसानं गच्छति। मम वचनं मद्वाक्यं कुरु। कीदृशम्? सत्वररचनं त्वरासहितं गमनं रचयतीति तादृशम्। सत्वररचनं यथा स्यादेवं 'चल सखि कुञ्जम्' इत्यादिलक्षणं मदुक्तं कुर्विति वा एवम्भूतप्रेष्ठाभिलाषपूरणेन। रजन्यवसाने च यदि तव दुराग्रहेण औदास्यमाचरेत्तदा अहैतुकविरहदुःखज्वालालये पतनं भविष्यतीति भेदो दर्शितः। केचिच्च अभिमानी दर्पवानिति राधायामनुकूलत्वाद्धृष्टनायकगुण-विशिष्टत्वेन रसभङ्गः स्यादिति न युज्यते। क्वचिच्च हरिरतिमानीति पाठस्तदा नायिकाकृतसुरतनिरूपणेन किं मयैवं तस्य नैरपेक्षेणैव कर्त्तव्यमत आह—कामकदनं हरतीति हरिः, रतिः सम्भोगस्तं बहु मानयतीत्यर्थः। रजनिश्च विरामं विशेषेण राममभिरमणं याति प्राप्नोति। एवं रसपोषकसामग्रीसमुदाये सम्पन्ने इदानीमेव मधुरिपोः सम्भोगेच्छां पूर्णां कुर्विति भावः।।७।।

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम्।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम्।।८।।

हे वैष्णवा उक्तलक्षणं हरिं नमत एवम्भूतचरितानुशीलनेन भजत इत्यर्थः। कीदृशम्? प्रमुदितमानन्दयुक्तं हृदयं यस्य तादृशं प्रियासङ्गमौत्सुक्येनेति भावः। तत्रापि अतिदयासहितम्, भक्तप्रियत्वात्।

हरि बड़े अभिमानी हैं। यह रात बीती जा रही है। तुम देर न करो। मेरी बात मानो, चलकर उनके मन की अभिलाषा पूरी करो और जल्दी-जल्दी चलो, रात बीतने न पाये'।।७।।

श्री जयदेव ने भगवान् की बड़ी सेवा की है, तब यह परम रमणीय अष्टपदी रची है। दर्शक-श्रोता इसमें प्रवेश करो। आपके हरि ही करुणानिधान हैं। हरि को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा अतिसदयं हरिं सर्वोत्तमम्, सर्वोत्तमानायिकाप्रसङ्गेन परिपूर्णगुणप्रकट-नादतिशयेन सर्वेषां मनोहरणात् सदयं सतां शुभावहो विधिर्यस्मात्तमिति स्वानुभूतं वर्णितम्। यथा लोके प्रसिद्धिरेतयाष्टपद्या हरिः जयदेवस्य गृहे प्रकटीबभूवेति। क्व सति? श्रीजयदेवे परमरमणीयं परमः परमानन्दरूपत्वाद् रमणीयः, रसवलितत्वात्, परमश्चासौ रमणीयश्च त्वं श्रीराधामोहनयोश्चरितानि भणति सति। कीदृशे जयदेवे? कृतहरिसेवे। कृता हरेः उक्तलक्षणा सेवा येन तादृशे। कीदृशम्? सुकृतकमनीयं सुकृतैः शोभनचरितैः कमनीयं काङ्क्षणीयं कोटिसुकृतैः काम्यते, तस्य दययैव महत्प्रसङ्गेन प्राप्यत इत्यर्थः। हरेरेव विशेषणं वा परमरमणीयमिति सुकृतकमनीयञ्च सुकृतैः शोभनैश्चरितैः कमनीयं सुन्दरमित्यर्थः। अभिसारिका चात्र नायिका, तल्लक्षणम् (रसार्णवसुधाकरे-१।१३५)—

'मदनानलसन्तप्ता याभिसारयति प्रियम्।
ज्योत्स्नीतमस्विनीयानयोग्याम्बरविभूषणा।।
स्वयं चाभिसरेद् या तु सा भवेदभिसारिका'।। इति।।८।।

विकिरति मुहुः श्वासानाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन्मुहुर्बहु ताम्यति।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते! प्रियस्तव वर्त्तते।।३६।।

पुनरप्यभिसारगतस्यान्यचेष्टितं निरूपयति—विकिरतीति। हे कान्ते! स्वकान्त्या वशीकृतवल्लभे! तव प्रियो मदनस्य कामस्य त्वद्वियोगेन कदनं पीडनं तेन ग्लानो वर्त्तते। तथाविधः सन् किं करोतीत्यत आह मुहुर्वारं वारं त्वदागमनचिन्तया श्वासान् सन्तापनिःश्वसितानि विकिरति क्षिपति, पुरोऽग्रे मुहुः दिशः ईक्षते विलोकयति, अत्याकुलतया कस्या दिशः कदा

अत्यन्त विलसित हृदय के साथ प्रणाम करो। वे बड़े पुण्य से मिलते हैं, यहाँ-वहाँ तो मिलते नहीं। बस, जयदेव के इस, उनके प्रसाद में गाये हुए गीत में मिलते हैं। इस अष्टपदी के अन्त में चार श्लोक हैं, जिनमें श्रीकृष्ण की मनोदशा की कई छवियाँ हैं।।८।।

श्रीकृष्ण धीरे-धीरे साँस छोड़ते हैं और सामने की दिशा की ओर बार-बार देखते हैं, अब आ ही रही होंगी। फिर अपने निकुंज में लौटते हैं; क्योंकि उन्हें लगता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाऽऽगमिष्यतीति युगपत् सर्वा दिशः पश्यतीत्यर्थः। तत्रापश्यन्मुहुः सङ्केतनिकुञ्जं प्रविशति, केनापि मार्गेण कुञ्जे प्रविष्टा भविष्यतीति मार्गं निरीक्ष्य निकुञ्जे विशतीत्युत्कण्ठातिशयो निरूपित इति भावः। कीदृशं कुञ्जम्? गुञ्जन् भ्रमरैः शब्दं कुर्वत्, अतो बहु अधिकं यथा स्यात्तथा ताम्यति ग्लानो भवति। एवम्भूतोऽपि त्वदनुरागेण मुहुः वारं वारं केनाप्यद्भुतप्रक्रियाविशेषेण शय्यारचनं करोति। तत्रापि परितः आकुलं यथा स्यादेवं मुहुरीक्षते। क्वचिच्च- विकिरति मुहुः श्वासान्नासापुरो मुहुरीक्षते, प्रविशति मुहुः कुञ्जं कूजन्मुहुर्बहु ताम्यतीति पाठः। तदा नासापुरो मुहुरीक्षते त्वां ध्यायति, कूजन्मुहुः हा प्रिये हा प्राणेश्वरीति मुहुरार्त्तनादं कुर्वन् बहु ताम्यतीत्यर्थः। हरिणीछन्दः। दीपकोऽयमलङ्कारश्च।।३६।।

त्वद्वाम्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तं गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सान्द्रताम्।
कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे! विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः।।३७।।

इदानीं साम्प्रतमेव गन्तुं साम्प्रतमिति हेतुमाह–त्वद्वाम्येनेति। हे मुग्धे! स्वसौन्दर्येण वशीकृतवल्लभे! सुन्दरि! स्वकार्यसाधनाज्ञानान्मूढे वा मुग्ध इति सम्बुद्धिः। तत्तस्माद्धेतोः विलम्बनं कालापनयनं विफलं हस्तगतसौख्य-प्रतिबन्धकमित्यर्थः। असावभिसारक्षणः अभिसारयोग्यः समयः रम्योऽतिमनोहरः। तद्दर्शयति–त्वद्वाम्येन समं वक्रतया सहितं तिग्मांशुः सूर्यः समग्रं सामस्त्येन यथा स्यादेवमस्तं गतः। अथवा समग्रमधुना आरम्भावसान-माधुर्ययुक्तो, न तु तव स तिग्मांशुः तव चित्तकाठिन्यं वियोगापादनेन

है कि बाहर का वातावरण तो सहा नहीं जाएगा। भौंरों की गुंजार से और वसन्त के सदल–बल आने से और अधिक ताप बढ़ेगा। वह पहचानने में लगे हैं कि कहीं सेज पर लगे पत्ते, कहीं किसलय कली मुरझा न गये हों। दूसरी पत्तियाँ वहाँ बिछा दें। काफी विलम्ब हो जाता है, चारों तरफ आकुल होकर फिर देखते हैं– इतनी तो मैंने तैयारी कर ली, अभी नहीं आयी! प्यारी, तुम्हारे प्रिय तुम्हारी ही तरह प्रेम की पीड़ा से तड़प रहे हैं।।३६।।

जैसे तुम इस समय वाम हो गयी हो, अपने स्वभाव की सहज सिधाई तुमने छोड़ दी है, वैसे ही तिरछी किरणोंवाला चन्द्रमा इस समय देखो, अस्त हो गया है। गोविन्द के मन में जो तुम्हारे प्यार के मनोरथ उठे थे, उनके साथ–साथ अन्धकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्तापकत्वात्। तमस्तिमिरं गोविन्दस्य मनोरथेन समं वाञ्छया सहितं सान्द्रतां निविडतां प्राप्तम्। गोविन्दस्य मनोरथोऽन्धकारश्च निविडो जात इत्यर्थः। अन्धकारस्योद्दीपनविभावात् प्रियागमनहेतुत्वाच्च मनोरथस्य निविडता। मदभ्यर्थना मद्याच्ञा दीर्घा बहुकालीना। कीदृशी? कोकानां चक्रवाकानां करुणस्वनेन सदृशी तुल्या, विरहाधिक्येन कृपाविषयत्वप्रापकस्वरात्। त्वदेकनिष्ठः सोत्कण्ठः कान्तः, निविडान्धकारः, वक्रताधमताऽहमप्यनुकम्पनीयेति विलम्बनमयुक्तमिति भावः। सहोक्तिनामायमलङ्कारः, तदुक्तं दण्डिना काव्यादर्शे (२।३५१)–'सहोक्तिः सहभावेन कथनं गुणकर्मयोः' इति। यथा–'सह दीर्घा मम श्वासैरिमाः सम्प्रति रात्रयः'। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।।३७।।

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्तज-
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः।
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो–
र्दम्पत्योरिह को न को न तमसि व्रीडाविमिश्रो रसः।।३८।।

यदुक्तं 'रम्योऽभिसारक्षणः' तदेवान्धकारस्यातिनिविडतया विविधरसचमत्कारत्वनिरूपणेन प्रलोभयन्ती वर्णयति– इह तमसि दम्पत्योर्जायापत्योः व्रीडाविमिश्रो लज्जासमन्वितः कामरसो रसराट् मधुराख्यः कः कः नाम नो भवतीति न, अपि तु भवत्येवेत्यर्थः। किम्भूतयोर्दम्पत्योः? अन्यार्थं सुरतादितरप्रयोजनमुद्दिश्य गतयोः भ्रमान्मिलितयोः परिभ्रमणात् सङ्गतयोः सान्द्रे तमसि परस्परालापैः ज्ञातवतोः, अहमस्याः पतिरयं मम भर्त्तेति स्वरभङ्गादिलक्षणैः सात्त्विकविकारैर्भावावगमाद्वा सम्भोगाभिप्रायमिति। तयोश्चेष्टितमाह– आश्लेषादनु चुम्बनं तदनु सुभटमन्मथक्षोभनार्थं नखोल्लेखः नखक्षतस्तदनु पश्चात्तस्य स्वान्तजस्य कामस्य उद्बोधः उद्भटत्वं तदनु सम्भ्रमः

भी और गहरा हो उठा, और इस समय रात के पिछले प्रहर से जो चकवे बड़ी आशा से विह्वल होकर पुकार उठते हैं, उसी तरह से उनकी यह लम्बी पुकार है। मेरी यह प्रार्थना है– मेरी सखी, तुम कितनी भोली हो, इस समय अब विलम्ब सब नष्ट कर देगा। अभिसार का विशेष क्षण होता है। वह बीत जाय तो रम्यता चली जाती है, रमने का मन बासी हो जाता है।।३७।।

इस अन्धकार में ही तुम्हारी जुगल-जोड़ी एक-दूसरे से मिलकर आलिंगन करके, चूम के, इधर-उधर नख से कुछ-न-कुछ लिख करके, अपने भीतर के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामोद्वेगात् नीव्यादिस्पर्शव्यग्रता तदनु सुरतारम्भः कामशास्त्रप्रणीतबन्धादिना सम्भोगारम्भस्तदनु प्रीतयोः समकालमेव लब्धानन्दयोः। तदुक्तं भरतेन—

'आश्लेषचुम्बननखक्षतकामबोधशीघ्रत्वमैथुनमनन्तसुखप्रबोधम्।
प्रीतिस्ततोऽपि रसभावनमेव कार्यमेवं नितान्तचतुराः सुचिरं रमन्ते'।। इति।

अथवा कः कः रसो न भवतीति न, अपि तु सर्व एवं रसो भवतीत्यर्थः। तत्र गाढान्धकारे भयव्याजेन शोकमिवानुकुर्वन् करुणस्याविर्भावः। नखक्षतादिना उत्साहात्मा वीरः। एवमपूर्वसुखानुभवनमिति सम्भ्रमाद्विस्मयसहचरोऽद्भुतः। कामोद्बोधेन हास्यः, रतारम्भात् सकलरसचक्रवर्त्ती रतिसखा शृङ्गारश्च समुल्लसति। तथा चोक्तम् (नाट्यशास्त्रे-६।१७)–

'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्साविस्मयशमाः स्थायिभावाः प्रकीर्त्तिताः।"

तेषु जुगुप्साक्रोधशमाः शृङ्गारविरोधान्न निरूपिताः। उक्तलक्षणानामप्यत्र तत्पोषणत्वेनैव ग्रहणम्, न तु स्वातन्त्र्यम्। तथा च दम्पत्योरपि अन्यप्रयोजनमुद्दिश्य गतयोरपि तमसस्तादृशरसोत्पादकत्वकथनेन रससर्वस्वरूपयोर्भवतोर्मिलनविलम्बनमकार्यमिति ध्वनितम्। केचित्तु अन्यनायिकानायकनिमित्तं गतयोः भ्रमाद् भ्रान्त्या इयं ममाभिसारिका, अयं ममाभिसारक इति मिलितयोः परस्त्रीपरपुरुषत्वेन सङ्गतयोः सम्भोगानन्तरं सम्भाषणैर्जानतोः पश्चादुभयोः व्रीडाविमिश्रो रसो भवतीति व्याकुर्वन्ति, तन्न समीचीनम्; सख्या भगवत्प्रियाया अग्रे ग्राम्यरसकथनासम्भवात्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।।३८।।

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशौ तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम्।
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि! सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम्।।३९।।

मनोरथ एकाएक जल जाने से और गहरा जाने से, जो फिर से नया आरम्भ हुआ है, उससे तुम दोनों उस लम्बी प्रीति से भर उठे हो। जैसे तुम कहीं दूसरे प्रयोजन के लिए गये थे और एकाएक कामवश मिल गये हो। एक-दूसरे को केवल मुरली से पहचान रहे हो। ऐसी परिस्थिति है कि इस अन्धकार में तुम्हारी लाज भी निभ रही है और तुम्हारा प्यार भी निभ रहा है। इस प्रकार का रस तुम दोनों को मिल रहा है और तुम दोनों से सारे विश्व को मिल रहा है।।३८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं त्वत्प्राप्तिरेव तस्य सर्वस्वमित्याह– हे सुमुखि सुन्दरवदने! सुभगः श्रीकृष्णस्त्वां पश्यन् कृतकृत्यतां प्राप्नोतु, तव दर्शनादाविर्भूतसमस्तभगः स्यादिति भावः। उक्तञ्च (भाग. १०।३२।१०)—

'ताभिर्विधुतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः।
व्यरोचताधिकं तात! पुरुषः शक्तिभिर्यथा'।। इति।

कथम्भूतां ताम्? तिमिरेऽन्धकारे पथि वर्त्मनि सभयचकितं यथा स्यात्तथाभिसारसम्भ्रमेण मृगशावसदृशौ नेत्रे विन्यस्यन्तीं दिशि दिशि अर्पयन्तीम्, अनेन विलोकनसौन्दर्यञ्च ध्वनितम्। पुनः किंलक्षणाम्? प्रतितरु वृक्षं वृक्षं प्रति मुहुर्वारं वारं स्थित्वा स मे प्रियतमोऽत्रैवागमिष्यतीति पुनः मन्दं यथा भवेदेवं प्रतिकृति शोभनगत्या पदानि वितन्वतीं चरणारविन्दं धारयन्तीम्। पुनः कीदृशीम्? कथमपि भाग्योदयेन रहःप्राप्तामनङ्गस्य तरङ्ग उद्बोधः कामोल्लासो येषु यैर्वा तैरङ्गैरवयवैरुपलक्षिताम्। अङ्गैरिति विशेषणे तृतीया। अङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिरिति सौन्दर्याधिक्यैरवयवानामप्युल्लासो ध्वनितः। सुभगः सुमुखीति च समानरूपत्वात् प्रीतियोग्यत्वम्, चन्द्राननत्वादन्धकारेऽपि प्रकाशसामर्थ्यमपि।।३९।।

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली-
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारान्तकः।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः।।४०।।

सर्गान्ते कविराशिषमाशास्ते—राधेति। देवकीनन्दनो मुग्धं सुन्दरं यन्मुखारविन्दं तत्र मधुर्यं मुखारविन्दे माधुयो पाति रक्षति नित्यानुकूलतया वृद्धिं प्रापयतीत्यर्थः। तन्माधुर्यमतितृष्णाया पिबतीति वा। त्रिलोक्या या मौलिस्थली वृन्दाटवी तदलङ्कारायोचितनीलरत्नं श्यामसुन्दररूपमित्यर्थः। त्रिलोक्यामेवाखिललोकानां मौलिस्थलीति वा। उक्तञ्च (पाद्मे पाताले) 'अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी'। इति। पृथिव्या भाररूपोऽवतारो येषामसुराणां तेषामन्तको नाशकः। अत एव कंसस्य ध्वंसने

वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब तुम्हारे पास आयें और डर भी लगता है कि तुम प्रसन्न हो या नहीं और फिर एक उत्कण्ठा भी है कि बार-बार चौंकते हैं। बार-बार देखते हैं कि अन्धकार में कहीं राह में तुम सँभल-सँभलकर पैर रख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धूमकेतुस्तद्विनाशपिशुनग्रहः, जातमात्र एव तस्य नाशं सूचितवानित्यर्थः। अथवा धूमकेतुरनलः स्वयमेव विनाशकः। अनेन स्वच्छन्दकेलिप्रतिपादनाय सामर्थ्यरूपो नायकगुणः कथितः। तदेवाह–स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनस्य मनस्तोषाय चित्ताभिलाषपूरणाय चिरमपारं प्रदोषो रजनीमुखमिव। चिरं नित्यमेवावर्त्विति वा। तथा च (आदिपुराणे)—

'द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीत्यपि।
अतः सख्यमभूत्तस्याः देवक्या शौरिजायया'।।

इति केचित् पुराणवचनं पठन्ति। (साकाङ्क्षपुण्डरीकाक्षेति) श्रीराधानुरागोज्जृम्भितसङ्गमाभिलाषेण मन्मथाक्रान्तनयनः कृष्णो यत्र तादृशः पञ्चमः पञ्चमकामबाणतुल्यः।।४०।।

।।इति श्रीगीतगोविन्देऽभिसारिकावर्णने साकाङ्क्षपुण्डरीकाक्षो नाम पञ्चमः सर्गः।।५।।

रही हो। हर वृक्ष के पास तुम थोड़ी देर, शायद यहीं माधव आयेंगे, धीरे-धीरे पद रखती हो, फिर एकाएक तुम एकान्त में प्राप्त हो जाती हो, तो वे उत्कण्ठित हैं कि काम के तरंगों से अंग-अंग शिथिल हो चुके हैं, तुम्हें पायें और कृतार्थ हो जायें।।३९-४०।।

।।इति पञ्चमः सर्गः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ षष्ठः सर्गः।।

धन्यवैकुण्ठः

अथ तां गन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा।
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह।।४१।।

एवं पञ्चमे श्रीकृष्ण उत्कण्ठाभिसरणञ्च निरूप्येदानीं षष्ठेऽस्मिन् कन्दर्पशरपीडितां गन्तुमशक्तां राधां मनोरमसङ्केतनिकुञ्जे संस्थाप्य तच्चेष्टितं सखी कृष्णं प्रत्याह। तदेव दर्शयति–अथेति। अथ-शब्दो मङ्गलार्थः, आनन्तर्यार्थो वा। सखी तच्चरितं तस्याश्चेष्टितं गोविन्दे गोविन्दं विषयीकृत्य प्राहोवाच। कीदृशे? मनसिजेन कामेन मन्दे व्यथिते। कामो मन्दस्तुच्छो यस्मात् कोटिकन्दर्पस्वरूप इत्यर्थो वा। किं कृत्वा? तां श्रीराधां लतागृहे क्वचिल्लतामण्डपे चिरं बहुकालं व्याप्यानुरक्तां दृष्ट्वा। अस्मिन्नेव निकुञ्जे समागत्य मामनुनेष्यतीत्येवं ज्ञात्वेत्यर्थः। कीदृशम्? अनङ्गविक्रियातो गन्तुमशक्तां चलितुमसमर्थाम्। अथवा गोविन्देऽनुरक्तामिति व्याख्येयम्, तेनैव बहुकालार्त्या प्रयातुमसमर्थामित्यर्थः।।४१।।

गीतम्-१२

[गुणकरीरागेण रूपकतालेन च गीयते]

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम्।
तदधरमधुरमधूनि पिबन्तम्।।१।।

सखी ने सन्देश दिया–'माधव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं चलो', किन्तु श्रीराधा इतनी प्रतीक्षा करते-करते कि कब सखी सन्देश लेकर आएगी, निढाल हो गयी हैं, चलना चाहती हैं और चल नहीं पातीं। लम्बे प्यार की प्रकृति यही होती है कि मन और शरीर में तालमेल नहीं रह जाता। मन कुछ करना चाहता है, पर शरीर साथ नहीं देता। शरीर पर ही सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। उसका कारण यह है कि शरीर के ही मथे जाने की स्मृति ने उसे शिथिल किया है। उसके इस दुचित्तेपन को बतलाने सखी श्रीकृष्ण के पास जाती है, जो काम के आवेश से स्वयं निढाल पड़े हैं।।४१।।

सखी कहती है–'स्वामी! राधा जहाँ तुम्हारे लिए तैयार होकर बैठी हैं, वहीं सीझ रही हैं। वह वहीं बैठे-बैठे एकान्त में तुमको हर दिशा में देखती हैं, अर्थात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाथ हरे! जय नाथ हरे! सीदति राधा वासगृहे।।ध्रुवम्।।

सखी यदाह, तद्गीतेन कथयति—पश्यतीति। गीतस्यास्य गुणकरी-रागः, रूपकतालः। रागलक्षणम्–

'रतोत्सुका कान्तपथि प्रतीक्षामापालयन्ती मृदुपुष्पतल्पा।
इतस्ततः प्रेरितदृष्टिरार्त्ता श्यामातनुर्गुणकरी प्रसिद्धा।।' इति।

तालस्तु कथितः प्राक्। गीतार्थस्तु–हे नाथ हे हरे! राधा वासगृहे सङ्केतितनिकुञ्जे मन्दिरे सीदत्यवसन्ना भवति। विरहदुःखापहाराद्वाऽत्र हर इति सम्बोधनम्। नाथेति 'नाथ-नाधृ-याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु' इति। हे स्वामिन्! समर्थेन त्वया स्वीयानां दुःखाशान्तिर्नोचितेति दैन्योक्तिः। ध्रुवपदम्। अथ पदानि। तदद्भुतानुरागविवर्त्तं दर्शयति–रहसि एकान्ते भवन्तं त्वामेव दिशि दिशि प्रतिदिशं पश्यति। कीदृशम्? तत्तस्या राधाया यदधरं तदेव मधुरमधूनि स्वाद्वमृतानि पिबन्तं तदधरसंसर्गान् मधुराणि मधूनीव यान्यक्षराणि तानि श्रृण्वन्तमिति वा। अत्यादरेण श्रवणं पानमुच्यत इति। केचित्तु (रसमञ्जरी) त्वदधरेत्यादि पठन्ति, त्वच्छब्दस्यान्यपरत्वादन्याया अधरमधुरमधूनि पिबन्तमिति व्याकुर्वन्ति च। तन्न समीचीनम्, वासकलक्षणविरोधात्। उक्तलक्षणस्तु सम्भवति, यदुक्तम् (पद्यावल्यां २३९)–'त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे' इति।।१।।

त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती।
पतति पदानि कियन्ति चलन्ती।।२।।

नन्वेवञ्चेत्, तर्हि किमिति नागतेत्यत आह–त्वदभीति। त्वदभिसरणे भवाभिसारे यो रभस उत्साहस्तेन वलन्ती अभिमुखीभवन्ती कियन्ति कतिपयानि पदानि चलन्ती गच्छन्ती सती पतति त्वद्विरहमूर्च्छया गन्तुमसमर्थेत्यर्थः।।२।।

जहाँ-जहाँ देखती हैं वहाँ तुम रहते हो, और कोई नहीं रहता, इसलिए खुले आकाश में दसों दिशाओं में देखती हैं कि बस तुम हो, इसलिए वह निरन्तर ही यह अनुभव करती हैं कि तुम निश्चिन्त होकर उनके अधर-रस का स्वाद ले रहे हो। छककर के अधरों का मधु पी रहे हो। बोलो, तुम्हें कैसे आभास हो।।१।।

तुम्हारे लिए अभिसार करने बड़े वेग से उठ पड़ती हैं, लेकिन कुछ ही दूर जाकर गिर पड़ती हैं, चला नहीं जाता। आवेग कितनी दूर ले जाएगा, शरीर तो तुमसे लिपटा हुआ है, कैसे चलें?।।२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विहितविशदबिसकिसलयवलया।
जीवति परमिह तव रतिकलया।।३।।

हा कष्टमेवञ्छेदशक्ता, तर्हि कथं जीवतीत्यत आह–विहितेति। परं केवलं सा तव रतिकलया पूर्वानुभूतस्य तव रतेराफलनेनागमप्रतीक्षया, तव रतेः कलावृद्धिस्तया वा जीवति जीवनं प्रवर्त्तयतीत्यर्थः। कीदृशी? विहिताः कृताः सखीजनैस्तापापनोदने विशेषेण हिताः पथ्या इति वा, विशदाः शुभ्रा बिस-किसलया मृणालाङ्कुरा एव वलयाः कङ्कणानि यस्यास्तादृशी। 'कलना-कालयोः वृद्धौ कला' इति विश्वः।।३।।

किञ्च–

मुहुरवलोकितमण्डनलीला।
मधुरिपुरहमिति भावनशीला।।४।।

मुहुर्वारं वारं वीक्षिता मण्डनैर्बर्हमुकुटमकराकृतिकुण्डलादिभिर्लीला तवानुकृतिर्यया सा। अहं मधुरिपुरिति भावनशीला चिन्तनपरा, रहसि तव वेशं विधायाहमेव मधुरिपुरिति चिन्तनस्वभावेत्यर्थः। लीला च हावविशेषस्तदाह वात्स्यायनः(?)–

'प्रियजनस्य चेष्टा याऽनुरागातिशयेन वा।
क्रियतेऽनुकृतिः सेयं लीलोक्ता मुनिसत्तमैः'।। इति।

तथा चोक्तम् (भाग. १०।३०।२-३)–

'गत्यनुरागस्मितविभ्रमैक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः।।

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः'।। इति।

उसने मृणाल के (कमलनाल के) सूत्रों से और उसकी कोपलों से अपने को वलयित कर लिया है, जिससे ताप से मुक्ति मिले, लेकिन कहीं से उसे बचाव नहीं दिखता, लगता है, प्राण रहेंगे नहीं। बस इस आशा पर जी रही है, इस भरोसे पर जी रही है कि तुम्हारी प्यार करने की विधि अभी भी प्राणों में बसी हुई है। तुम्हारे प्यार का एक पूरा तन्त्र प्राणों की तन्त्री में बज रहा है।।३।।

प्रभु, वह आ नहीं पा रही है। वह वहीं अपना शृंगार कर रही है और उसे ऐसा लगता है कि शृंगार करते हुए तुम दिख रहे हो, तो वह पलट कर अपने भीतर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुरिपुरिति कठिनचित्तस्य तस्य चिन्तनेन दृढचित्ततया कालक्षेपं करोतीति सख्याः कटाक्षितम्, मधोर्वसन्तस्यापि रिपुः, तया सह विलासं विना व्यर्थकारीति वा।।४।।

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम्।
हरिरिति वदति सखीमनुवारम्।।५।।

तद्भावापन्नाया अपि तत्सङ्गमार्त्तिमाह–त्वरितमिति। हरिर्मच्चित्तापहारी विरहसन्तापहर्त्तेति वा, अभिसारसङ्केतस्थलं त्वरितं शीघ्रं कथं कस्माद्धेतोः नोपैति नागच्छतीत्यनुवारं वारं वारं सखीं वदति।।५।।

अपि च–

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम्।
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम्।।६।।

सा मदनमदभ्रान्ता त्वय्याविष्टचित्ता हरिरुपगतः प्राप्त इति बुद्ध्या अनल्पमधिकं बहुमाननीयं वा तिमिरमन्धकारं श्लिष्यत्यालिङ्गति चुम्बति च। अनल्पं यथा स्यात्तथेति वा। कीदृशम्? सजलमेघसदृशम्।।६।।

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा।
विलपति रोदिति वासकसज्जा।।७।।

भवति त्वयि विलम्बिनि विलम्बं कृतवति सति विगलितलज्जा

तुम्हारी भावना करती है और सोचने लगती है कि मैं जो शृंगार देख रही हूँ, मैं माधव होकर के राधा का शृंगार देख रही हूँ, ऐसी तो उसे बेसुधी है, वो भला कैसे आए?।।४।।

तुम ही सोचो, कैसे इतनी जल्दी तुम्हारे पास पहुँचे। अंग-अंग शिथिल, मन तुम्हारे पास, शरीर वहाँ एकदम निढाल; बार-बार मुझसे यही कहती है, कहाँ हैं हरि, कहाँ हैं हरि, चला नहीं जा रहा है। सामने घना अन्धकार दिखता है। उसे लगता है कि हरि आ गये हैं, तुम आ गये हो।।५।।

हर एक घने बादल के रूप में स्निग्ध नीलकान्तिवाले तुम आ गये हो और उस अन्धकार को ही अंक में भर लेती है, चूमती है। उसे इस भ्रम में बड़ा सुख मिलता है कि उसके आस-पास का अन्धकार और कुछ नहीं है, तुम्हारा ही प्रसार है। तुम ही बतलाओ कैसे उसे लेकर आऊँ।।६।।

फिर उसे लगता है तुम आने में देर कर रहे हो, तो सब लाज खोकर बिलखने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गतलज्जा सती विलपति, हे निष्कृप! कथमेतावदौदास्यं मयि त्वयाचरितमिति विलापं करोति, रोदित्यश्रूणि मुञ्चति। सा वासकसज्जा वासके लीलागृहे कान्तसङ्गमाय सज्जा सम्भृतसकललीलोपकरणा। 'भरताद्यैरभिदधे स्त्रीणां वासस्तु वासकः। स्ववासकवशात् कान्ते समेष्यति गृहं प्रति। सज्जीकरोति चात्मानं या सा वासकसज्जका'।। इति। वासकसज्जकेयं नायिका। तथा चोक्तं शृङ्गारतिलके (१।७६)-

'भवेद्वासकसज्जासौ सज्जिताङ्गरतालया।
निश्चित्यागमनं भर्त्तुर्द्वारेक्षणपरा यथा'।। इति।।७।।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम्।
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम्।।८।।

श्रीजयदेवकवेः इदमुदितं कथितं गीतं रसिकजनं शृङ्गाररसभाव-भावितान्तःकरणमतिमुदितमतिशयेनानन्दितं तनुतां विस्तारयतु, शृङ्गाररस-विशिष्टभक्त्यास्वादचतुरेणास्वादनीयमित्यर्थः।।८।।

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-
र्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती।
तव कितव विधायामन्दकन्दप्रचिन्तां
रसजलधिनिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी।।४२।।

हे कितव धूर्त! मृगाक्षी मृगशावलोचना तवामन्दकन्दर्पस्य कन्दर्पकोटि-

---

लगती है, रोने लगती है। सखी को भेजकर मैंने इतनी तैयारी की और अभी तक क्यों नहीं आये मेरे प्रियतम! प्रभु, माधव, तुम ही निदान करो, तुम ही चलो'।।७।।

श्री जयदेव की यह अष्टपदी रसिकजनों को आनन्द दे; क्योंकि वे ही प्रेम के इस उन्मादी रूप को समझ सकते हैं कि प्रिय बुला रहा है और वह उनसे मिलना भी चाहती है, उनके लिए सज-सँवर चुकी है, पर वह जा नहीं पा रही है। 'उनके भीतर शायद हो, कि मेरे बुलाने पर नहीं आएगी, मैं ही कैसे उनके बुलाने पर जाऊँ या शायद हो कि मैं तो उनमें पूरी तरह डूबी हुई हूँ। वे यह सब समझते क्यों नहीं। या यह हो कि पूरी रात तो लगभग बीत गयी और क्यों उन्होंने अभिमान किया, क्या मैं उनके योग्य नहीं'।।८।।

तरह-तरह के विकल्प हैं। श्रीराधा के तरंगायित मन को कौन समझ सकता है? जो समझेगा उसे लीला का रस मिलेगा। उसके बाद के दो श्लोकों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रमणीयमूर्त्तेस्त्वत्सम्बन्ध्यनल्पकन्दर्पस्य वा, अनल्पा कन्दर्पचिन्ता वा, स मम प्राणकोटिवल्लभः कदा वाऽऽगमिष्यतीत्याद्येवंरूपा तां विधाय हृदि कृत्वा ध्याने लग्ना त्वयि सङ्गता सती रसजलधौ शृङ्गाररससमुद्रे मग्ना बभूवेत्यर्थः। रससागरमग्नायाश्चेष्टितं वर्णयति–कीदृशम्? विपुला प्रचुरा पुलकपालिः रोमाञ्चपंक्तिर्यस्याः, मग्नस्योद्धारणार्थमिव गृहीताङ्के च त्वदङ्गस्पर्शोद्भूत-सात्त्विकविकारेत्यर्थः। किञ्च कुर्वती? तत्स्पर्शोन्मदनोन्मथितचित्तस्य तव स्तनालभनाधरपाननीवीबन्धनमोचनासक्तिमाकलय्य काकुव्याकुलं काक्वा ध्वनिविकारविशेषेणाकुलं यथा स्यादेवं व्याहरन्ती कुट्टमिताख्यहावमाश्रिता 'मुञ्च मुञ्च न न मां माम्' इत्यादि कुपितेव निषेधकं वाक्यं कथयन्तीत्यर्थः। उक्तञ्च (अमरकोषे)–'काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः' इति। कुट्टमितलक्षणम् (रसार्णवसुधाकरे-१।२०५)–

'केशाधरादिग्रहणे मोदमानापि मानसे।
दुःखितेव बहिः कुप्येद् यत्र कुट्टमितं हि तत्'।।

पुनः कथं यथा स्यात्? स्फीतः प्रवृद्धः सीत्कारो यत्र एवं यथा स्यात्तथा। नखोल्लेखादिनेवोद्भटसीत्कारं करोतीत्यर्थः। बाह्यविकारानुपवर्ण्येदानीमन्तर्विकारमाह–पुनः कथं यथा स्यात्? अन्तश्चित्ते जनितो जडिमा जाड्यं स्तम्भ आनन्दविकारस्तद्यथा स्यात्तथा। अनेन रताख्यो भाव उक्तः। एभिर्भावै रसजलधौ मग्नत्वमुक्तम्, स्तम्भः चेष्टाप्रतिघात इत्यानन्दावाप्तिलक्षणम्। जडताख्या नवम्यवस्थापीयं ध्वनिता। यदि परोक्षेऽप्येवं तर्हि त्वत्सङ्गमे कीदृशो रसोदयो भविष्यतीति को वर्णयितुं समर्थ इति भावः। अन्यस्यापि जलधिमग्नस्यान्तर्जाड्यं रोमाञ्चः सीत्कारः त्रुट्यद्वर्णभाषणं काकुनिर्गमनं चिन्ता च भवतीति।।४२।।

वासकसज्जा की मनःस्थितियों का और आकुल क्रियाओं का, आकुल चेष्टाओं का वर्णन है। 'तुम्हारे प्यार में डूबी हुई, तुम्हारे संश्लेष के इस रससिन्धु में डूबती-उतराती हुई वह मृग की-सी चंचल आँखोंवाली राधा तुम्हारे ध्यान में मग्न है। उसे लगता है कि तुम उसे अपने में लिये हुए हो। इसलिए उसके शरीर के रोम-रोम में हर्ष हो गया है। वह पुलक से भर गयी है और सिसकारती हुई वह भीतर की जड़ता को केवल बोलने के लहजे में जैसे-तैसे उतारती हुई कुछ अस्फुट बोलती है। शायद कोई नहीं सुनता, सुन भी नहीं सकता, केवल माधव सुनते होंगे। हे छलिया! उसने अपने भीतर काम के तीव्र आवेग को समेट रखा है। वह पड़ी हुई है। तुमने क्या कर दिया है? वह कैसे तुम्हारे पास आएगी?।।४२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

**अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायति।
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासङ्कल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति।।४३।।**

ननु मया सह रमणं जातमेव, किमर्थं मम तत्र गमनं चेदेवं रममाणापि साक्षात्त्वां विना वक्ष्यमाणव्यापारवृत्त्यापि निशां नेतुं समर्था न भविष्यतीत्याह– अङ्गेष्विति। हे कृष्ण! एषा वरतनुः सुन्दराङ्गी त्वया विना त्वामृते निशां रात्रिं न नेष्यति प्रभातं प्रापयितुं समर्था न भविष्यतीत्यर्थः। कीदृशी? इत्यनेन प्रकारेणाकल्पोऽलङ्कारो विकल्पस्त्वदागमनशङ्का तल्पं शय्या, रचना दूतीप्रेषणादि-त्वदागमनोपायचिन्तनम्, एभिः सङ्कल्पो मनसो वृत्तिरित्यादि-लीलाशतव्यासक्तापि तत्तद्व्यासङ्गेऽपि त्वत्सङ्गमाभिलाषिण्यास्तस्या न कुत्रापि मनसो विराम इति भावः। अलङ्कारादिव्यासङ्गं दर्शयति–अङ्गेष्विति। अङ्गेष्वाभरणमलङ्कारं तव सुखाय मङ्गलाय वा बहुशोऽनेकप्रकारेण करोति– इत्याकल्पः कथितः। पत्रेऽपि सञ्चारिणि वृक्षपत्रेऽपि पक्ष्यादिना चलति सति त्वां प्राप्तमागतं परिशङ्कते सर्वतो वितर्कयन्तीत्यर्थः–अनेन विकल्पः। अपि च तव कामकेलिनिमित्तं शय्यां वितनुते विविधविचित्रोपधानादिभिर्नानाप्रकारेण विस्तारयति–एवं तल्परचनेयं दर्शिता। चिरं बहुकालं ध्यायति त्वदागमनोपायं चिन्तयति (इति सङ्कल्प उक्तः) एभिर्व्यापारैस्तवागमनाशया कालं नयतीत्यर्थः। अयमल्पताख्यो हावः, तदुक्तम्–

'अल्पता सा तु कथिता प्रियस्यागमने सति।
दिदृक्षयोभयोस्तद्वत् ससम्भ्रममलङ्कृतिः'।। इति।

'आकल्प-वेषौ नेपथ्यम्' इत्यमरः। 'तर्को विकल्पः शङ्का च' इति। 'सङ्कल्पः कर्म मानसम्' इति।।४३।।

वह कभी-कभी तो एक बार अंग-अंग में गहने पहनती है और वन में गिरे हुए पत्तों पर चलती है। उसे लगता है तुम आ गये। फिर से सेज रचने लगती है और तुम्हारा ध्यान करने लगती है–अब आ रहे हो, अब आ रहे हो। तरह-तरह से सेज रचती है, इधर बैठोगे, उधर बैठोगे, ऐसे पल्लव वहाँ सजाती है। इस प्रकार के अनेक संकल्पों-विकल्पों में, अनेक प्रकार की लीलाओं में लगी है। यदि तुम नहीं जाओगे तो यह रात ही उसका काल हो जाएगी। यह रात वह खेप नहीं पाएगी'।।४३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने भाण्डीरभूमीरुहि
भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम्।
राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः।।४४।।

सर्गान्ते कविराशिषं प्रयुङ्क्ते–किमिति। वाण्यो जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तन्ते, भावगर्भितया वक्तुर्वैदग्ध्याख्यापनेन तत्त्वेन च गुरुजनवञ्चनया सम्भोगसम्पत्ति-सम्पादनात्। किम्भूता गिरः? सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भाः सायंकाले येऽतिथयस्तेषां प्राशस्त्यं स्वागतादिप्रशंसा, धन्योऽयमित्यतिथिर्गृहिणां पुण्योत्पादकः, वस्तुतस्तु प्रियाभिसारसङ्केतज्ञापनादयं बहुसुखदाता इति गर्भे आभ्यन्तरे यासां ताः। प्रशंसयाऽऽभ्यन्तरेऽभिप्रायविशेषयुक्ता इत्यर्थः। कीदृशस्य गोविन्दस्य? नन्दान्तिके पितुः समीपे तत्तादृक्सङ्केतसूचनारूपमध्वगमुखान्निःसृतं श्रीराधाया वचनं गोपतः सङ्गोपनं कुर्वतः। किन्तदिति–हे भ्रातः पथिक! भ्रात इति कोमलामन्त्रणे। भाण्डीरभूमीरुहि वटवृक्षे किं विश्राम्यसि? विश्रामं मा कृथाः। तत्र हेतुः–कृष्णभोगिभवने कृष्णश्चासौ भोगी च तस्य भवने कृष्णसर्पावासे, पक्षे–शृङ्गारिणः श्यामसुन्दरस्य विलासगृहे। पक्षद्वये–नेह स्थेयमिति भ्रातृपदोपादानम्, श्लेषालङ्कारश्च। इतो वटात् सानन्दं सकलर्द्धिमन्तं नन्दस्यास्पदं मन्दिरं न याहि, अपि तु याहीति। शून्यसर्पावासपरित्यागेन श्रीमद्गृहातिथ्येन च निर्वृतो भविष्यसीत्यर्थः। तद् दूरे भविष्यतीत्यत आह–दृष्टिगोचरमिति। आसन्नमेव। पथिकवचनेन सङ्केतसूचनात् कृष्णस्य तादृग् वाग्वैभवप्रकटनेन श्रीराधाया वाचो जयन्तीत्यपि ध्वनितम्। अत्र चातुर्यादिगुणविशिष्टौ राधामोहनावालम्बनौ, स्वयंदूती च नायिका–एवं रसराट् शृङ्गारो निरूपितः। वटाद्युद्दीपनविभावाः। (धन्यवैकुण्ठेति) श्रीराधानुरागास्पदत्वेन धन्यश्चासौ विगतविरहमूर्च्छश्च वैकुण्ठो हरिर्यत्र सः।।४४।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दे वासकसज्जावर्णने धन्यवैकुण्ठो नाम षष्ठः सर्गः।।६।।

हे पथिक! इस भाण्डीर वृक्ष पर कृष्ण सर्प का निवास-स्थान है। इस वृक्ष के नीचे तुम्हारे विश्राम का क्या प्रयोजन है? क्या आपको नन्द बाबा का निवास-स्थान नहीं दिखाई दे रहा है? जहाँ पर सम्पूर्ण सुविधाएँ एक जगह उपलब्ध हैं। इस तरह राधा द्वारा कथित वचनों को पथिक के मुख से सुनकर नन्द बाबा के सम्मुख उन वचनों को छिपाने वाले श्रीकृष्ण पथिक से कहते हैं–'आप आयें, आपका स्वागत'। इस तरह स्वागत के द्वारा उक्त बातों को श्रीकृष्ण टाल गये। ऐसे श्रीकृष्ण द्वारा कथित वाणी जययुक्त हो।।४४।।

।।इति षष्ठः सर्गः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ सप्तमः सर्गः।।

नागरनारायणः

अत्रान्तरे च कुलटाकुलवर्त्मपात-
सञ्जातपातक इव स्फुटलाञ्छनश्रीः।
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालै-
र्दिक्सुन्दरीवदनचन्दनबिन्दुरिन्दुः।।४५।।

पूर्वं यावदुभयोरनुरागं निरूप्य इदानीं रसान्तरप्रवेशेन रसविशेषवैचित्र्या भावोद्रेकं प्रकटयन् पुनरपि हेतुपूर्वकं विप्रलम्भाख्यशृङ्गारमवतारयति— अत्रान्तरे इति। अत्रास्मिन्नेवावसरे इन्दुश्चन्द्रो अंशुजालैः किरणसमूहै- र्वृन्दावनान्तरं वनमध्यमदीपयत् प्रकाशितवान्। अनेनालौकिकश्चन्द्रोऽयं वृन्दावनान्तरं प्रकाशितवान् न त्वन्यत्रेति परमनिविडस्यान्तरव्यापकत्वेन प्रकाशबाहुल्यमप्यत्रोक्तम्। अथवा वृन्दावनान्तरवर्त्तिनोर्नागरीकिशोरयोरनङ्ग- मुद्दीपयन्नित्यर्थः, कामसहचरत्वात्। चन्द्रस्योद्दीपनत्वमाह–कीदृशः? दिक् पूर्वा दिक् सैव सुन्दरी तस्या वदने चन्दनबिन्दुर्मण्डलाकारसकुङ्कुमोद्घृष्ट- श्रीखण्डतिलकः। श्रीराधावदने तिलकादिनिर्माणस्पृहा कृष्णस्यास्य दर्शनेन भवतीति भावः। विप्रलम्भहेतुत्वं दर्शयन् विशिनष्टि–कीदृशः? स्फुटा प्रकटीभूता लाञ्छनश्रीः चिह्नविशेषशोभा यस्मिन् तादृशः, तत्रोत्प्रेक्षते– कुलटाकुलस्य श्रीकृष्णेऽभिसारिकासमूहस्य यो वर्त्मपातः सङ्केत आगमनमार्गप्रतिबन्धस्तेन सञ्जातमुत्पन्नं पातकं यस्य तादृश इव। उक्तञ्च (पद्यावलौ-१९५)–

'किमुत्तीर्णः पन्थाः कुपितभुजगीभोगविषमो
विषोढा भूरस्य किमिति कुलपालीकटुगिरः।
इति स्मारं स्मारं दरदलितशीतद्युतिरुचौ
सरोजाक्षी शोणं दिशि नयनकोणं विकिरति'।! इति।

अत्र रूपकोत्प्रेक्षेऽलङ्कृती। केचित्तु श्रीवृन्दावनेश्वर्या विप्रलम्भम- सहमानाः पूर्वसर्गान्ते संयोगमनुवर्णयन्त्यत्र सप्तमे च वैचित्त्यविप्रलम्भाख्य- मद्भुतरसविवर्त्तं निरूपयन्ति। तत्रैवं सङ्गतिः–पूर्वसर्गे स्वयं दौत्येन संयोगः,

---

विरह की उत्कण्ठा प्रतीक्षा के बाद और दूनी हो जाती है। इसी बीच चन्द्रमा सिर पर आ जाता है। यह चन्द्रमा इतना पापी है कि इसने इतने लोगों को रास्तों से भटकाया है। इतने लोगों को भटकाया है कि उसी पाप का कलंक उसमें दिख रहा है। वह चन्द्रमा वृन्दावन के अन्तस् को अपनी किरणों से आलोकित कर देता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्रिमाष्टपद्या प्रेमविलापः, ततोऽज्ञानवत्या दूत्या विषादव्यञ्जनेन स्वीयमेव रमितमन्यामुद्दिश्य प्रबन्धद्वयेन श्रीराधाया निरूपितं सर्गान्ते प्रणयालापामृतं निपीय तत्सङ्गमचिह्नैरेव नागरमौलेस्तस्या अग्रे प्राकट्यम्-नीलनिचोलेत्यादि। ततोऽष्टमे उद्दण्डभावमदविह्वलया नागर्या कृतानुनयविनीतस्यापि याहि याहीति तिरस्कारः, तदग्रे सुगम एव। तदीयानां परितोषायैवेदं व्याहृतम्, तत् क्षन्तव्यम् (इति दीपिका)। तदानेन श्लोकेन श्रीराधाया क्रीडति गोविन्देऽन्याभिसारिकाणां रोधकत्वं वर्णितम्। अत एव लाञ्छनश्रीरिति तासां वर्तमानपातकेन जातकलङ्कस्यापि तयोः प्रीत्यापादनेन शोभैव बभूवेत्यर्थः। अन्यत् समानम्।।४५।।

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा।
विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः।।४६।।

विप्रलम्भस्य हेतुं प्रदर्श्येदानीं तद्दर्शयति-प्रसरतीति। सा राधा उच्चैरत्यर्थं विरचितः कृतो नानाविधः-क्वासि कान्त! कथं शठ! मामुपेक्षस इत्यादि-विलापो यत्र एवं यथा स्यात्तथा परितापं चकार कृतवती। किम्भूता? विधुरा विरहदुःखिता। किं सति? शशधरबिम्बे चन्द्रमण्डले प्रसरति सति। पुनः किं सति? माधवे नायकशिरोमणौ विहितविलम्बे सङ्केतागमनं प्रति कालातिक्रमं कृतवति सति। प्रेमकौतुकदर्शनाय सखीभिः सह सम्मतं विधाय तत्रैव निलीय स्थिते सतीत्यर्थः। उद्दीपनविभावश्चन्द्रः।।४६।।

गीतम्-१३

[मालवरागः प्रतिमण्ठतालः]

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम्।
मम विफलमिदममलरूपमपि यौवनम्।।

है। ऐसा लगता है, जैसे दिशा-सुन्दरी के ललाट पर लगी हुई चन्दन की बेंदी हो। अर्थात् चन्द्रमा एक ओर तो कलंक है, दूसरी ओर उन्मुक्त दिशाओं का शृंगार। ऐसे चन्द्रमा के आते ही आशा क्षीण हो जाती है।।४५।।

इस उजाले में सब लोगों की आँखें लगी होंगी। माधव इधर नहीं आयेंगे और वह और भी अधिक व्याकुल हो जाती है और फूट-फूट करके बिलखने लगती है। 'सखि! तुमने कहा था मैं बुला लाऊँगी। मैं प्रतीक्षा करती रही।।४६।।

अब बताओ, समय देकर भी हरि इस वन में नहीं आये। मेरा यह निर्मल रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता।।ध्रुवम्।।१।।

यदुक्तं विलापञ्चकार तदष्टपद्या वर्णयति–कथितसमयेऽपीत्यादिना। **गीतस्यास्य मालवरागः, प्रतिमण्ठस्तु तालः, तल्लक्षणं कथितं प्राक्। विप्रलब्धा चात्र नायिका (शृ.ति. १।७८)**–

'प्रेष्य दूतीं स्वयं गत्वा सङ्केतं नागतः प्रियः।
यस्यास्तेन विना दुःस्था विप्रलब्धा तु सा मता'।। इति।

गीतार्थस्तु–हे सखि! इहास्मिन् समये स्वान्तर्दुःखप्रतीकाराय कं जनं शरणं यामि। अथवा कं जलं तापशान्त्यै शरणं यामि। तेन विना जलादिषु प्रविशामीत्यर्थः। किम्भूताऽहम्? सखीजनवचनवञ्चिता सख्य एव जना इतरजनवदुपदिशन्त्यस्तद्वचनैर्वञ्चिता प्रतारिता वारं वारं स्वाभिमतोद्यमे हते अहं नानाप्रकारवाक्यैर्वारितेत्यर्थः। 'को ब्रह्मात्मानिलार्केषु शमने सर्वनाम्नि च। पावके च मयूरे च सुखशीर्षजलेषु कम्'।। इति विश्वः। 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। ध्रुवपदम्। केवलं सखीजनैर्वञ्चिता किम्? अपि तु कोटिप्राणाभीष्टेनापीत्याह–हरिं स्मरणमात्रेण सकलदुःखहर्त्तापि कथित-समयेऽपि कथितो यः समयः कालोऽस्मिन्नेवावसरे सर्वथैव मया सङ्केतस्थलमागन्तव्यमिति–अहह खेदे, तदपि वनं सङ्केतनिकुञ्जं न ययौ न प्राप्तवान्। अतो ममेदं यौवनं नवीनाद्भुततारुण्यममलरूपमपि निर्मलसौन्दर्यमपि द्वयं विफलमकृतार्थमित्यर्थः। यौवनलक्षणम् (उ. १०।२१,२३)–

'नितम्बो विपुलो मध्यं कृशमङ्गं वरद्युति।
पीतौ कुचावूरुयुगं रम्भाभं पूर्णयौवने।।'

तन्माधुर्यम्–'न वित्रस्ता का ते प्रतियुवतिरासीन्मुखरुचा, दधार स्तैमित्यं प्रणयघनवृष्ट्या तव न का। व्रजे शिष्या काभून्न हि तव कलायामिति हरे-र्निकुञ्जस्वाराज्ये त्वमसि रसिके! पट्टमहिषी'।। इति। 'भूषणाभूषणाभ्यां हि चमत्कारेण नेत्रयोः। परस्परस्मृतमुदममलं तत् प्रकीर्त्तितम्'।। इति।।१।।

अपि च–

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम्।
तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम्।।२।।

व्यर्थ है, यह यौवन व्यर्थ है, बताओ मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ ठौर पाऊँ? उनके लिए मैंने लाज खोयी और वे नहीं आये। मेरी क्या गलती है?।।१।।

जिनके पास आने के लिए, जिनके वश में होने के लिए मैंने इस अँधेरी रात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्यस्य कृष्णस्यानुगमनायानुसरणाय निशि रात्रौ गहनं वनमपि शीलितमनुभूतम्। अथवा गहनमपि न क्रियते तदपि कृतम्, तेन श्रीकृष्णेन निमित्तभूतेन ममेदं हृदयं मम असमशरेण विषमबाणेन प्रणयकौटिल्येन कीलितं विद्धम्। असमशरेण कामेन वा।।२।।

मम मरणमेव वरमतिवितथकेतना।
किमिह विषहामि विरहानलमचेतना।।३।।

एवं वञ्चिताया मम मरणमेव वरं श्रेष्ठम्, न तु देहधारणम्। किंलक्षणाऽहम्? अतिवितथकेतना अतिशयेन वितथं मिथ्याभूतं केतनं शरीरं यस्यास्तादृशी, अकृतकार्यत्वात्। अथवा अतिक्रान्तवितथमतिवितथं सत्यं केतनलाञ्छनं धिगियं मानवती प्रेष्ठोपेक्षयापि जीवतीति यस्यास्तादृशी। अथवा अतिवितथं निष्फलं केतनं प्रेष्ठसङ्गमं भविष्यतीति सखीनामुपनिमन्त्रणं यस्यास्तादृशी। अथवा अतिशयेन निरर्थकं जातं केतनं बहुप्रेम्णा चिरकालमनोरथघातैर्निर्मितशय्यादिभिर्निकुञ्जरूपं गृहं यस्यास्तादृशी। इति हेतोः इह वने अचेतना ज्ञानशून्या अथवा अः श्रीकृष्णश्चेतना यस्यास्तादृशी, अथवा एवंविधाया अपि कृष्णे चेतना बुद्धिर्यस्यास्तादृशी विरहानलं विरहाग्निं किं किमिति विषहामि सहामि! तस्मात् पूर्वनिश्चितमेव वरं मनागिष्टं यदि देहान्तरेऽपि तस्य प्राप्तिः स्यात्। 'न्यायं श्रेष्ठो वरः प्रोक्तो मनागिष्टे मतं वरम्' इति धरणिः। 'वितथं त्वनृतं वचः' इत्यमरः। 'केतनं लाञ्छने काये गृहे चोपनिमन्त्रणे' इति विश्वः। अतिवितथचेतनेति क्वचित् पाठः, तत्र अतिवितथमतिव्यर्थं चेतनं प्रत्याशा यस्याः सेत्यर्थः। 'चेतनं भूपदेशे स्यात् प्रत्याशायाञ्च चेतनम्' इति विश्वः।।३।।

मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी।
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी।।४।।

की चिन्ता नहीं की, मानो इस पूरे अँधेरे को मैंने ओढ़ लिया, इस अँधेरे के साथ चलने वाली रातों को ओढ़ लिया; और उन्होंने मेरे हृदय में काम की कील ठोंक दी है या काम का कोई बीजमन्त्र ऐसा कीलित कर दिया है कि मैं कहीं की नहीं रही। सखि, मैं कहाँ जाऊँ?।।२।।

मेरा मरना ही अच्छा है, क्योंकि मेरे लिए आशा के सभी संकेत झूठे हो गये हैं। मैं कैसे बेसुध होकर इस विरह की आग को सहूँ! यही वादा तुमने किया था, तुमने ही मुझे ठगा।।३।।

वसन्त की मीठी नशीली रात मुझे और भी व्यथित कर रही है, मुझे शंका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मामित्यादि। अहहेति खेदे। इयं मधुरा सरसा मधुयामिनी वसन्तरात्रिर्मां परमसुखरूपापि विधुरयति विकलयति। कापि कृतं सुकृतं यया तादृशी कामिनी सफलः कामो यस्या हरिस्तस्याः पीडां हरतीति तथाभूतम् अनुभवति आलिङ्गनादिनेति शेषः। 'विधुरं स्यात् प्रविश्लेषो विधुरो विफलेऽन्यवत्' इति विश्वः। 'मधुरं सरसे ज्ञेयं स्वादुन्यपि मनोहरे' इति धरणिः।।४।।

अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम्।
हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम्।।५।।

अहहेत्यादि। अहहेत्यद्भुते! वलयादिमणिभूषणं कटकादिकं विविध-शैत्यादिगुणयुक्तरत्नखचितमलङ्कारं रत्नमयं वा, हरिविरहदहनवहनेन कृष्ण-विरहाग्निधारणेन बहुदूषणमनेकदोषयुक्तं कलयामि पश्यामि, तदङ्गतापेन तादृशानामपि तापकत्वमिति भावः।।५।।

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया।
स्रगपि हृदि हन्ति मामतिविषमशीलया।।६।।

कुसुमेत्यादि। स्रगपि पुष्पमालापि अतनुशरलीलया कामबाणविलासेन मां हृदि मनसि हन्ति ताडयति; कामबाणाः पुष्पाण्येव, स्रगपि पुष्पमयी, अतस्तल्लीलयेत्युक्तम्। कीदृश्या लीलया? अतिविषमशीलया। अतिशयेन विषमं शीलं स्वभावो यस्यास्तया। तदुक्तम्–

'अपूर्वेयं धनुर्विद्या मन्मथस्य महात्मनः।
शरीरमक्षतं कृत्वा भिनत्त्यन्तर्गतं मनः'।। इति।

बाणस्तावदन्यक्षिप्तोऽन्यं हन्ति, अयन्तु येन धृतस्तमेव विध्यतीति विषमत्वं वा। अथवा अतनुशरलीलया स्थूलबाणचेष्टया अतनुः शरीररहितः प्रविशति परन्तु न तु दृश्यतेऽतो दुर्निवार इति वा। कीदृशीम्? कुसुम-

---

हो रही है, कोई विलासिनी हरि का समागम पा रही है और हरि को अपने अंग-अंग में अनुभव कर रही है।।४।।

सखि, तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया। सखि, मैंने इतने फूलों और पल्लवों से अपनी देह में गहने सजाये हैं, मणियाँ भी सजायी हैं, ये सभी–के–सभी हरि के विरह की आग में आग हो उठे हैं। अब ये आभूषण नहीं रहे, ये अभिशाप हो गये हैं।।५।।

मदन की ऐसी लीला है कि वह दिखती नहीं, उसके बाण भी बाण जैसे नहीं दिखते और उसे ऊँच-नीच का कोई विचार नहीं। वह फूल जैसे कोमल शरीर के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुकुमारतनुं कुसुमादपि सुकुमारा तनुर्यस्यास्तादृशीम्, सजातीयेन सजातीयस्य हननमपीति विषमत्वमेव प्रतिपादितम्, पीडासहनासामर्थ्यञ्च ध्वनितम्। कुसुम-सुकुमारतनुरिति पाठे किम्भूता स्रक्? कुसुममयी सुकुमारा च तनुः सूक्ष्मा चेति। अत्रापि विषमत्वे तात्पर्यम्। 'शीलं स्वभावसद्वृत्ते' इत्यमरः।।६।।

किञ्च–

अहमिह निवसामि नगणितवनवेतसा।
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा।।७।।

अहमिहेति। अहं दुःखितापि तदेकनिष्ठा इह निकुञ्जे निवसामि तिष्ठामि। कीदृशी? न गणिता न सम्भाविता वनवेत्रलताश्च यया तादृशी। अनेन दुर्लङ्घ्यमप्युल्लङ्घितमित्युक्तम्। अथवा शिरश्चालनेन गणितास्तमन्वेषयन्त्याः परिसंख्याता वनवेतसो वृक्षा यया सा गणितवनवेतसाऽहम् इह न निवसामि किम्? अपि तु निवसाम्येवेत्यर्थः। मधुसूदनः श्रीकृष्णो मां चेतसा स्मरति न, मधुसूदनपदेन कठिनत्वञ्चापल्यमपि सूचितम्। मधुं वसन्तं मधुररसं वा नाशयतीति वा मधुसूदनः, स्वाधीनचेतोमात्रसाध्यं यत्र स्मरणमपि न करोति, तत्र स्निग्धेन मनसा कुतो निरन्तरा ममानुवृत्तिरिति चेतसेत्यनेन ध्वनितमन्यथा स्मरणस्य चेतोजन्यत्वेन चेतसेत्यस्य पदस्य वैयर्थ्यापत्तेः।।७।।

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती।
वसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती।।८।।

हरिचरणेति। हरिचरणौ शरणे यस्य एतादृशो यो जयदेवकविस्तस्य भारती वाणी हृदये वसतु अर्थात् कृष्णभक्तानाम्। हरिचरणशरणेत्यनेन वाण्या अलौकिकत्वमुक्तम्। कीदृशी? कोमला अकठिनवर्णा 'कोमलत्वं

लिए माला को ही अपना अस्त्र बना लेता है और यह माला ही प्राण लेने लगती है।।६।।

मैं नहीं जाऊँगी, मैं यही रहूँगी, मुझे नहीं चिन्ता है कि मैं वन में रहूँ। बेंतों के बड़े झंझाड़ किस्म के वन में रहूँ, जिसमें बेंत की लता लच-लच करके नाना प्रकार के भ्रम पैदा करती है। मधुसूदन तो मुझे याद ही नहीं कर रहे होंगे और तुमने मुझे धोखा दिया'।।७।।

हरि-शरण में शरण लेनेवाले जयदेव की यह वाणी हृदय में कोमल कलाओं वाली युवती की तरह बसे। विरह की यह पदावली अपने-आप में एक कला-कौशल ही होती है और उसके साथ जुड़ना सौन्दर्य की समझ के साथ जुड़ना है। इसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुखोच्चारः स्पष्टार्थपरिभूषितः' इति, कलावती कवित्वकलायुक्ता, केव? युवतिरिव, कीदृशी? कोमला मृद्वङ्गी कलावती चतुःषष्टिकलाकुशला, अथवा हे कोमल! सरसश्रोतः! हे हरिचरणशरणेति वा; कलावती कलौ अतिक्रान्ता इः लक्ष्मीर्मोक्षादिसम्पत्तिर्यया सा यां भारतीं गायतां शृण्वतां मोक्षादिष्वप्यादरो न भवतीत्यर्थः। युवतिरपि कलौ प्रणयकलहे मानादिभङ्ग्याऽतिक्रान्ता लक्ष्मीर्यया सा। अथवा कलौ प्रेष्ठमाननाद् अधिका लक्ष्मीः शोभा सौभाग्यसम्पत्तिर्यस्याः सा। अथवा हे कोमल! भक्तवात्सल्येन परममृदुल श्रीकृष्ण! तव भक्तस्य भारती श्रीराधाचरितवर्णनरूपा वाणी यथा युवतिः पूर्वोक्ता वल्लभा श्रीराधेव तव मनसि वसति, तथैवेयमपि वसत्वित्यर्थः।।८।।

तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमु भ्राम्यति।
कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
सङ्केतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेऽपि यन्नागतः।।४७।।

तदेवमनयाष्टपद्या विप्रलब्धायाश्चेष्टितमनुवर्ण्येदानीं तस्याः कृष्ण-विषयकातिप्रेमदर्शनाय तदनन्तरमप्युत्कण्ठां वर्णयति—तत्किमिति। कान्तः कमनीयवल्लभः श्रीहरिः सङ्केतीकृतो यो मञ्जुर्मनोहरो वञ्जुललताकुञ्जो वेत्रलतागृहं तत्रापि यद् यतो हेतोर्नागतः, तत् कामपि कामिनीं कामातुरां किमभिसृतस्तदभिमुखं गतः? कामिनीपदेन स्वसौभाग्याधिक्यं कटाक्षयति। सः स्वभावतस्तु मामेवाभिसरति, तया बलात् किमाकृष्ट इति भावः। ननु मां विहाय कथमन्यामभिसरिष्यतीत्यन्यदाह—किं वेति। यद्वा नित्यप्राप्त-सङ्गमैर्बन्धुभिर्मित्रैः कलाकेलिभिः क्रीडाकौशलैः बद्धो रुद्धः? इदमपि न घटते मद्विलासाकृष्टस्तैः रोद्धुं न शक्यः, तत्राह–किमु वितर्के, मामभिसरन् सङ्केतस्थलमलभमानः अन्धकारिणि घनतरतरुच्छायया निविडान्धकारवति वनोपान्ते सङ्केतीकृतविपिनसमीपे भ्राम्यति परिभ्रमणं करोति किं? ननु नागर-शिरोमणेः सहस्रशोऽनुभूतस्थलभ्रमः कथं भविष्यतीति निश्चित्याह–क्लान्तं

बाद दो श्लोक हैं। एक में तरह-तरह के तर्क-वितर्क हैं कि माधव क्यों नहीं आये? दूसरे में राधा के मन में कौन-सी आशंका उठ रही है, इसकी भूमिका है।।८।।

ऐसा तो नहीं हो गया कि वे कहीं किसी कामिनी के साथ अभिसार करने निकल गये हों या अपने बन्धुओं के साथ इस अँधेरे वन के किसी कोने में तरह-तरह के खेल कर रहे हों, खेल करते-करते इधर-उधर घूम रहे हों। क्या वे इतने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मद्विश्लेषदुःखेन उपतप्तं मनो यस्य तादृशो मनागपि पथि मार्गे प्रस्थातुमेवाक्षमस्तेन चलितुमेवासमर्थ इत्यर्थः। उत्का चेयं नायिका (शृ.ति. १।७५)–

'उत्का भवति सा यस्याः सङ्केतं नागतः प्रियः।
तस्यानागमने हेतुं चिन्तयन्त्याकुला यथा'।।

इति तल्लक्षणम्। संशयाक्षेपालङ्कारोऽयम्, तदुक्तं दण्डिना (काव्यादर्शे-२।१६३-१६४)–

'किमयं शरदम्भोदः किं वा हंसकदम्बकम्।
रुतं नूपुरसंवादि श्रूयते तन्न तोयदः।।
इत्येष संशयाक्षेपः संशयो यन्निवर्त्यते।
धर्मेण हंसस्थूलभेनास्पृष्टघनजातिना'।। इति।

'वितर्के किं किमुत च' इत्यमरः। 'उपान्तः सविधेऽपि च' इति विश्वः।।४७।।

**अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम्।
विशङ्कमाना रमितं कयापि ज़नार्दनं दृष्टवदेतदाह।।४८।।**

अथेति। अथानन्तरम् इयं राधा एतद्वक्ष्यमाणं दृष्टवदाह स्वयमवलोकितमिव कथितवती। किं कृत्वा? सखीं माधवमन्तरेण कृष्णं विना आगतां वीक्ष्य दृष्ट्वा। किम्भूतां सखीम्? विषादमूकां दुःखातिशयेन वार्त्तां वक्तुमसमर्थाम्। कीदृशी? जनार्दनं कृष्णं कयाचिन्नायिकया रमितं विशङ्कमाना तर्कयन्ती। जनस्यार्दनस्वभावोऽयमतस्तस्य मम सन्तापकत्वमुचितमित्यभिप्रायेण जनार्दनपदोपादानम्। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्, पक्षान्तरे च श्रीकृष्णं सङ्केतनिकुञ्जेऽलभमानाऽत्रापि व्याकुलां श्रीराधां निरीक्ष्य सखी विषादमूका, तां वीक्ष्येत्यर्थः।।४८।।

थक गये हैं, रास ने उनको इतना चूर-चूर किया है कि वे राह चलने में भी असमर्थ हो गये हैं। उन्हें संकेत दिया गया कि इस प्रीति के निकुंज में आओ, नहीं आये।।४७।।

राधा ने देखा, सखी तो कुछ बोलती नहीं। उसे इतना गहरा दुःख हुआ है कि मैं रात भर इधर-उधर दौड़ रही हूँ और ये मुझे ही दोष लगा रही हैं। मैं कुछ नहीं बोलूँगी। राधा ने जब सखी को अकेले आये देखा तो उसने तुरन्त अनुमान लगा लिया, ऐसा अनुमान कि जैसे वह स्वयं देख रही हो। नन्दन कहीं किसी दूसरी के साथ रम रहे हैं। जनार्दन हैं तो लोगों को पीड़ा देना ही तो काम है।।४८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतम्- १४

[वसन्तरागैकतालीतालाभ्याम्]

स्मरसमरोचितविरचितवेशा।
गलिततकुसुमदलविलुलितकेशा।।
कापि चपला मधुरिपुणा
विलसति युवतिरधिकगुणा।।ध्रुवम्।।१।।

यदाह, तद्गीतेन दर्शयति–स्मरेति। गीतस्यास्य वसन्तरागः, एकतालीतालश्च। गीतार्थस्तु–कापि युवतिर्मधुरिपुणा श्रीकृष्णेन सह विलसति क्रीडति। किम्भूता? अधिकगुणा अधिकाः सौन्दर्यादयो गुणा यस्याः सा। युवतिर्विलसतीति नायिकाकर्तृकं विपरीतरतमुक्तम्, तेन चान्याभिमुखस्य बलाद्रमणेनाधिकगुणेति न्यूनगुणेत्याकूतमपि व्यज्यते, मधुरिपुणेति मधुररसानभिज्ञेन चपलेन चेति कटाक्षितञ्च। ध्रुवपदम्। तद्विपरीत-रतचेष्टितमाह–किंलक्षणा? स्मरसमरः कामसंग्रामः सुरतमिति यावत्, तत्रोचितो योग्यो विरचितः कृतो वेशः प्रसाधनं यया सा। पुनः कीदृशी? गलितानि कुसुमानि येभ्यस्तादृशा ईषद् विलुलिताः स्रस्ताः कृष्णेन सकचग्रहचुम्बनादानेन केशा यस्याः सा। विपरीतरते नायिकायाः केशग्रहणपूर्वकमेव चुम्बनं कार्यमित्युक्तं प्राक् (गी० ६।६)। कुसुमभरेति पाठे स्खलितः कुसुमभरो येभ्यस्तादृशा विलुलिताः केशा यस्याः सेत्यर्थः।।१।।

हरिपरिरम्भणवलितविकारा।
कुचकलशोपरि तरलितहारा।।२।।

हरेः परिरम्भणेनालिङ्गनेन वलितो जातो विकारोऽनङ्गविक्रिया यस्याः

इसी प्रकार मुझे पीड़ा पहुँचा रहे हैं। वह विलाप कर उठी। 'सखि, मैं यहीं से देख रही हूँ। कोई दूसरी है जो मधुसूदन के साथ विलास कर रही है। क्या उसके गुण मुझसे अधिक हैं? रतिक्रीड़ा के लिए पूरी तरह तैयार होकर आयी है, पर रतिक्रीड़ा में उसके केशपाश ढीले हो गये, इधर-उधर लहरा गये। उनमें गुँथे हुए फूल झर गये।।१।।

हरि ने ज्यों ही आलिंगन किया, त्यों ही अंग-अंग कुछ रूपान्तरित-सा हो गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा। कलशाविव कुचौ तत्र तरलितश्चञ्चलीकृतो हारो यस्याः सा। कुचयोः कलशत्वेन तदुपरि हारस्य च वर्णनेन निर्विघ्नसुरतोत्सवनिर्वाहाय मङ्गल-कलशस्थापनमिव कृतमिति ध्वनितम्। कामक्लेशहरणाद्धरिरित्युक्तम्, सम्भोगकौशलेन तच्चिन्तापहरणाद्वा।।२।।

विचलदलकललिताननचन्द्रा।

तदधरपानरभसकृततन्द्रा।।३।।

क्रीडावशतो विचलद्भिश्चञ्चलैरलकैश्चूर्णकुन्तलैर्ललितो मनोहर आननचन्द्रो मुखशशी यस्याः, लालित्यञ्चालकानां मुखे चलत्कलङ्कचन्द्रमसः प्रतीतेः। पुनः कीदृशी? तस्य श्रीकृष्णस्याधरपानरभसेन वेगेन कृता तन्द्रा तत्सुखानुभवेन चक्षुर्मीलनं यस्याः सा। अतिमादकाधरपानेन मत्ततया कृतघूर्णेत्यर्थः।।३।।

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला।

मुखरितरसनजघनगतिलोला।।४।।

त्वां विना क्षणमप्यहं स्थातुं न पारये, त्वमेव मे प्राणवल्लभेत्येवं तस्यानुनयं श्रुत्वा, धूर्त्त! ज्ञातोऽस्येवं कथयन्त्याः शिरश्चालनेन क्रीडावेगेन वा चञ्चलाभ्यां कुण्डलाभ्यां ललितौ कपालौ यस्याः सा। पाठान्तरे–दलितौ मृदितावतिगतागतेन परमसुकुमारत्वात्। किञ्च, मुखरिता शब्दायमाना रसना क्षुद्रघण्टिका यत्र तादृशस्य जघनस्य गतागतेन लोला चञ्चला। यथा संग्रामे विविधवाद्यैः शूराणां चापलं भवति, तथास्या अपि सुरतसंग्रामेऽतिचपलाया रसनाया मुखरत्वमिति भावः।।४।।

है। अंग-अंग अपनी सहजता खो रहा है। उसके कलश के सरीखे वक्षःस्थल पर पड़ा हुआ हार छटपटा रहा है।।२।।

इधर-से-उधर चंचल हो रहा है। बड़ी गुणवती है वह युवती, जो उन्हें रमा रही है, उसके मुखकमल पर लटें लहरा आयी हैं। माधव ने उसे इतना चूमा है, कि उसे नीम-बेहोशी आ गयी है। बड़ी भाग्यशाली है वह।।३।।

रतिक्रीड़ा में उसके कुण्डल बार-बार हिलते हैं और गालों में चुभते हैं और उसकी करधनी बार-बार बजती है। उसकी जंघाएँ बार-बार इधर-उधर चलती हैं, वह एकदम उन्हें अपने में भर चुकी है।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दयितविलोकितलज्जितहसिता।
बहुविधकूजितरतिरससरसिता।।५।।

दयितस्य श्रीकृष्णस्य विलोकितेनाभिप्रायविशिष्टनिरीक्षणेन लज्जिता लज्जावती हास्ययुक्ता चेत्यर्थः। पुरुषमाणायास्तस्या अधः स्थितस्याङ्गनाय-मानस्य तस्यावलोकनादीषदुत्पन्नलज्जायाः सुरतेऽनुपयोगत्वात् सम्भोगे हास्यमेवाभूदित्यर्थः। उक्तञ्च–सुरतादन्यत्र लज्जा परमभूषणमिति। बहुविधं पिकशिखिकलकण्ठहंसादीनामिव नानाप्रकारं कूजितं शब्दितं यत्र तादृशो यो रतिरसः सम्भोगानुरागस्तेन रसिता हृष्टा, बहुविधं पारावतादीनां यत् कूजितं तद्वद् रतिरसे रसितं शब्दितं यस्याः सेति वा। 'रसितं शब्दिते हृष्टे' चेति।।५।।

विपुलपुलकपृथुवेपथुभङ्गा।
श्वसितनिमीलितविकसदनङ्गा।।६।।

विपुलाः प्रचुरा ये पुलका रोमाञ्चास्तेषां पृथुर्महान् यो वेपथुः कम्पस्तस्य भङ्गास्तरङ्गा यस्यां सा। रोमाञ्चकम्पयोरुत्तरोत्तरोत्पत्त्या तरङ्गसाम्यम्। 'भङ्गस्तरङ्गे रुग्भेदे भङ्गो जयविपर्यये' इति विश्वः। अपि च–एवम्भूत-सुखानुभवेऽपि खेदो माभूदिति सुरतायासेन वा श्वसितं निःश्वासः परमानन्दावाप्तिसान्निध्यसूचकानुभवः, आनन्दावाप्त्या च निमीलितमक्षि-मुद्रणमिति श्वसितनिमीलिताभ्यां विकसन् प्रकटीभवन् अनङ्गः कामो रेतोलक्षणो यस्याः। तदुक्तं रतिरहस्ये–

'मुहुः स्वजघनाश्लेषः सीत्कारो वीतलज्जता।
हुङ्कारोच्छ्वसितं नार्या वीर्यसान्निध्यसूचकम्।। इति।

'मूर्च्छना मीलनं चाक्ष्णोश्च्युतिकालस्य लक्षणम्' इति च।।६।।

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा।
परिपतितोरसि रतिरणधीरा।।७।।

उस बड़भागिनी ने उस प्रिय को इतना तृप्त देखा तो पहले तो लजायी, फिर हँसने लगी और रति के रस में सराबोर तरह-तरह के स्वर निकालने लगी।।५।।

इतना रोमांच अंग-अंग में हुआ कि सारे शरीर में कँपकँपी छूट गयी। साँसें पुकारती हैं–प्यार, मुँदी हुई आँखें अपने में भरती हैं प्यार के रस को।।६।।

उसका सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया है। इतना श्रम तो कभी करना पड़ा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीदृशी? श्रमजलकणभरेण सुरतायासप्रस्वेदबिन्दुसमूहेन, सुभगं मनोहरं मुक्तास्रक्शोभां दधत् शरीरं यस्याः सा। किञ्च, उरसि कृष्णवक्षसि परिपतिता पुनः सुरताय कृष्णोत्थानशङ्कया स्वभुजाभ्यां तमावृत्य पतितेत्यर्थः। पतितेति निःसहत्वं कथितम्, तेन च सुरतान्तं सूचितम्। तदुक्तम्–

'अङ्गे स्वेदः श्लथत्वञ्च केशवस्त्रादिसंयतिः।
जाते च्युतिसुखे नार्या विरामेच्छा च जायते'।। इति।

बन्धश्चायं हंसलीलकः–

'नारी पादद्वयं दत्त्वा कान्तस्योरुयुगोपरि।
कटिमान्दोलयेदाशु बन्धोऽयं हंसलीलकः'।। इति।

कीदृशी? रतिरणे सुरतसंग्रामे धीरा स्थिरा चतुरा वा। 'लवलेशकणाणवः' इत्यमरः। 'सुभगः सुन्दरश्च' इति विश्वः। तथा च सप्तभिः पदैर्नायकस्य नैरपेक्ष्येणैव नायिकायाः क्रियाकथनात् पूर्वोक्तं न्यूनगुणत्वमेव सिद्धमिति भावः।।७।।

श्रीजयदेवभणितहरिरमितम्।
कलिकलुषं जनयतु परिशमितम्।।८।।

श्रीजयदेवकवेर्भणितं यत् श्रीहरेः रमितं क्रीडितम्, तत् कलेः कलियुगस्य कलुषं पापं हरिभजनवैमुख्यरूपमर्थाद् गायकानां श्रोतृणाञ्च परिशमितं जनयतु निःशेषेण शान्तिं नयतु।।८।।

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुजद्युतिरियं तिरयन्नपि चेतनाम्।
विधुरतीव तनोति मनोभुवः सुहृदये हृदये मदनव्यथाम्।।४९।।

ही नहीं था। इतना तो कभी सहा भी नहीं था। वह तब माधव के वक्षःस्थल पर पड़ जाती है, बड़ी कुशल है रतिक्रीड़ा की होड़ में'। श्री जयदेव ने हरि के इस रति-व्यापार का वर्णन किया है। वह कलि के कलुष को शान्त करेगा।।७।।

जयदेव का यह अर्थवाद बड़ा अटपटा-सा लगता है। यह एक ऐसी रतिक्रीड़ा का वर्णन है, जो अपनी प्रिया की चिन्ता ही न कर रहा हो, किन्तु कलिकलुष शान्त करेगा; यह बात समझ में नहीं आती। यह सोचने के लिए विवश होना पड़ता है कि जिसे हम रतिक्रीड़ा मान रहे हैं, वह रतिक्रीड़ा नहीं है।।८।।

वह एक दूसरी नागरी के साथ भी रतिक्रीड़ा नहीं है। वह राधा द्वारा अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्प्रति चन्द्रोऽयमधिकतरं व्यथयतीत्याह–विरहेत्यादिना। अये इति विषादे। अयं दृश्यमानश्चन्द्रो मम हृदये मदनव्यथां कामपीडामतीवाधिकां तनोति विस्तारयति। कीदृशः? विरहेण मद्विश्लेषेण पाण्डु धूसरं यन्मुरारेः कृष्णस्य मुखाम्बुजं वदनकमलं तस्य द्युतिरिव द्युतिः कान्तिर्यस्य तादृशः। मदनव्यथां कथञ्चित् सोढ्वापि पाण्डुतन्मुखेन्दुस्मरणाद्दुःसहा व्यथा जायत इति भावः। किं कुर्वन्? वेदनां ज्ञानमपि तिरयन् तिरोहितं कुर्वन् चन्द्रस्तदपराधमपि विस्मार्य चेतनोन्मूलनमपि करोतीत्यर्थः। व्यथाजनकत्वे हेतुमाह–मनोभुवः कामस्य सुहृन्मित्रं चन्द्रस्येश्वरमनोजन्यत्वे कामस्य च मनसिजत्वेन सोदरत्वम्, तेनापि क्षुब्धस्य कामस्य साहाय्यं चिकीर्षता चन्द्रेण व्यथा जन्यत इति भावः। (ऋग्वेद. १०।९०।१३) 'चन्द्रमा मनसो जातः' इति श्रुतेः। 'वेदना ज्ञानदुःखयोः'। 'अये क्रोधे विषादे च सम्बुद्धौ स्मरणेऽपि च' इति विश्वः। 'तिरोऽन्तर्धौ तिर्यगर्थः' इति च। तिरयन् प्रकटीकुर्वन् इति वा। यमकालङ्कारश्चात्र। तदुक्तं दण्डिना काव्यादर्शे (३।२)–

'एकद्वित्रिचतुष्पादैर्यमकानां विकल्पना।
आदिमध्यान्तमध्यान्तमध्याद्याद्यन्तसर्वतः'।। इति।

चित्त में ही दो मनोवृत्तियों को एक–दूसरे के विरुद्ध खड़ा करके, श्रीकृष्ण के साथ अपने सम्बन्धों को प्रगाढ़ करने के लिए एक चैतन्यविलास है। उस विलास में किसी दूसरे का शरीर भी नहीं है, अपने ही शरीर के भीतर अंग–अंग में एक ऐसी ऐंठन का अनुभव है, जो श्रीकृष्ण के साथ अत्यन्त भक्ति के कारण ही इस प्रकार का रूप लेता है, जिसमें एक चित्त के भीतर तो केलि हो रही है, दूसरे हिस्से में केलि की ईर्ष्या है। चित्त का यह विभक्त होना भाव की पराभूमि है; क्योंकि वहाँ पहुँचने पर कोई विषय नहीं रह जाता। कोई आसक्ति रह नहीं जाती। एक प्रेमासक्ति रह जाती है, इसलिए यह वह भूमिका है, जिसमें किसी भी प्रकार के छल का, किसी भी प्रकार के कपट का कोई स्थान नहीं है। जो छल और कपट मन में कल्पना के द्वारा लाये जाते हैं, वे छल–कपट भी प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हैं। वे लीला के अंश हैं। वे वास्तविक छल और कपट नहीं हैं। छली की लीला छल नहीं होती, इसलिए जयदेव ने इस अष्टपदी के द्वारा कलि–कलुष के दोष को दूर करने की बात कही, वह उपयुक्त है। रासपंचाध्यायी के अन्त में श्री शुकदेव ने परीक्षित से यही कहा है कि इस रास के वृत्तान्त को जो पढ़ेगा, सुनेगा, उसकी हृदयव्याधि, उसका काम–ज्वर दूर हो जाएगा। परीक्षित को शंका हुई और श्री शुकदेव ने समाधान दिया है कि जब काम श्रीकृष्ण की ओर प्रेरित है तो वह काम नहीं रह जाता है। काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पक्षद्वयेऽप्येवम्, तथापि द्वितीये व्याख्यानान्तरम्; तदा अये इति स्मरणे, अये हृत् स्मरामि! यत् कृष्णेन मयैव क्रीडितमिति वेदनां दुःखं तिरोहितं कुर्वन्नपि किन्तु सम्प्रति तं न पश्यामीति मनोभुवः सुहृत् मां व्यथयतीत्यर्थः।।४९।।

गीतम्- १५

[गुर्जरीरागैकतालीतालाभ्याम्]

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे।
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे।।
रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना।।ध्रुवम्।।१।।

पूर्वगीतेन कस्याश्चिद्रमणं निरूप्येदानीं स्वाधीनभर्त्तृकां त्वां स्वमनोरथेनैव वर्णयति–समुदितेति। गीतस्यास्य गुर्जरीरागः, एकतालीतालः। गीतार्थस्तु–विजयी मण्डनादिकौशलेन सर्वातिशायी, निःशङ्क इति वा, तद्गुणैर्न पराभूतो वा। मुरारिरिति तद्वधकार्कश्येन रत्यभावं सूचयति। पक्षान्तरे मुरारिपदेन सामर्थ्येन निर्भरक्रीडनं मुरयति वेष्टयति नारीं स्वभुजाभ्यामिति पुनरपि रतोत्सुकत्वं वा। अधुना साम्प्रतं यमुनापुलिनवने यमुनायाः सैकते यद्वनं तस्मिन् रमते क्रीडति। अनेन सम्भोगश्रमहरणयोग्यदेशसम्पत्तिर्दर्शिता। ध्रुवपदम्। क्रीडामाह–रमणीवदने रम्यतेऽस्यामिति रमणी तस्या वदने मुखे

का उसी क्षण एक दूसरा रूपान्तरण हो जाता है, वह रूपान्तर भी श्रीकृष्ण हैं। उनकी इच्छा करना, उनको पाना, चाहना, उनका हो जाना, उनका अभिन्न रूप से स्वरूप हो जाना है और जब कोई स्वरूप हो जाता है तो फिर चाहने वाला कोई नहीं रहता, किसको चाह रहे हैं, यह जानने वाला भी कोई नहीं रहता। केवल चाह रह जाती है, व्यक्ति चाह बन जाता है। इस प्रकार यह स्थिति एक भिन्न प्रकार की स्थिति है।।४९।।

जो मुरारि कभी वेधक रहे होंगे, उस मुरारि की दशा यह है कि वे राधा के विरह में पीले पड़ गये हैं। श्रीराधा के विरह से उनका मुख पीला पड़ गया है। अब उनका यह रूप देखें तो चेतना लुप्त हो जाएगी। बुद्धि काम नहीं करेगी। जयदेव ने एक दूसरे संकेत से यह स्पष्ट कर दिया है कि इधर राधा के मन में ऐसे विकल्प उठ रहे हैं। एक तरह से निश्चित अनुमान हो रहा है कि प्रिय नहीं आये, कहीं रम रहे हैं, दूसरी ओर उनके प्रियतम की दशा यह है कि वे एकदम निष्प्राण-से हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सपुलकं रोमाञ्चसहितं यथा स्यादेवं मृगमदतिलकं कस्तूर्या विशेषकं लिखति नानावैचित्र्या निर्मांति। कीदृशे वदने? समुदितः सम्यगुद्भूतोऽनुकूल-नायकस्पर्शेन कामो यत्र तादृशे। अथवा कृष्णस्य समुदितो मदनो यस्मात्तादृशे। पुनः कीदृशे? चुम्बनाय पानाय वलितः सम्मुखीकृत्य सङ्कोचितः कृष्णेन तथैव वा तन्मुखचुम्बनायाधरो यत्र तादृशे वलितः सेवितः सिन्दूररेखादिरचनव्याजेन चिरमुपासितोऽधरो यत्र तादृशे। चुम्बनाय बहुदैन्येन याचितो वा। 'वलितं याचिते स्याद्वलितं सेवितेऽपि च' इति विश्वः। कस्मिन् कमिव? रजनीकरे पूर्णचन्द्रे मृगमिव हरिणमिव। कीदृशे चन्द्रे? समुदितो मदनो यस्मात्तादृशे। अतश्चन्द्रदर्शनादमृतमिवाधरपाने प्रवृत्तिरपि, अत्राह्लाद-कारिमुखस्यालकसामीप्यं भजमानस्य निशाकरसाम्यम्, कस्तूरीतिलकस्य च मृगसाम्यं प्रथमपक्षे। समुदितमदने चुम्बनवलिताधरे इत्यनेन तस्या भावोद्रेकः कथितः, न तु नायकस्येति कटाक्षितम्। रजनीकरसादृश्येनापि शोभाया न स्थैर्यमिति। नित्यमेव श्रीराधायामानुकूल्येन स्थिररागत्वात्तस्या एव प्रतिक्षणं सौभाग्यस्य शोभायाश्च वृद्धिः।।१।।

किञ्च–

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलिततरुणानने।
कुरबककुसुमं चपलासुषमं रतिपतिमृगकानने।।२।।

तस्याः चिकुरे केशपाशे जातावेकवचनम्, कुरबककुसुमं पीतपुष्पविशेषं झिन्टीति पर्यायम् अम्लानशोणपुष्पं वा रचयति यथाविन्यासं समर्पयति। कीदृशे चिकुरे? घनचयरुचिरे मेघपटलवन्मनोहरे। पुनः कीदृशे? रतिपतिः कामः स एव मृगः करी तस्य कानने निवासवने; अस्य काननस्योद्दीपन-विभावत्वेन कामोऽपि कामभयमाशंसमानः स्त्रीसहित एव केशबन्धनपाश-निबद्ध इवात्र तिष्ठतीति रतिपदोपादानम्। पुनः कीदृशे? तरलिततरुणानने

रहे हैं, उनका मुख पीला पड़ गया है और राधा के लिए विलाप करते–करते देखते हैं–एकाएक चन्द्रमा ढलने लगा है और उसके उसी पीले मुख की कान्ति इधर-उधर बगराते समय काम की व्यथा और बढ़ा रही है। यह व्यथा सहृदय को होगी, क्योंकि यह व्यथा एक विश्वविरह की व्यथा होगी।।१।।

राधा अपनी कल्पना के वितान में प्रलाप करती जा रही है–'यमुना के किनारे के निकुंज में क्यों इस समय रम रहे हैं जैसे विजय का उत्सव मना रहे हैं, बड़े उत्साह के साथ अब इस समय प्रेमाकुल दूसरी रमणी के मुख पर कस्तूरी का तिलक लिख रहे हैं। उसके अधर श्रीबाणों की बौछार से त्रस्त हो गये हैं, वे अपने को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरलितं चञ्चलीकृतं तरुणाननं तरुणः श्रेष्ठः श्रीकृष्णो येन कामोद्बोधेनेत्यर्थः। तादृशे तरलितो विविधोपमोत्प्रेक्षाभिस्तद्गुणवर्णनेन मुखरीकृतस्तरुणस्य नित्यकिशोरस्याननं मुखं येनेति वा। कानने इत्यस्य विशेषणे वा योज्यम्; तदा तरलितान्युद्भूतानि तरुणानां बालवृक्षाणां पुष्पादिरूपाणि आननानि यस्मिन् तादृशे कामोद्बोधकत्वात् पुष्पविकाशाच्च ग्रथितकुसुमैः केशैः साम्यं च युक्तम्। कीदृशं कुसुमम्? चपलासुषमं चपलाया विद्युत इव शोभातिशायिता यस्य तत्। रूपकालङ्कारश्चात्र। अन्यनायिकारमणपक्षे रचयतीत्यनेन तत्केशादिगुम्फने करकम्पाद्यनुत्पत्त्या नायकस्य तस्यामनासक्तिरिति ध्वनितम्। तद्यथा (पद्यावलौ-३०२)-

'मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति
कृष्णस्वहस्तलिखिता नवमञ्जरीति।
अन्यापि किं न सखि! भाजनमीदृशानां
वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्तरायः'।। इति।

'मृगः पशौ कुरङ्गे च करि-नक्षत्रभेदयोः' इति विश्वः। 'काननं विपिने गेहे परमेष्ठिमुखेऽपि च' इति। 'चिकुरं चञ्चले केशे गृहे वक्रभुजङ्गयोः' इति। 'कुसुमं पुष्पफलयोः' इति। 'सुषमा परमद्युतौ' इति। 'चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः।।२।।

अपि च-

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरुचिरूषिते।
मणिसरममलं तारकपटलं नखपदशशिभूषिते।।३।।

कुचयुगमेव गगनं तस्मिन् अमलं निर्मलं मणिसरं मुक्ताहारं तदेव तारकपटलं नक्षत्रसमूहं घटयति योजयति। आकाशस्थितिशोभामत्र निर्माति।

सँभाल नहीं पा रहे हैं, बड़ी कठिनाई से टेढ़ा-मेढ़ा तिलक रच रहे हैं। रचते समय ऐसे पुलकित हो जाती है कि तिलक चन्द्रमा के अंक में बैठे हुए मृग की तरह टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है।।२।।

उसके केशपाश में घने केशों के पाश हैं। कुरबक के कुसुम गूँथ रहे हैं और केशपाश ऐसा लगता है कि कामदेवरूपी मृग के निर्भय घूमने का घना वन हो। कुरबक के फूल वसन्त में खिलते हैं और कुरबक के फूल उस घने केशपाश में बिजली की छटा देते हैं। रम रहे हैं मुरारि और मेरा हृदय जल रहा है। जाने क्या पागलपन है, कहाँ से उन्हें इतनी कस्तूरी मिली है। पहले तो उस रमणी के वक्षःस्थल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीदृशे? सुघने सुतरां पीने अतिकठिने इत्यर्थः। पुनः कीदृशे? मृगमदस्य कस्तूर्या रुचिर्दीप्तिस्तया रूषिते व्याप्ते। पुनः कीदृशे? नखपदं नखास्कः स एव शशी तेन भूषिते अलङ्कृते। नखक्षतच्छेदमर्द्धेन्दुसंज्ञं बोध्यते; तदुक्तं पञ्चसायके-

'अर्द्धेन्दुसकाशमिदं नखज्ञैरर्द्धेन्दुसंज्ञं कथितं समासात्।
कक्षानितम्बस्तनपार्श्वकण्ठे दातव्यमेतत् करजं सदैव'।। इति।

अतोऽत्र शशिपदमप्यर्द्धचन्द्रपरं गगनपक्षेऽपि कीदृशे गगने? सुघने अतिविस्तारवति कान्तिशोभिते, चन्द्रार्द्धैश्चालङ्कृते विमलतारकपटलञ्च यत्र। एवं कविसम्प्रदाये आकाशस्य श्यामत्वेनैव निरूपणात् समस्तरूपकमिदं ज्ञेयम्। 'घनं सान्द्रे दृढे दार्ढ्ये विस्तारे लोहमुद्गरे' इति विश्वः। 'गुण्ठितरूषिते' इत्यमरः। कुचयुगयोर्गगनमिति(?) केचित्, तदा सुघने शोभनविस्तारवति, अन्यत् समानम्।।३।।

जितबिसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले।
मरकतवलयं मधुकरनिचयं वितरति हिमशीतले।।४।।

मृदुभुजयुगले तस्याः कोमले बाहुयुगले मरकतवलयमिन्द्रनीलमणि-कङ्कणं तमेव मधुकरनिचयं भ्रमरसमूहं वितरति अर्पयति। कीदृशे भुजयुगले?

पर ढेर-सी कस्तूरी का लेप करते हैं। उसके बाद मणि का निर्मल हार ऐसे स्थापित करते हैं जैसे नख के गोल-गोल चिह्नों से पहले विभूषित उस वक्षःस्थल पर ताराओं के समूह विन्यस्त कर रहे हों। यह पूरा-का-पूरा बिम्ब एक उदात्त व्यापार का संकेत है। इसमें तिलक मृग हो जाता है। ललाट चन्द्रमा और केशपाश अभयारण्य हो जाता है। कुरबक का फूल बिजली की चमक हो जाता है। वक्षःस्थल आकाश हो जाता है। नख से बनाये हुए कुरबक के चिह्न चन्द्रमा और छोटे-छोटे मणियाँ नक्षत्र। यह संकेत है कि जो प्यार भूतल पर हो रहा है, भूतल का नहीं है, पूरे ब्रह्माण्ड का है। यह भी संकेत करता है कि वह रमणी भी कोई दूसरी नहीं है, वह राधा की अपनी ही छवि है। राधा की ईर्ष्या का विषय कोई साधारण रमणी हो ही नहीं सकती। वह कहाँ से ईर्ष्या का पात्र होगी। न राधा से कोई गोपी ईर्ष्या करती है और न राधा किसी से ईर्ष्या करती है। यह सब तो प्रेम की गूढ़ता प्राप्त करने के लिए मन की कल्पना है। उस कल्पना में राधा अपनी ही सारी सम्भावनाएँ उस दूसरी कल्पित रमणी में आरोपित करती है, जिससे विरह की तीव्रता बढ़े।।३।।

राधा सोचती है कि हाँ, अब उस भाग्यशालिनी के दोनों बाँहों में दोनों हाथों में पन्ने का कंकण पहना रहे होंगे। अपनी हथेली के सम्पुट में रखकर वे मणि लाये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निजमार्दवेन गौरतया च जितमभिभूतं बिसशकलं मृणालखण्डं येन तादृशे? पुनः कीदृशे? करतलमेव नलिनीदलं पद्मिनीपत्रं तादृशे। पुनः कीदृशे? हिम-शीतले हिमादप्यतिशीतले सन्तापहरणात्। यद्यपि कविसम्प्रदाये क्वापि करतलस्य पद्मिनीपत्रत्वेन वर्णनं नास्ति, तथाप्यत्र भुजस्य बिसरूपत्वाद-विरुद्धमिति; किञ्च, मरन्दाधिक्यादिव मृणालदण्डे एव भ्रमरमण्डली स्थितेति भावः। 'नलिनी पद्मिनी पद्म व्योमसिन्धुसरोवरे' इति विश्वः। 'मरकतो नीलमणिः' इति। 'कङ्कणे वलयो मतः' इति धरणिः। 'विश्राणनं वितरणं दानञ्च प्रतिपादनम्' इत्यमरसिंहः। रूपकालङ्कारोऽयम्।।४।।

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने।
मणिमयरसनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने।।५।।

रतेः शृङ्गाररसस्य गृहे आश्रये जघने मुक्तामयीं मेखलां विकिरति क्षिपति। अत्र विकिरतीत्यनेन काञ्चीबन्धनसमये श्रोणीस्पर्शजनितसाध्वस-वशात् कम्प्यमानकरः क्षिपति, न तु बध्नातीति ध्वनितम्। कीदृशे जघने? विपुलापघने विपुलो विस्तीर्णोऽपघनोऽवयवो यस्य तादृशे अतिमांसल इत्यर्थः। अथवा विपुलं महत्त्वयुक्तमपगतो घनः काठिन्यं यत्र तदपघनं कोमलं तच्च तच्च तत्तथा तस्मिन् महत्त्वसौकुमार्ययुक्ते इत्यर्थः। विशिष्टः पुलः पुलको यस्मिन् स विपुलस्तादृशोऽपघनः शरीरं यस्येति उदित-सात्त्विकविकारे इति वा। पुनः कीदृशे? मनसिजकनकासने। कामस्य सुवर्णमहाराज्यपीठे; कीदृशं मणिमयं रसनम्? तोरणस्य माङ्गल्यस्त्रजो हसनमुपहासो यस्मात्तादृशम्। अन्योऽपि यदा सिंहासन उपविशति, तदा तत्र परिजनैः वन्दनमालिका बध्यते, अतो मनसिजसिंहासनीभूते तस्या जघने क्षुद्रघण्टिकारूपमाङ्गल्यस्त्रजमयं निबध्नातीति भावः। पुनः कीदृशे जघने?

हैं और उन्होंने बहुत सँभाल-सँभाल कर मृणाल के सूत्रों से बने हुए आभरण-एकदम कोमल बाँहों में यह कंकण धीरे-धीरे पहना रहे हैं। कंकण ऐसा लगता है जैसे उस हाथ को घेर करके भौंरे एक कला-पंक्ति बना रहे हैं। हाथ एकदम बर्फ की तरह ठण्डा हो गया है, जैसे पन्ने का यह कंकण नयी ऊष्मा प्रदान करेगा, एक नया ताप पैदा करेगा।।४।।

अब कृष्ण ने उसके, उस रमणी के मध्यभाग में रखकर मणिमेखला पहनाना शुरू किया है। साथ ही उसे समय दिया है कि फिर से वस्त्र पहन ले। समय दिया है कि काम के सुनहले सिंहासन की तरह उसी के अनुरूप मणियों की मणिमेखला पहनी जाय, अवसर दिया है कि काम के सिंहासन की तरह जो चमक रहा था उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतं वासनं तदनुरूपसाटिकादिकं वस्त्रं यत्र तादृशे कृतं वासनं श्रीकृष्णवशीकरणाय शृङ्गारशास्त्रोक्तधूपविशेषो यत्रेति वा। अथवा कृता तत्कान्तिदर्शनात् श्रीकृष्णेन वासना भोगेच्छा यस्य तादृशे। अथवा कृतं वासनं कामेन स्थानं यत्र तादृशे। यद्यपि मनसिजकनकासनेनैव कामस्थानत्वं प्राप्तम्, तथापि नित्यं तत्सान्निध्यसूचनायैतदुक्तम्। 'अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनोऽथ कलेवरम्' इत्यमरः। 'वासनं वसने चाथ स्थाने ज्ञाने च बन्धने' इति विश्वः। 'पुलः स्यात् पुलके च' इति, 'रतिः कामस्य स्याद्रागे सुरतेऽपि च' इति। रूपकालङ्कारः।।५।।

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते।
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते।।६।।

चरणकिसलये चरण एव किसलयं ताम्रत्वात् कोमलत्वाच्च, तत्र पल्लवे यावकभरणमलक्तकपूरणं करोति। कीदृशे? कमलायाः श्रियो निलये आश्रये कमलानिवासे इत्यर्थः। पुनः कीदृशे? नखा एव ये मणिगणा मणिसमूहास्तैः पूजितेऽलङ्कृते श्रीनन्दनन्दनस्य दुष्प्राप्यतया श्रीः स्वविभूति-रूपाभिर्मणिभिस्तत् प्रियाचरणं सम्पूज्यात्मानं भगवत्यर्पणाय तच्चरणसौन्दर्ये लीना बभूवेति भावः। कीदृशं यावकभरणम्? बहिर्भूतमपवरणं संवरणं यस्य तादृशं स्पष्टमित्यर्थः। चरणस्य स्वभावरक्तत्वान्नावरकमिति वा। पुनः कीदृशे चरणकिसलये? हृदि योजिते स्ववक्षसि अनुरागातिशययोगं प्रापिते स्वहृदये तच्चरणपल्लवं निधाय यावकं रचयतीत्यर्थः। अथवा किम्भूते हृदि? कमलाया निलये गृहे। पुनः कीदृशे? नखा नखक्षतानि तान्येव मणिगणास्तैः पूजिते भूषिते, श्रिया युक्तेऽपि हृदि तदीयचरणं धारयतीति तस्याः सौन्दर्याधिक्यं सौभाग्यातिशयश्च कथितमिति भावः। पक्षान्तरे कमलाया वरस्त्रियाः श्रीराधाया निलये निवासे तया च तन्नखक्षतयुक्ते वक्षसि स्वयमेवालक्तकरचनाय योजिते दाक्षिण्येन यावकभरणं जनयति सामान्यतो रचयति, न तु चित्रादिरचनेनातो बहिर्भूतमपवरणमितस्ततः स्खलितमित्यर्थः।

पहले वह ढँक ले। और तब उस पर उसी के अनुरूप मेखला नहीं पहनानी है, बल्कि एक तोरण स्थापित करना है कि इस सिंहासन की सूचना तोरण से मिल जाय।५।।

मुरारि इस समय उस बड़भागिनी के चरण-कमल अपने हृदय के ऊपर रखकर वक्षारस लगा रहे होंगे, महावर रच रहे होंगे, जैसे अपने हृदय के ऊपर विराजमान लक्ष्मी को उस रचना के व्याज से एक ऐसी मोतियों का गूँथा किसलय-माला अर्पित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चरणकिसलये नखमणिगणपूजिते इत्यत्र किसलयमणिगणयोः परस्पर-मयोगादयुक्तं नाम रूपकमिदम्। तदुक्तं दण्डिना (काव्यादर्शे-२।७८)–

'इदमार्द्रस्मितं ज्योत्स्नं स्निग्धनेत्रोत्पलं मुखम्।
इति ज्योत्स्नोत्पलायोगाद् अयुक्तं नाम रूपकम्'।। इति।

'नखः कररुहे शौण्डे गन्धद्रव्ये नखं मतम्' इति विश्वः।।६।।

रमयति सुदृशं कामपि सुभृशं खलहलधरसोदरे।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे।।७।।

एवं कामपि सुदृशं शोभने दृशौ नेत्रे यस्यास्तां खलो दुर्जनो यो हलधर-सोदरो बलभद्रस्य भ्राता कृष्णस्तस्मिन् सुभृशमतिशयेन रमयति सति हे सखि! वद कथय इह विटपोदरे कुञ्जमध्ये विरसं रसरहितं यथा स्यात्तथा अत एवाफलञ्च यथा स्यादेवं चिरं बहुकालं व्याप्य किं किमित्यवसं स्थिताऽस्मीत्यर्थः।. हलधरसोदर इति तं ग्राम्यत्वेनोपालभते। 'विटोऽद्रौ लवणे धूर्त्ते मूषिके खदिरेऽपि च' इति विश्वः। अथवा इह विटपोदरे विटपोऽतिधूर्त्तस्तादृशस्यैवोदरमभ्यन्तरं यस्य तस्मिन् एवंविधधूर्त्तनिमित्तं 'निमित्ते सप्तमी', इह स्थले विरसमफलञ्च चिरं किमित्यवसमित्यर्थः। पक्षान्तरे सप्तभिः पदैः सख्योक्तमिदमित्यपि व्याकुर्वन्ति। तदा कामपि सुदृशं राधाभिधां खलहलधरसोदरे खलानां निग्रहाय हलरूपमायुधं धारयतीति खलहलधरो बलभद्रस्तस्य भ्रातरि दुष्टदमनसमर्थे बलवतीत्यर्थः। विटपोदरे चूडामणौ रमयति सति वने किमफलं विरसं वाऽवसम्, अपि तु सफलं सरसमेवेत्यर्थः। निर्भयकेलिसम्पादनाय हलधरसाहचर्यमिति ध्वनितम्।।७।।

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके।
कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके।।८।।

कर रहे हों। उस बड़भागिनी के चरण-कमल और नख-जाल लक्ष्मी के हार बन रहे हैं। कैसी विडम्बना है। सच है मुरारि ही जीते, मैं हारी।।६।।

वे बलराम के छोटे भाई (उस बलराम के, जो मूसल और हल हाथ में लिये रहते हैं) जब किसी सुलोचना को रमा रहे हों, निश्चय ही ऐसे गँवारपन पर उतर आयें कि जैसे मेरी उपेक्षा कर रहे हैं तो मेरे लिए चारा क्या है। व्यर्थ ही मैं ढूँढ़ती रहूँ, इस कुंज के भीतर दहकती रहूँ। मुरारि तो दूसरे को रमाने में लगे हैं।।७।।

जयदेव इस अष्टपदी को रस की भणिति कहते हैं। रस की अभिव्यक्ति कहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इह एतत्काव्यकर्त्तरि कवीनां नृपे जयदेवके कलियुगे चरितमाचरितं कलियुगेन चरितं कृतं वा (दुरितं) न वसतु तिष्ठतु। कीदृशे? रसस्य शृङ्गाररसस्य भणनं कथनं यस्य तादृशे। पुनः कीदृशे? कृतं हरेर्गुणनं चिन्तनं येन तादृशे। मधुरिपोः कृष्णस्य पदसेवके दुरितध्वंसनसामर्थ्यद्योतनाय मधुरिपुपदोपादानम्।।८।।

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम्।
पश्याद्य प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै-
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति।।५०।।

हे दूति दौत्यकर्मकुशले! निर्दयो दयारहितोऽत एव शठः कृतगूढापराधो यदि नायातः, तर्हि त्वं किं दूयसे किमिति दुःखिता भवसि? केवलं शठो न भवति, किन्तु धृष्टोऽपीत्याह–स्वच्छन्दमिति। स बहुवल्लभोऽनेक-नारीप्रियोऽत एव स्वच्छन्दं निःशङ्कं रमते, यया कयाचिद् गोपिकया सह केलिं करोतीत्यर्थः। तत्र तस्मिन्नर्थे ते तव किं दूषणम्? न किमपीत्यर्थः। ननु क्षणं समाश्वसिहि यावत् पुनरपि तदन्तिकं गत्वा तमानयामीत्यत आह–पश्याद्येति। अद्येदानीमेवाश्चर्यं पश्य प्रियस्य कृष्णस्य आद्यप्रियस्येति वा; सङ्गमाय मिलनाय इदं मम चेतोऽन्तःकरणं स्वयं स्वयमेव, न तु यत्नेन यास्यति गमिष्यति। कीदृशम्? दयितस्य प्राणकोटिवल्लभस्य गुणैः सौन्दर्यादिभिराकृष्यमाणं वलान्नीयमानम्; अपरमपि गुणै रज्जुभिराकृष्यमाणं

हैं। साथ ही साथ कहते हैं कि यह हीरे के गुणों की गणना है। मधुसूदन (रससंग्रही और रससंग्रह करते हुए भी रस के प्रति निर्विकार मधुसूदन) के सेवक कवियों में अपने को श्रेष्ठ माननेवाले जयदेव यह दावा करते हैं कि यह अष्टपदी कोई सुनेगा तो उसे कलियुग का कोई प्रभाव नहीं होगा। कोई पाप मन में नहीं बसेगा। इस गर्वोक्ति का रहस्य यह है कि श्रीकृष्ण की यह लीला जो एक ही चित्त के दो भाग कर देती है और चित्तवृत्तियों का ऐसा मन्थन करती है कि तामस चित्तवृत्तियाँ भी उन्हीं की ओर मुड़ जाती हैं, कोई छल, कहीं कुछ रहने नहीं देगी। सब छल, तामस भाव अपने में समेट लेगी और सबको श्रीकृष्णमय कर लेगी।।८।।

इस श्लोक का अभिप्राय है कि 'सखि! तुम क्यों दुःखी हो रही हो। तुम तो बुलाने गयी थी। तुमने अपना काम किया। वह शठ, वह निर्दयी नहीं आया। वह जहाँ मन चाहता है वहाँ अनेक के साथ रमता है। अनेक के साथ प्यार रचाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलादन्यत्र नीयत इति भावः। कीदृशम्? उत्कण्ठार्त्तिभरादिव स्फुटद् उत्कण्ठा औत्सुक्यमार्त्तिः पीडा तयोर्भरोऽतिशयस्तस्माद् इव स्फुटत् प्रकटीभवद् बहिर्भवदित्यर्थः। अपरमपि वस्त्वन्तरसङ्कुले स्थाने स्थितं वस्तु साङ्कर्याद् बहिर्भवतीति; स्फुटद् विदलदिति वा; अन्योऽपि भाराक्रान्तो विदीर्यत एव। अतः परं दुःखं सोढुमशक्ततया तद्गुणानेव स्मरन्त्या प्राणा एव त्याज्यास्ततोऽन्ते या मतिः सा गतिरिति स्वयमेव चेतस्तत्र यास्यतीति किमतः परं तव तत्र गत्यायासेनेति भावः। अत्र प्रथमपदे शठो नायक उक्तः, स्वच्छन्दमित्यादिना धृष्टः; तदुभयलक्षणम् (र.सु. १।८१)–'शठो गूढापराधकृत्', 'धृष्टो व्यक्तान्ययुवतीभोगलक्षणोऽपि निर्भयः' इति।.....तु प्रणयसंरम्भोक्तिः, स तु श्रीवृन्दावनेश्वर्यामनुकूलमेव नित्यं तदग्रे प्रकटयिष्यति (गो. ७४) 'क्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे' इति। अत्रोत्प्रेक्षा-नामालङ्कारश्च।।५०।।

गीतम्-१६

[देशाङ्करागेण रूपकतालेन]

अनिलतरलकुवलयनयनेन।
तपति न सा किसलयशयनेन।।
सखि या रमिता वनमालिना।।ध्रुवम्।।१।।

सम्प्रति कृष्णेन सह रममाणायाः सौभाग्यसुखम्, तद्विरहितायाश्च सन्तापमष्टपद्या कथयति–अनिलेत्यदिना। गीतस्यास्य देशाङ्करागः, रूपकतालः। गीतार्थस्तु हे सखि! या वनमालिना कृष्णेन रमिता क्रीडिता, सा किसलयशयने नवपल्लवशय्यायां न तपति नोपतप्ता भवति। कृष्णाङ्गसङ्गे तत् सुखप्रदमेव भवतीति भावः। अथवा या वनमालिनाऽरमिता सा किसलयशयने (भाग. १०।३१।१२) 'घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि' इति न तपतीति न, अपि तु तपत्येवेति काक्वा शिरश्चालनेन। अननुभूतचिद्विषयत्वान्न तपतीति वा, या च रमिता साऽद्भुत-

---

तुम्हारा कोई दोष नहीं है। अब तुम देखना, मेरा चित्त अब कैसे उनसे मिलने के लिए उनकी ओर उनके गुणों से खिंचकर दुस्सह पीड़ा में फटता है और कैसे उन तक इस पीड़ा का प्राण बनकर पहुँच जाता है'।।५०।।

इस अष्टपदी में ईर्ष्या और उदग्र हो जाती है और श्रीराधा सखी से कहती हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्प्रणयोत्कम्पया पुनः पुनः सङ्गमतृष्णाया किसलयशयने न तपतीति नापि तृप्ता भवतीत्यर्थः। उक्तञ्च (भा. १०।३१।११-१२)–

'चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः, कलिलतां मनः कान्त! गच्छति।।
दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्'।। इति।

कीदृशेन वनमालिना? अनिलेन वायुना तरलं चञ्चलं यत् कुवलयं तद्वन्नयने यस्य स तथा तेन। अनिलवत्तरले कुवलयवच्च सुन्दरे नयने यस्येति वा। वनमालिपदेन शृङ्गारित्वमुपपादितम्। अथवा वनमाया वृन्दावनलक्ष्म्या अलिना श्रीराधायास्तद्वनस्य च रसास्वादलम्पटेन भ्रमरेणेत्यर्थः। अनेन या काचित् कदाचिद्रमिता च, सा तपत्येव; तस्यामेवानुकूलत्वादित्यपि ध्वनितम्।।१।।

अपि च–

विकसितसरसिजललितमुखेन।
स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन।।२।।

या वनमालिना रमितेति सर्वत्र योज्यम्, या मनसिजविशिखेन कामबाणेन न स्फुटति विद्धा न भवति। अन्यदपि प्रतिपदं पूर्ववज्ज्ञेयम्। कीदृशेन? विकसितं फुल्लं यत् सरसिजं पद्मं तद्वल्ललितं मनोहरं मुखं यस्य तेन। मनसिजविशिखेन तन्मुखपद्मेन कामबाणपीडानिवृत्तिरिति साश्चर्यं निरूपयतीति भावः। अन्येष्वर्थेषु सूचितमेव।।२।।

किञ्च–

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन।
ज्वलति न सा मलयजपवनेन।।३।।

कि 'सखि! श्रीकृष्ण के कमलनयन ऐसे चंचल हैं जैसे यह दक्षिण पवन। ये जिसको रमा रहे हैं, जिसमें रम रहे हैं।।१।।

वह मेरी तरह किसलय के सेज पर भी क्यों झुलसेगी। खिले हुए कमल की तरह विलसित मुखवाले जिस रमणी को आनन्द दे रहे हैं वह क्यों जानेगी कि मदन के बाणों की व्यथा क्या होती है, कैसे हृदय विदीर्ण होता है। यह तो मैं जानती हूँ।।२।।

वे अपनी अमृतमय वाणी से जिसको लुभा रहे हैं, वह दखिनी बयार से कैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या रमिता सा मलयजपवनेन मलयाज्जातेन वायुना न ज्वलति न दीप्यते। कीदृशेन? अमृतादपि मधुरं मृदुतरमतिशयेन कोमलं वचनं भाषणं यस्य तेन। तदुक्तम् (भाग. १०।३१।१) 'मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण! विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाप्यायस्व नः'।। इति। चन्दनतरुसर्पसम्पर्कसविषपवनज्वालाहरणाय वचनस्यामृतत्वेन निरूपणम्, तथा चानेन प्रियस्वद इति नायकगुणः कथितः।।३।।

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन।
लुठति न सा हिमकरकिरणेन।।४।।

या रमिता सा हिमकरस्य चन्द्रस्य किरणेन न लुठति तप्ताङ्गी भूमौ परिवर्तनं न करोति। कीदृशेन? स्थलोद्भवं जलरुहं कमलं तद्वद्रुचिर्य-योस्तादृशौ करौ चरणौ च यस्य तेन स्थलजलरुहयोरिव रुचिर्ययोस्तादृशाविति वा।।४।।

सजलजलदसमुदयरुचिरेण।
दलति न सा हृदि चिरविरहेण।।५।।

या रमिता सा हृदि विरहभरेण वियोगाधिक्येन दलति दीर्यते। कीदृशेन? सजलो जलसहितो यो मेघस्तस्य समुदयः सम्यगुदयस्तद्वद्रुचिरेण मनोहरेण। अनेन नित्यनवीनत्वं स्पृहणीयत्वं सन्तापहारित्वं स्निग्धत्व-माप्यायनकरत्वं रसमयत्वञ्च भगवद्रूपस्य कथितमिति भावः।।५।।

कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन।
श्वसिति न सा परिजनहसनेन।।६।।

लपट निकलती है और उसमें क्या दाहक पीड़ा होती है, क्या जानेगी। यह तो मैं जानती हूँ। श्रीकृष्ण के स्थलकमल जैसे लाल-लाल कर-तल और पद-तल उस रमणी को लपेट रहे होंगे। वह क्या जानेगी कि चन्द्रमा की शीतल किरणें ऐसी दहकती हैं कि मेरी जैसी अभागिन सेज पर बस इधर से उधर लोटती रहती है।।३।।

श्रीकृष्ण तो जलवर्षी मेघ की तरह जिसके ऊपर बरस रहे हैं, वह नहीं समझेगी कि यह लम्बा विरह कितना विदलित करता है।।४।।

वे अपनी श्यामता को ढँक रहे हैं, सोने जैसी रेखाओं से चमकते वस्त्रों से, जैसे उनका शरीर कसौटी हो और उनके वस्त्र सोना।।५।।

वे पीताम्बर श्याम जिस बड़भागिनी को बाहुपाश में भर रहे हैं, वह क्या जानेगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या रमिता सा परिजनानां हसनेनोपहासेन परितः सर्वतो जनानां हास्येन वा न श्वसिति सन्तापनिःश्वासं न मुञ्चति। कीदृशेन? कनकनिकषः सुवर्ण-कषणपट्टिका तत्र गतलेखाया इव रुचिः कान्तिर्यस्य तत्तादृशं शुच्यनुपहतं च वसनं वस्त्रं यस्य तेन। अत्र कनकपदेनैव पीतत्वे प्राप्ते चाकचिक्य-मानत्वजलादिसम्पर्केऽप्यम्लानत्वप्रदर्शनाय निकषपदोपादानम्। कनकनिकषः कनकाश्मा तद्वद्रुचिर्यस्य, शुचिनी शृङ्गारमये वसने यस्य कनकनिकषरुचिश्चासौ शुचिवसनश्च तेनेति वा। 'शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः' इत्यभिधानात्। शृङ्गारमयत्वेन प्रियारूपसादृश्यात् श्यामशरीरशोभोचित-पीताम्बरेणेत्यर्थः। 'निकषः कषपट्टिका' इति हारावली। 'शुचिः शुद्धेऽनुपहते च' इति विश्वः।।६।।

सकलभुवनजनवरतरुणेन।
वहति न सा रुजमतिकरुणेन।।७।।

या रमिता साऽतिकरुणेनातिशयितकरुणरसेनोपलक्षिता सती रुजं तद्विश्लेषजन्यां बाध्यावस्थां न वहति न धारयति। कीदृशेन? सकलभुवनेषु सर्वलोकेषु ये जना युवानस्तेभ्यो वरतरुणेनाद्भुतलावण्यवन्नित्य-किशोरेणेत्यर्थः। अथवा कलया कान्त्या सह वर्त्तन्ते इति सकला भुवनजना यस्मात्तेन वरतरुणेन; तदुक्तञ्च (भाग. ११।१।६) 'स्वमूर्त्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या' इति। यन्मूर्त्तिसौन्दर्यलेशतोऽन्येऽपि सुन्दरा इत्यर्थः। अथवा सकलं सशोभं च तद्भुवनं च वैकुण्ठाख्यं तत्र जनस्तदीश्वरः, स तु पुराणवचसा प्रसिद्धः, तस्मादपि सौन्दर्यादिना वरतरुणेन। उक्तञ्च (भाग. ३।२।१२) 'स्वस्यापि विस्मापनम्' इति। तारुण्यञ्चात्र मध्यमं कैशोरमेव।

'उरुद्वयस्य बाह्वोश्च कापि श्रीरुरसस्तथा।
मूर्त्तेर्मधुरिमाद्यञ्च कैशोरे सति मध्यमे'।।

तन्माधुर्यं तथा–

'नवं धनुरिवातनोर्नटदघद्विषोर्भ्रूयुगं
शरालिरिव शोणिता नखरराजिरग्रे खरा।
विराजति शरीरिणी रुचिरदन्तलेखारुणा
न का सखि! समीक्षणाद् युवतिरस्य वित्रस्यति'।।

कि जब अपने ही लोग हँसी उड़ाते हैं, तो अपनी ही साँस घुटने लगती है।।६।।

वे तो सारे भुवन में सबसे युवतर हैं, सबसे सुन्दरतर हैं। वे जिसे रमाएँगे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति रसामृतसिन्धौ (२।१।३१८,३२०)। गोलोकत्वेन प्रसिद्धत्वाद् व्रजरूपे भुवने रामश्रीदामसुबलादिभ्योऽपि वरतरुणेनेति वा। अतिकरुणेनेति कृष्णस्य विशेषणं वा। तदा प्रथमपक्षेऽतिकरुणेनातिशयस्निग्धेन परमरसावहेनेत्यर्थः। द्वितीये त्वतिक्रान्ता करुणा दया यस्य तादृशेन निर्दयेनेत्यर्थः। सर्गारम्भे यत्पक्षद्वयं प्रतिज्ञातं, तयोः प्रथमे चतुर्विधमपि राधोक्तिः, द्वितीये तद्बोधाय कस्याश्चित् सख्या उक्तिरपि सम्भवति सप्तभिः पदैरिति। हे सखि! त्वमेव स्वाधीनपतिका, तेन रमिता च; तव प्रियः पार्श्वे एव वर्त्तते, किमिति विरहार्त्तेव विलपसि? या त्वरमिता, सा एवं करोतु। रमितायाः एवं प्रेमपराक्रम उचित इति वा, या त्वरमिता तस्यास्तदास्वादरहितायाः एवं न घटत एव।।७।।

श्रीजयदेवभणितवचनेन।
प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन।।८।।

अनेन श्रीजयदेवभणितेन श्रीराधाया वचनेन तत्सख्या वा। तद्वचनमेव जयदेवभणितमित्यर्थः। तेन हरिः हृदयापहार्यपि हृदयं प्रविशतु प्रियजनानां मनसि, श्रीराधावक्षसीति वा हरिरद्भुतविक्रमो वा अवश्योऽपि रुद्धो भवत्वित्यर्थः। सङ्कटे प्रविष्टस्य निर्गमाभावात्।।८।।

मनोभवानन्दन चन्दनानिल
प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम्।
क्षणं जगत्प्राण विधाय माधवं
पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि।।५१।।

स्मरशरहता मलयानिलमुपालभते–मनोभवेति। हे चन्दनानिल! चन्दन-सम्बन्धिवायो! प्रसीद प्रसादं कुरु। हे दक्षिण सर्वेषां विलासिनामनुकूल-

---

वह अति करुण भाव से मेरी तरह निढाल नहीं पड़ेगी'।।७।।

श्री जयदेव कहते हैं कि मेरी यह अष्टपदी सुनें, देखें, इसी के द्वार से हरि हृदय में प्रवेश करते हैं। यह अष्टपदी हरि का सम्पूर्ण ध्यान है। नागर और नारायण हरि का, सर्वव्यापी हरि का सम्पूर्ण ध्यान है।।८।।

इस श्लोक का अभिप्राय है कि राधा एकदम विरह के उन्माद में बक-झक करने लगती हैं और मलयानिल को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि 'अरे, अब तो तुम कृतार्थ हो गये। मुझे जलाकर तुमने अपने मित्र काम को सुख दे दिया, बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वभाव! वामतां प्रतिकूलतां मुञ्च त्यज। चन्दनसंसर्गिणस्ते सत्सङ्गरतस्य दक्षिणस्वभावत्वान्न वक्रत्वमुचितमिति भावः। अथवा रे दक्षिण! प्रसीद, न चेत् प्रसीदसि, तर्हि वामतां मुञ्च। ननु मयि वामत्वं नास्तीत्यत आह–हे मनोभवानन्दन मनोभवं काममानन्दयसीति तदुद्बोधेनैव मत्प्रातिकूल्य-माचरसीत्यर्थः। यदि च वामतामपि न मुञ्चसि, तदा हे जगत्प्राण जगतां जीवातो! क्षणं क्षणमात्रं माधवं पुरोऽग्रे निधाय कृत्वा पश्चान्मम प्राणहरो भविष्यसि। जगत्प्राणेति तस्यानयने स्वस्य प्राणहरणे सामर्थ्यं द्योतितम्। माधवं पुरो निधायेति दुस्त्यजश्रीकृष्णप्रणयाज्जीवनमेव प्रार्थयति, तत्प्राप्त्या जीवनमेव भविष्यतीति भावः। अन्योपभुक्तस्याग्रे प्राप्ते क्षणमपि प्राणा न स्थास्यन्तीति वा, कमनीयत्वेन चाञ्चल्ये च माधवमित्युक्तम्। दक्षिणस्य वामत्वं, जगत्प्राणस्य प्राणहरत्वमिति विरोधनामालङ्कारश्च। 'रामं प्रतीपे सुन्दरे च', 'दक्षिणः सरलावामपरच्छन्दानुवर्त्तिषु' इति।।५१।।

रिपुरिव सखीसंवासोऽयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन्दुनोति मनोगते।
हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्
कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः।।५२।।

अधुना ममैवायमपराधो नान्यस्येत्याह–यस्मिन् कृष्णे मनोगते चित्तारूढे अयं सखीसंवासः सखीभिः सहावस्थानं शत्रुमिव दुनोति उपतापयति, पुनः पुनस्तस्मिन्नेव योजनात्। अयञ्च हिमानिलः शीतलवायुरपि शिखीव अग्निरिव दुनोति। सुधारश्मिश्चन्द्रोऽपि विषमिव कालकूटमिव दुनोति। एवमनेन प्रकारेण स्वयं परेभ्यश्च व्यथयितृत्वाद् अदये दयारहिते तस्मिन् तादृशे निर्दयत्वान्नामग्रहणायोग्ये अत एव यत्तत्पदेन सूचिते, पतिभावाद्वा; हृदयमन्तः-करणचतुष्टयं पुनर्भूयोऽपि बलाद्वलते निवार्यमाणमपि हठात्तत्रैव गच्छतीत्यर्थः। अतः कुवलयदृशां कमलनयनानां कामः कन्दर्पो निकामनिरङ्कुशोऽतिशयेन व्यक्तमर्यादोऽहत एव वामः प्रतिकूलः। अन्योन्यानुरागे हि कामो मनोहरो

आनन्द दिया कि मैं काम की पीड़ा से तार-तार हो गयी। अब तो तुम प्रसन्न हो। तुम एक क्षण के लिए मेरे माधव को ला दो। तुम जगत् के प्राण हो। उसके बाद मेरे प्राण ले लेना।।५१।।

इस समय तो सखियों की बातचीत भी जैसे बरसों की शत्रुता लग रही है। शीतल बयार अग्नि लग रही है। चन्द्रमा की किरणें विष लग रही हैं। जब मेरे प्रिय मेरे हृदयेश्वर मुझे दुःख दे रहे हों–सब कुछ उल्टा हो जाता है। क्या करूँ, इतने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवत्यत्र तु स मयि न सानुरागः, केवलं ममैव चेतस्तत्र धावतीति वामता कामस्येति भावः। अथवा यस्मिन् गते अन्यत्र प्रस्थिते सति सखीसंवासो रिपुरिव मनो दुनोतीत्यादि योजना। सखीनां रिपुवद् हिमानिलस्य वह्निवत् सुधारश्मेर्विषवदिति विरुद्धमिति विरोधालङ्कारः। यमकालङ्कारश्चात्र। 'शिखिनौ वह्निबर्हिणौ' इत्यमरः।।५२।।

बाधां विधेहि मलयानिलपञ्चबाण
प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये।
किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरङ्गै-
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः।।५३।।

सम्प्रति विरहदुःखमसहमाना मलयानिलादीन् प्रार्थयति–बाधामित्यादि। हे मलयानिल मलयशैलसम्बधि-वायो! बाधां पीडां विधेहि कुरु। अत्र मलयानिलपदेन उक्तमाश्रितस्य ते याचकप्रत्याख्यानं नोचितमिति ध्वनितम्। हे पञ्चबाण काम! मम प्राणान् पञ्चभिर्बाणैः पञ्चानामपि प्राणानां ग्रहणं कामस्य सुकरमिति सूचनाय पञ्चबाणेति सम्बोधनम्। ननु गृहमेव किमिति न गच्छसीत्यत आह–गृहं पुनर्भूयो नाश्रयिष्ये न यास्यामि। तेन विना गृहमपि मे सन्तापजनकमेव भविष्यतीति भावः। हे कृतान्तभगिनि यमस्वसः! स्वक्षमया शान्त्या किं किं प्रयोजनमित्यर्थः। तरङ्गैः कल्लोलैः ममाङ्गान्यवयवान् सिञ्चाप्लाव्य विरहानलजन्यदेहदाहः शाम्यतु निवर्त्ततां मत्प्राणैः भ्रातुर्यमस्य हितमाचरेति भावः। किञ्च निर्दयस्य स्वसस्ते दया न युक्तेति ख्यापनाय कृतान्तभगिनीति पदोपादानम्। 'भगिनी स्वसा' इत्यमरः।

'सम्मोहनः क्षोभणश्च दहनः शोषणस्तथा।
उच्चाटनश्च कामस्य बाणाः पञ्च प्रकीर्त्तिताः'।। इति।।५३।।

हृदयहीन के प्रति मेरा हृदय फिर और अधिक आवेग से मुड़ रहा है। सचमुच कामदेव बड़ा निरंकुश है और सुन्दरियों के लिए बहुत ही कठोर और प्रतिकूल है'।।५२।।

राधा बिलखती हैं–'हे मलयपवन, हे पाँच फूलों के व्याज से काम के पंचबाण, दो, इस देह में जितना दुःख देना हो दो, मेरे प्राण ले लो। अब मैं इस घर में नहीं लौटूँगी और हे यमराज की बहन यमुना, तुम भला कहाँ से कृपालु होगी कि अपनी लहरों से मेरे अंग-अंग सींचो और मेरे शरीर का दाह थोड़ा शान्त हो जाय'।।५३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रातर्नीलनिचोलमच्युतमुरः संवीतपीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले।
व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने
स्मेरस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः।।५४।।

सर्गान्ते कविराशिषमाशास्ते–प्रातरित्यादि। **अयं नन्दात्मजो जगदानन्दायास्तु। कीदृशः? अतिशयेन सहासं मुखं यस्य तादृशः। किं कृत्वा? राधानने नयनयोरञ्चलं प्रान्तमाधायारोप्य। कथम्भूतम्? लज्जया तरलं कटाक्षवीक्षितं कृत्वेत्यर्थः। उक्तञ्च (उज्ज्वले-७।५०)–**

'यद्गतागतिविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्त्तनम्।
तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते'।। इति।

क्व सति? सखीमण्डले सहचरीवृन्दे च किञ्चित् स्मितं यथा स्यात्तथा स्वैरं स्वेच्छया हसति हास्यं कुर्वाणे सति। किं दृष्ट्वा? प्रातः प्रभाते अच्युतं श्रीराधानुरागे च्युतिरहितं तया सह नित्यविलासिनमित्यर्थः। अथवा अच्युतनामापि तस्याः सम्भोगरसावेशेन क्रीडासङ्गोपनेन शक्तो बभूवेत्यच्युत-पदेन व्यङ्ग्यम्। नीलनिचोलं श्यामं वस्त्रं यस्य तं च पुनः राधाया उरो वक्षःस्थलं वीतपीतांशुकं परिहितं पीतवर्णमम्बरं यत्र तादृशं विलोक्य। एवं वस्त्रविनिमयः सखीनां हास्यकारणमित्यर्थः। नन्दात्मज इति धीरललितानुकूलोऽयं नायकः। तदुक्तम् (उ. १।२९)–

'गहनादनुरागतः पितृभ्यामपनीतव्यवहारकृत्यभारः।
विहरन् सह राधया मुरारिर्यमुनाकूलवनान्यलञ्चकार'।। इति।

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। नागरनारायणेति–तासु वर्त्तमानोऽपि तया न लक्षित इति नागरनारायणः।।५४।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्ये विप्रलब्धावर्णने नागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः।।७।।

प्रातःकाल में नीले वस्त्रों को धारण किये हुए श्रीकृष्ण तथा पीताम्बर से आच्छादित श्रीराधा के वक्षस्थल को देखकर सखिसमूह आश्चर्यचकित रहता था। तत्काल ही मन्द-मन्द हास्य से लज्जायुक्त चंचल नेत्रों के अंचल को श्रीराधा के मुखकमल पर डालने वाले, श्रीराधा के मुखकमल को देखनेवाले नन्द बाबा के पुत्र संसार के लिए कल्याणकारी हों।।५४।।

।।इति सप्तमः सर्गः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथाष्टमः सर्गः।।

विलक्ष्यलक्ष्मीपतिः

अथ कथमपि यामिनीं विनीय
स्मरशरजर्जरितापि सा प्रभाते।
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे
प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम्।।५५।।

अथशब्दो मङ्गलार्थः। अथानन्तरं वा, सा सौभाग्यातिशयेन विख्याता राधा प्रभाते प्रातःकाले प्रियं कान्तं साभ्यसूयं यथा स्यादेवमाह उक्तवती। किं कृत्वा? कथमपि कष्टेनापि यामिनीं रात्रिं विनीय नीत्वा समाप्तिं प्राप्येत्यर्थः। अत्र यामिनीपदेन प्रियविश्लेषे निशाया दीर्घत्वं ध्वनितम्। उदरवती कन्येतिवत्। किम्भूता सा? स्मरशरजर्जरितापि कामबाणपीडितापि प्रतिरोमविद्धापीत्यर्थः। दुःसहान्यकामिनीनखास्कादिचिह्नदर्शनजनितमहादुःखा विरहदुःखाप्युवाचेत्यर्थः। कीदृशं प्रियम्? अनुनयाय स्वापराधजनित-कोपशान्तये विनयं न पुनरीदृशमाचरामीत्यादिविनयवाक्यं वदन्तम्। पुनः कीदृशम्? अग्रे प्रणतमपि पादाग्रे नम्रमपि। पक्षान्तरे साभ्यसूयमाह—गुणेषु दोषाविष्कारेण साभ्यसूया स्वरमितमपि चिह्नैरन्याभुक्तं परिकल्प्य तिरस्कारं चकारेत्यर्थः। 'रजनी यामिनी तमी' इत्यमरः। स्मरशरजर्जरितापि प्रणतमपि सेर्ष्यमाहेति रसाधिक्यं सूचितम्। यदत्र वामतयैव चारुरसोदयो भवति रसज्ञानां सरलतया रसाभास एवातः परमोचितमेव चेष्टितं श्रीवृन्दावनचन्द्रप्रियायाः। ये त्वन्यथा कल्पयन्ति, ते रसपरिपाटीपराङ्मुखा ज्ञेयाः।।५५।।

इस सब में रात बीतनी ही थी। रात बीत गयी। क्या राधा ने रात खोयी या कृष्ण ने या वह रात ही अभागी रही जो इन दोनों को मिला नहीं सकी। इन दोनों के बीच इस मदमाते वसन्त की बयार की व्यथा का सन्देश-प्रतिसन्देश पहुँचाती रही। राधा यह सब कल्पनाजाल रचती रही। विरह में कृष्ण की बाट जोहती रही। कृष्ण आये नहीं। राधा विरह में जर्जर हो गयी। काम के शरों के आघात से और तरह-तरह के फलों की अरघान से, जो वसन्ती रात में दसों दिशाओं से आती है, एकदम आहत हो गयी।।५५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतम्- १७

[भैरवीराग-यतितालाभ्याम्]

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिवेशम्।
वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम्।।
हरिहरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादं
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम्।।१।।ध्रुवम्।।

श्रीराधा यदाह, तदेव गीतेन कथयति–रजनीत्यादि। गीतस्यास्य भैरवीरागः, तल्लक्षणम्–

'सरोवरस्थे स्फटिकस्य मण्डपे सरोरुहैः शङ्करमर्चयन्ती।
तालप्रयोगे प्रतिबद्धगीता गौरीतनुर्नारद! भैरवीयम्'।। इति।

यतितालश्च। गीतार्थस्तु–हरिहरीति खेदे! हे माधव हे केशव! याहि याहि इतो गच्छ गच्छ, कोपावेशेन याहीत्यस्य द्विरुक्तिः। माधवेति चञ्चलाया भर्तुस्ते ईदृशं चापल्यं युक्तमेवेति भावः, समानशीलत्वात्। एवमधिक्षेपे कृतेऽप्यसन्तुष्टा। केशवेति 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' (पा. ५.२.१०९) केशा विद्यन्ते यस्य यस्मिन् वेति प्रशस्ताः कामिन्याकर्षणेन विकीर्णा दृश्यन्त इति। त्वदैकपरायणोऽहमिति कथयन्तमाह–कैतववादं मिथ्यावादं मा वद कथय। 'कैतवन्तु छले द्यूते' इति विश्वः। ननु त्वदर्थमेव खिन्नोऽस्मि, सूक्तेन सुखयेत्यत- आह–तामिति। हे सरसीरुहलोचन! कमलनयन! त्वां नायिकामनुसरानुगच्छ या तव विषादं दुःखं हरति दूरीकरोति, यदर्थं

इतने में सबेरा हो गया और सबेरे-सबेरे उसने जरा-सा आँख खोलकर देखा, श्रीकृष्ण उसके पैरों में पड़े हैं और मना रहे हैं; परन्तु उनके लिए इतनी व्याकुल वह, एकाएक ताव में आ जाती है। यही तो विडम्बना है। जब वह सन्देश भेजती है, तो वे नहीं आते हैं। वे सन्देश भेजते हैं तो वह नहीं जाती है। जाती ही नहीं, उल्टी-पुल्टी कल्पना करती है। वे उससे प्यार थोड़े ही करते हैं, किसी दूसरी से प्यार करते हैं, इसलिए नहीं आये और पूरा दृश्य सामने उपस्थित कर लेती है। ऐसा-ऐसा हो रहा होगा–श्रीकृष्ण उसके साथ रमकर उसे अपने ही हाथों से तरह-तरह के आभूषणों से सजा रहे होंगे–अब वे मनाने आये तो उसका चित्त फिर विपरीत हो गया। प्रेम की विलक्षण गति है। गीतगोविन्द में मिलना तो केवल सपना है, यह काव्य विरह का विधान है। मिलने के तमाम सपने, मिलने की स्मृतियाँ कभी आती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विखिन्नोऽसि, तथैव ते दुःखमपनेतुं युक्तम्। अहन्तु स्वयमेव दुःखिता, ते विषादं कथं हरिष्यामीति भावः। तथा च रात्रिजागरेणार्द्धमुकुलितं रक्तवर्णञ्च नयनयोः सरसीरुहवल्लोचनत्वेन ध्वनितम्। प्रियाध्यानेन मुद्रणं तद्रत्यानुरक्तमिति वा कटाक्षितम्। ध्रुवपदम्। नन्वहं त्वय्यनुरक्तः, कथं ममानुरागस्त्वयान्यत्र ज्ञात इत्याह–रजनीति। हे कृष्ण! तव नयनं नेत्रं तदनुरागमिव वहति धारयति। वहसीति पाठे त्वं नयनमनुरागमिव वहसीत्यर्थः। कीदृशं नयनम्? रजनिजनितो रात्रितो गुरुर्महान् यो जागरस्तज्जनितो यो रागो रक्तता तेन कषायितमीषल्लोहितम्; अत एवालसनिमेषमलसो मन्थरो निमेषः पक्ष्मविशेषो यस्य तादृशम्। अन्योऽपि यः किञ्चिद्वस्तु वहति, सोऽप्यलसो भवतीति ध्वनितम्। स्फुटं प्रकटमेव उदितः कथितोऽन्यकामिनीविषयक-शृङ्गाररसस्याभिनिवेशस्तत्परता येन तादृशम्। उदितरसस्य उद्रिक्तशृङ्गार-रसस्याभिनिवेश आग्रहो यस्मिन्निति वा। तथा चान्यनायिकाकेलिव्यासङ्गेन वृथा जागरः कारित इति रागेण क्रोधेन मम स्नेहात् कषायितस्य नयनस्य सूचनं ममाग्रे युक्तमेवेति व्यङ्ग्यं ध्वनितमेतत्। अथवा स्फुटमित्यादि अनुराग-विशेषणम्, कीदृशं रागम्? स्फुटमतिबाहुल्येन अन्तर्व्याप्य बहिर्निर्यन्तमिति, उदितस्याभिनिवेशमिति च। हरिशब्दोऽप्ययं खेदवाची। 'कषायो लोहिते च' इति।।१।।

हैं, तो कभी किसी दूसरे के मिलने का पर्व आता है। मिलकर के भी मिलना नहीं होता है। अपने से भी बिछुड़ना होता है। लोग ऐसे विरहकाव्य को विलास का काव्य मान बैठे हैं। यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है। विलास तो केवल उसका पोषक है, विलास तो कहीं दिखाई नहीं देता। मिलती है एक अजस्र विरह की उबलती हुई धार। राधा चिढ़ते हुए कहती है–'जाओ माधव जाओ केशव। मुझसे बनावटी बातें न करो, जाओ, उसी के पीछे-पीछे जाओ, उसी के पास जाओ कमलनयन, जो तुम्हारे दुःख हर सकती है। मैं कौन होती हूँ। कृष्ण की आँखें रात भर जगने के कारण और विरह से जलने के कारण लाल-लाल हो गयी हैं और शरीर के अंग-अंग में एक टूटन-सी हो रही है और आँखें एकदम मुँदी-मुँदी जा रही हैं। राधा को ऐसा लगता है कि यह विरह का जागरण नहीं है, यह उसको सताने के लिए दूसरे के साथ मिलन का जागरण है और उस दूसरी ने जो प्यार दिया है, उसी प्यार से ये आँखें रंजित हो उठी हैं। उनका अन्यत्र जो चाव हुआ है वह उनकी आँखों में पल रहा है। इसी सन्दर्भ में व्रजभाषा में एक छन्द याद आता है–

श्री ब्रजराज अबै दुचितै भयो मो तनु दीठ करौ सुखदाई
न लाल गुलालहुँ की अरुणाई, न कंज गुलाबहुँ की सरसाई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम्।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण तनोति तनोरनुरूपम्।।२।।

ननु त्वदन्वेषणार्थं जागरान्मे नेत्रयोर्लौहित्यमित्यलं दुःखशङ्कया? इत्यत आह–कज्जलेत्यादि। हे कृष्ण! अरुणमपि तव दशनवसनमधरस्तव तनोः शरीरस्यानुरूपं योग्यं तनोति विस्तारयति; तनुस्ते श्यामा अधरोऽपि अधुना श्याम इति भावः। कीदृशम्? कज्जलेनाञ्जनीभूतेन मलिने ये विलोचने नेत्रे तयोश्चुम्बनेन विरचितो नीलिमा यत्र तादृशं रूपं यस्य तत्तादृशम्, चुम्बने लग्न-तन्नेत्राञ्जनेन श्यामीभूतस्त्वदधर एव स्फुटं धूर्त्ततां प्रकटयतीति भावः। तदुक्तम्–'गण्डे नेत्रे ललाटे च चुम्बनं परिकीर्त्तितम्' इति। कज्जलमलिनेत्यादिना तस्या अवैदग्धी ध्वनिता। 'ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी' इत्यमरः।।२।।

किञ्च–

वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम्।
मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम्।।३।।

एतेहुँ पै इतनो गहिरो रंग, धनि हैं रँगरेजिनि की चतुराई,
साँची कहौं इन नैनन रंग की, दीन्हीं कहाँ तुम लाल रँगाई।।

प्यारे व्रजराज मेरी ओर जरा-सा ध्यान धरो, मुझसे आँख मिलाओ, इस तरह से न बनो। देख रही हूँ तुम्हारी आँखें लाल हैं। गुलाल भी कहाँ इतना लाल होता होगा। कमल और गुलाब भी इतने चटक रक्त कहाँ होते होंगे? बिना इस सब साज-बाज के आँखें इतनी लाल हैं, तो जिसने रँगा है, वह है बहुत चतुर। सच-सच बतलाओ, तुमने इन आँखों की रँगाई क्या दी है?।।१।।

राधा ने अपने भीतर खण्डिता का आरोप करके बड़े मर्मभेदी व्यंग्यबाणों से माधव को भेदना शुरू किया है। कहती हैं, 'लाल-लाल तुम्हारे यह अधर काले हो गये हैं, तुम्हारे काले शरीर के बिलकुल अनुरूप हो गये हैं। ऐसे नहीं काले हुए हैं। बार-बार तुमने काजल-अँजी आँखें चूमी हैं, इसलिए काले हुए हैं। जाओ मेरे पास न आओ, मुझसे झूठी-झूठी बातें न करो, उसी के पास जाओ, जिसने इन आँखों को रँगा है, इन होठों को रँगा है।।२।।

अंग-अंग तुम्हारा बता रहा है कि जैसे यह रणभूमि हो, जैसे यहाँ पर बहुत विकट युद्ध हुआ हो, जगह-जगह तो नखक्षत हैं। ऐसा लगता है जैसें नीलमणि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तव वपुः शरीरं रतिजयलेखम् 'इदं वपुर्मया जितम्' इति सुरत-विजयपत्रमनुहरति सदृशीकरोति। कीदृशं वपुः? स्मरसङ्गरेऽनङ्गरणे खराणां तीक्ष्णानां नखराणां नखानां क्षतैराघातैः रेखा यत्र तत्तादृशम्। कस्या इव लेखम्? मरकतशकले नीलमणिखण्डे कलिता निर्मिता या कलधौतलिपिः सुवर्णद्रावाक्षरविन्यासस्तस्या इव। अत्र कृष्णवपुषः श्यामत्वान्मरकत-शकलसाम्यम्, सुवर्णस्य च कविसम्प्रदायेऽरुणत्वेन निरूपितत्वान्नखक्षतस्य तल्लिपिसाम्यम्। 'कलधौतं रूप्यहेम्नोः कलधौतं कलध्वनौ' इति विश्वः। 'शकलं त्वचि खण्डे स्यात्' इति। 'पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। 'सङ्गरोऽङ्गीकृतो युधि' इति विश्वः। 'वर्णदूतः स्वस्तिमुखो लेखो वाचिकहारकः' इति हारावली।।३।।

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम्।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम्।।४।।

ननु मार्गं विस्मृत्यागच्छतो मे वपुषि वने कण्टकादि-स्पर्शादिवं दृश्यते, न तु नखास्कमित्यत आह-चरणेति। इदं तव हृदयं मदनद्रुमस्य कामवृक्षस्य हृदयान्तर्गतस्य नवकिसलयपरिवारं नूतनपल्लवसमूहम्; अथवा पल्लवत्वेनैव नूतनत्वं सिद्धं तदा 'नवं नव्ये स्तवे विदुरिति' विश्वकोषात् श्लाघनीयं पल्लवसमूहमित्यर्थः। बहिर्बाह्यं दर्शयतीव प्रकटयतीव; अपरोऽपि वृक्षः सिक्तमूलः सन् पल्लवान् दर्शयतीति ध्वनितम्। रूपकालङ्कारश्चात्र। अत एव उदारं मनोहरं दर्शनीयमित्यर्थः; महदिति वा, महतां किमपि गोपनीयं नास्तीति भावः। चरणकमलेति सौरभप्रदत्वम्, मदन-द्रुमेत्यनुरागम्, अलक्तसिक्तमिति शीतलत्वञ्च वृक्षस्य ध्वनितम्, क्रौञ्चाख्यबन्धश्च। तदुक्तम् (स्मरदीपिकायाम्)-

'योषित्पादौ हृदि न्यस्य कराभ्यां धारयेत् कचान्।
यथेष्टं ताडयेद् योनिं क्रौञ्चबन्धः प्रकीर्त्तितः'।। इति।

'परिवारः परिकरे समूहे वेष्टनेऽपि च' इति धरणिः।।४।।

के ऊपर, नीलमणि के पत्थर के ऊपर, सोने में लिखी हुई लिपि है। यह लिपि है रतिलीला की, माधव की जयपत्री की। अंग-अंग तुम्हारे भरपूर उपयुक्त होने का प्रमाण देता है। हटो मेरे पास से।।३।।

यहाँ मैं क्या देखती हूँ, तुम्हारी छाती पर महावर लगा है, महावर तो नारी के चरणकमलों में लगता है, कहाँ से तुम्हारी छाती पर फैल गया है। ऐसा लगता है कि यह भीतर का निषिद्ध प्रेमव्यापार एक ऐसे मदन के वृक्ष के रूप में, प्यार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम्।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम्।।५।।

ननु तव खेदेन त्वया औत्सुक्यान्मद्धृदये व्याधिविक्रिया जाता, कथमन्यथा कल्प्यते? सत्यम्, यदि तव मया ऐक्यं न स्याच्चदा तव शरीरगतक्षतेन मम वेदना न स्यादित्याह–दशनेति। भवदधरगतं भवतस्तवाधरस्थितं कस्याश्चिद्दन्तक्षतचिह्नं मम चेतसि खेदं दुःखं जनयत्युत्पादयति। एतत्तव वपुरधुनापि मया सह कथमभेदमैक्यं कथयतीत्यर्थः। अन्यशरीरक्षतस्यान्यत्र व्यथाजनकत्वासम्भवाद् वपुषोरभेदो ज्ञायते, अन्योपभोगलक्ष्मदर्शनादति-दुःखेनात्यन्तहृदयभेदेन कुतो वपुषोरैक्यमिति व्यङ्ग्येन भेद एव प्रतिपादित इत्यर्थः। प्रसिद्धाभेदकारणनिषेधे भेदकारणस्य विभाव्यमानत्वाद्वि-भावनालङ्कारः, तदुक्तं दण्डिना (काव्यादर्शे–२।१९९)–

'प्रसिद्धहेतुव्यावृत्त्या यत् किञ्चित् कारणान्तरम्।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा भाव्यं सा च विभावना'।। इति।।५।।

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्ण मनोऽपि भविष्यति नूनम्।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम्।।६।।

ननु तवोपायनार्थं कमलत्रोटनं कृतवति मयि पद्मकोशादापतता भ्रमरेण ममाधरो दष्टः, न तु दन्तक्षतमित्यत आह–बहिरिवेति। हे कृष्ण! नूनं निश्चयेन मनोऽपि चित्तमपि बहिरिव बाह्यमिव मलिनतरमतिशयेन मलिनं भविष्यति; यथा तव वपुः श्यामम्, तद्वत्तव मनोऽपि भविष्यतीत्यर्थः। ननु मम मनोमालिन्यं त्वया कथं ज्ञायताम्? इत्यत आह–कथमिति। अथेति प्रश्ने; त्वमेव पृच्छ्यसे

के वृक्ष के रूप में वहाँ उग आया है, इसमें नये-नये किसलय, नये-नये पल्लव उभर आये हैं, लाल-लाल पल्लव उभर आये हैं।।४।।

तुम इस प्यार को छिपा नहीं पा रहे हो। तुम्हारे लिए यहाँ कोई ठौर नहीं है, जाओ। तुम्हारे होठों के पीछे जो दाँत हैं वे मजबूत दाँत हैं, वे जब निर्लज्ज होकर हँसते हैं तो वे मुझे और जला रहे हैं, चित्त में और दाह पैदा कर रहे हैं। क्या अब भी हम और तुम एक शरीर हैं? क्या अब भी तुम कह सकते हो कि हम तुम एक हैं?।।५।।

निश्चय ही बाहर से तुम जितने काले हो, अन्दर से भी उतने ही काले हो। ऐसा न होता तो तुम मेरे जैसे बिलकुल अपने आदमी को, पहले ही से कामज्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि न त्वामनुसृतं मादृशं जनं कथं वञ्चयसे प्रतारयसि? शरणागतजन-वञ्चनमन्तरमालिन्यमन्तरेण न सम्भवतीति भावः। व्याजेन दन्तक्षतादि-सङ्गोपनादतिमलिनोऽसीत्यपि ध्वनितम्। 'अथोऽव्ययञ्च सम्प्रश्ने मङ्गलारम्भ-योरपि' इति विश्वः। नूनमिति शब्दोपादानाद् उत्प्रेक्षानामायमलङ्कारः, तदुक्तं दण्डिना (काव्यादर्शे–२।२३४)–

'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः'।। इति।।६।।

भ्रमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम्।
प्रथयति पूतनिकैव वधूवधनिर्दयबालचरित्रम्।।७।।

पूर्वोक्तमेव क्रूरकार्येणापि स्पष्टयति–भ्रमतीति। भवान् वनेषु विपिनेष्वबलाकवलाय स्त्रीजनग्रासाय भ्रमति परिभ्रमणं करोति। अत्रास्मिन्नर्थे किं विचित्रम्? न किमपीत्यर्थः। तत्र हेतुमाह–प्रथयतीति। पूतनिकैव कंस-प्रहिता पूतनैव वधूवधे स्त्रीमारणे तव निर्दयं दयारहितं बालचरित्रं शिशु-चेष्टितं प्रथयति ख्यापयति। शिशुत्वे येन स्तनदानप्रवृत्ता राक्षसी हता, तस्येदानीं कैशोरे मादृशीनां कोमलाङ्गीनामबलानां हनने किं विचित्रमिति भावः। अथवा हे वधूवधनिर्दय! तव बालचरित्रं बाल्येऽपि तादृश्याः कंस-भगिन्या मारणरूपचेष्टितं, बालचरितं कोमलचेष्टां वा, पूतनिकैव प्रथयति विस्तारयतीत्यर्थः। स्वार्थे कः। खण्डिता चेयं नायिका, तदुक्तं भरतेन–

'निद्राकषायकलुषीकृतताम्रनेत्रो
नारीनखव्रणविशेषविचित्रिताङ्गः।
यस्याः कुतोऽपि गृहमेति पतिः प्रभाते,
सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः'।। इति।।७।।

से पीड़ित युवती को, ऐसा धोखा नहीं देते। मेरे साथ कम-से-कम ऐसी दगा नहीं करते। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ छोड़कर अकेली इस अँधेरी रात में इस निर्जन वन में रात-रात प्रतीक्षा करती रही। तुम हो कि सबेरे जलाने के लिए आ गये हो। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।।६।।

तुम केवल जंगल-जंगल अबलाओं को अपना भोज्य बनाने के लिए घूम रहे हो। तुम्हारा पहले से ही ऐसा चरित्र है। तुम्हें दूध पिलाने गयी थी और जब तुम बच्चे थे, तुमने पूतना के प्राण ले लिये थे, तुम्हारे लिए यह नृशंस व्यापार जन्म से सिद्ध है। तुम अब कृपा करो, जाओ यहाँ से।।७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम्।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम्।।८।।

हे विबुधाः! कृष्णमाधुर्यरसास्वादपण्डिताः। इदं श्रीजयदेवभणितं वर्णितं रतिवञ्चिता सम्भोगरहिता या खण्डिता उक्तलक्षणा युवतिः कान्ता तस्या विलापं परिदेवनं शृणुत आकर्णयत। कीदृशम्? सुधातोऽपि मधुरम्, तत्र हेतुमाह-विबुधालयतोऽपि स्वर्गादपि दुष्प्रापम्, तत्रापि दुर्लभमित्यर्थः। उक्तञ्च (भाग. १।५।१८)-'तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः'। इति। (भा. १०।३१।९) 'तव कथामृतम्' इत्यादिना च श्रीभागवते। अथवा सर्वशास्त्रप्रसिद्धमिदम्-निःसीमप्रेमरसालम्बनः श्रीव्रजराजनन्दनः, प्रियजनसमुदायेषु श्रीगोपिका एव, तेन विबुधश्रेष्ठा वैकुण्ठवासिनस्तेषामालयं वैकुण्ठाख्यं तत्रापि दुष्प्रापमित्यर्थः। तदुक्तं श्रीभागवते (१०।४७।५०, १०।१६।३६)-'नायं श्रियोऽङ्ग' इत्यादि, 'यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपः' इत्यादि। 'विबुधः पण्डिते देवे' इति विश्वः। पक्षान्तरे रतिरनुरागो वैचित्यविप्रलम्भाख्यो भावविशेषस्तेन वञ्चिता छलिता या खण्डिता न तु वस्तुतस्तस्या विलापमित्यर्थः। अथवा रतौ वञ्चिता चासौ अधरादौ खण्डिता च युवतिस्तस्या विलापं सम्भोगादिषु छलनाधरादि-खण्डनेन शुष्कक्रन्दनं 'याहि याहि' इति, तत्तु कीदृशम्? सुधातोऽपि मधुरममृतादपि स्वादु, अत एव विबुधालयतोऽपि दुरापमिति। तदा ननु कामेन खिन्नोऽस्मि, याहि याहीति मा वद, सम्भोगार्थमनुसरामीति? तत्राह-ममेच्छा नास्ति। तामनुसरेति राधोक्तिः। ननु रजनिजनितेति तव नयनं कन्दर्पानुरागं वहति कथं मां प्रतारयसीति कृष्णस्योक्तिः, ननु तव वपुः प्रचुरकाममयं श्यामत्वात्, यतस्तव दशनवसनमरुणमपि तनोरनुरूपं तनोति। तत्त्वं सर्वं काममयं पश्यसीति कज्जलमलिनेत्यादि। अत एव तव वपुरित्यादि नवकिसलयपरिवारमिति पर्यन्तं पुनः राधायाः। अथ कृष्णस्य-एवमेवं भवतु नाम, प्रियाय मह्यं रतोत्सवम्। ऐक्यमत आह-दशनपदमिति, त्वया मम ऐक्यं यदि न स्यात्तदा तव वपुरभेदं कथं कथयतीत्यर्थः। धूर्त्त! पुनरपि तदेव कामयसे? अनुगतं जनमसमशरज्वरदूनं नखक्षततापपीडितम् अथानन्तरं कथं वञ्चयसे छलयसीत्यर्थः। अतो नूनं बहिरित्यादि निर्दयबालचरित्रमिति पर्यन्तं श्रीराधाया उक्तिः। एवमन्योन्यं विविधैर्हावभावादिभिर्नागरमौलयोरति-रसेनाक्रान्तयोः सम्भोगे एव नर्मादिगोष्ठी, अनयाष्टपद्या महाकविना

श्री जयदेव की गायी हुई यह खण्डिता युवती की विरह-विलाप-गीति सुन लें, ऐसा विलाप स्वर्ग में भी सुनने को नहीं मिलेगा। ऐसा अमृतमधुर विलाप देवता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरूपिता। वक्ष्यति च (गो. ८०) 'अधरसुधापाने कथानर्मभिः' इत्यादि। एवं तवेदमप्यग्रिमपदं सङ्गच्छत इति ज्ञेयम्। तत्र प्रणयभरभङ्गेन रङ्गेणोल्लासेनेत्यर्थः। सुरतानुरागप्रकटनेन सखीभ्यो लज्जा सम्भोगातिशयने सुकुमाराङ्ग्या मे पीडया च शोकमित्यर्थः।।८।।

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव
प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणच्छायहृदयम्।
ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति।।५६।।

हे कितव धूर्त्त! त्वदालोकस्तव दर्शनं प्रख्यातः प्रसिद्धो यः प्रणयभरोऽनुरागातिशयस्तस्य भङ्गेन नाशेन हेतुना शोकादपि किमप्यनिर्वचनीयां लज्जां जनयति; शोकन्तु जनयत्येव, परन्तु शोकादपि लज्जां गुर्वीमुत्पादयतीत्यर्थः। तथा च प्रीतौ सत्यां परमानन्दजनकत्वमिदानीं तदभावाच्छोकजनकत्वमेव त्वदालोकस्येति भावः। कीदृश्या मे? तवेदं प्रत्यक्षं हृदयं पश्यन्त्याः। कीदृशम्? प्रियापादालक्तेन प्रियायाश्चरणसम्बन्धियावकेन व्याप्तम्, अत एवारुणा छाया दीप्तिर्यस्य तादृशम्।अरुणद्योति इति पाठे अरुणः सन्ध्यारागस्तद्द्योतितुं शीलमस्यास्तीत्यरुणद्योति, एतादृशम्। कमिव? बहिः प्रसरदनुरागमिव हृदयं परिपूर्याधिक्याद्बहिर्निःसृतप्रेमेव। विपक्षे युवति-परीहासशङ्कया शोकादपि मे धिक्कारः। छाया सूर्यप्रिया कान्तिरिति। 'अरुणः सन्ध्यारागे स्यादर्कसारथौ लोहितेऽपि च'।।५६।।

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविस्रंसनः
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम्।
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः।।५७।।

भी नहीं सुन पाते होंगे। यह विलाप मनुष्य के चित्त से ही समझा जा सकता है।।८।।

इस अष्टपदी के अन्तिम श्लोक में राधा अपने आलाप को समेटते हुए कहती हैं, 'तुम्हारी चोरी-चोरी प्रीति का यह जो बाहर तुम्हारे शरीर में चिह्न है, इसे देख रही हूँ। विशेष रूप से तुम्हारी दूसरी प्रिया के चरणों के महावर से तुम्हारा हृदय रंजित देख रही हूँ। मुझे लगता है कि तुम्हारे प्रेम की इतनी जो ख्याति है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं सर्गान्ते कविर्मङ्गलमाचरति–अन्तर्मोहनेति। कंसरिपोः श्रीकृष्णस्य वंशीरवो मुरलिकानादो यो युष्माकं श्रेयांसि कल्याणानि व्यपोहयतु ददातु, कल्याणदातृत्वसामर्थ्यकथनाय अत्र कंसरिपुपदोपादानम्। किं-लक्षणः? कुरङ्गीदृशां हरिणतरुणीनेत्राणामन्तर्मोहनं मनोमोहो मौलिघूर्णनं तन्नादप्रशंसार्थं शिरश्चालनं मिलन्मन्दारस्य विस्रंसनमधःपातनं स्तब्धाकर्षणं स्तब्धानां मानिनीनामपि वशीकरणं दृष्टिहर्षणं नेत्रोत्साहः श्रवणनिर्वृत्या नेत्रविकासो भवति। द्रव्यादिकर्मसाधने महामन्त्रः। पुनः किंलक्षणः? दृप्यद्भिः दर्पयुक्तैर्दानवैर्दैत्यैर्दूयमानानामुपतप्यमानानां दिविषदां देवानां दुर्वारा अनिवार्या दुःखापदो दुःखसाधनीभूताश्चिन्तास्तासां ध्रंशो नाशकः। यच्छ्रवणेन देवा दैत्यपीडाभयान्मुक्ता भवन्तीति भावः। अनेनापि सामर्थ्यलक्षणो नायकगुण उक्तः। तथा च देवादीनां विलाससाधको यस्य वेणुध्वनिः, किं वक्तव्यं तस्य पुरुषोत्तमस्य विलासित्वमिति भावः।।५७।।

।। इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये खण्डितावर्णने विलक्षलक्ष्मीपतिर्नामाष्टमः सर्गः ।।८।।

उस प्रेम का तो आज जैसे सूत्र ही टूट गया। छलिया! तुमको देखती हूँ, तो शोक से भी अधिक एक ग्लानि होती है कि कैसे मैंने तुमसे प्यार किया'।।५६–५७।।

।। इत्यष्टमः सर्गः ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ नवमः सर्गः।।

मन्दमुकुन्दः

तामथ मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विषादसम्पन्नाम्।
अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्तरितामुवाच सखी।।५८।।

प्रणयकोपाद् हरिमधिक्षिप्येदानीं कृतपश्चात्तापां सखी आह–तामिति। अथशब्दो मङ्गलार्थः, आनन्तर्ये वा। कलहान्तरितां परुषवचनकथनानन्तरं कृतपश्चात्तापां श्रीराधां रह एकान्ते सखी उवाच कथितवती। कीदृशीम्? मन्मथखिन्नां मन्मथेन कामेन खिन्नां दुःखितामत एव रतिरसेन शृङ्गाररसेन भिन्नां सङ्गताम्, रतिरसेन सम्भोगरागेण भिन्नां विदारितान्तःकरणां वा, अत एव विषादसम्पन्नामुद्वेगसहिताम्। अत एवानु वारं वारं चिन्तितं स्मृतं हरेश्चरितं पुरा विलसितं तत्कालीनविनयं वा यया ताम्। कलहान्तरिता चेयं नायिका, तदुक्तं भरतेन–

'प्राणेश्वरं प्रणयकोपभरेण भीतं
वा चाटुकारमचिरादवधीर्य पश्चात्।
सन्तप्यते मदनवह्निशिखासहस्रै-
र्वाष्पाकुला च कलहान्तरिता तु सा स्यात्'।। इति।

'भिन्नमन्यार्थवचने सङ्गते दारिते स्फुटे' इति विश्वः।।५८।।

गीतम्-१८

[गुर्जरीरागयतितालाभ्याम्]

हरिरभिसरति वहति मधुपवने।
किमपरमधिकसुखं सखि भुवने।।

सखी राधा से अनुनय करती है कि श्रीकृष्ण मनाने आये हैं और तुम उनके लिए इतनी आकुल थी। अब तुम क्यों कलह छेड़ बैठी हो। राधा एकदम प्यार से उद्विग्न हो रही हैं। उदास हो गयी हैं। उनके मन में कहीं स्नेह का रस नहीं रह गया है। इस सबके बावजूद उनकी चिन्ता का विषय केवल हरि हैं और कुछ नहीं। उनका जलना-भुनना, झगड़ना सब हरि से है। उस कलहान्तरिता से सखी कहती है।।५८।।

'माधव से मान न करो। तुम्हारा तो मान वैसे ही सारा संसार करता है। देखो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माधवे मा कुरु मानिनि मानमये।।ध्रुवम्।।१।।

तदेव गीतेन कथयति–हरिरिति। गीतस्यास्य गुर्जरीरागो यतितालः। गीतार्थस्तु–अये इति सम्बोधनम्, हे मानिनि मानवति माधवे श्रीकृष्णे मानं मा कुरु। अथवा अये इति शुभावहविधौ प्रियसङ्गमलक्षणे इति यावत्, निमित्त-सप्तमीयम्। सम्भोगार्थं विलम्बं मानं मा कृथा इत्यर्थः। माधवपदेनापि माधवोऽपि त्वामेवं प्रसादयत्यतो मानं मा कुर्विति ध्वनितम्। ध्रुवपदम्। मधुपवने वसन्तवायौ वहति सति कृष्णोऽभिसरति स्वयमायाति, हे सखि! भुवने त्रैलोक्ये अपरं कृष्णाभिसरणादन्यत् किमुत्कृष्टं सुखम्? अपि तु न किञ्चिदित्यर्थः। अथवा भुवने वैकुण्ठलोके लक्ष्म्यादिभिः किमतः परम् उत्कृष्टं सुखमनुभूयते? न किञ्चिदपीत्यर्थः। तवार्त्तिनाशाय प्रवण इति हरिपदेन कथितम्।।१।।

अपि च–

तालफलादपि गुरुमतिसरसम्।
किं विफलीकुरुषे कुचकलशम्।।२।।

कुचकलशं स्तनघटं किं किमर्थं विफलीकुरुषे निष्फलं करोषि? कृष्ण-करार्पणादेव कुचकलशयोः साफल्यम्, तदभावे वैफल्यमिति भावः। कीदृशम्? तालफलादपि तालफलापेक्षयापि गुरुं काठिन्यस्थौल्याभ्यां श्रेष्ठमित्यर्थः। अतिशयेन शृङ्गाररससहितं यथा चातिविमर्दैनैव तालफलस्य रसप्रदत्वं भवति, तथैवात्राप्यतिविमर्देन शृङ्गाररसोद्भवो भवतीति ध्वनितम्। तथा च अपरोऽपि कलशो रसो-जलं तत्सहितो मङ्गलाय प्रियजनागमे तत्करेऽर्प्यतेऽतोऽ-स्मिन्नवसरे त्वयाप्येवं कर्त्तव्यमिति भावः।।२।।

इससे अधिक संसार में सुख क्या है। वसन्त की बयार बह रही है और प्रिय तुम्हारे पास अभिसार के लिए आये हैं। सब कुछ हरनेवाले हरि तुम्हारे पास आये हैं। हरि का सम्मान करो।।१।।

अपने ताड़ के फल की तरह सरस और भारी इन कुच-कलशों को क्यों विफल कर रही हो। इनकी सार्थकता तो हरि में है। हरि के स्पर्श में है। यह कलश उन्हीं के लिए भरे-भरे हैं और उनका उद्देश्य ही तुम नष्ट कर रही हो। छोड़ो मान। हरि तो सम्मान के योग्य हैं। हरि से मान करना उचित नहीं।।२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम्।
मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम्।।३।।

ननु यदा हरिरागस्तदा त्वया न कथितमित्यत आह–कति नेति। इदमचिरं साम्प्रतमेव अनुपदं स्थानं प्रति मया कति न कथितं कियन्न कथितम्? अपि तु बहु कथितमित्यर्थः। किमिदम्? हरिमतिशयरुचिरमतिशयेन मनोहरं चित्तचौरं मा परिहर उपेक्षस्व।।३।।

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला।
विहसति युवतिसभा तव सकला।।४।।

एवं श्रुत्वाश्रुमुखीं प्रत्याह–किमितीति। त्वं किमिति किमर्थं विषीदसि विखिन्ना भवसि। ननु नास्मि विखिन्ना? इत्यत आह–रोदिषीति। विकला विह्वला सती रोदिषि, अत एव सकला समस्ता युवतिसभा तरुणीपरिषद् विहसति हास्यं करोति। तव चेष्टितं विहसतीति वा। अथवा सकला चतुःषष्टिकलायुक्ता रसपरिपाटीकुशलेत्यर्थः।।४।।

सजलनलिनदलशीतलशयने।
हरिमवलोकय सफलय नयने।।५।।

तर्हि किं करोमीत्यत आह–सजलेति। सजलानि जलसहितानि यानि दलानि कमलिनीपत्राणि तेषां शीलितं निर्मितं शयनं शय्या यस्यास्तादृशे। हरिं सकलसौन्दर्यादिगुणविशिष्टनायकरत्नमवलोकय पश्य, अत एव नयने नेत्रे सफलय कृतार्थय। तदुक्तम् (भाग. १०।२१।१) 'अक्षण्वतां फलमिदम्' इत्यादि। तथा च यद्विरहतप्ता त्वं निर्मितसजलनलिनीदलशयनासि, तमनुगतं

कई बार तो तुम्हें समझाया। अब तुम शीघ्र अपना यह स्वरूप बदलो। यह मनोभाव बदलो और अतिशय रुचिर हरि को, अपनी चेतना में बसे हुए हरि को छोड़ो मत, अवसर चूको मत। तुम उन्हें अपने भीतर भर लो, अपने बाहर भर लो, मान न करो।।३।।

बेकार में क्यों तुम इस तरह उदास हो रही हो, बिलख रही हो। देखो, सारी युवति-सभा हँस रही है कि कैसी नादान है। इतने बड़े आनन्द का अवसर सामने चरणों में लोट रहा है और यह उसका लाभ नहीं ले रही है। अब तुम समझदार हो, मान छोड़ो।।४।।

देखो अभी-अभी तोड़े हुए कमल के फूलों के दलों से रची गयी सेज पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सस्नेहावलोकनेन सत्कृत्य कृतकार्या भवेति भावः। अथवा तव विरहतापेन सजलनलिनीदलशीलितशय्यायां हरिमवलोकयेति कति न कथितमित्यर्थः। सजलेत्यादौ सप्तमी, अस्मिन् शयने तवानुनयार्थमुपविष्टं हरिमवलोकयेति वा।।५।।

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम्।
श्रृणु मम वचनमनीहितभेदम्।।६।।

विचारयन्तीमाह–जनयसीति। मनसि चित्ते गुरुखेदं महद्दुःखं किमिति जनयसि? वक्ष्यमाणं मद्वचनं श्रृणु। कीदृशम्? अनीहितो नाकाङ्क्षितो भेदो वैरस्यं यत्र तादृशं युवयोर्हितकारिणमित्यर्थः। अथवा मया सह अनाकलितं भेदं यथा स्यादेवं मम वचनं श्रृणु, इयं मम सखी मत्तोऽभिन्ना, मदनिष्टं न वदिष्यतीति बुध्वा मद्वचनं श्रृण्विति भावः।।६।।

हरिरुपयातु वदतु बहुमधुरम्।
किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम्।।७।।

हरिः श्रीकृष्ण उपयातु त्वदन्तिकं गच्छतु। बहु मधुरमतिसरसं यथा स्यादेवं वदतु अधिकं चाटु वदत्विति वा, एवं सति स्वकीयं हृदयम् अतिविधुरं किमिति करोषि।।७।।

श्रीजयदेवभणितमतिललितम्।
सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम्।।८।।

हरि लेट गये हैं। भर आँख उन्हें देखो, अपनी आँखों को कृतार्थ करो। उन्हीं के लिए तुम तरस रही थी। फिर उनके साथ किस प्रकार का कलह।।५।।

अब तुम क्यों मन में इतना द्वेष भरे हुई हो। क्यों व्यर्थ की आशंकाएँ तुम्हारे मन में उठ रही हैं। मैं शुद्ध तुम्हारे हित की बात करती हूँ। इसमें कोई भेद की बात नहीं है। कोई निजी स्वार्थ भी नहीं है। मैं तुम्हारी ओर से ही तुम्हें कह रही हूँ कि मान छोड़ो।।६।।

आने दो हरि को और पास। उन्हें अपनी मीठी–मीठी बात सुनाने दो। तुम्हारा हृदय उन्हीं के लिए व्याकुल है। तुम अपने हृदय के विरुद्ध क्यों ऐसा करती हो। उनसे झगड़ती हो। उनसे मिलो, उनसे मिलो। छोड़ो झगड़े–टण्टे की बात, अपनों से मान। अपने से मान होता है? अब जब अपना ऐसे आया हो तो फिर मान का अवसर क्या'।।७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवेति। श्रीजयदेवभणितं हरिचरितं श्रीकृष्णस्य चरितं रसिकजनं भक्तिविशेषरसास्वादचतुरं भक्तजनं सुखयतु आनन्दयतु। किम्भूतम्? अतिललितं शृङ्गाररसं गीतविशिष्टत्वेनातिमनोहरमित्यर्थः। उक्तञ्च (भाग. २।१।२६७) 'शृङ्गारप्रचुरा चेष्टा यत्र तल्ललितं विदुः' इति।।८।।

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये।
युक्तं तद्विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चा विषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः।।५९।।

हे विपरीतकारिणि विपर्ययविधायिनीति सम्बोधनम्। तत् ततो हेतोः त्वयि एतत् सर्वं युक्तमेव; तथा च यः परस्मिन् विपरीतमाचरति तस्य सर्वं विपरीतमेव भवति। किं तत्? तव श्रीखण्डचर्चा विषं चन्दनानुलेपो विषमिव सन्तापजनको भवति। अथवा शीतांशुश्चन्द्रस्तपनः सूर्यः शीतलस्वभावोऽपि तापमाचरति, हिमं तुषारोऽपि हुतवहोऽग्निरिव दाहको भवति। क्रीडामुदः केलिप्रमोदाः (यातना भवन्ति) यद् यतः स्निग्धे तस्मिन् प्रिये मधुरवचनैः स्नेहं प्रकाशयति सति परुषासि निष्ठुरभाषिण्यसि। यच्च प्रणमति तस्मिंस्त्वं स्तब्धाऽसि यच्च रागिणि अनुरागवति तस्मिंस्त्वं द्वेषं यासि द्वेषमवलम्ब्य स्थितासि, यच्च उन्मुखे आलिङ्गनाय सम्मुखे तस्मिंस्त्वं विमुखतां यातासि पराङ्मुखतां गतासि। 'यातना तीव्रवेदना' इत्यमरः। विरोधालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।।५९।।

श्री जयदेव ने यह अष्टपदी, इतनी मधुर अष्टपदी गायी कि यह रसिकजनों के लिए सुखकर हो।।८।।

सखी श्रीराधा से अन्त में कहती है कि 'तुम कैसी हो? जो तुमसे स्नेह करता है, तुम्हारे प्रति इतना कोमल है, उसके प्रति तुम इतनी कठोर हो रही हो। वह तुम्हारे पैरों में झुक रहा है और तुम ऐसी स्तब्ध खड़ी हो। जो प्यार से तुमसे अनुरोध कर रहा है, उसके प्रति तुम्हारे मन में अभी भी द्वेष है। जो तुम्हारी ओर अभिमुख हो रहे हैं, उनसे तुम विमुख हो रही हो। यह कैसा उल्टा-पुल्टा व्यवहार है प्यारी सखी। इसी से शायद तुम्हारी मति इतनी उलट गयी है कि इसके कारण तुम्हारे लिये ऐसे सुखद अवसर में भी चन्दन का लेप विष लग रहा है। चन्द्रमा की शीतल किरणें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादराद्
आनम्रैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम्।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलन्मन्दाकिनीमेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे।।६०।।

सर्गान्ते कविर्मङ्गलमाचरति–सान्द्रेति। वयं श्रीगोविन्दस्य पदारविन्दं चरणकमलं वन्दामहे नमस्कुर्महे। किमर्थम्? अशुभस्कन्दाय भक्ति-प्रतिबन्धकदुरितस्य नाशाय, तादर्थ्ये चतुर्थी; बहुवचनं शिष्याद्यभिप्रायेण। दुरितनाशनसामर्थ्यं द्योतयति–स्वच्छन्दमिति। किंविशिष्टं स्वच्छन्दं यथा स्यादेवं मकरन्दवत् सुन्दरं च यथा स्यादेवं गलन्त्याः प्रस्रवन्त्या मन्दाकिन्या गङ्गाया मेदुरं स्निग्धं तत्तथा। तथा च यस्मान्निःसृता गङ्गा जगत् पुनाति, किं वक्तव्यं तस्य सामर्थ्यमिति भावः। अरविन्दे हि मकरन्दो भवति, तेन मन्दाकिनी उपमीयते इत्युपमालङ्कारः। पुनः किम्भूतम्? सान्द्रो निविड आनन्दो हर्षो येषां ते पुरन्दरादय इन्द्रादयो दिवि सीदन्तीति दिविषदो देवाश्च तेषां वृन्दैः समूहैः अमन्दादराद् अधिकादरादानम्रैः समन्तात् कायादिना नतियुक्तैस्तै-र्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शिता इन्दिन्दिरा भ्रमरा यस्मिंस्तत्तादृशम्। अनेन नमस्करणीयत्वं कथितम्। अत्र चरणस्य कमलोपमा, मन्दाकिन्या मकरन्दोपमा, सुरवृन्दमौलिनीलमणीनां भृङ्गोपमा, एवं पद्मरूपकता चरणस्य। तथा चात्र मन्दाकिनीपदेन व्यापकतयाऽविरतप्रवाहरूपाच्च भगवतो यशो वर्ण्यते। मन्दमुकुन्देति मन्दोऽलसो मन्दो यत्नवान् वा।।६०।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये कलहान्तरितावर्णने मन्दमुकुन्दो नाम नवमः सर्ग।।९।।

लपटें लग रही हैं, बर्फ भी आग लग रही है, प्यार की लीला भी नरक–यातना लग रही है, यह प्रतिकूलता तुम्हारे भीतर कहाँ से आ गयी है। तुम तो सखी, इसी प्यार के लिए तड़प रही थी और अब इस तड़प को मिटाने का अवसर तुम ऐसे खो रही हो'।।५९-६०।।

।। इति नवमः सर्गः ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ दशमः सर्गः।।

मुग्धमाधवः

अत्रान्तरे मसृणरोषवशामसीम-
निःश्वासनिःसहमुखीं सुमुखीमुपेत्य।
सव्रीडमीक्षितसखीवदनां प्रदोषे[1]
सानन्दगद्गदपदं हरिरित्युवाच।।६१।।

इदानीं सख्या बोधितां मानिनीं स्वयमनुनयति–अत्रान्तरेत्यादिना। अत्रान्तरेऽस्मिन्नेवावसरे प्रदोषे निशामुखे हरिः कृष्णः सुमुखीं सुन्दराननां किञ्चित्कोपोपशमेन प्रसन्नवदनामित्यर्थः, श्रीराधामुपेत्य समीपं गत्वा सानन्द-गद्गदपदमानन्देन गलदक्षरवाचालसहितं यथा स्यात्तथा इति वक्ष्यमाणमुवाच। कीदृशीम्? मसृणरोषवशां स्निग्धकोपयुक्तां सखीवचनैः किञ्चिन्नमित-रोषामित्यर्थः। पुनः किम्भूताम्? असीमभिरपारैः, निःसहं विरहदुःख-सहनाक्षमं मुखं यस्यास्तां सव्रीडं सलज्जं यथा स्यादेवमीक्षितं सख्या वदनं मुखं यया ताम्।।६१।।

गीतम्-१९

[देशीवराडीरागाष्टतालीतालाभ्याम्]

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी
हरति दरतिमिरमतिघोरम्।
स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा
रोचयतु लोचनचकोरम्।।

इसी बीच श्रीकृष्ण ने देखा कि प्रणय के कोप में निरन्तर उसाँस पर उसाँस भरते-भरते श्रीराधा का मोह निस्सह हो उठा है। श्रीकृष्ण और पास सरकते हैं और मनाने का व्यापार दिन-भर चलता रहा। कहाँ का खाना-पीना? उन्हें लगता है-अब दिन ढल रहा है, राधा अब भीतर से पछता रही होगी, फिर से निवेदन करना चाहिए और बजाय इसके कि हम अपराध न मानें, उसने जो अपराध लगाया है, उसे मानकर उसी की बात रख करके, उससे क्षमायाचना करें। भीतर से तैयार है ही वह। सखी की ओर देखते समय बड़ी लजा रही है, क्या समझेगी कि अभी दिन में तो इतना दहक रही थी। भीतर से बड़े उल्लास के साथ हरि आत्म-निवेदन करते हैं।।६१।।

१. पाठभेदः—दिनान्ते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रिये चारुशीले मुञ्च मयि मानमनिदानं
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं
देहि मुखकमलमधुपानम्।।ध्रुवम्।।१।।

तदेव गीतेनाह–वदसीत्यादि। गीतस्यास्य देशीवराडीरागः, अष्टताली-तालः। रागलक्षणम्–

'आरब्धागमनिद्रा निघूर्णायमाननयनयुग्माघ्रा(?)।
सुखशायिनि निजदयिते देशीवराडी भवेद्गौरी'।। इति।

ताललक्षणम्–

'लघुर्द्रुतो लघुश्चेत्यष्टताली प्रकीर्त्तिता'। इति।

सम्भोगकारणरहितं मानं मुञ्च त्यज। ननु मन्मानकृते तव का हानिर्जाता? अत आह–सपदीति। सपदि त्वन्मानसमकालमेव मदनानलः कामाग्निर्मम मानसं दहति तापयति। अतो मानत्यागस्य का वार्त्ता, किन्तु मुखकमलमधुपानं देहि मुखमेव यत् कमलं तत्सम्बन्धि यन्मधु सोत्पादिताग्निशमनाय तत्पानं देहि, अनेन सम्मुखे अपश्यन्त्या मुखावलोकं याचितम्। चारुशीले मयि त्वेदकनिष्ठस्वभावे इति, अत एव अकारणं मानं मुञ्चेत्यर्थः। अत्यार्त्तो याचते–सपदि शीघ्रं मुखकमलमधुपानं मुखपद्मनिःसृत-वचनामृतपानं देहि अत्यादरश्रवणं पानमुच्यतेऽतः पानं देहीत्युक्तम्। मुखकमलमधुपानमधरामृतपानं वा। ध्रुवपदम्। अपि च–हे प्रिये! त्वं यदि किञ्चिदपि प्रियाप्रियनिरपेक्षं स्वल्पमपि वदसि वक्षि, तदा दन्तरुचिकौमुदी तव दशनानां या दीप्तिः सैव कौमुदी चन्द्रज्योत्स्ना सा अतिघोरमतिभीतं दरतिमिरं दरः साध्वसः स एवान्धकारस्तद् हरति दूरीकरोति। अपि च तव वदनं चन्द्रमा इव सः स्फुरदधरः सीधवे प्रकाशमानाधरामृतार्थं मम लोचनचकोरं चक्षुःपक्षिविशेषं रोचयति साभिलाषं करोति। सीधवे इति तादर्थ्ये चतुर्थी। अनेन वदनचन्द्रमसो न तृप्तिजनकत्वमिति कथितम्, लोचनयोश्चकोरत्वेन तदेकजीवनतया तदधीनत्वञ्चेति ध्वनितम्।।१।।

'प्यारी! चारु चरित्रवाली प्यारी! अब तो मान, अकारण मान छोड़ दो। मेरा मन प्यार की आग से जल रहा है। अपने मुख-कमल का मधु पिलाओ। कुछ भी बोलना चाहती हो, तो तुम्हारे दाँतों की चाँदनी भय का तिमिर हर लेती है। तुम्हारे चन्द्रवदन से, तुम्हारे अधरों से, ऐसा अमृत छलक रहा है कि मेरी आँखें चकोर बनकर उसको पीना चाहती हैं। प्रिये! मान छोड़ दो, अब तो मान न करो।।१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यमेवासि यदि सुदति मयि कोपिनी
देहि खरनखरशरघातम्।
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं
येन वा भवति सुखजातम्।।२।।

मृषा रोषं प्रकटयन्तीमाह—सत्यमिति। हे सुदति शोभनदशने! त्वं सत्यमेव यथार्थमेव यदि मयि कोपिन्यसि कोपवत्यसि, तदा खरास्तीक्ष्णा ये नखरास्त एव शरा बाणास्तैर्घातं प्रहारं देहि। तेनापि चेन्न तुष्यसि, तदा भुजबन्धनं बाहुभ्यां बन्धनं घटय, तेनाप्यसन्तोषे रदखण्डनं रदैर्दशनैः अधरे क्षतं जनय; येन वा सुखजातं सुखसमूहो भवति, तदेव कुरु। तथा च मय्यपराधानुकूलं दण्डं विधाय कोपं मुञ्चेति भावः। प्रभूणां हि स्वापराधेषु व्याजेन नखक्षतालिङ्गनचुम्बनादीन् प्रार्थयन्ते(?)।।२।।

त्वमसि मम जीवनं त्वमसि मम भूषणं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम्।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
तत्र मम हृदयमतियत्नम्।।३।।

ननु या तव प्रिया, सा दण्डं विदधातु, किं मया? अत आह—त्वमसीति। मम जीवनं त्वमसि, त्वयि विषण्णायां मम विषादो भवति, प्रसन्नायां प्रसाद इति त्वमेव मम जीवनम्, अतो जीवनादन्यत् किं प्रियो भवत्यतस्त्वमेव मम वल्लभेति भावः। त्वं मम भूषणमलङ्करणमसि गौराङ्गीं त्वां विना श्यामशरीरस्य मे केनापि भूषणेन शोभा न भवतीत्यर्थः। अनेनापि व्याजेनालिङ्गनं याचते। भवजलधौ गोपजन्मजलधौ व्रजरूपे रत्नाकरे त्वमेव मे रत्नमसि; यथाऽन्यो रत्नाकरे प्रविश्य परिश्रान्तः क्वचिद्रत्नं लब्ध्वा पूर्णो

सचमुच तुम मेरे ऊपर नाराज ही हो, तो मुझे सजा दो, अपने नखों से आघात करो, अपनी बाँहों में मुझे कैद करो, अपने दाँतों के क्षत से मुझे खण्डित करो। इसी तरह तुम्हें सुख मिले कि मैंने सजा दे दी। अब तो प्रिये, मान मतं करो।।२।।

तुम ही मेरे लिए सम्पूर्ण शृंगार हो, तुम ही मेरे जीवन का आधार हो, तुम मुझे इस भवसागर में मिली हुई अप्रतिम रत्नराशि हो। अब तुम्हारा मन मेरी ओर प्रवण हो गया है, तुम्हारा ही हृदय मेरा हृदय है। उसी के लिए मेरा हृदय निरन्तर यत्न कर रहा है। तुम्हारी आँखें नीलकमल की तरह हैं, तब भी क्यों इस समय रक्तकमल-सी इतनी लाल हो रही हैं। कुछ रोने से, कुछ ईर्ष्या से, कुछ रोष से,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवति, तथाऽहमप्यस्मि; व्रजे त्वां स्त्रीरत्नं प्राप्य कृतार्थोऽस्मीति भावः। अनेन स्वस्य गोपकुलोद्भवं बहु मानयति, जन्मसाफल्यमप्येतावदेवेति ध्वनितम्। तथा च व्रजं समुद्रस्थानीयं व्रजाङ्गना रत्नानि, महारत्नं श्रीराधिकैवेति च। 'अब्धिजातौ यदुत्कृष्टं तद्धि रत्नं प्रचक्षते' इत्युक्तेः। उपसंहरति—भवत्विति। इह प्रवणे मयि भवती सततं सर्वदानुरोधिनी अनुकूला भवतु। तत्र त्वदनुकूलतायां मम हृदयमन्तःकरणसमुदायोऽतियत्नमतिशयित-प्रयत्नवत्। त्वदाराधनप्रयत्नयुक्तमस्तीत्यर्थः। 'अनरोधोऽनुवर्त्तनम्' इत्यमरः।।३।।

नीलनलिनाभमपि तन्वि! तव लोचनं
धारयति कोकनदरूपम्।
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि
कृष्णमिदमेतदनुरूपम्।।४।।

नीलनलिनेत्यादि। हे तन्वि कृशाङ्गि! नीलनलिनस्य नीलोत्पलस्येवाभा कान्तिर्यस्य एतादृशं तव लोचनं कोकनदरूपं रक्तोत्पलसौन्दर्यं धारयति बिभर्त्ति, यदि च कुसुमशरः कामस्तस्य बाणभावेन बाणत्वेन तद्बाणाभिप्रायेण वा इदं कृष्णचक्षुरनुञ्जयसि रक्तं करोषि, एतस्य चक्षुरनुरूपं योग्यं भवति, मन्मथशरमथितमानसानां रमणीनां नेत्राणि लोहितानि भवन्ति; बाणत्वेन च शरा हि सततं परमर्मभेदिनो रुधिराक्तत्वेन रक्ता भवन्ति। रोषं त्यक्त्वा सम्भोगाभिप्रायेण लोचनमनुरञ्जयेति उचितमिति भावः। तन्वङ्गीति सम्बोधनेनापि कृशाङ्ग्यास्तव रोषो नोचित इति ध्वनितम्। अथवा कुसुमशर-बाणः कटाक्षस्तेन यो भावः शृङ्गाररसस्यानुभावस्तेन सस्नेह-कटाक्षावलोकनेनेत्यर्थः। कटाक्षावलोकलालसं कृष्णं मां यदि रञ्जयसि, ममानुरञ्जनं करोषि। एतत्तव कामबाणस्य वा इदमनुरञ्जनमनुरूपं युक्तमित्यर्थः। श्यामे लौहित्यापादनसमर्थायास्ते मम रञ्जनं युक्तमेवेति भावः।।४।।

तुम इन्हीं नयनों से मुझे आविद्ध करने के लिए काम का नया शर बनाओ। श्रीकृष्ण को आविद्ध करने के लिए ये योग्य बाण हैं। तुम्हारी दृष्टि से जितना मैं बिंधूँगा उतना मदन के पुष्पबाणों से नहीं।।३।।

तुम्हारे कुच-कलशों के ऊपर मणियों की माला है और तुम्हारे हृदय को अनुरक्त कर तुम्हारी करधनी जो पृथुल मध्यभाग को घेरे हुए है, उमड़ती हुई आकांक्षाओं के आदेशों की उद्घोषणा तो करे, अब तो तुम रति-क्रीड़ा के लिए सन्नद्ध हो गयी हो, लाज छोड़ो।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी
रञ्जयतु तव हृदयदेशम्।
रसतु रशनापि तव घनजघनमण्डले
घोषयतु मन्मथनिदेशम्।।५।।

किञ्चित् प्रसन्नां वीक्ष्याह—स्फुरत्विति। मणिमञ्जरी हारलता कुचकुम्भयोः स्तनकलशयोरुपरि स्फुरतु चञ्चला भवतु, तव हृदयदेशं वक्षःप्रदेशं रञ्जयतु स्वरश्मिभिः शोभयतु। त्वन्नयननलिनं रक्ततां धत्ते, त्वञ्च कृष्णं मां रञ्जयसि, अतो मणिमञ्जर्यपि ते वक्षो यदि रञ्जयति, तदानुरूपं भवतीति भावः। अत्र स्मरकेलिकर्मारम्भे मञ्जरीयुक्तपूर्णकलशस्थापनं मङ्गलायैवेति सूचनाय कुचयोः कलशत्वेन मणिहारस्य च मञ्जरीत्वेन निरूपणं युक्तमेव कृतम्। अपि च तव घनजघनमण्डले मांसलजघनप्रदेशे रसनापि क्षुद्रघण्टिकापि रसतु शब्दायमाना भवतु, मन्मथस्य कामस्य निदेशमाज्ञां घोषयतु। सम्भोगरणे मदनाज्ञया विलासिजनान् योजयत्विति भावः। वचनचातुर्येण 'स्फुरतु मणिमञ्जरी, रसतु रसनापि' इत्यादिना विपरीतरतं याचते।।५।।

अपि च–

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं
जनितरतिरङ्गपरभागम्।
भण मसृणवाणि! करवाणि चरणद्वयं[1]
सरसलसदलक्तकरागम्।।६।।

कोमल वचनों से ही बाण का काम लेती हो तुम। तुम्हारे चरणकमल, जो अभी-अभी लगे सरस महावर के राग से रंजित हैं, स्थल-कमलों की शोभा हरने वाले हैं। वे स्थल-कमल विराजें, उन्हें अनुरंजित करें। हे सुयशिनि, बोलो कि मैं क्या करूँ? प्रियभाषिणि! अपनी कोमल काकली को ही बाण की तरह वेधने वाली बनाओ। तुम्हारे चरणकमलों को, जो स्थल-कमल की शोभा से भी अधिक शोभावाले हैं, मैं और अनुरंजित करूँ, महावर के रंग से और इस रंग के साथ ही चरण-कमल रति की रंगस्थली का जो मुख्य भाग है, उसे उसके लिए अपनी गति से रंगमय कर दे और रंगमय होकर मेरे हृदय का राग बन जाय।।५।।

मंजुभाषिणि! अब तो कुछ बोलो, मुँह खोलो, तुम्हारी मधुर काकली से एक

---

१. पाठभेदः—पदपङ्कजम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मसृणवाणि स्निग्धवचने! भण आज्ञापय तव चरणद्वयं सरसः सान्द्रः सह रसेन शृङ्गारेण सह वर्त्तत इति वा, सरसं यथा स्यादेवं लसत् शोभमानोऽलक्तकरागो यत्र तादृशं करवाणि कुर्याम्। कीदृशं चरणद्वयम्? स्थलकमलगञ्जनं स्थलोत्पन्नं यत् कमलं स्वकान्त्या तस्य तिरस्कारम्, अरुणतया सौगन्ध्यसौकुमार्येण च तिरस्कृतस्थलकमलसौन्दर्यमित्यर्थः। अनेन चरणस्य पद्मादपि शीतलत्वं कथितम्, तप्तहृदयानुरञ्जकत्वात्। पुनः कीदृशम्? मम हृदयरञ्जनं मद्धृदयानुरागजनकम्। अथवा मम हृदयमपि क्रौञ्चबन्धादौ रञ्जयति सम्भोगे स्खलितालक्तकरागयुक्तं करोतीति तथाभूतम्। अतो मयास्य रञ्जनमुचितमिति भावः। पुनः कीदृशम्? जनित उत्पादितो रतिरङ्गे सुरतकौशले सम्भोगरागस्य वा परभागः परस्परं शोभा येन तादृशम्, कामोद्रेककारीत्यर्थः। तथा च क्रौञ्चबन्धादौ मम हृदयलग्नः सत् परस्परशोभां दास्यतीति भावः। 'परस्परं तु या कान्तिः परभागः स कथ्यते' इति, 'रङ्गः कौशलरागयोः' इति धरणिः।।६।।

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं
धेहि[1] पदपल्लवमुदारम्।
ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो[2]
हरतु तदुपाहितविकारम्।।७।।

स्मरेत्यादि। हे प्रिये! उदारं सुन्दरं पदपल्लवं चरणकिसलयं मम शिरसि धेहि मस्तके स्थापय। अनेन प्रियजनचरणस्य भगवत्कृतगौरवातिशयेनोपास्यत्वमुच्यते। पल्लवपदेन सौकुमार्यं सौगन्ध्यञ्च, तापहारित्वं माङ्गल्यं सौन्दर्यञ्चेति। उदारं महद् अभीष्टप्रदं वा, तेन च सेव्यत्वे योग्यत्वमिति।

नया सम्मोहन पैदा हो आया। आज्ञा दो, मैं तुम्हारे चरणकमलों में या यों कहूँ कि तुम्हारे बायें चरण में जो सुन्दरतर है और प्यारा भी है, ऐसा महावर लगाऊँ। अभी-अभी जो रंग में ताजा है, गीला है, लगाऊँ कि उसे पृथ्वी पर रखो, तो वहाँ स्थल-कमल खिल उठें, ऐसे स्थल-कमल जो कहीं मिलते नहीं और उसी के साथ-साथ उन चरणों के निक्षेप से जैसे रतिरंग का सबसे ऊँचा स्थान, सबसे एकान्त स्थान लाल-लाल हो उठे।।६।।

मेरा हृदय यह देखकर और अनुरागवश भर जाये। चारुचरित्रे, चारु लीलावाली राधा, अब तो प्रसन्न हो। प्रिये! क्या तुम जानती हो कि मेरे भीतर कितनी दारुण,

---

१. पाठभेदः—देहि। २. पाठभेदः-अरुणो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीदृशम्? मम मण्डनमलङ्करणम्, अनेन भगवतः प्रियजनानुवर्त्तनमेव भूषणमिति कथितम्; पुनः कीदृशम्? स्मरस्य यद् गरलं विषं तस्य खण्डनं नाशनम्, विरहिणि मूर्च्छादिप्रदत्वेन मलयानिलादेः स्मरगरलत्वनिरूपणात् स्मरस्य सर्पत्वमाक्षिप्यते, चरणपल्लवं धेहीत्यनेन नायिकाया गारुडिकत्वं चेत्याक्षेपरूपकमिदम्। अपरमपि सर्पादिविषं गारुडिकचरणाभिघातेनाभि-मन्त्रितपल्लवाध्यारोपणेन च शाम्यतीति ध्वनितम्। किञ्च, मयि दारुणो दुःसहो मदनः कामस्तज्जनितं यत् कदनं तापः स एवारुणः सूर्यो ज्वलति, अतस्तेन उपाहितविकारं ग्लान्यादिरूपं हरतु दूरीकरोतु। अन्योऽपि सूर्यसन्तापः शिरसि पल्लवादिस्थापनेन शाम्यतीति ध्वनितम्। 'अरुणः स्फुटरागे स्यात् सूर्ये सूर्यस्य सारथौ' इति। 'कदनं कलुषे तापे च'।।७।।

> इति चटुलचाटुपटुचारु मुरवैरिणो
> राधिकामधि वचनजातम्।
> जयति जयदेवकविभारतीभूषितं
> मानिनीजनजनितशातम्[१] ।।८।।

इतीत्यादि। इत्यनेन प्रकारेण मुरवैरिणः कृष्णस्य राधिकामधि राधां लक्ष्यीकृत्य प्रोक्तं वचनजातं वाक्यसमूहो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम्। कीदृशम्? चटुलं मनोहरं चाटु प्रीतियुक्तं पटु चतुरं चारु सुकुमारम्। पुनः कीदृशम्? जयदेवनाम्नः कवेः भारती भारतीसंज्ञा यस्या एवम्भूता वाणी त्वया भूषितमलङ्कृतम्। मानिनीजनेति मानिनीजनस्य मानवतीलोकस्य जनितं शातं सुखं येन तत्तथा। 'जयति पद्मावतीरमणजयदेवकविभारतीभणित-

---

खण्ड-खण्ड करनेवाली, चिटक-चिटक कर एक-एक मर्म को अंगार बनानेवाली आग जल रही है? यह आग दुष्ट मदन ने लगायी है। क्यों नहीं तुम इस आग को शान्त करने के लिए अपने नये किसलय सरीखे चरण को मेरे सिर पर रखती हो? यह भीतर-बाहर जो काम का ज्वर जहर बनकर फैल रहा है, तुम्हारे पद-पल्लव के सिर पर रखने से ही दूर होगा। प्रिये! तुम प्रसन्न हो, मान छोड़ो, अब बहुत हो गया'।।७।।

इस प्रकार जो अष्टपदी पद्मावती के प्रिय जयदेव कवि की वाणी में इतने प्रेम से गायी गयी है और राधिका को सम्बोधित करके श्रीकृष्ण की अत्यन्त चतुर और प्रिय मीठी बातों का ही संकलन है, जयशाली हैं श्रीराधा कृष्ण के ऊपर और जयशाली हैं इस चर्चा के प्रतिभागी के ऊपर। अभी लगता है अभिनय के द्वारा जो

---

१. पाठभेदः—जयति पद्मावतीरमणजयदेवकविभारतीभणितमतिशातम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतिशातम्' इति पाठान्तरे पद्मावती जयदेवस्य पत्नीरस्या रमणो वल्लभो यो जयदेवकविस्तेन भारत्या भारतीसंज्ञया कवित्वं वर्णितम्। पुनः कीदृशम्? अतिशातमतिशयितं सुखं यस्मात्तादृशम्। भारत्या वाण्या भणितमिति तु व्याख्यानं मन्दम्। तथा सति पौनरुक्त्यापत्तेः। प्रथमपाठस्तु समीचीन एव, तदुक्तं रसार्णवसुधाकरे (१।२९१)–'शृङ्गारादिषु सर्वेषु रसेष्विष्टैव भारती' इति। शृङ्गारतिलके च (३।४४)–

'प्रधानपुरुषप्राया सवक्रोक्तिनिरन्तरा।
भारती च भवेद्वृत्तिर्वीरहास्याद्भुताश्रया'।। इति।

'चटुलः सुन्दरे चले' इति धरणिः। चटुलचाटु प्रियवाक्यमिति हट्टचन्द्रः। पटुस्तीक्ष्णे नीरोगे च चतुरेऽन्यवदिति विश्वः। 'शर्मशातसुखानि च' इत्यमरः।।८।।

परिहर कृतातङ्के शङ्कां त्वया सततं घन-
स्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि।
विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं
प्रणयिनि! परीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम्।।६२।।

इदानीमात्मानं निरपराधं ज्ञापयन् सम्भोगार्थं प्रोत्साहयन्नाह—परिहरेति। हे कृतातङ्के! विहितकोपे श्रीराधे! त्वं शङ्कां ममान्यकामिनीसम्भोगो जात इति संशयं परिहर त्यज। यतो मम स्वान्ते चित्ते अन्तरमभ्यन्तरं वितनोस्तनुशून्यात् कामादन्यो धन्यो जनस्तादृशसौभाग्ययुक्तः स्त्रीलक्षणः कोऽपि न विशति प्रविशति; कुतो न विशतीत्यत आह—परेति। परानवकाशिनि इतरावकाश-शून्ये। तत्र हेतुमाह—त्वयेति। घने निविडे स्तनजघने यस्यास्तादृश्या त्वया सततं नित्यमेवाक्रान्ते व्याप्ते। तथा च सदा त्वयाक्रान्ते मदीये हृदयेऽन्यस्य प्रवेष्टुं स्थलमेव नास्ति, साङ्गस्य प्रवेशाभावाद् अनङ्ग एव परं प्रविशति, तस्याङ्गाभावादित्यर्थः। हे प्रणयिनि! तस्मात् परीरम्भारम्भे आलिङ्गनारम्भे

अष्टपदी प्रस्तुत की गयी है, उससे जयदेव का मन नहीं भरा। इन श्लोकों के द्वारा नेपथ्य से कुछ और श्लोक पढ़वा रहे हैं। श्रीकृष्ण अब राधा से कहते हैं।।८।।

'क्यों व्यर्थ की आशंका करती हो, क्यों उससे आतंकित हो उठी हो। यह शंका तुम्हारे द्वारा खुद पैदा की गयी है। मेरा तो अन्तःस्थल, मेरा हृदय सदैव तुम्हारे कुच-कलशों और जघनों के भार से इस तरह आक्रान्त है कि कहीं दूसरे को वहाँ आने का अवकाश ही नहीं है। मेरे हृदय में तुम्हारे आक्रामक प्यार के भार का ऐसा दबाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधेयतां कर्त्तव्यतां विधेहि कुर्वित्यर्थः। 'आतङ्कः क्रोधशङ्कयोः' इति धरणिः।।६२।।

मुग्धे! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं
दोर्वल्लिबन्धनिविडस्तनपीडनानि।
चण्डि! त्वमेव मुदमञ्च न पञ्चबाण-
चाण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्तु।।६३।।

यद्येवं न प्रत्येषि, तदा मय्यपराधानुकूलं दण्डमाचरेत्याह—मुग्धे इति। हे मुग्धे सुन्दरि! मूढे वा! निर्दयं दयारहितं दन्तदंशं दशनक्षतमथ च दोर्वल्लिबन्धं भुजलताबन्धनं निविडं गाढं स्तनाभ्यामापीडनं च विधेहि कुरु। हे चण्डि अतिकोपने! त्वमेव मुदमपराधिनो मम दण्डाचरणेनानन्दमञ्च प्राप्नुहि, न पुनः पञ्चबाणः कामः, स एव निरपराधिजनहिंसकत्वेन चाण्डालस्तस्य काण्डदलनान्नाराचप्रहरणाद् असवः प्राणाः प्रयान्तु निर्गच्छन्तु। चाण्डाल-प्रहारेण न समीचीना गतिः, अतस्त्वया साक्षादेव यथोचितदण्डाचरणं विधेयमिति भावः। तथा च कामपीडया प्राप्तदशम्यवस्थयातिकातरः सम्भोगरूपं प्रसादं मानवत्याः सकाशाद्याचत इति ध्वनितम्। 'चण्डी स्यादतिकोपना' इत्यमरः।।६३।।

शशिमुखि! तव भाति भङ्गुरभ्रूर्युवजनमोहकरालकालसर्पी।
तदुदितजयभञ्जनाय यूनां त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः।।६४।।

ननु कोपो नास्त्येवेत्यत आह—शशिमुखीत्यादि। हे शशिमुखि चन्द्रानने! तव भङ्गुरभ्रूः कुटिला भ्रूः भाति शोभते। कीदृशी? युवजनानां मोहाय सम्मोहनाय कराला भीषणा कालसर्पी कृष्णाहिवधूः। अन्या भुजगी दृष्ट्वा मोहयत्यसौ दृष्टिमात्र एवेत्येतस्याः करालत्वं तदुदितभयभञ्जनाय तस्याः सकाशादुदितं यद्भयं तस्य नाशाय यूनां तरुणानां मल्लक्षणस्य यून इत्यर्थः। त्वदधरसीधुसुधैव त्वदीयाधरसीधुः मदिराविशेषः स एव सुधा अमृतं स एव सिद्धः साधितो मन्त्रः। त्वमेवञ्चेदधरामृतं पाययसि, तदा परं तद्विषापहरणं

है कि वहाँ एक तिल भी दूसरे के लिए जगह नहीं है। कोई वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिए तुम कोप न करो, प्रसन्न होओ।।६२।।

तुम अभी भी यदि कुपित हो, तो तुम मुझे ऐसा निर्दय दण्ड दो–निःसंकोच दन्त-दंशों से, बाहुपाश की कैद से और अपने स्तनों से पीड़ित करने से। तुम अपने कोप की शान्ति पाओ, प्रसन्न हो। मैं नहीं चाहता कि नृशंस कामदेव के बाणों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवेदन्यथा न स्यादेव। अतोऽधरपानं दत्त्वा तव कोपसर्पदष्टस्य मम जीवनं सम्पादयेति भावः।।६४।।

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि! प्रपञ्चय पञ्चमं
तरुणि! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः।
सुमुखि! विमुखीभावं तावद् विमुञ्च न मुञ्च मां
स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे! प्रियोऽयमुपस्थितः[1]।।६५।।

एवमप्युत्तरमप्रयच्छतीं प्रत्याह—व्यथयतीत्यादि। हे तन्वि कृशाङ्गि! तव वृथा मौनं निष्प्रयोजनवचनसङ्कोचो मां व्यथयति पीडयति। कृशाङ्ग्यास्तव एतावन्तं कोपधारणमनुचितमिति सूचनाय तन्विपदोपादानम्, तस्मात्त्वं पञ्चमं रागविशेषं प्रपञ्चय विस्तारय। हे तरुणि! मधुरालापैर्माधुर्यवर्षिस्वरालापैर्मधुरवचनैर्वा तापं मम सन्तापं विनोदयापसारय। हे सुमुखि शोभनवदने! दृष्टिभिः कटाक्षावलोकैर्विमुखीभावम् औदास्यं विमुञ्च, सुमुख्यास्तु वैमुख्यमनुचितमिति भावः। हे मुग्धे! अयं प्रियः स्वयमेव अनाहूत एवोपस्थित आगतः। कीदृशः? अतिशयस्निग्धः अतिशयेन स्नेहवान्। अतो मानं मुञ्च, स्वयमागतः प्रियो हातुं नोचित इति भावः।।६५।।

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि-
र्गण्डश्चण्डि! चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम्।
नासान्वेति[2] तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति! प्रिये!
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः।।६६।।

मेरे प्राण जायें। इस प्रकार का आघात ही तुम्हें प्रसन्न करेगा और मुझे भी ऐसे विषम बाणों की पीड़ा से त्राण देगा।।६३-६४।।

तुम्हारी चुप्पी तुम्हें व्यर्थ ही भीतर-भीतर कुतर रही है, कष्ट दे रही है, पंचम राग छेड़ो, कोमल बनो, कोयल जैसी मधुरसंलापिनी बनकर अपनी दृष्टि से रस-वृष्टि से मुझे सुख पहुँचाओ। इस प्रकार तुम दूसरी ओर जो मुख किये बैठी हो, अपना सुन्दर मुख इधर करो और अब दम्भ छोड़ो। यह स्वयं ही तुम्हारा प्रिय स्वयं जो अत्यन्त विरह का क्लेश पाकर स्निग्ध हो गया है, स्नेह-दृष्टि से उसे बाँध लो।।६५।।

तुम्हारे होठ दुपहरिया के फूल की तरह लाल-लाल हो उठे हैं, जैसे किसी तैयारी में हों। तुम्हारे गाल महुए की तरह सरस सुनहली कान्तिवाले दिख रहे हैं,

---

१. पाठभेदः—अहम्। २. पाठभेदः—नासाभ्येति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्प्रति मानापनोदनाय तदङ्गस्तुतिं करोति—बन्धूकेति। हे चण्डि हे प्रिये! अयं तवाधरो बन्धूकद्युतिबान्धवो बन्धूकस्यारुणपुष्पविशेषस्य या द्युतिर्दीप्तिस्तस्या बान्धवः सुहृत् पोषक इत्यर्थः। अनेन बन्धूकादपि श्रैष्ठ्यमुच्यते; अयञ्च स्निग्धो गण्डः कपोलो मधूकच्छविः मद्विरहजनितपाण्डिमा मधुकस्येव छविः कान्तिर्यस्य एतादृशश्च शोभते, ते लोचनं नीलनलिनश्रीमोचनं स्वकान्त्या नीलोत्पलस्य कान्तिं मोचयति त्याजयतीति तादृशम्, स्वभावत एव नीलतारकत्वान्नीलं चक्षुरञ्जनेन विनापि सुतरां नीलोत्पलमप्यतिशेत इति भावः। हे कुन्दाभदन्ति! कुन्दपुष्पस्येवाभा येषां तादृशा दन्ता यस्यास्तादृशि तव नासा तिलप्रसूनस्य पदवीं तिलपुष्पप्रसिद्धिमन्वेति प्राप्नोति। अत्येतीति पाठे अतिक्रामतीत्यर्थः। प्राय इति तर्कयामि। स प्रसिद्धः पुष्पायुधः पुष्पमेवायुधं शस्त्रं यस्य एतादृशः कामस्त्वन्मुखसेवया विश्वं जगद् विजयते। कामः पञ्चभिरेव शरैर्विश्वं विजयते। त्वन्मुखे बन्धूकमधुकनीलोत्पलतिलकुन्दपुष्पाणि सन्तीति त्वन्मुखादेव प्राप्तायुधः कामो विश्वं विजयत इति भावः। तथा च रक्तपीतनीलकषायोज्ज्वलेति आकर्षणवशीकरणोन्मादनद्रावणशोषणेति कामस्य शराः कथिताः। त्वन्मुखसेनयेति पाठे त्वन्मुखमेव या सेना कटाक्षं तया। 'बन्धुको बन्धुजीवे स्यात्' इति विश्वः। 'मधुपुष्पो मधूकश्च गुडपुष्पो मधुद्रुमः' इति हारावली।।६६।।

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यास्पदं[1]
गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम्।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवतं वहसि तन्वि! पृथ्वीगता।।६७।।

दृशौ तवेति। हे तन्वि! त्वं पृथ्वीगता पृथिव्यां प्राप्ता सती विबुधयौवतं देवयुवतीनां समूहमहो आश्चर्यं! वहसि धारयसि, एकैकेनैव अङ्गेन देवीं प्राप्ता

जैसे अभी-अभी उसमें से रस चू पड़ेगा। तुम्हारी आँखें नीले कमलों की कान्ति हर रही हैं। नीली-नीली आँखें समस्त सौन्दर्य का सार अपने पास खींचकर रखे हुए हैं। तुम्हारी नाक तिल के फूल की तरह लग रही है। दाँत तुम्हारे कुन्द के फूल की तरह हैं। ऐसा लगता है तुम्हारे मुँह की सेवा में पुष्पों को बाण बनाने वाले कामदेव ने अपने समस्त पुष्प लगा दिये हों।।६६।।

तुम्हारी आँखें सौभाग्यमद से अलसायी हुई हैं कि अब तो प्रिय मेरे चरणों में हैं। तुम्हारा मुँह चन्द्रमा के मन में ईर्ष्या पैदा करनेवाला है; क्योंकि उसमें कहाँ

---

१. पाठभेदः—वदनमिन्दुसन्दीपकम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सती विबुधाङ्गनानां सौन्दर्यं तिरस्करोषीत्यर्थः। तदेवाह—दृशाविति। तव दृशौ नेत्रे मदालसे मदेन हर्षेणालसे मन्थरे। तथा च स्वर्गे एकैव मदालसानाम्नी देवाङ्गना, त्वन्तु नेत्रे एव द्वे मदालसे दधासीत्याश्चर्यमिति भावः। तव वदनमिन्दुमत्यास्पदम् इन्दुविषयिणी या मतिस्तस्या आस्पदं विषय इत्यर्थः। तव मुखेऽयमिन्दुरिति मतिर्भवति। तथा चेन्दुमती देवाङ्गना तस्याः सौन्दर्याद-प्यधिकशोभां मुखेनैव वहसीति श्लेषेण लभ्यते। तव गतिर्गमनं जनमनोरमा नाम्नी देवाङ्गना तदात्मिका। अथवा रमा लक्ष्मीस्तदात्मिका। लक्ष्म्याः सौन्दर्यादिकं तव गत्यन्तर्भूतं वर्त्तत इत्यर्थः। तवोरुद्वयम् ऊरुयुग्मं विधुतरम्भं विधुता त्वच्छोभया तिरस्कृता कदली येन तादृशम्। तथा च ऊरुसौन्दर्येण तिरस्कृता रम्भानाम्नी देवाङ्गनापि। अथ च तव रतिः सुरतक्रीडा कलावती कामकलाकौशलशालिनी हावभावकिलकिञ्चितमोट्टायितविकारादिमतीत्यर्थः। तथा च सम्भोगकौशलेनैवाल्पीकृता कलावतीनाम्नी देवाङ्गनेति भावः। भ्रुवौ रचितचित्रलेखे निर्मितविचित्रलेखे विचित्रलेखा वा रुचिरपाठे मनोहरे इत्यर्थः। तथा च स्वर्गे एका चित्रलेखा, अत्र तु त्वद्भ्रूभ्यां चित्रलेखाद्वयं रचितमित्याश्चर्यमिति भावः। प्रेयोनामायमलङ्कारः। तदुक्तं दण्डिना (२।२७५)–'प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद्रसपेशलम्' इति। पृथ्वी(नाम)कञ्छेदं छन्द इत्यपि ध्वनितम्। यथा श्लोकद्वयेन मानवत्याः प्रसादनं कथितम्।।६७।।

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्द्धं रणे
राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान्।
यत्र स्विद्यति मीलति क्षणमथ क्षिप्ते द्विपे तत्क्षणात्
कंसस्यालमभूज्जितं जितमिति व्यामोहकोलाहलः।।६८।।

कविः सर्गान्ते आशिषं प्रयुङ्क्ते—प्रीतिमिति। हरिः श्रीकृष्णो वो युष्माकं गायतां शृण्वतां प्रीतिमानन्दं तनुतां विस्तारयतु। भक्तानां क्लेशहारीति हरिः। किंलक्षणः? रणे........संस्कारबोधो (?) याभ्यां तादृशौ कुम्भौ यस्य तथाविधेन कुवलयापीडेन हस्तिना सार्द्धं सम्भेदवान् संसर्गवान्। अत्र प्रचुर-शृङ्गारित्वं तथा च श्रीराधायां सर्वाधिको भावस्तथा च श्रीकृष्णस्याद्भुतवीर्यं शृङ्गारविरोधिभयानकहेतुमहासत्त्वहस्तिसंग्रामे शृङ्गाररसाविर्भावेन वर्णितमिति ज्ञेयम्। तदेवाह–यत्र यस्मिन् रणे तत्कुम्भस्थलदर्शनोद्बुद्धसात्त्विकविकारेण स्विद्यति स्वेदं कृतवति, पुनः केनापि सुखोदयेन क्षणं मीलति ईक्षणं निमीलति सति। अथानन्तरं तत्क्षणमेव क्षिप्ते द्विपे द्विपे क्षिप्ते हस्ते सति कंसस्यालमतिशयेन जितम्, 'आवेगेन द्विरुक्तिः' इति व्यामोहकोलाहलोऽभूत्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अयमर्थः-प्रथमस्तावत् स्वेदमीलिताभ्यां कंससभायामानन्दो जातः। पश्चात्तत्क्षणमेव हते गजे आवेगात् शत्रुणा जितं जितमिति अमुना प्रकारेण व्यामोहो मूर्च्छा कोलाहलो हाहाशब्दश्चाभवदित्यर्थः। यद्वा उदिते सात्त्विक-विकारे तादृशस्य दर्शनाद् व्यामोहाद् भ्रान्त्या जितमिति कोलाहलोऽभवदित्यर्थः।।६८।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्ये मानिनीवर्णने मुग्धमाधवो नाम दशमः सर्गः।।१०।।

इतनी शक्ति कि विश्व-मनमोहन के ऊपर छा जाये। तुम्हारी गति जन-जन के मन को आनन्दित करनेवाली है। तुम्हारी जाँघें कदली के पेड़ की तरह सहारा दे रही हैं, वे इतनी चिकनी, इतनी ढलुवाँ हैं। तुम्हारी रति-कुशलता जितनी कलाएँ लिये हुए हैं, उतनी ही सम्भावनाएँ लिये हुए है। तुम्हारी भौंहें चित्ररचना जैसी लगती हैं। ऐसा लगता है कि तुम पृथ्वी पर रहती हुई भी इस पृथ्वीछन्द में उतरकर देवताओं के यौवन का वितान बनी हुई हो। तुम्हारा यौवन दिव्य है। यही घोषणा इस अष्टपदी में की जा रही है।।६७-६८।।

।। इति दशमः सर्गः ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथैकादशः सर्गः।।

सानन्दगोविन्दः

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
गतवति कृतवेशे केशवे कुञ्जशय्याम्।
रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद।।६९।।

दशमे मानप्रकारमनुवर्ण्येदानीमेकादशे सम्मानिताया मानिन्या अभिसारमाह—सुचिरेत्यादि। कापि अनिर्दिष्टाभिधा सखी श्रीराधां जगाद बभाषे। क्व सति? प्रदोषे स्फुरति सति। कीदृशे? दृष्टिमोषे दृशौ विमुञ्चति चोरयति स्वविषयग्रहणासमर्थं करोतीति। तादृशे रसोद्बोधकरगाढान्धकार इत्यर्थः। पुनः क्व सति? केशवे मृगाक्षीं हरिणनयनां श्रीराधां सुचिरं बहुकालं व्याप्य अनुनयेन प्रीणयित्वा प्रसादयित्वा कुञ्जशय्यां लताद्यावेष्टित-कुटीराभ्यन्तरस्थशयनीये गतवति सति। सुचिरमित्यादिना तस्यां स्नेहाधिक्येन तद्वशता कथितेति ध्वनितम्; राधानुनय एव मम परमपुरुषार्थ इति ज्ञापनार्थं विविधपुष्पादिनालङ्करणादिकं येन तादृशे। कीदृशीं राधाम्? रचिता रुचिरा मनोहरा भूषालङ्कृतिर्यया ताम्। पुनः कीदृशीम्? निरवसादां निर्गतोऽवसादः कृष्णानागमनजन्यं दुःखं यस्यास्तां कृष्णानुनयाद्विगतखेदामित्यर्थः।।६९।।

गीतम्- २०

[वसन्तराग-यतितालाभ्याम्]

विरचितचाटुवचनरचनं चरणे रचितप्रणिपातम्।
सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमनि केलिशयनमनुयातम्।।१।।

श्रीकृष्ण के मनाने से श्रीराधा प्रसन्न हो गयीं और अब अभिसार के स्थान में केशव आश्वस्त होकर सेज बिछाने चले गये। श्रीराधा भी अपने को सजाने में तरह-तरह के सुन्दर आभूषणों को पहनने लगीं, ऐसे आभरण और ऐसी वेशभूषा जो रात के अनुकूल हो, जब आँखों से कुछ नहीं दिखता।।६९।।

वह भीतर से उमग रही थीं, तो किसी सखी ने उनसे अनुरोध किया कि प्यारी, अब तो प्रसन्न हो गयी हो, अब तो तुम्हें प्रतीति हो गयी कि मधु को मथनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुग्धे! मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके।।ध्रुवम्।।

तदेव गीतेन कथयति—विरचितेति। गीतस्यास्य वसन्तरागो यतितालश्च, तल्लक्षणं कथितं प्राक्। गीतार्थस्तु–हे मुग्धे सुन्दरि! अनुगतमधुमथनानुसरणकृतविलम्बादनभिज्ञे वा। हे राधिके! रूपेणाधिके सकलव्रजाङ्गनातिशयितसौन्दर्येण मोहितव्रजेन्द्रनन्दने अथवा स्वमाधुर्यवर्षिण्या वाण्या पञ्चमादिस्वरेण वा वशीकृतकृष्णे। वर्णितञ्च भगवत्प्रियैः (३।४।२६)–

'कृष्णसारहरपञ्चमस्वरे मुञ्च गीतकुतुकानि राधिके!
प्रेक्षतेऽत्र हरिणानुरागवतां त्वां न यावदतिभीषणो जनः'।। इति।

'रस्तु शब्दे रूपे च' इत्येकाक्षरः। मधुमथनं मधु मधुराख्यरसस्तं मथ्नाति विलोडयतीति तत्तथा, तं श्रृङ्गाररसास्वादचतुरमित्यर्थः। अथवा मधुमथनो भ्रमरश्च त्वद्रसास्वादलम्पटस्तम्। अथवा मधुः वसन्तस्तं मथ्नाति क्षोभयति सः स्मरस्तं कन्दर्पकोटिसुन्दरम् अनुसरानुगच्छ; कीदृशम्? अनुगतं तव सौन्दर्यलावण्यादिनाकृष्टम्। आनुकूल्येन त्वामनुसृतं वा। अथवा कामेनाधिके इति राधिके श्रृङ्गारस्वभाव इत्यर्थः। 'रस्तु कामः' इत्यप्येकाक्षरः। मधुं वसन्तमथ कात्स्न्र्येन सर्वतोभावेन तद्वशीभूत्वानुगतं सङ्केतप्राप्तं प्रियमनुसर क्रीडापरा भवेत्यर्थः। वसन्तस्योद्दीपनविभावात्। अथवा हे राधिके! अनुसर, नन्वनाहूता कथं व्रजामीति चेत्? अत आह–मधुनामा विदूषकोऽयं समागतस्तं मधुं नमस्कृत्यानुसरेत्यर्थः। ध्रुवपदम्। अनुगतत्वमेवाह–विरचिता विहिता चाटुप्रियोक्तिः 'मम कोटिप्राणवल्लभा त्वमेवासि, त्वत्पादनखशोभयापि व्रजसुन्दरीकदम्बमपि न तुलयामि, त्वया स्वासाधारणगुणैर्वशीकृतोऽस्मि, त्वां विना क्षणमपि स्थातुं न शक्तोऽहमि'त्यादिवचनकदम्बस्य रचनासन्दर्भो येन तादृशम्। पुनः कीदृशम्? तव चरणेऽङ्घ्रौ रचितः प्रणिपातः अवनतिर्येन तादृशम्। अथवा तवानयनाय मच्चरणे रचितः प्रणिपातो येन तादृशम्, चरणे सङ्केताभिमुखगमनार्थमिति वा। विविधानुनयपूर्वकनमस्क्रियाकथनायात्र रचितपदोपादानम्। तर्हि सम्प्रति कुत्रास्तीत्यत आह–सम्प्रतीत्यादि। सम्प्रत्यधुना मञ्जुलो मनोहरो यो वञ्जुलो वेतसस्तस्य सीमनि पर्यन्ते अशोकलतिकातटे इति यावत्; यत् केलिशयनं

गोविन्द तुम्हारे अनुगत हो गये। अब तुम उनके पीछे-पीछे उनके स्थान तक पहुँचोगी, तो तुम्हारा मान तो सफल ही हुआ, तुम्हारा सर्वात्म सम्पूर्णता को प्राप्त करेगा। तुम्हारे पैरों में मीठी-मीठी बातें करके उन्होंने सिर टिकाया और तुम्हारे स्वागत की तैयारी करने के लिए केलिशय्या की रचना करने के लिए जो सुन्दर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रीडाशय्या तामनुलक्ष्यीकृत्य यातं गतम्, तत्रस्थस्त्वां प्रतीक्षत इत्यर्थः। वञ्जुलादीनामुद्दीपनविभावत्वेन परिगणनादुपादानम्।।१।।

घनजघनस्तनभारभरे दरमन्थरचरणविहारम्।
मुखरितमणिमञ्जीरमुपैहि विधेहि मरालविकारम्।।२।।

तां प्रोत्साहयन्ती त्वरयति—घनेति। हे सखि! उपैहि कृष्णमुपगच्छ। कथं यथा स्यात्? दरेण साध्वसेन मन्थरश्चरणविहारः पदविन्यासो यत्र एवं यथा स्यात्; तत्र हेतुगर्भविशेषणेन सम्बोधयति–घनयोर्निविडयोर्जघनस्तनयोर्भारस्य भरोऽतिशयो यस्यास्तादृशि। मरालानां हंसानां स्वकीयमन्थरगमनेन मञ्जीरादिशब्देन च निकारं तिरस्कारं विधेहि कुरु। सम्प्रति मरालेषु शब्दायमानेषु सत्सु मञ्जीरादिध्वनिरपि मरालशब्दत्वेनेव लोकैर्ग्राह्य इति योग्योऽभिसारक्षण इति ध्वनितम्। अथ च हंसशब्दो यात्रायां शुभं सूचयतीति गमनं प्रति विलम्बो न कार्य इति भावः। तदुक्तं वसन्तराजे–'काष्ठासु सर्वास्वपि दर्शनेन, हंसस्य शब्देन च सर्वसिद्धिः' इति। 'मरालो राजहंसे स्यात् मरालो हंसमात्रके' इति धरणिः। 'निकारः स्यात् परिभवे धान्यस्योत्करणेऽपि च' इति विश्वप्रकाशः।।२।।

श्रृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम्।
कुसुमशरासनशासनवन्दिनि! पिकनिकरे भज भावम्।।३।।

अन्यमपि उद्दीपनविभावं वर्णयति—श्रृण्विति। तरुणीजनानां मोहनं माधुर्यातिशयेन मोहजनकं मधुरिपोः कृष्णस्य रावं शब्दं (गी. २३।२) 'करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदुरम्' इत्यादीनि मधुराणि सम्भाषणानि महामधुरमोहनात्यद्भुतस्वरग्राममूर्च्छनातानतालरागैरालापितं त्वद्-गुणसङ्केतितवेणुनादं वा श्रृण्वाकर्णय। कीदृशम्? रमणीयतरमतिशयेन रमणीयम्, अतो रमणीजनानां मोहनम्। 'मधुपविरावम्' इति पाठे मधुपानां

बेंत की लता-निकुंज में है, जहाँ इसके आगे केवल यमुना की रेती है, यमुना है, अन्तिम निकुंज है। वहाँ चले गये हैं, अब तुम भी उनके पीछे-पीछे चलो।।१।।

मैं जानती हूँ कि तुम धीरे-धीरे ही चल पाओगी। स्तन-भार से झुकी जा रही हो, श्रोणी-भार से झुकी जा रही हो। धीरे-धीरे चलो। तुम्हारे मणि-नूपुर धीरे-धीरे बजते रहें और भ्रम हो कि इस समय हंसध्वनि हो रही है।।२।।

सखि, अब यहाँ बैठी न रहो, उठो और चल पड़ो। सुनो न, युवतियों के मन को कहाँ-से-कहाँ ले जानेवाला भौंरों का गुंजार हो रहा है, चारों ओर शायद तुम्हारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रमराणां विविधप्रकारेण रसोद्बोधकं शब्दम्। अथवा मधुं मधुररसं पिबति अत्यासक्त्या स्वदतीति मधुपः श्रीकृष्णास्तस्य विविधानुनयालापमिति। मधुरिपुशब्देनापि भ्रमरश्लेषेण तद्रसलाम्पट्यं तद्गुणगानपरत्वञ्च कथितम्। तथा च श्रीभागवते (१०।३१।८, १०।२९।४०) 'मधुरया गिरा' इति, 'का स्त्री' इति च। पिकनिकरे कोकिलसमूहे कुसुमशरासनशासनवन्दिनि सति कुसुमान्येव शरासनं धनुर्यस्य तादृशः कामस्तस्य शासनं तदाज्ञा तया वन्दिनि स्तावके सति। अथवा कुसुमशरासनशासनं वन्दितुं नमस्कर्तुं शीलमस्य तादृशे कामाज्ञाकारिणि सतीत्यर्थः। भावं कृष्णेऽनुरागं भज आश्रय। अथवा कामाज्ञया शब्दायमाने पिकनिकरे भावमभिप्रायं भज पिकनिनदं श्रुत्वा उद्रिक्तरसा प्रियतमसम्भोगावसरे पिकादीनां रुतमिव कूजितं प्रकटीकुर्वित्यर्थः। 'वन्दिनः स्तावकाः' इत्यमरः। अत्रापि पिकनिकरझङ्कारेण कृष्णास्य मधुरस्वरो यात्रायां गीतवाद्यवत् शकुनमित्यपि ध्वनितम्।।३।।

अनिलतरलकिसलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बम्।
प्रेरणमिव करभोरु करोति गतिं प्रतिमुञ्च विलम्बम्।।४।।

अथ च—अनिलेत्यादि। हे करभोरु! करभः कनिष्ठातो मणिबन्धपर्यन्तं करस्य बहिर्भागस्तद्वत् निम्नोन्नते ऊरू यस्यास्तादृशि। गतिं गमनं प्रति विलम्बं कालक्षेपं मुञ्च त्यज। अनिलेन वायुना तरलश्चञ्चलो यः किसलयनिकरो नवपल्लवसमूहस्तत्स्वरूपेण लतानिकुरम्बं लतासमूहस्तव प्रेरणमिव करोति, किसलयस्पर्शच्छलेनासमञ्जसमसहमानो लतासमूहोऽपि त्वां प्रेरयतीति विलम्बो न कार्य इति ध्वनितम्। शाकुनशास्त्रे च–

'वामे मधुरवाक्पक्षी वृक्षः पल्लवितोऽग्रतः।
अनुकूलो वहन् वायुः प्रयाणे शुभसूचकः'।। इति।

'समूहे निकुरम्बमस्त्रियाम्' इत्यमरः। मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इत्यमरः। प्रेयोनामालङ्कारः।।४।।

नूपुरों का साथ देने के लिए भौंरे विकल हो उठे हैं। सुनो, अब तुम ध्यान दो कि कामदेव की बन्दीजन होकर कोकिल कूक उठी है। ये सब तुम्हारे अभिसार के मंगल के संकेत हैं।।३।।

देखो, सारी प्रकृति तुम्हें आगे ले जाने के लिए विकल है। लताकुंज मन्द-मन्द बयार में अपने किसलय के हाथों से तुम्हें सहारा दे रहे हैं, आगे चलो। अब विलम्ब न करो।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम्।
पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुचकुम्भम्।।५।।

अपि च—स्फुरितमित्यादि। अमुं कुचकुम्भं स्तनकलशं पृच्छ, सखी समीचीनमसमीचीनं वा वदतीति प्रश्नं कुरु। कीदृशम्? स्फुरितं सकम्पम्; कस्मादिव? अनङ्गस्य कामस्य यस्तरङ्ग ऊर्मिस्तद्वशादिव। अत्रानङ्गतरङ्गेत्यनेन तस्या रसतरङ्गिणीत्वमाक्षिप्यते। अन्योऽपि कुम्भो नद्यास्तरङ्गैः प्रेर्यमाणः सकम्पो भवतीत्ययमपि ते कुचकुम्भस्त्वयि रसतरङ्गिण्यामनङ्गतरङ्गैः प्रेरणादिव सकम्प इति भावः। इवशब्दोऽत्रोत्प्रेक्षाद्योतकः। पुनः कीदृशम्? मनोहरो यो मुक्ताहारः स एव विमला निर्मला जलधारा यत्र तादृशम्। अत्र स्तनोपरि स्थितस्य हारस्य जलधारत्वरूपणात् स्तनस्य पूर्णकलशत्वेन रूपणमाक्षिप्यते। पूर्णादेव कलशात्तरङ्गैरान्दोलने सति बहिर्जलधारा-निःसरणसम्भवात्। पुनः कीदृशम्? सूचितो हरेः कृष्णस्य विरहताप-हरणाद्धरिरिति परिरम्भ आलिङ्गनं येन तादृशम्। नारीणां स्तनकम्पः प्रियसङ्गमं सूचयतीति शाकुनिकाः। तदुक्तम्–'नित्यं नार्याः स्तने कम्पः प्रियसङ्गमसूचकः' इति। पूर्णकलशत्वेन स्तनरूपणमपि यात्रायां पूर्णकलशदर्शनं शुभमिति सूचनाय।।५।।

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम्।
चण्डि! रसितरसनारवडिण्डिममभिसर सरसमलज्जम्।।६।।

सख्याः सकाशाल्लज्जमानां प्रत्याह—अधिगतमित्यादि। इदं तव वपुः सखीभिरतिशयेन रतिरणाय सुरतसङ्ग्रामाय सज्जं कृतालङ्करणादि-संविधानमधिगतं ज्ञातम्। अथवा सखीभिरिदं तव वपुर्बहुधा रतिरणे सज्जमधि; इदानीं तासां का लज्जेति भावः। अतो हे चण्डि! रति-

---

चलते समय तुम्हारे पैरों का ऊपरी हिस्सा हथेली या हथेली की ढलान लगता है। तुम और प्रमाण न ढूँढ़ो, अपने भीतर ही प्रमाण पाओ कि कितने हर्ष का सागर उमड़ रहा है। तुम्हारे कुचकलश फरक रहे हैं, मानो काम तरंगायित हो उठा हो। वे यह सूचना दे रहे हैं कि इन्हीं के सहारे हरि प्यार के समुद्र में तैर पायेंगे। तुम इन्हीं कुचकलशों से पूछो, जो मनोहारी हैं, जहाँ रस की धार बह रही है।।५।।

तुम मेरी बात न सुनो, तुम अपने ही अंगों से प्रमाण पाओ कि तुम्हारी अभिलाषा हद से आगे चली गयी है। प्यारी सखि, भोली-भाली सखी, अब जान लो कि तुम्हारे भीतर मिलने की पूरी तैयारी हो चुकी है, तुम अब क्यों ठहरी हुई हो। प्यारी सखि, कैसा कोप है तुम्हारा, जो इतना सब कुछ हो गया, सारी तैयारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रणरङ्गकर्कशे। अलज्जं निःशङ्कं सरसं सोत्साहम् अथ च रसः शृङ्गाररसस्तत्सहितं सरागं वा रसितः शब्दायमानकृतो रसनायाः काञ्च्याः रवो ध्वनिः डिण्डिमो वाद्यविशेषो यत्र एवं यथा स्यात्तथाऽभिसर, श्रीकृष्णाभिमुखं सुरतरणसङ्केतभूमिमुपैहि। अन्यत्रापि सोत्साहरणे डिण्डिमस्ताड्यत एवेति ध्वनितम्। अभिरमेति पाठे अलज्जं लज्जारहितं श्रीकृष्णेन सह सुरतं विधेहि। सम्भोगादौ लज्जाया अनुपयोगत्वाद् अलज्जमित्युक्तम्। किञ्च, क्वचिदात्मनेपदिनोऽपि परस्मैपदिन एव यथा चलद्राधां राधामित्यादि बलद्राधामित्येतत्पदं दुर्गसिंहटीकायां प्रमाणीकृतम्, तथैवाभिरमेत्यपि पदं ज्ञेयम्। तत्र क्रियां विशिनष्टि–सरसमिति। हावभावमोट्टायितकुट्टमितैरेभिः रसः शृङ्गारस्तत् सहितं यथा स्यात्तथा। पुनः कथं यथा स्यात्? रसितरसनारवडिण्डिमं यथा स्यात्। अनेन विपरीतसुरतमिति ध्वनितम्। ननु सखीभिर्लज्जयामि? तत्राह–सखीभिः ज्ञातमेव। अतो विलम्बो न कार्य इति भावः।।६।।

स्मरशरसुभगनखेन करेण सखीमवलम्ब्य सलीलम्।
चल वलयक्वणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम्।।७।।

तदेवाह—स्मरेत्यादि। हे सखि! करेण सखीमवलम्ब्य सलीलं लीलासहितं यथा स्यादेवं चल गच्छ। कीदृशेन करेण? स्मरस्य कामस्य ये शरास्तद्वत् सुभगाः सुन्दरा नखा यस्मिन् तादृशेन। अन्यस्मिन्नपि रणे शस्त्राणि भवन्ति, रतिरणे तु नखा एव स्मरस्य शस्त्राणीति भावः। अथ च वलयक्वणितैः कङ्कणशब्दैर्हरिमपि निजगतिशीलं स्वकीयगमनस्वभावं स्वरूपं वा। अथवा गतिं प्राप्तिं शीलं चरित्रमवबोधय ज्ञापय। अन्यत्रापि समीचीनो योद्धा

हो गयी और अभी भी तुम ऐसी ठसक में पड़ी हो, चल नहीं पा रही हो। सारी सखियों ने तुम्हें रति-केलि के लिए पूरी तरह तुम्हारे शरीर को सन्नद्ध कर दिया है, जैसे किसी युद्ध के वीर को तैयार किया जाता है। तुम्हारी करधनी ऐसी बज रही है, जैसे तुम्हारी जययात्रा की दुन्दुभी बज रही हो। चलो अभिसार के लिए निकल पड़ो, लाज छोड़ो, अपने भीतर-बाहर इस रस का प्रवाह देखो, उसी में बह चलो।।६।।

यदि तुम बड़ी निढाल हो, तो यही नाटक करो कि सखी का अवलम्बन ले लो। अपने कोमल हाथों से उसका अवलम्बन ले लो। यह हाथ दिखने में ही कोमल है, यह नख तो काम के बाण की तरह से वेधक है और हरि वेध्य होनेवाले हैं। अपने कंकण की ध्वनि से, अपनी चूड़ियों की झंकार से जताओ, हम आ रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिभटमवहितं कृत्वैव युध्यत इति ध्वनितम्। निगदितशीलमिति पाठे कथितस्वभावमित्यर्थः।।७।।

श्रीजयदेवभणितमधरीकृतहारमुदासितवामम्।
हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतु कण्ठतटीमविरामम्।।८।।

श्रीजयदेवेति। इदं श्रीजयदेवेन भणितं हरिविनिहितमनसां हरौ विनिहितं तत्परं मनो येषां मादृशानामविराममनवरतं कण्ठतटीमधितिष्ठतु, कण्ठदेशे वसत्वित्यर्थः। कीदृशम्? अधरीकृतः स्वगुणैर्हीनः कृतो हारो येन तादृशम्। पुनः कीदृशम्? उदासिता स्वमार्गेण तिरस्कृता वामा येन तादृशम्। अविराममिति भणितमित्यस्य विशेषणं वा। कीदृशम्? नित्यमित्यर्थः। कण्ठस्थितस्य हारस्य वामायाश्च विषयिणां भाप्रदत्वं सम्पदत्वं च भवति, श्रीजयदेवस्य भणितं महत्तमैः कण्ठे धृते तस्य माधुर्यास्वादनेन तयोस्तिरस्कारो जायत इति भावः।।८।।

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि! समागत्येति सञ्चिन्तयन्।
स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति
प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिरतमः पुञ्जे निकुञ्जे प्रियः।।७०।।

पुनरपि तस्योत्कण्ठाधिक्यं कथयन्ती त्वरयति—सेत्यादि। हे सखि! सा राधा आगत्य मां द्रक्ष्यति ईक्षिष्यते, दृष्ट्वापि, मां स्मरकथां स्मरक्षोभेण स्खलितमधुरवक्रोक्तिं कन्दर्पकेलिसूचिकां कामकथां वक्ष्यति कथयिष्यति।

वे अपनी तैयारी में लगे हैं, अपने मन की अभिलाषा पूरी करने में लगे हैं। उन्हें जताओ कि मेरी भी अभिलाषा है, उसे भी पूरी होना है।।७।।

जयदेव का यह गीत जिनका चित्त हरि में लगा हुआ है, ऐसे लगों के कण्ठ में विराजे, सदा-सदा के लिए विराजे और हरि के ऊपर हो जाय।।८।।

यह अष्टपदी सौन्दर्य के रस का उद्घाटन करती है। राग के भीतरी परतों को खोल रही है। इस प्रकार शरीर और चित्त एक-दूसरे का साथ नहीं दे पाते। राग-व्यापार की यही विचित्रता होती है। पहला स्थगित होता है, तो दूसरा उमगता है और एक क्षण आता है कि दोनों नहीं रहते, केवल उनके स्थान पर प्यार रह जाता है। इसके बाद चार श्लोक हैं, जिनमें तीन में तो अभिसार के लिए आ रही राधा का तथा श्रीकृष्ण की तैयारी का वर्णन है। चौथे में अगली अष्टपदी की भूमिका का वाक्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मरालापं कृत्वा सा प्रत्यङ्गं प्रत्यवयवं ममालिङ्गनैः प्रीतिं यास्यति। प्रीतियुक्तापि मया सह रंस्यते केलिं करिष्यतीति चिन्ताकुलः स कृष्णः स्थिरतमः पुञ्जे स्थिरान्धकारसमूहे निकुञ्जे त्वां पश्यति, समागमसाध्वसेन वेपते, पुलकयति अङ्गानीति अर्थात् तवालिङ्गनं विभाव्य स्पर्शसुखेन रोमाञ्चयुक्तो भवतीत्यर्थः। आनन्दति इति सम्भोगक्रीडां परिकल्प्यानन्दयुक्तो भवति। तेनैव सम्भोगश्रमेण स्विद्यति प्रस्वेदयुक्तो भवति। पश्चात् सुरतान्ते पुनरपि सतृष्णं दृष्ट्वाऽनिच्छयागच्छन्ती प्रत्युद्गमनं कृत्वानुगच्छति। त्वामदृष्ट्वा मूर्च्छति मूर्च्छां प्राप्नोति। अथवा स प्रियतमोऽत्युत्कण्ठतया त्वां परोक्षेऽपि दृष्ट्वा प्रत्युत्थानं करोति, दर्शनेन निर्वृतो भूत्वा कम्पपुलकस्वेदादिसात्त्विकविकारान् प्रकटयतीत्यर्थः। साक्षात्समागमे कीदृशो रसोदयो भविष्यतीति केन वक्तुं शक्यते? अतः शीघ्रं गन्तव्यमिति भावः। प्रत्यङ्गमालिङ्गनेन वृक्षाधिरूढलक्षणमालिङ्गनमुक्तम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, दीपकालङ्कारः।।७०।।

अक्ष्णोर्निक्षिपदञ्जनं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावलीं
मूर्ध्नि श्यामसरोजदाम कुचयोः कस्तूरिकापत्रकम्।
धूर्त्तानामभिसारसत्वरहृदां विष्वङ्निकुञ्जे सखि
ध्वान्तं नीलनिचोलचारु सुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति।।७१।।

श्रीकृष्णस्य प्रेमानुवर्ण्येदानीमभिसारोचितनिविडान्धकारस्योद्दीपनत्वमनुवर्णयन्ती पुनरपि त्वरयति—अक्ष्णोरित्यादि। हे सखि! ध्वान्तमन्धकारो निकुञ्जे लतामण्डपे विष्वक् सर्वतः सुदृशां सुन्दरलोचनानां धूर्त्तानां परवञ्चकानामभिसारसत्वरहृदामभिसारे सत्वरं तीव्रं हृदयं यासां परम-

---

हरि सोच रहैं हैं–'राधा आ रही है, मुझे देखेगी, तो मुझसे बात नहीं करेगी, प्यार की बात, अंग-अंग का आलिंगन कर प्यार करेगी। कितनी प्रसन्न होगी, आयेगी तो कितना आनन्द देगी।' यह सब सोचते-सोचते वे उत्कण्ठा से आकुल हो जाते हैं। यह वर्णन करते हुए सखी कहती है–'तुमको जब देखेंगे, तो पुलकित हो उठेंगे, आनन्दित हो उठेंगे, वे जब देखेंगे कि तुम पसीने-पसीने हो रही हो। तुम्हें देखेंगे कि तुम सँभल कर उठ रही हो, तो वे मोहित हो जायेंगे। तुम्हारे प्रिय ऐसे निकुंज में तुम्हारी बाट जोह रहे हैं, जहाँ सारे विश्व का अन्धकार सिमट आया है।।७०।।

घनी काली रात आँखों में अंजन बन रही है, कानों में तमाल के पत्रों के कुण्डल बना रही है, सिर पर नीलकमल की माला बन रही है, स्तनों पर कस्तूरी की चित्ररचना बन रही है। हर एक झुरमुट में अत्यन्त चतुर रसिकों के अभिसार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विदग्धविलासिनीनामित्यर्थः। तासां प्रत्यङ्गं प्रत्यवयवमालिङ्गति आश्लिष्यति। किं कुर्वन्? अक्ष्णोर्नयनयोरञ्जनं कज्जलं निक्षिपदर्पयत्, श्रवणयोः श्रोत्रयोस्तापिच्छगुच्छावलीं तमालस्य स्तवकपरम्परां निक्षिपत्। मूर्ध्नि मस्तके श्यामसरोजदाम नीलकमलमालां निक्षिपत्। कुचयोः स्तनयोः कस्तूरिकापत्रकं मृगमदचित्ररचनां निक्षिपत्। कीदृशं ध्वान्तम्? नीलनिचोलचारु श्यामप्रच्छदवत् सुन्दरमभिसारोचितवस्त्रभूषणादिकं सर्वं ध्वान्तमेव करोतीत्यर्थः। अतो भूषादिनिर्माणेनापि कालातिक्रमो न युक्त इति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तथा च स्त्रीणामलङ्कारादिरचनाधिकारो नपुंसकादीनामेवेति नपुंसकनिर्देशेन ध्वनितम्। अपि च श्यामसुन्दरेणैव सर्वं भूषादिकं सम्पादनीयमित्यलं मण्डनविलम्बेनेति तत्सादृश्यं ध्वनितम्। 'धूर्तः स्याद्वञ्चके लोले च'।।७१।।

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-
माबद्धरेखमभितो रुचिमञ्जरीभिः।
एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति।।७२।।

किञ्च, भवादृशीनां प्रेमपरीक्षाकारणमप्येतदित्याह—काश्मीरेति। काश्मीरवत् कुङ्कुमदलवद् गौरं वपुः शरीरं यासां तादृशीनामभिसारिकाणामभिसारपराणां नायिकानाम् अभितः सर्वतः रुचिमञ्जरीभिः कान्तिपरम्पराभिः आबद्धरेखमाबद्धा रेखा येन तादृशम्। एतत्तमालदलनीलतमं तमालदलवत् पल्लववद् अतिशयेन नीलं तमिस्रं तमस्तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तासामभिसारिकाणां यत् प्रेम तदेव हेम स्वर्णं तस्य निकषोपलतां कषपाषाणतां तनोति विस्तारयति, परमकान्तिमतीनामेतादृश्यपि

के लिए पूरा वातावरण रचा रही है यह रात। यह रात ही नील वसन हो रही है और अंग-अंग को लपेट रही है अपने निस्सीम विस्तार में, ऐसी रात में क्या लाज, क्या संकोच।।७१।।

जो अभिसारिकाएँ केसर की तरह कान्तिवाली हैं, उनके लिए यह तमाल की पत्तियों का घना अन्धकार, उन पत्तियों की छाया से घना हुआ अन्धकार ऐसा लगता है कि कसौटी का पत्थर अपने को बनाकर प्रस्तुत कर रहा है, जिस पर इन सुन्दरियों का, इन केसरदल-सरीखी सुन्दरियों के प्रेम का सोना परखा जायेगा। सोने का रंग ही कसौटी पर परखा जाता है, कसौटी का रंग सोने पर नहीं चढ़ता। इसलिए यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाढान्धकारे कान्तारे सर्वमुपेक्ष्य कान्ताभिसारप्रस्थाने प्रेम्णः शुद्धिः परीक्ष्यत इति भावः।।७२।।

हारावली-तरल-काञ्चन-काञ्चिदाम-
मञ्जीर-कङ्कण-मणिद्युति-दीपितस्य।
द्वारे निकुञ्ज-निलयस्य हरिं निरीक्ष्य
व्रीडावतीमथ सखीमियमित्युवाच।।७३।।

परमविदग्धा सखी रसोद्बोधवचनकदम्बैः सङ्केतनिकुञ्जसमीपमानीय लज्जावतीं पुनरपि निकुञ्जप्रवेशाय दिशति—हारावलीत्यादि। अथानन्तरमियं सखी श्रीराधामिति वक्ष्यमाणमुवाच। कीदृशीम्? निकुञ्जनिलयस्य निकुञ्ज एव निलयो निभृतगृहं तस्य द्वारे हरिं श्रीकृष्णं निरीक्ष्य दृष्ट्वा व्रीडावतीं लज्जायुक्तां प्रथमसमागमे कामिनीनां लज्जा भवतीति लज्जावतीत्युक्तम्। कीदृशस्य निकुञ्जनिलयस्य? हारावल्यो हारपङ्क्तयस्तरलो मध्यमणिः काञ्चनकाञ्चिदाम स्वर्णखचितमेखलादाम मञ्जीरो नूपुरः कङ्कणः करभूषणमेतेषु खचिता ये मणयस्तेषां द्युत्या दीपितस्य प्रकाशितस्य। 'तरलश्चञ्चले षिड्गे हारमध्यमणावपि' इति विश्वः। 'निलयश्चोरमन्दिरम्' इति रत्नकोषः।।७३।।

गीतम्-२१

[वराडीरागेण मण्ठतालेन]

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने।
विलस रतिरभसहसितवदने।।
प्रविश राधे! माधवसमीपमिह।।ध्रुवम्।।१।।

राधा के प्रेम की परीक्षा है। राधा का प्रेम श्रीकृष्ण में प्रतीत होता है, लेकिन श्रीकृष्ण का प्रेम राधा में बाहर प्रतीत नहीं होता, वह भीतर समा जाता है'।।७२।।

यह सब सुनकर राधा लजा जाती हैं। निकुंज तक पहुँचती हैं, तो वे देखती हैं कि निकुंज उनके आभूषण की कान्ति से, उनके मुक्ताहार की कान्ति से, सोने की करधनी की कान्ति से, पुखराज और कान की मणियों की कान्ति से उनके पहुँचते ही केलिगृह का द्वार दीपित हो उठता है और वहाँ प्रतीक्षारत श्रीकृष्ण उस आलोक में दिख जाते हैं। इससे और लाज में भर जाती हैं राधा। सखी अब उन्हें पैर आगे रखने के लिए अनुरोध करती है।।७३।।

सखी ने अब श्रीराधा को केलिगृह में प्रवेश करने के लिए कहा—'राधा, अब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदेव गीतेनाह—मञ्जुतरेति। गीतस्यास्य वराडीरागः, मण्ठतालः। गीतार्थस्तु–हे राधे माधवसमीपं कृष्णान्तिकं प्रविश। इह मञ्जुतर-कुञ्जतलकेलिसदने मञ्जुतरं यत् कुञ्जतलं निकुञ्जाभ्यन्तरदेशस्तदेव केलिसदनं क्रीडामन्दिरं तत्र विलस विलासं कुरु। कीदृशि? रतिरभसेन सुरतोत्साहेन हसितं हास्ययुक्तं वदनं मुखं यस्यास्तादृशि। रतिरभसहसितं विद्यतेऽस्यासौ रतिरभसहसितवान् कृष्णस्तस्य अनः प्राणो यस्यां सा तत्सम्बोधनमिति वा; श्रीकृष्णस्य प्राणरूपे इत्यर्थः। अथ इह निकुञ्जे प्रविश, माधवसमीपं विलस सम्भोगं कुरु! हे मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने मनोहरतरकुञ्जतलमेव क्रीडागृहं यस्यास्तादृशि। अथवा इह माधवे विलस। कीदृशे? मञ्जुतरकुञ्जतल-केलिसदनं यस्य तादृशे। पुनः कीदृशे? रतिरभसेन हसितं वदनं यस्य तादृशे। प्रविश राधे माधवसमीपमिह विलसेत्यन्तं ध्रुवपदम्। प्रतिपदमनुवर्त्तमानत्वात्। मा शोभा तस्य धवो माधवः सौन्दर्यनिधान इत्यर्थः। वल्लभायाः समागमे निरवधिसौन्दर्यप्रकटनान्माधवपदमुपात्तम्। कुञ्जपाठे प्रकृष्टकुञ्ज इत्यर्थः।।१।।

अपि च–

नवलसदशोकदलशयनसारे।
विलस कुचकलशतरलहारे।।२।।

नवं नूतनं लसत् शोभायमानं यदशोकदलमशोकपत्रं तन्निर्मितशयनं शय्या तदेव सारो युवतीनां महाधनं यत्र तादृशे। माधवसमीपं प्रविलसेत्यन्वयः। एवम्भूतश्रेष्ठशय्यायां प्रविलस चेति वा। कीदृशि? कुच-कलशयोः स्तनकुम्भयोस्तरलश्चञ्चलो हारो यस्यास्तादृशि। अपरस्मिन्नपि विलासगृहे महाधनं तिष्ठतीति ध्वनितम्। कुचकलशतरलहारे इत्यनेन विपरीतसुरतं सूचितम्। तत्र कलशहारयोः सम्भोगारम्भे मङ्गलाचरणमिव ध्वनितम्। अथवा नवलसदशोकदलैः कृष्णनिर्मितशय्यायां सारं श्रैष्ठ्यं यस्याः सा भावप्रधाननिर्देशः। तस्य शयनस्वरूपे इत्यपि तस्य एव सम्बोधनम्। अथवा तादृशं शयनमेव सारो यस्यास्तादृशि। अथवा इह माधवे विलस, कीदृशे? त्वदर्थे रचितशयनमेव सारो यस्य तादृशे। अथवा नव-

---

तुम माधव के समीप चलो, इस केलिगृह में प्रवेश करो। कितना तो सुन्दर है यह झुरमुट के बीच रचा केलिगृह। अब तो तुम्हारे मुँह पर प्यार के आवेग की हँसी आये और तुम विलास से उतरो।।१।।

तुम्हारी सेज नये-नये निकले अशोक के पत्तों से सजी है। ऐसी सेज, ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लसदशोकदलशय्यायां वराङ्गनाया महाधने, पुनः कीदृशे? पुरुषकर्त्तृक-सम्भोगादौ त्वत्कुचकलशयोरुपरि चञ्चलो हारो यस्य तादृशे। अशोकदल-पदेनाशेषविरहदुःखहानिः आनन्दावाप्तिश्च भविष्यतीति ध्वनितम्।।२।।

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे।
विलस कुसुमसुकुमारदेहे।।३।।

कुसुमचयेति। हे राधे इह कुसुमचयेन पुष्पसमूहेन विचित्रवितानैर्विविध-मण्डनादिभिः शुचि अनुपहतमनुपभुक्तम्। अथवा शुचिः शृङ्गारस्तत्स्वरूपं शृङ्गारप्रधानानां भोग्ययोग्यं वा कृष्णेन निर्मितं त्वत्सुकुमारो देहो यस्यास्तादृशि। अथवा इह माधवे विलस, कीदृशे? कुसुमचयेन रचितं शुचि वासगेहं येन तादृशे। पुनः कीदृशे? कुसुमादपि सुकुमारो देहो यस्य तादृशे। अथवा कुसुमचयेन रचितमर्थात् कृष्णेन रचितं वासगृहं यस्य तादृशीति सम्बोधनम्, प्रविश राधे! प्रकृष्टो विसरः प्रणयः आ सम्यक् धः कम्पः प्रकृष्टसोद्दीप्तप्रणयकम्पः समग्रसात्त्विकविकारो यस्यास्तादृशि–इत्यपि सम्बोधनम्। श्लेषकथने सषशानामभेद इत्यालङ्कारिकाः। तथा च तादृशशय्यारचनेन तस्य त्वयि भावः, त्वमपि तत्समीपे उदितसात्त्विक-विकारेति विलसेत्यर्थः। 'युद्धे धः कम्पने तथा' इति। 'प्रसरः प्रणये वेगे विसरः प्रसरेऽम्बुजे' इति विश्वः। हे कुसुमसुकुमारदेहे! कौ पृथिव्यां सुशोभना मा शोभा यस्य स कुसुमः श्रीकृष्णस्तस्य सुतरां कुः अभीष्टत्वेनाश्रयो मारो यो कामस्तद्रूपो देहो यस्यास्तादृशि। कृष्णाभि-काङ्क्षितस्वरूपे इत्यर्थः।।३।।

चलमलयवनपवनसुरभिशीते।
विलस रतिवलितललितगीते।।४।।

वसन्त की ओर से भेंट की गयी सेज कहाँ और रची गयी होगी? इस सेज पर विलसो और देखो, तुम्हारे वक्षःस्थल पर हार चंचल हो रहा है।।२।।

संकेत दे रहा है कि तुम भी रतिचपल हो। पूरा-का-पूरा केलिमण्डप चुने हुए फूलों से रचा गया है और उन फूलों की चमक से दीपित हो रहा है। इसमें और कौन विलास करेगा, सिवाय तुम्हारे, जो स्वयं फूलों की तरह कोमल देहवाली है। चलो, निर्भय प्रवेश करो। यह तुम्हारा ही घर है।।३।।

इसमें झिर-झिर दखिनइया बयार और उसके साथ शीतल सुगन्ध आ रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलेत्यादि। हे राधे! माधवसमीपं चल व्रज, इह केलिसदने प्रविश विलस च। कीदृशे केलिसदने? मलयवनसम्बन्धी यः पवनो वायुस्तेन सुरभौ शीते च। अथवा चलश्चञ्चलो यो मलयपवनवनस्तेन। मनांसि चालयतीति चलपदेन मान्द्यमेवोक्तम्। कीदृशि? रतौ वलितं वर्द्धितं ललितं हावविशेष एव गीतं यया तादृशि। अथवा रतिवलिते रतौ मनोहरे 'कलवली कामधेनुः' इति ललितगीते ललितं कमनीयं गीतं गानं यस्यास्तादृशि। रतिवलिता चासौ ललितगीता च तस्याः सम्बोधनम्। रसवलितपाठे रसवलितं शृङ्गारसम्भिन्नं ललितं मनोहरं गीतं यस्यास्तादृशि। रससहितं हावविशेषो गीतं यस्यास्तादृशि वा। अथवा इह कृष्णे विलस। कीदृशे? रत्या तव प्रेम्णा वलितं सम्भक्तं ललितं मनोहरं गीतं तव गुणगानं यस्य तादृशे, रसवलितं वा। ललितलक्षणं तु–

'नानाविधमनाहार्यं स्वभावेन मनोहरम्।
शृङ्गारचेष्टितं स्त्रीणां ललितं सम्प्रचक्षते'।। इति।।४।।

विततबहुवल्लिनवपल्लवघने।
विलस चिरमलसपीनजघने।।५।।

विततेत्यादि। हे राधे! माधवसमीपं प्रविश। इह केलिसदने चिरं विलस च। कीदृशे? विततैर्विस्तीर्णैर्बहुभिर्वल्लीनां लतानां नवैः पल्लवैर्घने सान्द्रे एवम्भूते शयने वा। कीदृशि? अलसपीनजघने अलसे मन्थरे पीने मांसले जघने यस्यास्तादृशि। अनेन निर्भयं बहुकालं शय्यायां सम्भोगसुखानुभवो ध्वनित इति व्यङ्ग्यः।।५।।

मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे।
विलस मदनरभसरसभावे।।६।।

मधुमुदितेत्यादि। कीदृशे केलिसदने? मधुना पुष्परसेन मुदितान्यानन्दितानि यानि मधुपकुलानि भ्रमरसमूहास्तैः कलितो रावः शब्दो यत्र तादृशे। अथवा

यह तो तुम्हारे भीतर के रस को प्राणों के द्वारा गीतों में मुखरित करने का क्षण आया है। गाओ, प्रेम के गीत गाओ।।४।।

ऐसा लगता है जैसे चारों ओर से वसन्त में परम आनन्द पाने वाले भौरों ने संगीत का समा बाँध दिया हो। यह एक बहुत बड़े आनन्द की भूमिका है। बहुत बड़े प्रणयमिलन का मंगल है।।५।।

प्रसन्न होकर मुस्कराओ कि तुम्हारे सुन्दर दाँतों की छवि से सब कुछ दीपित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुमुदितमधुपकुलवत् त्वदागमनमहोत्सवे रावः शब्दो यस्य तादृशे माधवे। तस्याः श्रीराधिकायाः सम्बोधनं वा। कीदृशि? मदनस्य कामस्य यो रसः शृङ्गाराख्यस्तत्र यो रभस उत्साहस्तेन उपलक्षितो भावो यस्यास्तादृशि। अथवा इह माधवे विलस। कीदृशे? मदनरसेन यो रभसस्तेनोपलक्षितो भावो यस्य तादृशे। सरसभावे इति पाठे सरसः सरागो भावोऽभिप्रायो यस्याः। यद्यपि मधुपेत्यनेनैव मधुपानं प्राप्तम्, तथापि तदानीन्तनमधुपानप्राप्तये मुदितमित्युपात्तम्, मधुना वसन्ते वा।।६।।

मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे।
विलस दशनरुचिरुचिरशिखरे।।७।।

मधुरतरेति। कीदृशे केलिसदने? मधुरतरोऽतिशयेन मधुरो यः पिकनिकराणां कोकिलसमूहानां निनदः शब्दस्तेन मुखरे वाचाले। अथवा श्रीराधायाः सम्बोधनम्, तदा मधुरतरः पिकनिकराणामिव यो निनदः सुरते कण्ठकूजितं तेन मुखरे। पुनः कीदृशि? दशनरुचिरेव दन्तकान्तिरेव रुचिरं शिखरं माणिक्यविशेषो यस्यास्तादृशि। अथवा दशनरुचिवद् रुचिरं शिखरं माणिक्यविशेषो यस्यास्तादृशि। द्वितीयपक्षे विपर्यासोपमा बोध्या। तदुक्तं दण्डिना (काव्यादर्शे-२।१८)-त्वदाननमिवोन्निद्रमरविन्दमभूदिति। शिखरादपि रुचिरा दन्तकान्तिरित्यर्थः। अथवा इह माधवे विलस। कीदृशे? मधुरतरः पिकनिकराणामिव त्वत्सङ्गमे गोष्ठीशब्दस्तेन मुखरे। अनेन गोष्ठीष्वतृप्तिः कथिता। पुनः कीदृशे? दशनरुचिरशिखरे। मधुतरलपाठे मधुना तरलश्चञ्चल इति। 'पक्वदाडिमबीजाभं माणिक्यं शिखरं विदुः' इति शाश्वतः।।७।।

विहितपद्मावतीसुखसमाजे।
कुरु मुरारे मङ्गलशतानि।।
भणति जयदेवकविराजराजे।।८।।

हो जाय। राधा! इस केलिगृह में इतनी लतायें और उनके इतने पल्लव छाये हुए हैं।।६।।

इसमें मन भर विलसो, देर-देर तक विलसो, तुम्हारी जाँघें अलसायी हुई पहले से ही यही पुकार रही हैं, जयदेव की अष्टपदी के द्वारा हे कृष्ण! सौ-सौ मंगल रचो'।।७।।

श्री जयदेव स्वयं श्रीराधा से अनुरोध कर रहे हैं-जो लक्ष्मी की सारी सम्पदा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विहितेत्यादि। हे मुरारे! जयदेवकविराजराजे मङ्गलशतानि कुरु। कीदृशे? भणति तव गुणान् वदति। पुनः कीदृशे? विहितः कृतः पद्मावत्याः श्रीवृन्दावनलक्ष्म्याः सुखसमाजः सुखसमूहो येन तादृशे। अथवा कविराजराजे भणति गायति सति। किम्भूते? विहितः प्रियायाः सुखरूपः समाजः सङ्गमो येन तादृशे। भावविशेषोक्तिरियम्। 'कुरु सुधीरे मङ्गलशतानि' इति पाठे- हे सुधीरे श्रीराधे! जयदेवे मङ्गलशतानि कुरु। कीदृशे? विहितस्तव सुखरूपः समाजः प्रियसङ्गमो येन तादृशे। किञ्च कविराजराज इति प्रौढोऽयं कविः, तदुक्तम् (र.सु. ३।१४७)-'यथोचितनिजोत्कर्षवादी प्रौढ इतीरितम्' इति। तद्रहस्यवर्णनेन सर्वाधिक्यादपि युक्तमेव कविराजराज इति।।८।।

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधबिम्बाधरम्।
अस्याङ्गं तदलङ्कुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्मीलव-
क्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः।।७४।।

वैचित्र्यान्तरेण प्रेरयति—त्वामित्यादि। अथ कृष्णः अन्याभिः सुन्दरीभिर्दुष्प्रापः, त्वया सुलभत्वेन वशीकृतः, त्वां चित्तेन मनसा वहन् धारयन् अतिश्रान्तोऽतिशयेन श्रमयुक्तो जातः। कन्दर्पेण कामेन च भृशमतिशयेन तापितः सन्तापितः। अतिसूक्ष्मे चित्ते पीनस्तनजघनभारधारणेन श्रमो युक्त एव। अन्योऽपि यो धत्ते गुरुतरभारं तस्याप्यतिश्रमो भवतीति भावः। अतस्तवैव सुधयामृतेन सम्बाधं सङ्कटं बिम्बाधरं बिम्बफलसदृशमधरमोष्ठं पातुमिच्छर्ति-एतदपि युक्तमेव, श्रान्तस्य तपस्य पानेच्छा पथ्यमेव। तत्तस्माद्धेतोरस्य कृष्णस्याङ्कं क्रोडं क्षणं त्वमलङ्कुरु भूषय।

सारा सुख लेकर आज उपस्थित हैं, कि आप मुरारि के लिए सौ-सौ प्रकार के मंगलविधान करो, उनका मंगल तुम्हारे साथ रमने में है और तुम्हारे रमने के प्रकार से ही विश्व का मंगल होगा।

जयदेव अपनी इस अष्टपदी से तुम्हें उनके, माधव के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। फिर श्रीकृष्ण की ओर अभिमुख होकर कहते हैं, तुम मन में जाने कब से इतनी कल्पनाएँ वहन करते-करते थक गये हो, इतने भीतर से अभितप्त हो गये हो।।८।।

फिर राधा को सम्बोधित करके कहते हैं, श्रीकृष्ण तुम्हें चित्त में इतनी देर से वहन कर रहे हैं कि अब थक गये हैं, और भीतर-ही-भीतर एकदम अभितप्त हो गये हैं। अब तुम्हारे अमृत को भी लज्जित करने वाली अधरों की मधुराई भरपेट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्वयं बहुभार्यानुरक्तोऽतस्तदङ्कारोहणाद् बिभेमीत्यत आह–इह कृष्णे कुतः कस्माद्धेतोः सम्भ्रमः भयम्? कीदृशे? उपसेवितं त्वदीयचरणकमलं येन तादृशे। उपसेवितेति नित्यपार्श्ववर्त्तिनीति भावः। तत्रापि हेतुगर्भं विशेषणमाह–भ्रूक्षेपस्य भ्रूचालनस्य या लक्ष्मीः सम्पत् तस्या यो लेशस्तेन क्रीते दासजने सम्भ्रमो न युक्त इति भावः। 'सम्भ्रमः साध्वसेऽपि स्यात् संवेगादरयोरपि' इति विश्वः।।७४।।

सा ससाध्वसं सानन्दं गोविन्दे लोललोचना।
सिञ्जानमञ्जुमञ्जीरं प्रविवेश निवेशनम्।।७५।।

सेत्यादि। सा राधा निवेशनं क्रीडागृहं प्रविवेश प्रविष्टा; किं कुर्वाणा? मञ्जुर्मनोहरो यो मञ्जीरो नूपुरस्तत् शिञ्जाना सशब्दं कुर्वती। सिञ्जानमञ्जुमञ्जीरमिति पाठे सिञ्जानश्चासौ मञ्जुर्मञ्जीरश्च तद्यथा स्यादिति क्रियाविशेषणम्। प्रविवेशेति तन्मोहनाय किमपि हावादिकं प्रकटयन्ती विवेशेति भावः। कथं यथा स्यात्? ससाध्वसं साध्वससहितं सानन्दमानन्दसहितं च यथा स्यात्तथा। कीदृशी सा? गोविन्दे लोले चञ्चले लोचने यस्याः सा। सिञ्जाना मञ्जुमञ्जीरमित्यनेन कम्पः सात्त्विकस्तेन पादस्खलनम्, हर्षसाध्वसौ व्यभिचारिभावौ, लोललोचने इत्यनेनानुभावः कटाक्षरूपः। यद्वा चापलो व्यभिचारिभावः।।७५।।

गीतम्- २२

[वराडीरागेण रूपकतालेन]

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गं
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम्।

छकना चाहते हैं। अब तुम राधा, इस अभिलाषी प्रिय के अंगों की शोभा बनो। एक क्षण अपनी भौंहों को हल्का-सा तिरछा करके तुमने इन्हें अपना क्रीत दास बना लिया है। ऐसे दास के ऊपर अपने चरण-कमल रखो। अब क्यों इतनी घबराहट?।।७४।।

इसके अनन्तर अगली अष्टपदी की भूमिका है। भीतर कुछ काँपती, कुछ उमगती श्रीराधा इधर-उधर देखते गोविन्द को निहारती, नूपुर झंकारती केलिगृह में प्रविष्ट हुईं। प्रविष्ट होते हुए उन्होंने श्रीकृष्ण को ऐसा पाया, जैसे वह पहले से ही अंग-अंग में राधा को ही धारण कर रहे हों।।७५।।

इस अष्टपदी में यह वर्णन किया गया है कि राधा किस प्रकार श्रीकृष्ण को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासं
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिकाशम्।।ध्रुवम्।।१।।

एवं दम्पत्योः समागमे रसोत्पत्तिरुक्ता। लीलागृहे प्रवेशं निरूप्य इदानीं दर्शनमहोत्सवेन रसविक्रियां गीतेनाह—राधावदनेत्यादि।

गीतस्यास्य वराडीरागः, रूपकतालः। गीतार्थस्तु–सा राधा हरिं कृष्णं ददर्श दृष्टवती। कीदृशम्? एकरसमेको मुख्यः शृङ्गाराख्यो रसो यस्य तम्। अथवा एक एव राधाविषयो रसः सर्वातिशयितरागो यस्य तम्; राधाया यादृशो रसः कृष्णस्यापि तादृश एवेति वा, समानशीलत्वात्। समानशीलव्यसनेषु सख्यमिति रसपोषणं भवतीति भावः। पुनः कीदृशम्? चिरं बहुकालं व्याप्य अभिलषितो वाञ्छितस्तत्सम्बन्धी विलासः केलिर्येन तम्। पुनः कीदृशम्? गुरुर्महान् यः प्रियाप्राप्त्या हर्ष आनन्दस्तस्य वशंवदमायत्तं वदनं यस्य तम्। अनेन उद्भटविकार उक्तः; संवरणायोग्यत्वेन तदधीनत्वात्। पुनः कीदृशम्? अनङ्गनिकाशं कामसदृशम्। अनङ्गविकाशमिति पाठे कामस्य विकाशः स्फूर्त्तिर्यस्य तम्। गुरुहर्षवशंवदवदनमित्यनेन हरेरनुरागाभिलषितविलासत्वे अवगते इति भावः। तदुक्तम् (हितोपदेशे)–

'आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनः'।। इति।

ध्रुवपदम्। अथ पदानि राधेत्यादि। पुनः कीदृशं हरिम्? राधाया यद्वदनं मुखं तस्य विलोकनेन वीक्षणेन विकसिता उल्लसिता विविधा नानाविधा विकाराः जृम्भणाङ्गक्षेपणकरविमर्शादिरूपास्त एव विभङ्गा विशिष्टोर्मयो यस्मिन् तम्। कमिव? जलनिधिमिव समुद्रमिव। कीदृशं जलनिधिम्? विधुमण्डलस्य चन्द्रमण्डलस्य दर्शनेन तरलिताश्चञ्चलीकृतास्तुङ्गा अत्युच्चास्तरङ्गा ऊर्मयो यस्य तादृशम्। तत्रागाधशृङ्गाररसाश्रयत्वेन कृष्णस्य जलनिधिसाम्यम्। राधामुखस्य स्वाह्लादकारित्वादिना चन्द्रसाम्यम्। जृम्भणादिरूपाङ्गविकारस्योत्तरोत्पन्नतया तरङ्गसाम्यं बोध्यम्। उपमालङ्कारश्च।।१।।

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरभ्य विदूरम्।
स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम्।।२।।

देखती हैं। इस अष्टपदी में श्रीकृष्ण की जितनी उपमाएँ दी गयी हैं, वे सभी विश्वसृष्टि के साथ एकाकार होने का कार्य करनेवाली हैं।।१।।

पहली उपमा तो उनकी उत्ताल समुद्र से है, जो चन्द्रमा को देखकर अपना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विकारानेवाह—हारमित्यादि। पुनः कीदृशं कृष्णम्? विदूरमतिशयेन परिरभ्यालिङ्ग्य उरसि हारं दधतं बिभ्राणम्। कीदृशं हारम्? अमलतरोऽतिशयेन विमलस्तारः शुद्धमौक्तिकं यत्र तादृशम्। कमिव? स्फुटतरः प्रकटतरो यः फेनसमूहस्तेन करम्बितं मिश्रितं यमुनाजलपूरमिव कालिन्दीप्रवाहमिव। तत्र कृष्णशरीरस्य श्यामस्निग्धतया सौन्दर्यपरम्परया च यमुनाप्रवाहसाम्यम्, हारस्य चातिशुभ्रतया फेनसमूहसाम्यं बोध्यम्। अत्र हारालिङ्गनेन स्वाभिलाषप्रकटनान्मोट्टायिताख्यो भावोऽत्र वर्णितः। तदुक्तं रसार्णवसुधाकरे (१।२०४)–'स्वाभिलाषप्रकटनान्मोट्टायितमितीरितम्'।

'तारो मुक्तादि-संशुद्धौ तरणे शुद्धमौक्तिके।
तारञ्च रजतेऽप्युच्चैः स्वरेऽप्यन्यवदीरितम्'।। इति विश्वः।

परिलम्बितदूरमिति पाठे अतिशयेन दीर्घमित्यर्थः। तदापि स एव भावः। उरसि धारणेनालिङ्गनप्राप्तेः। हारश्च श्रीराधासंसर्गी ज्ञेयः।।२।।

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम्।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम्।।३।।

पुनश्च कीदृशम्। श्यामलेत्यादि। श्यामलं नीलं मृदुलं कलेवरमण्डलं यस्य तम्, अत एवाधिगतमधिकं परिधेयत्वेन प्रियारूपसादृश्यात् ज्ञातं गौरं स्वर्णपीतं दुकूलं पट्टवस्त्रं येन तम्। अनेन गौराङ्ग्यास्तेन सह लतावेष्टनालिङ्गनेन परमशोभा भविष्यतीति ध्वनितम्। तदुक्तं रतिरहस्ये (आलि. ५)–

'प्रियमनुकृतवल्लीविभ्रमा वेष्टयन्ती,
द्रुममिव सरलाङ्गी मन्दसीत्कारदीर्घम्।
वदनमुदितखेलाक्रन्दमाचुम्बनार्थं,
नमयति विनताङ्गी यल्लतावेष्टितं तत्।।' इति।

नीलनलिनमिव श्यामकमलमिव। कीदृशम्? पीतो यः परागः पुष्परेणुस्तस्य पटलं समूहस्तस्य यो भरोऽतिशयस्तेन वलयितं वेष्टितं मूलं यस्य तादृशम्। अत्र कृष्णस्य स्निग्धत्वसौन्दर्यसौकुमार्यश्यामत्वेन नीलोत्पल-

---

स्वरूप खोकर विक्षुब्ध हो गया है। दूसरी उपमा उनकी यमुना के आपूरित जल-प्रवाह से दी गयी है, जिसके ऊपर उज्ज्वल हार फेन के समूह की तरह फैला दिखता है।।२।।

तीसरी उपमा उस नीलकमल से दी गयी है, जो पूर्ण रूप से विकसित हो गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साम्यम्, पीतपट्टाम्बरस्य च मूललग्नपीतपरागसाम्यम्। दृष्टान्तदार्ष्टान्ते-नैवोद्दीपनविभावश्च दर्शितः। उपमालङ्कारश्चापि। बहिर्मूले परागावृतत्वा-भावादद्भूतोपमेयम्। शरीरकान्त्याधिक्यात्तादृशी प्रतीतिरिति वा।।३।।

तरलदृगञ्चलवलनमनोहरवदनजनितरतिरागम्।
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम्।।४।।

तरलेत्यादि। तरलश्चञ्चलो दृगञ्चलः कटाक्षस्तस्य वलनेन मनोहरं सुन्दरं यद्वदनं तेन जनित उत्पादितो रतिरागो राधायाः सुरतेच्छा येन तादृशम्। अथवा कटाक्षयुक्तं सुन्दरं यद्वदनं श्रीराधायास्तेन उत्पादिता सम्भोगेच्छा यस्येति वा। अनेन कान्तादृष्टिरुक्ता, यथा–

'आपिबन्तीव दृष्ट्या या सविहासातिनिर्मला।
सभ्रूक्षेपकटाक्षा च कान्ता मन्मथवर्द्धिनी'।। इति।

कमिव? शरदि शरत्काले स्फुटकमलोदरे विकसितपद्मगर्भे खेलितं क्रीडितं खञ्जनयुगलं यत्र तादृशं तडागमिव। अत्र यौवनाविर्भावात् स्वच्छकान्तिमत्तया श्रीराधादर्शनात् संक्षुभिताशयत्वेन च रसाधारतयापि कृष्णस्य शरत्कालीनसरोवरसाम्यम्, वदनस्य विकसितपद्मसाम्यम्, तन्मध्ये चाञ्चल्येन विचित्रसौन्दर्येण च नेत्रयोः खञ्जरीटयुगसाम्यं युक्तमेव, शरत्काले जलाशयस्य कमलगर्भे खेलत्खञ्जनो दृष्टः सन् यथा द्रष्टुर्वाञ्छितं प्रयच्छति, एवं चलदपाङ्गं च कृष्णवदनदर्शनं श्रीराधाया वाञ्छितं केलिसुखं दास्यतीति शरत्कालीनपद्ममध्यस्थखञ्जनोपमा तेन ध्वनितम्। तदुक्तं वाराहसंहितायाम्–

'हेमसमीपसिताम्बरकमलोत्पलपूजितोपलब्धेषु।
'दधिपात्रधान्यकूटे दृष्टोऽभीष्टानि चेष्टते विहगः'।। इति।
'अब्जेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु, राज्यप्रदः कुशलदः शुचिशाद्वलेषु'।

'खञ्जरीटस्तु खञ्जनः' इत्यमरः। 'तडागस्तु जलाधारविशेषे' इति विश्वः। युक्तरूपकालङ्कारोऽयम्। तल्लक्षणम् (काव्यादर्शे-२।११)–

'स्मितपुष्पोज्ज्वलं लोलनेत्रभृङ्गमिदं मुखम्।
इति पुष्पद्विरेफाणां सङ्गत्या युक्तरूपकम्'।। इति।।४।।

है और पीले पराग से मण्डित हो गया है।।३।।

चौथी उपमा शरद् के उस सरोवर से दी गयी है, जिसमें एक खिले हुए कमल के बीच में खंजन का जोड़ा खेल रहा है।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वदनकमलपरिशीलनमिलितमिहिरसमकुण्डलशोभम्।
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभम्।।५।।

पुनः कीदृशं कृष्णम्? वदनकमलस्य मुखपद्मस्य परिशीलनाय प्रकाशनाय अनुभवाय वा मिलितौ यौ मिहिरौ सूर्यौ ताभ्यां समे कुण्डले ताभ्यां शोभा कान्तिर्यस्य तम्। अत्र कुण्डलयोर्नानामणिखचितत्वेन सूर्योपमा बोध्या। प्रियादर्शनेनातिविकसितपद्मोपमा वदनस्य। (काव्यादर्शे-२।३८) अभूतोपमेयम्–

'सर्वपद्मप्रभासारः समाहृत इव क्वचित्।
तवाननं बिभर्तीति तामभूतोपमां विदुः'।। इति।

पुनः कीदृशम्? स्मितस्येषद्धासस्य या रुचिः कान्तिस्तया रुचिरो मनोहरोऽथ च समुल्लसितो राधाधरपानोत्कण्ठया प्रस्फुरित ईषत्कम्पितो योऽधरपल्लवस्तेन कृतो राधाया रतिलोभः सुरतेच्छा येन तम्।।५।।

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरसकुसुमकेशम्।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम्।।६।।

पुनः कीदृशम्? शशिकिरणैश्चन्द्रकिरणैश्छुरितं सम्भिन्नमुदरमभ्यन्तरं यस्य तादृशो यो जलधरो मेघस्तद्वत् सुन्दराः सकुसुमाः पुष्पसहिताः केशा यस्य तम्। अत्र केशानां श्यामतया मेघसाम्यम्, तत्रस्थकुसुमानाञ्च मेघान्तश्चारिचन्द्रकिरणसाम्यं बोध्यम्। पुनः कीदृशम्? तिमिरेऽन्धकारे उदितं प्रकटीभूतं यच्चन्द्रमण्डलं शशिबिम्बं तद्वन्निर्मलस्य मलयजतिलकस्य निवेशो

पाँचवीं उपमा बादलों के बीच में से निकलते हुए चन्द्र की परिस्थिति से दी गयी है।।५।।

इस परिस्थिति में छोटे-छोटे बादल के टुकड़ों पर जब चाँदनी आलोकित होती है, तो वे जूही-चमेली के फूल बन जाते हैं और जहाँ नहीं पड़ती है, वे कजरारे बने रहते हैं और श्रीकृष्ण के केशपाश में फूलों के गुम्फन के उपमान बन जाते हैं। अन्तिम उपमा श्रीकृष्ण के तिलक की है, जो अन्धकार में उगते हुए चन्द्र से दी गयी है।

ये सारी उपमाएँ एक ही बात रेखांकित करती हैं कि श्रीकृष्ण पूरी समष्टि के चैतन्य-तत्त्व हैं, आनन्द-तत्त्व हैं और पूरी सृष्टि की सत्ता के ही सघन पुंजित रूपान्तर हैं, जिन्हें इस रूप में देखकर पाया जाय। उनके पाने के अनन्तर देखने वाली राधा फिर कैसे उस स्वरूप को न प्राप्त करें, जिसका संकेत गीतगोविन्द की अन्तिम अष्टपदी में किया गया है। देखना ही तो पाना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विन्यासो यस्य तादृशम्। अत्र श्यामसुन्दरस्य ललाटे मण्डलाकृतितिलकस्य गाढान्धकारे पूर्णचन्द्रबिम्बसाम्यम्, पूर्णचन्द्रोदये तिमिरस्यासम्भवादभूतोपमेयं बोध्या।।६।।

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम्।
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम्।।७।।

पुनः कीदृशम्? विपुलो यः पुलकभरो रोमाञ्चातिशयस्तेन दन्तुरितं व्याप्तम्। पुनः कीदृशम्? रतिकेलिकलाभिः चुम्बनालिङ्गनादिविशेष-चातुरीभिरधीरं चञ्चलम्। पुनः कीदृशम् मणिगणानां मणिसमूहानां किरण-समूहेन समुज्ज्वलानि मुकुटाङ्गदमञ्जीरादीनि तैः सुभगं सुन्दरं शरीरं यस्य तम्। मध्याभिसारिकेयं नायिका। मध्यालक्षणम्–'तुल्यलज्जास्मरा मध्या मोहान्तसुरतक्षमा' इति। तथा च एभिः पदैः कृष्णो विभावानुभावसात्त्विक-व्यभिचारिभिः साङ्गः शृङ्गाररसः स्थायिभावो निरूपितः।।७।।

श्रीजयदेवभणितविभवद्विगुणीकृतभूषणभारम्।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं सुचिरं सुकृतोदयसारम्।।८।।

श्रीजयदेवेत्यादि। हे जनाः! हरिं प्रणमत नमस्कुरुत। किं कृत्वा? सुचिरं बहुकालं व्याप्य हृदि चित्ते विनिधाय स्थापयित्वा। ननु यागादिना दुर्लभत्वेन देवतान्तरं भजनीयम्, हरेस्तु सुलभतया किम्? तत्राह–कीदृशम्? सुकृतोदयस्य पुण्योदयस्य सारं सारभूतम्। अथवा सुकृतोदय एव सारो घनं यस्मात्तम्। तथा च पुण्योपचयानां तदेव परमफलम्, तेनैव पुण्योपचयः; तन्नामस्मरणेनैव यागाद्युपकारः क्रियते, न तं केऽपि उपकर्त्तुं शक्नुवन्तीति तस्यैव दुर्लभता, तदेव विधेयमिति भावः। श्रीजयदेवस्य भणितविभवे वाग्विभवे द्विगुणीकृतो भूषणभारो यस्य तम्, प्रथमस्तु स्वर्णाद्यलङ्कारो द्वितीयः काव्यालङ्कारविषयतया वर्णितगुण इति।।८।।

इस अष्टपदी में ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्रीकृष्ण का समस्त परिधान गौर है, राधामय है, जबकि अन्तिम अष्टपदी में राधा का शृंगार श्रीकृष्णमय है।।६।।

राधा ने श्रीकृष्ण को देखा कि उनकी देह पर रोमांच है, रोमांच के साथ कहीं-कहीं स्वेद की बूँदें हैं। ऐसा लगता है, जैसे उनके पूरे शरीर में जगह-जगह मणियों की किरणों की छटा उनका आभूषण बन रही है, वे राधामय हो रहे हैं, वे पहले से ही रति-क्रीड़ा के लिए एक विचित्र आकुल प्रत्याशा में अधीर हैं।।७।।

श्री जयदेव कहते हैं कि ऐसे श्रीकृष्ण को देर तक हृदय में रखो, उन्हें प्रणाम करो। बड़े पुण्य से ऐसे श्रीकृष्ण का मन में उदय होता है, जो श्रीराधा के संग जुड़कर, द्विगुणित भूषण के भार से राधा से जुड़कर द्विगुणित हो जाते हैं।।८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन-
प्रयासेनैवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयोः।
तदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये
पपात स्वेदाम्भः प्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः।।७६।।

इदानीं श्रीराधाया रसविक्रियामाह—अतिक्रम्येति। हे सखि! यदा राधा ददर्श, तदानीं प्रियतमसमा लोकसमये श्रीराधाया अक्ष्णोर्वर्त्तमान आनन्द-समूहः अश्रुरूपेण पतितः, हर्षाश्रुनिकरः पपातेत्यर्थः। ननु समीचीनभाजने स्थापितः कथं पपात? तत्राह–किम्भूतयोरक्ष्णोः? तरलतरतारं दर्शना-सङ्गेनातिशयेन चञ्चलाक्षिकनीनिकं यथा स्यादेवं पतितयोः सौन्दर्याधिक्येन अतिसतृष्णनिरीक्षणाद् यस्मिन्नङ्गे दृष्टिः पतिता पुनः उत्थानासामर्थ्येन तत्रैव स्थिता इति ज्ञापनाय पतितयोरित्युक्तम्। तथा च भाजने पतिते तदाधारवस्तु पपातेति भावः। हेतुमुत्प्रेक्षते—अतिक्रम्येति। अपाङ्गं नेत्रान्तदेशमतिक्रम्य उल्लङ्घ्य श्रवणपथपर्यन्तगमनप्रयासेनैव स्वेदाम्बुप्रसर इव कर्णवर्त्मावधि चलनजन्यायासेन स्वेदाम्बुपूर इव। अन्योऽपि दूरगमनेन श्रान्तः स्विद्यति, पतति च। तथा च तेन विशालनयनत्वं तस्याः सूचितम्। अथ च अन्तर्गतो हर्षोऽधिकतयान्तःस्थानमप्राप्य बहिरश्रुव्याजेन पतित इति भावः। उत्प्रेक्षालङ्कारः।।७६।।

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मितं याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरसरसमाकूतसुभगं
सलज्जा लज्जापि व्यगमदिव दूरं मृगदृशः।।७७।।

आँखें अपनी अपांग से दूर कोनों तक खिंचीं, खुली आँखें इतनी बड़ी-बड़ी लगती हैं, लगता है कि इतने समय के बाद राधा ने प्रियतम को देखा तो हर्ष के आँसू ढल पड़े, मानो आँखों में देखने से ही इतना प्यार उमड़ आया। रतिक्रीड़ा में इतना आस्वाद मिल गया कि आँखें पसीना-पसीना हो गयीं। ये आँखें लम्बी-लम्बी हैं। ऐसा लगता है कि ये कान तक पहुँचना चाहती हैं और इसी प्रयत्न में ये इतनी शिथिल हो गयी हैं और शिथिल होते हुए ही झुक गयी हैं। झुकते ही वे अश्रु में जलमग्न हो गयी हैं।।७६।।

ज्यों ही राधा ने सेज के सिरे पर आसन जमाया, त्यों ही सखियों ने बहाना किया कि हमें यहाँ खुजली हो रही है और मुँह के भीतर हँसी दबाये हुए बाहर निकल गयीं। इनके निकल जाने के बाद भर आँख राधा ने श्रीकृष्ण को देखा और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भजन्त्या इति। तस्मिन् काले तल्पान्तं शय्यासमीपं भजन्त्या आश्रयन्त्या मृगदृशो हरिणनयनायाः श्रीराधाया लज्जापि सलज्जेव व्रीडावतीव दूरमतिशयेन व्यगमद् विगता, अतिदूरं वा। क्व सति? अवहितालीपरिजने अवहितः कृतावधानो य आलीपरिजनः सखीपरिवारस्तस्मिन् गेहाद् विलासनिकुञ्जाद् बहिर्याते गते सति। कथं यथा स्यात्? कृता या कपटकण्डूतिः कर्णादिकण्डूयनं तेन पिहितमाच्छादितं स्मितं यथा स्यात्तथा। कीदृश्यास्तस्याः? प्रियास्यं प्रियस्य मुखं पश्यन्त्याः। किम्भूतं मुखम्? स्मरसरसं स्मरेण कामेन सरसं शृङ्गाररससहितम्। पुनः कीदृशम्? आकूतसुभगम् आकूतेन तत्तत्क्रीडाभिप्रायेण सुभगं मनोहरम्। स्मरपरवशाकूतसुभगमिति पाठे स्मरपरवशं यद् आकूतमभिप्रायस्तेन सुभगम्।।७७।।

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव।
भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः
प्रकीर्णासृग् बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः।।७८।।

जयश्रीत्यादि। मुरजितो मुरारेर्भुजदण्डो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते भक्तानां रक्षणाद्यर्थमित्यर्थः। किंलक्षणस्य? भुजापीडस्य बाहुदण्डस्य क्रीडया विलासेन हतः कुवलयापीडनामा करी हस्ती येन तस्य। भुजदण्डमुत्प्रेक्षते– जयश्रिया विजयलक्ष्म्या विन्यस्तैर्विशेषेण दत्तैर्मन्दारकुसुमैः पारिजातपुष्पैर्महितः पूजित इव। कीदृशः? स्वयमात्मना द्विपेन कुवलयापीडेन यो रणस्तस्मिन् या - मुत् हर्षस्तेन सिन्दूरेण श्यामाङ्गे आरक्तमण्डनस्य शोभाप्रदत्वमतो मुद्रित इव चित्रित इव। नन्वेवं कथमुत्प्रेक्ष्यते? तत्राह– प्रकीर्णासृग्बिन्दुः विकीर्णा रुधिरबिन्दवो यत्र स तथा। अनेन सामर्थ्यलक्षणो नायकगुण उक्तः। एवम्भूते भुजदण्डे गाढालिङ्गनादिना श्रीराधाया निःशङ्कक्रीडनमुचितमिति भावः।।७८।।

।।इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये अभिसारिकावर्णने सानन्दगोविन्दो नामैकादशः सर्गः।।११।।

ऐसे देखा जैसे कि नये सिरे से उन्हें पुनः स्मर के शरों से बींध रही हों। अब तो लज्जा भी लजाकर दूर चली गयी। इस तरह की प्रगल्भता की कल्पना लज्जा को भी नहीं थी। यह विचित्र रतिव्यापार है, इसमें अब लाज कहाँ से रहेगी? श्रीकृष्ण के हृदय के पत्रों पर कहीं आवरण रहता है?।।७७-७८।।

।।इत्येकादशः सर्गः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ द्वादशः सर्गः।।

सुप्रीतपीताम्बरः

गतवति सखीवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर-
स्मरपरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम्।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम्।।७९।।

इदानीं चिरकालवाञ्छितराधादर्शनोल्लासितमानसो हरिस्तामाह—गतवतीत्यादि। हरिः प्रियां राधामुवाच। क्व सति? सखीवृन्दे सखीसमूहे गतवति सति। कीदृशी? मन्दोऽल्पो यत्त्रपाभरो लज्जासमूहस्तेन निर्भरोऽतिशयो यः स्मरः प्रौढकामस्तत्परवशस्तदायत्तो य आकूतोऽभिप्रायस्तेन स्फीतं वृद्धं यत् स्मितं तेन स्नपितौ व्याप्तावधरौ यस्यास्ताम्। पुनः कीदृशीम्? सरसं रसोऽनुरागस्तत्सहितं मनो यस्यास्ताम्। किं कृत्वा? नवपल्लवप्रसवशयने नवपल्लवाश्च प्रसवाश्च कुसुमानि तेषां शयने नवकिसलयपुष्पमये शयनीये निक्षिप्ताक्षीं विनिहितनयनां मुहुर्वारं वारं दृष्ट्वा विलोक्य। एवम्भूतां प्रियां दृष्ट्वा हर्षमवाप्योवाचेत्यर्थः। अत्र शय्यावलोकनेन सम्भोगेच्छा ध्वनिता। अस्मिन् सर्गे स्वाधीनभर्तृका नायिका, तल्लक्षणम् (शृ.ति. १।७४)–

'यस्या रतिगुणाकृष्टः पतिः पार्श्वं न मुञ्चति।
विचित्रभ्रमासक्तः सा स्यात् स्वाधीनभर्तृका'।। इति।।७९।।

गीतम्- २३

[विभासरागेणैकतालीतालेन च]

किसलयशयनतले कुरु कामिनि! चरणनलिनविनिवेशं
तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेशम्।।१।।
क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर राधिके।।ध्रुवम्।।

अब श्रीकृष्ण ने राधा के ऊपर दृष्टि डाली। सखियाँ चली गयी हैं और प्यार का देवता भी लजा गया है। उसको भी परवश करके राधा के अधरों पर हँसी खेल रही है। श्रीकृष्ण ने देखा अब राधा का मन रस में भर गया है, वे बड़े उत्सुक भाव से देख रही हैं, नये पल्लवों की सेज की तरफ।।७९।।

'यहाँ आओ', हरि कहते हैं, 'इच्छाओं से भरी राधिका, अपने चरण-कमल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतेन वक्ष्यमाणमाह—किसलयेत्यादि। गीतस्यास्य विभासरागः, तल्लक्षणम्–

'स्वच्छन्दं सम्मानितपुष्पचापः प्रियारसस्वादुसुधाभितृप्तः।
पर्यङ्कमध्यस्य कृतोपवेशो भासः सुनिद्रान्वितहेमगौरः।।'

केचित्तु रामकरीति। एकतालीतालश्च। गीतार्थस्तु–हे राधिके! हे सुन्दरि! अधुना मामनुसर भज। किम्भूतं माम्? क्षणमनुगतं तव दर्शनोत्सवव्याप्तम्। अथवा मामनुसर, किम्भूतम्? क्षणमधुना तव सम्भोगोत्सवमधुना मदेन अनुगतं स्वाधीनम्। क्षणमनुगमिति पाठे अनुगमनुवर्त्तिनमित्यर्थः। ननु विद्यमाने एवं कथयसि, परोक्षे स्नेहरहिते त्वयि कथं भजामि? इत्यत आह— नारायणमिति। नारेषु अप्सु अयनं यस्येति त्वद्वियोगे विरहाग्नितप्तस्य मम जलमेवाश्रयोऽभूदित्यर्थः। अथवा नारा अपस्तासामयनमाश्रयमश्रुजल-मग्नमित्यर्थः। अथवा जलाश्रयं जलधिं प्रेमसमुद्रमित्यर्थः। नार्या विलासोऽयं नारः, 'तस्येदम्' (पा. ४।३।१२०) इत्यण्। स एवाश्रयो यस्येति वा। उक्तशङ्कां परिहृत्य मां भजेति भावः। ध्रुवपदम्। अथ पदानि–हे कामिनीति तवेप्सितमेव तदिति साभिप्रायसम्बोधनम्। किसलयशयनतले नवपल्लव-शय्यायां चरणनलिनस्य पादपद्मस्य विन्यासं कुरु। इत्यनेनास्यां शय्यायां विविधप्रकारचरणचेष्टितं भविष्यतीति ध्वनितम्। इदं सुवेशमपि सम्यग्वैचित्र्या रचनादिना सुष्ठ्वलङ्कृतमपि स्वभावतोऽतिसुन्दराकृतिर्यस्य तादृशमिति वा दिव्यकिसलयमयत्वात् किसलयशयनं तव पदपल्लववैरि तव पदपल्लव एव यो वैरी शत्रुस्तस्मात् पराभवं तिरस्कारमनुभवतु। अथवा तव पदपल्लवस्य वैरी स्पर्धी तव चरणविन्यासेन पराजयमनुभवत्वित्यर्थः।।१।।

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम्।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम्।।२।।

इस पल्लव की सेज पर स्थापित करो। पैर नीचे न लटकाये रहो। ये पल्लव तुम्हारे पदपल्लव से वैर करते हैं। अब उनसे दबाये जाने पर अपनी हार का अनुभव करें। अब ऐसा क्षण आया है कि तुम अपने अनुगत नारायण के साथ-साथ विलसो'।

स्मरणीय है कि वे अपने को नारायण कहते हैं, अर्थात् समस्त सृष्टि के आदि में अकेले सोये हुए नारायण के रूप में अपने को स्थापित करते हैं, मानो आमन्त्रण देते हैं कि 'आओ अब तुम रस-सृष्टि के आरम्भ की भूमिका बनो।।१।।

बड़ी दूर से आयी हो, मैं तुम्हारे चरणकमल अपने करकमलों से सहलाऊँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करोति। अहं करकमलेन निजकराम्बुजेन तव चरणं करोमि संवाहयामि, अथवा चरणमहमित्येकपदम्–तव चरणयोर्महं पूजां संवाहनादिरूपां करोमि। कथमित्यत आह–विदूरमतिशयेन दूरं त्वम् आगमितासि आनीतासि अर्थात् मया। तथा च दूरागमनजन्यं ते श्रममपनयामीति भावः। शयनोपरि शय्याया उपरि क्षणमपि मामुपकुरु। कीदृशं माम्? अनुगतौ तवानुसरणे शूरम्। कमिव? नूपुरमिव यथा तवानुगतिशूरस्य नूपुरस्य परिधानेन तव चरणसन्निधाने महार्धतापादनोपकारः, तथैव चरणारविन्दार्पणेन ममाप्यभिकाङ्क्षितरूपोपहारो भविष्यतीति भावः। तथा चापरोऽपि योऽनुगतिशूरो भवति, तस्योपकार उचित इति ध्वनितम्। अथवा पादपद्मस्य स्पर्शं निषेधयन्तीं प्रत्याह–मामिवानुगतिशूरं नूपुरमुपकुरु चरणपरिधानेन स्वीकुरु। अनेन धृतस्यापि नूपुरस्यार्पणच्छलोक्त्या तत्पादस्पर्शं प्रार्थयते।।२।।

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम्।
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम्।।३।।

गाम्भीर्येणानवगाह्यमानाभिप्राय उत्तरमप्रयच्छन्तीमाह—वदनेति। हे प्रिये! अनुकूलं रतिजनकं सम्भोगसम्पत्तिसम्पादकमिति यावत्, वचनं रचय पदार्थानुप्रासमाधुर्येण संलापकदम्बं वद। कीदृशम्? वदनमेव सुधानिधिश्चन्द्रस्तस्माद्गलितं च्युतम्। कमिव? अमृतमिव। अतस्त्वदाज्ञया उरसि वक्षसि स्थितं दुकूलं पट्टवस्त्रमपनयामि दूरीकरोमि च। विरहमिव यथा तव सङ्गमे विरहोपभीतस्तथा स्तनाश्लेषप्रतिबन्धकमपीदमपनयामीति भावः। अथवा विरहतापिताहं कथं वदिष्यामि? अत आह–दुकूलमिव विरहमपनयामि। किम्भूतमुभयम्? उरसि हृदि वर्त्तमानम्। पुनः किम्भूतम्? पयोधररोधकं नवरसधारणेनाप्यायनकरत्वात् पयोधरपदोपात्तम्, न तु परिणाहित्वापादनाय; तथा सति अभव्यत्वापत्तेः।।३।।

थोड़ी देर तक इसे मेरे ऊपर रखने की कृपा करो। इस शय्या पर आ रही हो, थोड़ी देर सेज पर आकर केवल चरणों के इन नूपुरों के ऊपर कृपा करो; क्योंकि तुम्हारी तरह यह भी तुम्हारे साथ ही बजते हैं। तुम्हारे आनन्द के साथ आनन्दित, तुम्हारे दुःख में दुखी होते हैं।।२।।

अब मीठी बातें शुरू करो। तुम्हारा वचन चन्द्रमा से उमड़ती हुई सुधा-धारा है। मुझे अनुमति दो कि तुम्हारे स्तनों के विकास को रोकने वाले आवरण को मैं हटा दूँ, जैसे वह आवरण भी विरह का एक रूप ही हो।।३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रियपरिरम्भणरभसवलितमिव पुलकितमतिदुरवापम्।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम्।।४।।

कुटिलमवलोकयन्तीमतिविह्वलः सन्नाह—प्रियेति। हे राधे! त्वं मदुरसि मदीयवक्षःस्थले कुचकलशं रसपूर्णस्तनकुम्भं विनिवेशयार्पय। कीदृशम्? अतिदुरवापमतिदुर्लभं त्वदनुग्रहं विनातीवदुःखेनावाप्यत इति दुरवापम्। पुनः कीदृशम्? पुलकितम्, तत्र हेतुमुत्प्रेक्षते–प्रियपरिरम्भणे यो रभस उत्साहस्तेन वलितमिव युक्तमिव। अन्योऽपि यो हर्षयुक्तो भवति, तस्य रोमाञ्चो भवत्येवेति ध्वनितम्। तेन कलशार्पणेन मनसिजतापं कामजन्यं सन्तापं शोषय नाशय। सन्तप्तस्योपरि कलशोदकेनाभिषिक्तेन तापो यात्येव। उक्तिभङ्ग्या विपरीतरतं याचत इति तात्पर्यम्। तथा च मनसिजपदेन गृहोत्थिताग्निशान्त्यै तत्रवर्त्तिजन एव समर्थो भवति, नान्यत्, अत एव त्वयैवास्य शान्तिरिति भावः। शोषयेत्यनेनापि तापं शोषय, न तु स्वविषयकं कामम्, पुनः विलासमाधुर्यरुच्युत्पादकत्वात्। तथा चास्यानुप्रासनिर्वाहकत्वं स्फुटमेव। ध्रुवपदमत्र श्रीराधाया उत्तरं वेति। हे कृष्ण! त्वं सर इतो गच्छ। किं सति? राधिके इति–रः कामस्तेन अधिः सन्तापलक्षणो व्याधिः के प्रकाशे सति। तर्हि क्व गच्छामि, तदर्थमेव तवाश्रितोऽस्मि, न हि, नारायणमनुगतमिति नारायणं जलाश्रयमनु लक्ष्यीकृत्य। दूरे चेदत आह–गतं निकट एव प्राप्तं यमुनादिलक्षणम्, तत्र कामतापशान्त्यै सरेत्यर्थः।।४।।

अधरसुधारसमुपनय भामिनि जीवय मृतमिव दासम्।
त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम्।।५।।

तदा त्वदेकजीवनोऽहं, त्वमेव जीवयेत्याह—अधरेत्यादि। हे भामिनि! कामकलाकुशले प्रिये! अधरसुधारसम् अधरसम्बन्ध्यमृतरसमुपनय वितर। दासं मादृशमनुगतम्; दानपात्रमिति वा 'दासृ दाने' इति धातोः। जीवय।

वह क्षण आ गया है कि तुम नारायण के साथ नारायण की अनुगामिनी बनो। विश्वव्यापी लीला की तुम अधिष्ठात्री बनो। मेरी छाती पर कुच-कलश रखो, जैसे कि एक मंगलवेदी पर कलश रख रही हो। देवि! क्या थोड़े से आलिंगन के आवेग में इधर-उधर हो गयी हो। पुलक से भर उठा है, यह हाथों की पहुँच में नहीं आ रहा है। इसे यहाँ स्थापित रहने दो, जिससे मेरे भीतर का काम-ज्वर शान्त हो।।४।।

अपनी अधर-सुधा से मुझमें नये प्राणों का संचार करो। तुम्हारा यह सेवक अधमरा हो गया है, तुम्हारी चिन्ता करते-करते विरह की आग में जल गया है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीदृशम्? मृतमिव अन्योऽपि मृतोऽमृतपानेन जीवतीति ध्वनितम्। दानपात्रत्वे हेतुमाह–त्वयीति! त्वयि विनिहितमनसं त्वय्यर्पितचित्तम्। पुनः कीदृशम्? विरहानलेन त्वद्वियोगरूपेणाग्निना दग्धं सन्तप्तं वपुर्यस्य तमत एवाविलासं क्रीडनचेष्टारहितम्। अन्योऽपि भृत्यः स्वकार्ये दग्धो निश्चेष्टितः समर्थेन स्वामिना जीवनीय इति भावः।।५।।

शशिमुखि मुखरय मणिरसनागुणमनुगुणकण्ठनिनादम्।
श्रुतियुगले मम पिकरुतविकले शमय चिरादवसादम्।।६।।

चाटूक्त्या नातिप्रसन्नामाह–शशिमुखीति। हे शशिमुखि चन्द्रवदने! सुन्दरतयामृतस्यन्दितया च शशिमुखयो रूप्यरूपकभावः। मणिरसनागुणं मणियुक्तं काञ्चीदाम मुखरं सशब्दं कुरु। अनेन हंसलीलाख्यं विपरीतरतं मां भजस्वेति ध्वनितम्। तल्लक्षणञ्चोक्तं प्राक् (गी. १३।७)। कीदृशम् मणिरसनागुणम्। अनुगुणकण्ठनिनादम् अनुगुणः सदृशः कण्ठनिनादः कण्ठशब्दो यस्य तादृशम्, रसनागुणानुकारिकण्ठशब्दं कुर्वित्यर्थः। अथवा स्वरभङ्गेनालपन्तीमाह–कण्ठनादसदृशं रसनाशब्दं कुर्वित्यर्थः। तेन शब्देन मम श्रुतियुगले श्रोत्रयुग्मे चिरादवसादं चिरात् त्वत्सङ्गमावधेर्वर्त्तमानमवसादं खेदं शमय शान्तं कुरु, नाशयेत्यर्थः। कीदृशे श्रुतियुगले? पिकरुतेन कोकिलकूजितेन विकले दुःखिते; विरहिणः पिकरुतं दुःसहं भवति।।६।।

मामतिविफलरुषा विकलीकृतमवलोकितुमधुनेदम्।
मीलति लज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम्।।७।।

किञ्च, तथाप्यनवलोकयन्तीमाह–मामतीति। हे प्रिये! तवेदं नयनं नेत्रं मामवलोकितुं मां वीक्षितुं मीलति मुद्रां प्राप्नोति; किमिव? लज्जितमिव कीदृशं माम्? अतिविफलरुषा अतिनिष्फलेन कोपेन विकलीकृतं विकलतां

इसमें कोई चेष्टा नहीं रह गयी है। उसे तुम पुनः सक्रिय करो, सप्राण करो, नारायण को, अपने अनुगत नारायण को अवबोधित करो।।५।।

हे चन्द्रवदनी, अपनी मणि की करधनी को अपने कण्ठ के स्वर के साथ ऐसे बजने दो कि वह तुम्हारे कण्ठ के स्वर के साथ ताल देने लगे। मेरे कानों में, जो कोयल की कूक से फटे जा रहे थे, उनके उद्दीपन से अनुतप्त हो रहे थे, यह संगीत समा जाने दो और मेरे इतने लम्बे समय के विरह का अवसाद शमित करो।।६।।

तुम्हारी आँखें, तुम्हारी दृष्टि तुम पर पड़े केलि–कोप से तुमने पहले तो मेरे ऊपर व्यर्थ ही कोप करके अपनी आँखों से ऐसा देखा कि मैं टूक–टूक हो गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नीतं निरपराधदण्डनं मया कृतमिति महत्तया लज्जितमिवेति भावः। अतस्त्वमधुना इदानीं निष्फलकोपाद् विरम विरक्ता भव। रतिखेदं सम्भोगदैन्यं विसृज त्यज। कोपं त्यक्त्वा मया सह रमणं कुर्वित्यर्थः। अथवा अधुना लज्जानिराकरणार्थं विशेषेण रम विविधकेलिं प्रकटय्य रतिखेदं रते-र्दुःखं मुञ्च। रत्यायासं विशेषेण सृज उत्पादयेति वा। तथा च ते नेत्रमुद्रणं न समीचीनमिति भावः।।७।।

श्रीजयदेवभणितमिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम्।
जनयतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम्।।८।।

श्रीजयदेवेत्यादि। इदं श्रीजयदेवभणितं श्रीजयदेवेन कथितं गीतं रसिकजनेषु एतद्रसभाविताशयलोकेषु मनोरमरतिरसभावविनोदं रतिः सम्भोगो रसः शृङ्गाररसो भावाः सञ्चारिसात्त्विकादयस्तेषां मनोरमं मनःप्रीतिकरं चित्ताकर्षकं विनोदं कौतुकं हर्षमिति यावत् जनयतु करोतु। अथवा मनोरमरतिरसे भावनाचमत्कृतिमुत्पादयतु। तदुक्तं (गो. ३) 'यदि हरिस्मरणे' इत्यादिना। तेनैव कीदृशं भणितम्? अनुपदं प्रतिपदं निगदितो नितरां वर्णितो मधुरिपोः कृष्णस्य मोद आनन्दो यत्र तादृशं वाग् विलासरूपो मोद इत्यर्थः।।८।।

प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च
क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथानर्मभिः।
आनन्दाभिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियंभावुकः।।८०।।

एवं वाग्विलासमनुवर्ण्येदानीं सुरतारम्भं निरूपयति—प्रत्यूह इत्यादिना। तयो राधामाधवयोः स चिरं काङ्क्षितः लोकोत्तरो वा सुरतारम्भः

अब तुम क्यों मुझे दिखाने के लिए ये आँखें मूँद रही हो, क्यों लजा रही हो? छोड़ो लाज और अब तो तुम नये उत्साह से रति का आरम्भ करो'।।७।।

श्री जयदेव ने मधुसूदन के आनन्द को बढ़ानेवाले इन पदों के द्वारा यह कामना की है कि यह अष्टपदी रसिकों के ऐसे आनन्द की सृष्टि करे, जो मन को रमानेवाला हो और रतिरस के भाव को विकसित करने वाला हो, प्यार की वास्तविकता को उन्मीलित करने वाला हो।।८।।

इसके बाद विपरीत रति के व्याज से श्रीराधा के पुंभाव से प्यार करने का वर्णन है, जो यह सूचित करता है कि पुंभाव में आना उनके पराजय का कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'ललितारम्भः' इति वा पाठे ललितो मनोहर आरम्भो यस्य एतादृशः शृङ्गारक्रीडाविशेषः। उद्धूत उद्धटः प्रियभवनशीलो बभूव जातः, स क इत्यत आह–यस्मिन् ललितारम्भे निविडाश्लेषे दृढतरालिङ्गने कर्त्तव्ये पुलकाङ्कुरेण रोमाञ्चोद्गमेन प्रत्यूहः अभूद् अन्तरायो जातः। अनेनालिङ्गनेनोद्दीप्त-महासात्त्विकविकारः अङ्कुरपदेन सूचितः। अतिरूढभावश्च स्थायी, येनालिङ्गनेन रोमाङ्कुरस्यापि असहिष्णुता जाता। एवं परमावधिरसोत्पत्ति-र्दर्शिता। अपि च क्रीडाकूतविलोकिते क्रीडासु यदाकूतपूर्वकमभिप्रायपूर्वं विलोकितं तत्र निमेषेण नेत्रस्पन्देन प्रत्यूहोऽभूत् सतृष्णसाभिप्रायावलोकने निमेषमात्रस्यापि असहनमभूदित्यर्थः। तदुक्तम् (भाग. १०।३१।१५) 'जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम्'। अथ च अधरसुधापाने अधरामृतास्वादे कर्त्तव्ये कथानर्मभिः रहःकथाकौतुकैः प्रत्यूहोऽभूत्। अनेन पानेऽतृप्तिरुक्ता। तथा च सुधामत्तः कथयत्येवेति कथायाश्चासंवरणम्। प्रत्येकमपीन्द्रियाणां तत्तद्भावानाञ्चातिप्राबल्यं समुद्रतरङ्गाणामिवेति भावः। अथ च मन्मथकलायुद्धे कामस्य चतुःषष्टिकलायुतसुरतसंग्रामे आनन्दाभिगमेन हर्षलाभेन प्रत्यूहोऽभूत्। अनेन निरतिशयस्पृहणीयत्वमुक्तम्, सम्भोगस्य नालंप्रत्यय इति भावः। क्रियानन्दयोश्चापारत्वमपि ध्वनितम्; व्यङ्ग्यवृत्तिश्चेयम्। सम्भोगाख्यः शृङ्गारो रसो भावविभावानुभावसात्त्विकव्यभिचारिभिश्च रसतां नीतो भङ्ग्यात्र महाकविना साङ्गो निरूपितः।।८०।।

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः।
हस्तेनानमितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः।।८१।।

तदेवं विपरीताख्यमुक्तिवैचित्र्येण कथयति—दोर्भ्यामित्यादिना। दोर्भ्यां बाहुभ्यामर्थात् नायिकायाः, संयमितो बद्धः, पयोधरभरेण स्तनभारेणा-पीडितः, पाणिजैर्नखैराविद्धस्ताडितः, दशनैर्दन्तैः क्षताधरपुटो दष्टोऽधरपुटो यस्य तादृशः कृतः। श्रोणीतटेन नितम्बेनाहत आस्फालितः, हस्तेनानमितः कचे केशे धृत्वेत्यर्थात्। अधरमधुस्यन्देन अधरामृतपानेन सम्मोहितः सम्यग् मोहं प्रापितः, एवं विशिष्टोऽपि कान्तः कामप्यनिर्वचनीयां तृप्तिमाप प्रापत्, तत् ततो हेतोरहो इत्याश्चर्ये कामस्य वामा विरुद्धा गतिः, वामा रमणीया वा। यस्य बन्धनादिकं क्रियते, सोऽपि प्रीतिं प्राप्नोति, अत एव वामेति भावः। अनेन विपरीतसुरतं कथितम्। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, तदुक्तं दण्डिना (काव्यादर्शे-२।१६९)–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु निर्दिश्य किञ्चन।
तत्साधनसमर्थस्य वचनं यत्र दृश्यते'।। इति।

तथा च संयमनापीडनादिभिर्वीरशृङ्गारानुभावैर्वीरशृङ्गारोऽनुवर्णितः। अथ च सापराधेन नायकमौलिना यो दण्डः प्रार्थितस्तयापि स एवानुष्ठित इति भावः।।८१।।

मारा‍ङ्के रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तया साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत् सम्भ्रमात्।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिध्यति।।८२।।

तदेव स्पष्टयति—माराङ्के इत्यादिना। माराङ्के मारस्य कामस्य चिह्ने युद्ध-पक्षे मारणं चिह्नं यत्र तादृशे रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे रतिकेलिभिः चुम्बनालिङ्गनबन्धादिरूपाभिः सङ्कुले व्याप्ते रणारम्भे कामयुद्धारम्भे तया राधया साहसप्रायं साहसबहुलं कान्तजयाय तदुपरि तस्य कान्तस्योपरि किञ्चिल्लोकोत्तरं प्रारम्भि पुरुषायितमारब्धं यत् सम्भ्रमात् संवेगात् तस्या राधिकाया जघनस्थली निष्पन्दा निश्चला जाता, दोर्वल्लिर्बाहुलता शिथिलिता श्लथीभूता, वक्षो हृदयमुत्कम्पितम्, अक्षि मुद्रितम्। ततः स्त्रीणां पौरुषरसः पराक्रमाभिलाषः कथं सिद्ध्यति; अपि तु न सिद्ध्यत्येवेत्यर्थः। अनेन क्रियानिवृत्तिः कथिता, सम्भोगान्ते नायिकाया एवं भवत्येव, वस्तुतस्तु विजय एव जातः।।८२।।

तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धौतोऽधरशोणिमा विलुलिताः स्रस्तस्रजो मूर्द्धजाः।
काञ्चीदामदरश्लथाञ्चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिः कामशरैस्तदद्‌भुतमभूत् पत्युर्मनः कीलितम्।।८३।।

तदेवाह—तस्या इति। एभिः कामशरैः कन्दर्पबाणैः पत्युर्दृशोर्लोचनयोः प्रातर्निखातैरारोपितैर्मनः कीलितं विद्धमित्यद्भुतमाश्चर्यमभूत्। अन्यत्र निखातै-र्बाणैरव्यत् कीलितमित्यद्‌भुतमभूदित्यर्थः। मनः कीलितमभूदिति वा। कैः? कामशरैस्तस्या राधायाः पाटलेन रक्तेन पाणिजेन नखेन अङ्कितमुरः चिह्नितं वक्षः, निद्राकषाये लोहिते दृशौ लोचने च। निर्धौतोऽधरशोणिमा चुम्बनादिना क्षालितो योऽधरस्य शोणिमा लौहित्यं स च, विलुलिताः प्रक्षिप्ताः सकचग्रहचुम्बनदानादिना अत एव स्रस्ता गलिताः स्रजः पुष्पमाला येषु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तादृशाः केशाश्च। दरमीषत् श्लथं शिथिलमञ्चलं वस्त्रान्तं यस्मात्तथाभूतं काञ्चीदाम मेखलासूत्रञ्च। अथवा काञ्चीदाम च दरश्लथाञ्चलमपि। तथा च सङ्गोपनीयैरपि चिह्नै रसावेशात् प्रकटनेन रसाधिक्यं कथितमिति ध्वनितम्। कीलितमित्यनेन नायकवशीकरणात् श्रीराधाया एव विजयो जात इति भावः।।८३।।

व्याकोशः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ
दष्टा बिम्बाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः।
काञ्ची काञ्चिद्गताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः
पश्यन्ती सत्रपं मां तदपि विलुलितस्रग्धरेयं धिनोति।।८४।।

यदुक्तं पत्युर्मनः कीलितम्, तदेव प्रकटयति—व्याकोश इत्यादिना। इयं राधा विलुलितस्रग्धरा खण्डितमालाधारिणी तदपि मां धिनोति प्रीणयति। किं कुर्वती? सद्यस्तत्कालं स्तनजघनपदं पाणिना हस्तेनाच्छाद्य तिरोधाय सत्रपं लज्जासहितं यथा स्यादेवं मां पश्यन्ती कथं सलज्जा? इत्याह–केशपाशः कबरी व्याकोशः शिथिलो जातः, अलकैश्चूर्णकुन्तलैस्तरलितम्, कपालौ स्वेदलोलौ घर्मजलव्याप्तावभूताम्। अनु. च दष्टा बिम्बाधरश्रीः खण्डिताधरलक्ष्मीः। कुचकलशरुचा स्तनघटदीप्त्या हारयष्टिर्हारिता कुत्रापि त्यक्ता। अथवा हारश्रीः शरीरशोभयैव हारिता चोरिता, अपि च काञ्ची क्षुद्रघण्टिका काञ्चिदनिर्वचनीयामाशां गता। अनेन सम्भोगावेशो ध्वनितः। तथा च भूषणादिरहितापि भूषणाङ्गलक्ष्म्या पत्युर्मनोहारिण्यभूदित्यर्थः। अनेन रूपमाधुर्यं निरूपितम् (उ. १०।२५,२७)–

'अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद्भूषणादिना।
येन भूषितवद्भान्ति तद्रूपमिति कथ्यते'।। इति।

तद्यथा–'नीतं पुनरुक्ततां भ्रमरकैः कस्तूरिकापत्रकम्, नेत्राभ्यां विफलीकृतः, किं राधे! तव मण्डनेन नितरामङ्गैरसि द्योतिता'। शोभा वा (उ. ११।१३-१४) 'सा शोभा रूपभोगाद्यैर्यत् स्यादङ्गविभूषणम्' इति। यथा–

धृत्वा रक्ताङ्गुलिकिसलयैर्नोपशाखां विशाखा
निष्क्रामन्ती व्रततिभवनात् प्रातरुद्घूर्णिताक्षी।
वेणीमंसोपरि विलुठतीमर्द्धमुक्तां वहन्ती
लग्ना स्वान्ते मम न हि बहिः सेयमद्याप्ययासीत्'।। इति।

स्रग्धरानामकं छन्दश्चेदम्।।८४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मीलद्दृष्टिमिलत्कपोलपुलकं शीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम्।
श्यामोत्तुङ्गपयोधरोपरि परिष्वङ्गी कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम्।।८५।।

मीलदित्यादि। हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोः हर्षोत्कर्षेण नानाविधरत-जनितानन्दातिशयेन विमुक्ता श्लथा निःसहा व्यापारासहा तनुर्यस्या एवम्भूतायाः कुरङ्गीदृशो मृगवधूनयनाया आननं मुखं धन्यो श्लाघ्यगुणवान् कृष्णः 'धयति पिबति निर्निमेषं पश्यतीत्यर्थः। अधरपानेन वा मुखं पिबतीत्युक्तम्। कीदृशः? श्यामाया उत्तुङ्गौ रसोन्नतौ यौ पयोधरौ कुचौ तयोरुपरि परिष्वङ्गी आलिङ्गितः। अनेन स्पर्शतृष्णा ध्वनिता। किम्भूतमाननम्? मीलद्दृष्टि मुद्रिते अक्षिणी, मिलत्कपोलपुलकञ्च सरोमोद्गमौ गण्डौ च यथा स्यादेवम्। शीत्कारधाराः शीत्काराणां श्रेणयः, तद्वशाद् अव्यक्ता अप्रकटा आकुलाश्च केलिकाकवः क्रीडाकाकवो ध्वनिविकारास्तैर्विकसन्तो ये दन्तांशवस्तैः धौतः प्रक्षालितोऽधरो यत्र तत्तथा। मीलद्दृष्टिमिलत्कपोलमित्याननस्य विशेषणं वा।।८५।।

अथ सहसा सुप्रीतं[१] सुरतान्ते नितान्तखिन्नाङ्गी।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम्।।८६।।

अथेत्यादि। अथशब्दो मङ्गलार्थः, आनन्तर्ये वा। सा प्रसिद्धा वशीकृत-कान्ता राधा आनन्देन सहसा इदं वक्ष्यमाणं गोविन्दं प्रति जगाद उक्तवती। किंलक्षणा सा? सुरतान्ते सम्भोगावसाने नितान्तमतिशयेन खिन्नाङ्गी

बन जायेगा। श्रीकृष्ण ने भले ही उन्हें पुंभाव में आने का आमन्त्रण दिया, पुरुष के रूप में आने का आमन्त्रण दिया, पर उन्होंने घबराते-घबराते प्रिय पर रति-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए रति-क्रीड़ा शुरू की, बड़े साहस के साथ, लेकिन थोड़ी ही देर में जाँघें निःस्पन्द हो गयीं, बाँहें ढीली हो गयीं, वक्षःस्थल काँप गया, आँखें मुँद गयीं और वे श्रीकृष्ण की भूमिका में अपने को स्थापित नहीं कर सकीं।।८०-८५।।

श्रीकृष्ण भी रति-केलि से क्लान्त हो गये। श्रीराधा के आभरण इधर-उधर अस्त-व्यस्त हो गये। सब कुछ उलट-पुलट गया और प्रिय को अपने वश में

---

१. पाठान्तरे—'इति मनसा निगदन्तं'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरतायासयुक्तं शरीरं यस्यास्तादृशी। किंलक्षणं गोविन्दम्? सादरं किमपि सा मामाज्ञापयिष्यति, तदैव धन्यो भविष्यामीत्यादरेण सह वर्त्तमानम्। सुप्रीतं तत् प्राप्तुं मुखेन स्निग्धम्।।८६।।

गीतम्- २४

[रामकरीराग-रूपकतालाभ्याम्]

कुरु यदुनन्दन! चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे।।१।।
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने।।ध्रुवम्।।

तदेव गीतेनाह—कुर्वित्यादि। गीतस्यास्य रामकरीरागः, रूपकतालः। गीतार्थस्तु–सा राधा यदुनन्दने निजगाद उक्तवती। कीदृशी यदुनन्दने? क्रीडति रममाणे, पुनः कीदृशे? हृदयानन्दजनके। ध्रुवपदम्। किं निजगादेत्याह—कुर्विति। हे यदुनन्दन गोपकुलकुमुदचन्द्र! अत्र मम पयोधरे स्तने करेण मृगमदपत्रकं कस्तूरिकापत्रावलीं कुरु रचय। कीदृशेन करेण? चन्दन-शिशिरतरेण चन्दनादप्यतिशीतलेन। अथवा यदुनन्दने जगादेति पूर्वमेवोक्तम्, तदा यदुनन्दनश्चन्द्रः, चन्द्रादपि चन्दनादपि शीतलेन करेणेत्यर्थः। शीतलतरेण करेणेत्यनेन पुनः कामतप्तेनेति स्वाङ्गस्पर्शात् कामोद्बोधो दर्शितः, उक्तिवैचित्र्येणेति भावः। कीदृशे पयोधरे? मनोभवस्य कामस्य यो मङ्गल-कलशो माङ्गल्याय कामस्य अभ्युदयाय स्थापितः पूर्णकुम्भस्तस्य सहोदरे सदृशे। केचित्तु मङ्गलपदं हेमपरमाचक्षते। 'मङ्गलो भूमिपुत्रे स्यान्मङ्गलं हेमहाटकम्' इति विश्वकोषः।।१।।

देखकर पूरी तरह स्वाधीनभर्तृका होकर श्रीराधा ने ढिठाई से भर कर निर्देश दिया।।८६।।

अन्तिम सर्ग में जब राधा श्रीकृष्ण से कहती हैं–मुझे फिर से सजा दो और मैं जैसी थी, वैसी मुझे अपने हाथों से रच दो, तो उनका पूरा आग्रह इस बात पर है कि तुम काजल बनकर आँखों में अँजो, कस्तूरी का तिलक बनकर भाल को आलोकित करो, सौभाग्य के केन्द्र-बिन्दु बनो और कुसुम-गुम्फित केशपाश बनकर महको, अपने हाथों के शीतल स्पर्श से चन्दन और कस्तूरी का लेप बनकर उरोजों पर आलिप्त हो, हृदय के आनन्दन बनो।।१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने।
त्वधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रियलोचने।।२।।

अलिकुलेत्यादि। हे प्रियलोचने! त्वदधराभ्यां यच्चुम्बनं तेन लम्बितं गलितं यत् कज्जलं तद् उज्ज्वलय पुनरुद्दीपय। नयनयोः कज्जलं पुनरर्पयेत्यर्थः। कीदृशे लोचने? रतिनायकस्य कामस्य सायकान् बाणान् मुञ्चतीति रतिनायकसायकमोचनं तस्मिन्? कीदृशं कज्जलम्? अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य यद् गञ्जनं तिरस्कारस्तस्य सञ्जनकं विधाय। 'उज्ज्वलो दीप्ति-शृङ्गारविशदेषु विकाशिनि' इति विश्वः। 'गञ्जनोऽभिभवो नाशः' इति रत्नकोषः।।२।।

नयनकुरङ्गतरङ्गविकाशनिरासकरे श्रुतिमण्डले।
मनसिजपाशविलासधरे शुभवेश निवेशय कुण्डले।।३।।

नयनेत्यादि। हे शुभवेश कल्याणमूर्त्ते! शुभः शोभनो वेशोऽलङ्करणं यस्य तादृशेति वा। मम श्रुतिमण्डले कर्णप्रदेशे कुण्डले विनिवेशय स्थापय। कीदृशे श्रुतिमण्डले? नयने एव यौ कुरङ्गौ मृगावतिवेगवत्त्वात्तयोस्तरङ्गस्य वेगस्य यो विकासः प्रसरणं तस्य निरासकरे निरोधकारिणि। पुनः कीदृशे? मनसिजस्य कामस्य यः पाशो बन्धनविशेषस्तस्य विलासधरे तल्लीलाभृति। यदि कर्णमण्डले कामव्याधपाशर्वौ न स्यात्तर्हि कियद्दूरं नयनकुरङ्गयोर्गतिः स्यादिति लोचनयोर्विशालत्वं व्यङ्ग्यम्। तथा च कुरङ्गविकाश इत्यनेन कटाक्षाणां चाञ्चल्यमिति भावः।।३।।

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे।
जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजनकमलकं मुखे।।४।।

भ्रमरचयमित्यादि। हे कृष्ण! मम मुखे अलकं चूर्णकुन्तलं परिकर्मय भूषय! कीदृशमलकम्? रुचिरं मनोहरम्। पुनः कीदृशम्? नर्मजनकं क्रीडाजनकम्। कीदृशे मुखे? विमले निर्मले। पुनः कीदृशे? जितकमले जितं

मुख पर लटकते हुए कुन्तल बनकर कमल के ऊपर घिर आयी भौरों की भीड़ का भ्रम उत्पन्न करो। पूरी अष्टपदी राधा-भाव की एक सुनिश्चित योजना है।।२।।

कुछ दूसरा होने की, श्रीकृष्ण से मिलकर ऊपर से नीचे तक श्रीकृष्ण से भावित होने की; क्योंकि यही राधा की प्रकृति है।।३।।

यही राधा के प्यार की चरम परिणति है कि वह जब तक नहीं मिलती हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिरस्कृतं निजशोभया सौरभेण च कमलं येन तादृशे? सम्मुखे प्रसादवति, अभिमुखे वा। किम्भूतमलकम्? सुचिरं चिरादुपरि वदनारविन्दस्योपरिष्टाद् भ्रमरचयं रचयन्तं भ्रमरमण्डलीशोभां जनयन्तमित्यर्थः। सम्मुख इति मुखस्यातुलितलावण्यास्पदत्वम्, सुचिरमिति नित्यमेवाव्यभिचारिशोभा-प्रदत्वञ्चालकानां कथितम्। सुचिरं विविधरचनया रुचिरं यथा स्यात्तथा परिकर्मयेति वा। जिता वशीकृता स्वासाधारणगुणैः कमला श्रीर्येन तस्मिन्, जितकमल इति वा। अत एव सर्वातिशायि, विमले विख्यात इत्यर्थः। किञ्चालकानामपि नर्मजनकमिति विशेषणं युक्तम्, तादृशशोभया तस्या मण्डनेनापि सर्वमेव परिहसतीति तादृशमित्यर्थः। नर्मयुक्तो जनः सखीजनस्तस्य कं सुखस्वरूपमिति वा, क्रीडागलितालकदर्शनात् सखीनां नर्मसम्भवात्। सुचिरमित्यनेनालकभ्रमराणां मुखमकरन्दपानेऽतृप्तिर्मकरन्दस्य वाक्षयत्वमिति ध्वनितम्।।४।।

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे।
विहितकलङ्ककलं कमलानन विश्रमितश्रमशीकरे।।५।।

मृगमदेत्यादि। हे कमलानन पद्ममुख! अलिकरजनीकरे ललाटचन्द्रे ललितं मनोज्ञं तिलकं विशेषकं कुरु। कमला मुखे यस्येति वा, उभयतः चन्द्रेण मैत्री ध्वनिता। कीदृशं तिलकम्? मृगमदरसवलितं मृगमदरसेन कस्तूरीरसेन वलितं निर्मितम्। पुनः कीदृशम्? विहितकलङ्ककलं विहिता कलङ्कस्य लाञ्छनस्य कला शोभा येन तादृशम्। अत्र तु श्यामरूप-शोभासादृश्यात् कलङ्कशोभाग्रहणमिति भावः। कीदृशे अलिके? विश्रमितो विश्रमं प्रापितो यः श्रमस्तज्जनितः शीकरोऽम्बुकणो यत्र तादृशे। अनेन व्यजनादिना अनुभूतानां प्रस्वेदबिन्दूनामतिशीततया हिमकणत्वमाक्षिप्यते, तेन चालिकस्य चन्द्रत्वरूपणं साङ्गं निर्दहतीति ध्वनितम्। 'ललाटमलिकं गोधिः' इत्यमरः। अथवा विश्रामं प्रापितः श्रमजनितशीकरो यस्मात्तत्तादृश इत्यर्थः। प्रथमं व्यजनादिना प्रस्वेदमपहर, पश्चात्तिलकं रचय, स्वेदजले तिलकस्यासम्भवात्।।५।।

तब तक श्रीकृष्ण को आमने-सामने निरन्तर ध्यान में पाती रहती हैं।।४।।

वह दो रहती हैं और पा लेने के बाद उसका राधापन एकदम विगलित हो जाता है, विलीन हो जाता है, वह श्रमवारि बनकर ढुर जाता है।।५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिजध्वजचामरे।
रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे।।६।।

ममेत्यादि। अन्यमानिनीमानखण्डनोऽपि बहुमानप्रद! सौन्दर्याद्यभिमानिनां स्वसौन्दर्यादिभिर्गर्वनाशनेति वा, मम रुचिरे मनोहरे चिकुरे जात्यैकवचनम्, केशपाशे इत्यर्थः। कुसुमानि पुष्पाणि कुरु रचय। कीदृशे चिकुरे? रतिगलिते रतौ मुक्तबन्धने, सम्भोगावेशात् स्रस्त इत्यर्थः। ललिते मनोहरे, पूर्वं रुचिरपदेन सुरतपूर्वकालीनसौन्दर्यमुक्तम्, अत्र ललितपदेन रतिगलितत्वेऽपि सौन्दर्याधिक्यं कथितम्, न तु पुनरुक्तिप्रसङ्गः। पुनः कीदृशे? शिखण्डिनो मयूरस्य शिखण्डकस्य पिच्छस्येव डामर आटोपो यस्य तादृशे।।६।।

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे।
मणिरसनावसनाभरणानि शुभाशय वासय सुन्दरे।।७।।

सरसेत्यादि। हे शुभाशय शोभनहृदय! अथवा शुभः आ सामस्त्येन शयः करो यस्य तादृश। रसनादीनां करसाध्यत्वादयमर्थो युक्तः। मम सुन्दरे जघने मणिरसनावसनाभरणानि मणिमयी या रसना क्षुद्रघण्टिका वसनं वस्त्रमाभरणानि च वासय परिधापय। कीदृशे जघने? सरसघने सरसे शृङ्गाररससहिते स्निग्धे वा घने निविडे। पुनः कीदृशे? शम्बरनामानं दैत्यं दारयतीति शम्बरदारणः कामः स एव वारणो महाबलत्वान्मत्तमातङ्गस्तस्य कन्दरे। अपरोऽपि हस्ती गिरिकन्दरायां तिष्ठतीति भावः। 'कुञ्जरो वारणः करी' इत्यमरः। 'दरी तु कन्दरो वा स्त्री', 'वस आच्छादने' इत्यस्य ण्यन्तस्य प्रयोगः।।७।।

श्रीजयदेववचसि जयदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने।
हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने।।८।।

फिर वह श्रीकृष्ण के हाथों से श्रीकृष्ण की ही एक आकृति के रूप में पुनर्निर्मित हो जाती हैं। राधा यही होना चाहती थीं।।६।।

वसन्त पावस बनने के लिए ही उत्तपित होता है, निपतित होता है, कंटकित होता है, पुष्पित होता है, पल्लवित होता है। काव्य वर्षा की स्मृति में मंगल से प्रारम्भ होता है, इसलिए कि पूरे काव्य की वसन्ती जमीन रस-वृष्टि का संकल्प बन जाय।।७।।

यहाँ श्री जयदेव के वचनों के द्वारा कहा गया है कि हे राधे! हे कृष्ण! तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवेत्यादि। श्रिया सौन्दर्यादिवैभवेन जयेन सर्वकलाकौशलेन विजयेन च दीव्यतीति श्रीजयदेवः कृष्णस्तत्सम्बोधनम्। हे नागर! मम वचसि मण्डने मण्डननिमित्तं हृदयं कुरु परमावदानेन भूषां रचयेत्यर्थः। किंलक्षणे मण्डने? जयदे सपत्नीसकाशादुत्कर्षप्रदे। हरेस्तव चरणं स्वाधीनतया मण्डनरूपाचरणं तस्य स्मरणं मनस्यवगाहस्तदेवामृतं तेन कृतं कलिकलुष-ज्वरस्य मानादिषु कलहकालुष्यसन्तापस्य खण्डनं नाशनं येन तादृशे पूर्व-रोषविस्मारक इत्यर्थः। अथवा श्रीजयदेवस्य कवेर्वचसि वाक्ये सदयं दयासहितं यथा स्यादेवं हृदयं कुरु। किंलक्षणे वचसि? मण्डने सकल-भक्तजनालङ्काररूपे। जयदे सर्वोत्तमभक्तिप्रदानेन सर्वोपरि विराजमानतया विजयप्रदे। पुनः कीदृशे? हरिचरणस्मरणमेव यदमृतं परमानन्दरूपमहौषधं तेन निर्मितं कलिकलुषज्वरस्य खण्डनं नाशनं येन तादृशे। कृतकलुषज्वरसंज्वरेति पाठे कृत आचरितो यः कलुषज्वरः पापरूपसन्तापः स एव संज्वरः तस्य खण्डने छेदके, पापसन्तापविदारणे वचसीत्यर्थः।।८।।

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कबरीभरम्।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा-
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत्।।८७।।

रचयेत्यादि। हे प्रिय! कुचयोः पत्रं मकरपत्रिकां रचय, कपोलयोश्चित्रं चित्रकाख्यं रचनाविशेषं कुरुष्व, अथ च जघने काञ्चीं क्षुद्रघण्टिकां घटयार्पय। कबरीभरं ग्रथितकेशसमूहं स्रजा पुष्पमालया अञ्च पूजय, केशपाशे माल्यं प्रापयेत्यर्थः। अञ्चेत्यञ्च गतिपूजनयोरित्यस्य, लोट्-मध्यमपुरुषैकवचनम्। वलयश्रेणीं कङ्कणपङ्क्तिं पाणौ हस्ते कलयार्पय, पदे चरणे नूपुरौ कुरु। इत्यनेन प्रकारेण राधया निगदित उक्तः पीताम्बरस्तदा पीतवसनः श्रीकृष्णोऽपि तथैवाकरोत्। यथा यथा सा कथितवती, बहुमानेन तथैवाकरोदिति सन्तताश्रयवल्लभेयमित्युक्तम्। तद्यथा (उ. ४।४८)-

---

मेरे हृदय को, मुझे सजाओ। अपने अस्तित्व की लाज रखो, तुम मेरे मण्डन बनोगे, तो मण्डन बनाने की यह कहानी तुम्हारा स्मरण बन, तुम्हारा स्मरण करने वालों के लिए एक अद्वितीय कहानी बन जायेगी, उनके भीतर का सारा दुराव, छल-कपट कथा के प्रवाह में बहकर धुल जायेगा।।८।।

अब इस अष्टपदी में गीतगोविन्द को समेटते हुए सूत्रधार के रूप में कवि कह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'षडङ्घ्रिभिरमर्दितान् कुसुमसञ्चयान्नाचिनोद-
खण्डमपि राधिके! बहुशिखण्डकं त्वद्गिरा।
अमुञ्च नवपल्लवव्रजमुदञ्चदर्कोज्ज्वलं
करोतु वशगो जनः किमयमन्यदाज्ञापय'।।

किञ्च (भाग. ९।४।६३)–'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव' इति तद्वशे दारुयन्त्रवदिति, (गीता. ४।११) 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' इति च, (भाग. १०।१९।१६) 'क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत्' इति निःसीमानुरागभरेण वशीकृतः। उक्तञ्च श्रीमुखेनैव (भाग. १०।३२।२२) 'न पारयेऽहम्' इति। भगवान् पुरुषोत्तमः सच्चिदानन्दैक-रसापारैश्वर्यमहिमगुणाप्रच्युतस्वरूपस्तद्रूपैर्भावैस्तादृशैरेव प्रियजनैर्नित्यानन्द-रूपचरितो नित्यमेव रममाण एवास्ते। आत्मारामयोगिभिर्भजनीयगुणत्वात्। यथा (भाग. १।७।१०) 'आत्मारामाश्च मुनयः' इति। उक्तञ्च (भाग. ३।२५।३८) 'न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नोऽनिमिषो लेढि हेतिः। येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टः' इति। व्याकृतं स्वामिचरणैः–ननु अन्यवद् मदीयानां भोक्तृभोग्यानां विनाशः स्यात्तत्राह–हे शान्तरूपे शान्तं शुद्धं तद्रूपे मल्लोके वा मत्पराः कदाचिदपि न नङ्क्ष्यन्ति भोग्यहीना न भवन्ति, अनिमिषो मे हेतिः कालचक्रं च नो लेढि तांन्न ग्रसति। तत्र हेतुः–येषामिति। सुत एव स्नेहविषयः, सखेव विश्वासास्पदम्, गुरुरिवोपदेष्टा, सुहृदिव हितकारी, इष्टं दैवमिव पूज्यः। एवं सर्वभावेन मां ये भजन्ति, तान् मदीयं कालचक्रं न ग्रसतीत्यर्थः। अथवा प्रियः पतिः आत्मा स्वरूपः, सुतः पुत्रः, सखा मित्रम्, गुरुः पिता, सुहृत् सम्बन्धी, दैवमिष्टं सेव्यम्। एवं सति दासपुत्रबन्धुमित्रपितृपत्न्यश्च भक्ता निरूपिताः। ये त्वत्र प्राकृतत्वं निरूपयन्ति, ते मन्दमतयो ज्ञेयाः। उक्तञ्च भगवता (गीता-७।२४)–

'अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो मामव्ययमनुत्तमम्'।। इति।।८७।।

रहे हैं कि श्रीराधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि मेरे स्तनों पर पत्रलेखा अंकित करो, मेरे गालों पर चित्र रचो, मेरी जाँघों पर करधनी के रूप में विराजो, मेरे केशों में कुसुम गूँथों, हाथों में फिर से कलँगी पहनाओ, पैरों में नूपुर पहनाओ। राधा के इस आदेश को पीतवसनवाले ने पूरा किया, जो उन्होंने कहा, वही किया।।८७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानञ्च यद्वैष्णवं
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वमपि यत् काव्येषु लीलायितम्।
तत् सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः।।८८।।

यद्गान्धर्वेत्यादि। हे सुधियः! पण्डिताः सानन्दाः समाधानस्फुरणेन गत-शङ्कयानन्दसहिताः, भगवद्गुणानामानन्दरूपत्वाच्च सानन्दाः सन्तः। जयदेवपण्डितकवेर्यद्यपि पण्डितः कविरित्येकार्थपर्यवसायित्वम् तथाप्यत्र विचारक्षमयुक्तिवक्ता पण्डितः, सरसयुक्तिमात्रवक्ता कविरिति भेदः। यज्ञः क्रतुरित्यादाविव सयूपाः क्रतवः, अयूपा यज्ञा इति। श्रीगीतगोविन्दतस्तत् सर्वं परिशोधयन्तु सर्वतोभावेन जानन्तु। तत् किमित्याह–यद्गान्धर्वकलासु कौशलं गानविद्यासु यन्नैपुण्यं तत् सर्वं जयदेवपण्डितकवेर्नैपुण्यम्; गन्धर्वो मार्गदेशवित्, मार्गस्य स्वरपदात्मकत्वात्, कला अङ्गविन्यासवैलक्षण्यादिका-स्तत्र नैपुण्यमिति पूर्वोक्तमेवार्थः। अथ च वैष्णवं विष्णुसम्बन्धि यदनुध्यानमनुक्षणं चिन्तनम्, यच्च शृङ्गाररसस्य यो विवेकः संयोग-विप्रलम्भादिरूपेण विवेचनम्, तस्य तत्त्वं यथार्थज्ञानम्, यदपि काव्येषु कविकर्मसु कवित्वनिर्माणरूपेषु लीलायितं विलसितमिति तत् सर्वमित्यर्थः। कीदृशस्य जयदेवस्य? कृष्णैकतानात्मनः कृष्णैकतानस्तत्पर आत्मा मनो यस्य तादृशस्य। 'एकतानोऽनन्यवृत्तिरेकाग्रैकायनावपि' इत्यमरः।।८८।।

पर्यङ्कीकृतनागनायकफणाश्रेणी मणीनां गणे
सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसम्बलनया बिभ्रद्विभुप्रक्रियाम्।
पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्ष्णां दिदृक्षुः शतैः
कायव्यूहमिवाचरन्नुपचितीभूतो हरिः पातु वः।।८९।।

कविर्ग्रन्थसमाप्तौ श्रोतृणामाशिषं प्रयुङ्क्ते—पर्यङ्कीति। हरिः स्मृतिमात्र एव वृजिनपुञ्जभञ्जनः। वो युष्मान् पातु रक्षतु। भक्तप्रणयिताख्यापनेन रक्षण-व्यसनतामाह–किंलक्षणः? कायव्यूहं शरीरसमूहमाचरन्निव कुर्वन्निव उपचितीभूतो वृद्धिं प्राप्तः। तत्र हेतुः–पादाम्भोरुहं चरणसरोजं धारयितुं शीलं यस्यास्तादृशीं वारिधिसुतां लक्ष्मीम् अक्ष्णां शतैर्नेत्राणां सहस्रैर्दिदृक्षुः

गीतगोविन्द की रचना वह सब कुछ है, जो गान्धर्व कलाओं में मिलता है, गीत का कौशल मिलता है, किसलय के रूप में वह सभी है, जो वैष्णव साधना में मिलता है, वह सभी है, जो श्रीधर के उत्तम रूप के विवेक करने में मिलता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रष्टुमिच्छुः। कथं तथा भवेदत आह–पर्यङ्कीकृतः शय्यीकृतो यो नागनायकः शेषस्तस्य फणाश्रेणीनां पङ्क्तीनां ये मणयस्तेषां गणे समूहे सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसंवलनया सम्बद्धप्रतिकृतिप्रसरेण विभुप्रक्रियां विस्तार-प्रकारं बिभ्रद् दधत्। प्रतिबिम्बार्पकमणीनामनन्ततया देहानामनन्तत्वम्, देहानामनन्ततया तादृशनेत्रलाभोऽभूदित्यर्थः।।८९।।

त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां क्षीरोदतीरोदरे
शङ्के सुन्दरि! कालकूटमपिबन्मूढे मृडानीपतिः।
इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो निक्षिप्य वक्षोऽञ्चलं
पद्मायाः स्तनकोरकोपरि मिलन्नेत्रो हरिः पातु वः।।९०।।

अन्यच्च—त्वामित्यादि। हरिः श्रीकृष्णो वः पातु। किंलक्षणः? हे सुन्दरि! मूढो मृडानीपती रुद्रः क्षीरोदतीरोदरे क्षीरसमुद्रतटमध्ये मयि स्वयंवरपरां मदेकपतिकां त्वामप्राप्यालब्ध्वा कालकूटं हालाहलमपिबत् पीतवानित्यहं शङ्के तर्कयामि। इत्थमनेन प्रकारेण पूर्वकथाभिः पूर्वकथनैरन्यमनसोऽन्यमनस्काया राधाया वक्षोऽञ्चलं स्तनावरकं निक्षिप्या-पसार्य स्तनौ कोरकाविव तदुपरि मिलन्नेत्रो नूतनोद्भवत्वे कोरकोपमा सौन्दर्यादिना च। अनेन सकाशादपि सौन्दर्याधिक्यं ध्वनितम्।।९०।।

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्करासि
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीरनीरं रसस्ते।
माकन्द क्रन्द कान्ताधरधरणितलं गच्छ गच्छ यच्छन्ति यावद्
भावं शृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि*।।९१।।

बालबोधिनी–अथ (भा. १०।३३।३९) 'हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः' इति शुकोक्तप्रायत्वाद् एतच्छ्रवणकीर्त्तनस्मरणानुमोदनप्रभावमाह–साध्वीति। हे माध्वीक! इह लोके यावत् जयदेवस्य वचांसि विष्वक् सर्वतः शृङ्गारसारस्वतं भावं ददति, भवद्भवतः चिन्ता साध्वी न भवति, मधुरत्वेऽपि मादकत्वादित्यर्थः। हे शर्करे! त्वं कर्करासि; मादकत्वाभावेऽपि कठिनत्वादित्यर्थः। हे द्राक्षे! के त्वां द्रक्ष्यन्ति, कोमलत्वेऽपि निन्द्यदेशोद्भवत्वादित्यर्थः। हे अमृत! त्वं मृतमसि, मरणान्तरप्राप्यत्वादित्यर्थः। हे क्षीर! ते रसो नीरं नीरवद् आवर्त्तनाद्यपेक्षत्वात्। हे माकन्द आम्र! त्वं

* इतः परमन्तिमश्लोकयुग्मस्य टीका त्रुटितास्ते, अतस्तत्पूरणार्थं 'बालबोधिनी'-टीकातः समाह्रियते चात्रेति विज्ञापनीयम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रन्द। हे कान्ताधार! त्वं पातालमसुरालयं याहि, अधोदातृनामत्वात् तवात्र स्थितिरपि न युक्तेत्यर्थः। श्रीजयदेववर्णितमधुराख्यभक्तिरसास्वादनिर्वृतजनास्ते घृणामेव करिष्यन्तीति भावः।।९१।।

श्रीभोजदेवप्रभवस्य रामादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य।
पराशरादिप्रियबन्धुकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु।।९२।।

बालबोधिनी–अथ स्वपितृमातृस्मरणपूर्वकं पराशरादिमतज्ञातार एवाधिकारिण इति तान् प्रति आशिषयति—श्रीभोजेति। भोजदेवनामा अस्य पिता, वामादेवी-नाम्नी जननी, तस्याः सुतस्य श्रीजयदेवकस्य पराशरादीनां ये प्रियास्तन्मतज्ञातारस्तेष्वपि ये बान्धवास्तन्मतानुसारेण श्रीराधामाधवरहः-केलिज्ञानेन बन्धुत्वं प्राप्तास्तेषामेव कण्ठे भूषणवत् सदा श्रीगीतगोविन्दाख्यं कवित्वमस्तु। अनेनास्य प्रबन्धस्य सर्ववेदेतिहासपुराणादिवक्तॄणां सम्मत्या सर्वसारत्वं दुरूहत्वञ्च बोधितम्। अत्रायं क्रमः–आदौ श्रीकृष्णस्य श्रेष्ठताप्रतिपादनं (गी. १), 'प्रलय पयोधिजले' इत्यादि 'वसन्ते वासन्ती' इत्यन्तेन। ततः श्रीराधायाः समधिकलालसावर्णनं (गो. १९) 'कंसारिरपि' इत्यन्तेन। तत्रैव साधारणलीला, तस्या उत्कण्ठावर्णनञ्च, ततः श्रीकृष्णस्यापि उत्कण्ठा 'यमुनातीरे' इत्यन्तेन। ततः श्रीकृष्णे राधिकोत्कण्ठा अहमित्यन्तेन। ततस्तस्यां श्रीकृष्णोत्कण्ठितावर्णनं 'पूर्वं यत्र' इत्यन्तेन, ततोऽभि-सारिकावस्थावर्णनम् (गो. ४१) अथ तामित्यन्तेन। ततो वासकसज्जा (गो. ४५) 'अत्रान्तरे' इत्यन्तेन। ततश्चन्द्रोदयात् पुनरुत्कण्ठिता (गो. ४८) 'अथागताम्' इत्यन्तेन। ततो विप्रलब्धा (गो. ५५) 'अथ कथमपि' इत्यन्तेन। ततः खण्डिता (गो. ५८) 'तामथ' इत्यन्तेन। ततः कलहान्तरिता (गो. ६१) 'अत्रान्तरे मसृणरोष' इत्यन्तेन। ततो मानिनीवर्णनं (गो. ६९) 'सुचिरम्' इत्यन्तेन। ततो मेघावृते चन्द्रे सखीप्रार्थना (गो. ७५) 'सा ससाध्वस' इत्यन्तेन। ततोऽन्योन्यावलोकनं (गो. ७९) 'गतवति' इत्यन्तेन। ततः श्रीकृष्णप्रार्थना (गो. ८०) 'प्रत्यूहः' इत्यन्तेन। ततो रहकेलयः (गो. ८६)

है, वह सभी है जो कवि के लीला-वर्णनों में रूपायित हुआ है। इसलिए श्री जयदेव ने यह रचना कृष्ण का एकाग्र ध्यान करके की है। सुधीजन इसको आनन्दपूर्वक अपनी तरह से समझें, समझायें।।८८-९१।।

श्री भोजदेव और श्रीरामा देवी के पुत्र श्री जयदेव ने पराशर आदि प्रिय मित्रों के कण्ठ में मुखरित होने के लिए और प्रखरित होकर गगन में अनुगुंजित होने के लिये यह पदावली रची है। रसरूप श्रीकृष्ण के स्मरण के ये मेरे चित्र साझीदार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'इति मनसा' इत्यन्तेन। ततः स्वाधीनभर्तृका (गो. ८९) 'पर्यङ्कीकृत' इत्यन्तेन। अतः सर्गोऽयं समृद्धिमदाख्यसम्भोगरसानन्दितः पीताम्बरो यत्र सः प्रियाधीनत्वेन तद्वर्णवसनप्रियः श्रीकृष्णो यत्र सः।।९२।।

।।इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दमहाकाव्ये सुप्रीतपीताम्बरो नाम द्वादशः सर्गः।।१२।।

।।समाप्तमिदं काव्यम्।।

बनें, मेरी रचना इनके माध्यम से प्रियतर हो, इस भाव से बड़े मन से यह रचना रची।।९२।।

।।इति द्वादशः सर्गः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्टम्–१

गीतगोविन्द : नया युगारम्भ

'गीतगोविन्द' एक नाट्यप्रबन्ध है, जिसकी प्रबन्ध-योजना इस प्रकार है—

इसमें कुल बारह सर्ग हैं। एक सर्ग में कम-से-कम एक, अधिक-से-अधिक चार अष्टपदियाँ हैं। प्रत्येक अष्टपदी के पूर्व और अन्त में कथायोजक सूत्र के रूप में अथवा आशीर्वचन के रूप में श्लोक हैं। अष्टपदी की योजना इस प्रकार है कि वह गायी जाए और उसके सात-साथ अभिनय भी प्रस्तुत हो। गेयता और अभिनेयता के साथ-साथ चलने के तनाव में भाषा बहुत तरल और पारदर्शी हो गयी है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें अर्थगर्भता नहीं है। एक-एक टुकड़े में संगीत और नृत्य की उद्भावना की दृष्टि से असीम सम्भावनाएँ निहित हैं; क्योंकि एक-एक टुकड़ा किसी-न-किसी संचारी, किसी-न-क़िसी अनुभाव, विभाव को व्यंजित करता है और वह पक्ष अर्थों की पर्तों में लिपटा हुआ रहता है। धीरे-धीरे एक-एक पर्त खुलती है और बार-बार खोलने का प्रयत्न करने पर भी कुछ-न-कुछ अनकहा रह ही जाता है।

सर्गों के नाम भी अपने-आप में बहुत व्यंजक हैं। पहला सर्ग '**सामोद-दामोदर**' है। इसमें चार अष्टपदियाँ हैं। पहली अष्टपदी 'दशावतार-वन्दना' है। दूसरी अष्टपदी 'श्रीपति-वन्दना' है। तीसरी-चौथी अष्टपदियों में श्रीकृष्ण के वसन्त-रास का वर्णन है। इस रास में राधा अनुपस्थित हैं। रास का वर्णन ईर्ष्या के माध्यम से राधा के मन में अभिलाषा उकसाता है। ध्यान देने की बात है कि श्रीकृष्ण का 'दामोदर' नाम से स्मरण किया गया है, अर्थात् श्रीकृष्ण का प्रेमाबद्ध रूप ही प्रमुख है। दामोदर का अर्थ ही है—जिसका उदर रस्सी से बँधा हुआ हो, जो भयभीत हो। एक ओर वे सामोद हैं क्योंकि वसन्त—रस-रूप-गन्ध-सम्भार उन्हें चारों ओर से घेरे हुए है, दूसरी ओर वे आतंकित हैं रासेश्वरी की अनुपस्थिति से। सामोद-दामोदर में एक साथ दो व्यंजनाएँ हैं। इसमें श्रीकृष्ण का अन्तर्द्वन्द्व प्रकट रूप में है और अप्रकट रूप में राधा का अन्तर्द्वन्द्व है, जो देर से रास के लिए चलीं। देर हो गयी और उन्हें रास की झंकार ही सुनाई पड़ी। तब ठिठककर, नाराज होकर अलग चली गयीं। एक सघन प्रेम का बीज बोया जाता है। इस सर्ग में राधा का स्मरण राधा के वलद्बाधा विशेषण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से किया गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि मन की विकलता लहर की तरह मोड़ लेने लगी है।

ऐसी स्थिति में राधा हैं और सर्ग का 'सामोद-दामोदर' नाम व्यंग्य बनकर रह जाता है, कैसा आमोद जो दोनों और एक आग सुलगाता है।

दूसरे सर्ग का नाम है—**'अक्लेशकेशवः'**। इसमें दो अष्टपदियाँ हैं। पहली में राधा अपने मन को रास के भीतर पहुँचा देती हैं और कहती हैं मेरा मन बार-बार इस रास में चला जाता है, रास से अधिक मेरे मन का परिहास करनेवाले मन के मीत में चला जाता है। दूसरी अष्टपदी में जब वह दीन होकर सखी से प्रार्थना करती हैं कि कुछ ऐसा करो कि आकुल होकर मेरे साथ वे रमण करें। वैसे ही जैसे प्रथम समागम के समय मिले थे। मैं वैसे ही उनकी भाँति-भाँति की केलियों से उद्वेलित होना चाहती हूँ। राधा के भीतर एक उत्कण्ठा जगे, यही तो केशव के क्लेश को काटने का साधन है। आमोद-प्रमोद के बीच जो उन्हें क्लेश हुआ कि इस रास में राधा नहीं है; चिन्ता हुई कि मैं नाचता रहा, खेलता रहा, राधा को कैसा लगा होगा; उसकी शान्ति इसी से तो होगी कि राधा मिलने के लिये उत्कण्ठित हों। राधा की उत्कण्ठता ही केशव को, घुँघराले बालों वाले श्रीकृष्ण को भीतर से परिपूर्ण और तृप्त करती है।

तीसरे सर्ग में जब श्रीकृष्ण राधा को खोजने निकलते हैं और यहाँ-वहाँ कहीं नहीं पाते तो अनुताप से भर जाते हैं। मुझे गोपियों में घिरा देखकर वह चली गयी, मैं उसे रोक नहीं सका। मैंने उसको सम्मान नहीं दिया। उसके बिना रास किया। इस प्रकार मधु अर्थात् वसन्त को मथने, प्यार को मथनेवाले श्रीकृष्ण स्वयं मोहित हो जाते हैं। इस सर्ग का नाम **'मुग्धमधुसूदनः'** है। द्वितीय और तृतीय सर्गों को यदि हम एक साथ देखते हैं तो दोनों की परस्पर उत्कण्ठा के अंकुरण का वृत्त पूरा हो जाता है। तीसरे सर्ग में केरल एक अष्टपदी है।

और अब चौथे सर्ग की भूमिका बनती है, जिसमें सखी राधा की उत्कण्ठा का चित्र खींचती है; तब श्रीकृष्ण को आभास होता है कि मैं केवल उत्कण्ठा करनेवाला नहीं हूँ, उत्कण्ठा का विषय भी हूँ। मैं केवल वेधक नहीं हूँ, वेध्य भी हूँ। और यह अनुभव उन्हें स्निग्ध कर देता है। वसन्त को उन्मन करनेवाला रूखा भाव इस अनुभव से आपूरित होकर स्निग्ध हो जाता है, मन को कहीं और ठौर मिल जाती है। इस **'स्निग्धमधुसूदनः'** सर्ग में दो अष्टपदियाँ हैं। दोनों में राधा को उन्मत्त करनेवाले विरह के द्रावक चित्र हैं।

पाँचवें सर्ग का नाम है—**'साकांक्षपुण्डरीकाक्षः'**। विष्णु के रूप की सबसे बड़ी विशेषता उनका कमलनयन होना है। कमलनयन होने का अर्थ साकांक्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होना है, क्योंकि कमल निराकांक्ष नहीं है। यह सूर्य के प्रकाश की आकांक्षा रखता है। इस सर्ग में विरह-व्याकुल श्रीकृष्ण राधिका का दुःख निवेदन करनेवाली सखी से कहते हैं कि मैं यहीं बैठा हूँ, तुम अनुनय-विनय करके राधा को ले आओ। इसमें दो अष्टपदियाँ हैं। पहली में श्रीकृष्ण की विरह-व्यथा का वर्णन है, दूसरी में राधा से मिलने के लिए अनुरोध है कि 'तुम साकांक्ष श्रीकृष्ण की आकांक्षा की पूर्ति करो'।

छठाँ सर्ग है—'**कुण्ठवैकुण्ठः**'। इसमें केवल एक ही अष्टपदी है। राधा ने सखी से निवेदन किया। राधा चलने में अशक्त थीं। विरह से इतनी असहाय हो गयी थीं कि वह लताकुंज से उत्कण्ठा रखते हुए भी चल नहीं पा रही थीं। सखी राधा की दशा का वर्णन कर रही है कि 'वह तुममें खो गयी हैं और वहीं निकुंज में अनेक कल्पनाएँ कर रही हैं। कभी वह सोचती हैं कि तुम वहाँ हो, कभी चल पड़ती हैं, फिर लड़खड़ाकर गिर पड़ती हैं, कभी सोचती हैं मैं ही श्रीकृष्ण हूँ, कभी अन्धकार को ही श्रीकृष्ण मान लेती हैं और तुम्हारे मिलने की तैयारी किये मन में लज्जित होती हैं कि इतनी देर हो गयी, नहीं आये'। कुण्ठवैकुण्ठ का अर्थ है कुण्ठारहित। निर्द्वन्द्व श्रीकृष्ण हो गये हैं—'राधा नहीं आ पायीं। मैंने सन्देश दिया और वे तैयारी किये बैठी रहीं, आ नहीं पायीं। कहीं मेरी आकांक्षा में कमी थी'। इस सर्ग का नाम उत्कण्ठ या सोत्कण्ठ भी है। एक स्थान पर 'धन्यवैकुण्ठ' भी है। परन्तु 'कुण्ठ-वैकुण्ठ' पाठ अधिक सटीक लगता है।

रात बढ़ गयी है और चन्द्रमा जब सिर पर आ जाता है, तो राधा को लगता है कि ठगी गयी। सखी ने जब कहा—'प्रिय तुम्हारे लिए उत्कण्ठित हैं'। तो राधा बोलीं—'मैंने तैयारी की, वे नहीं आये। उन्होंने पीड़ा नहीं समझी कि मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ। मेरा मान उन्हें रखना चाहिए, स्वयं आ जाना चाहिए। जब प्रिय ने मेरा मान नहीं रखा, तब किसकी शरण में जाऊँ! सखी ने धोखा देकर मुझे वासकसज्जा बना दिया और प्रिय नहीं आये। इस वंचित भाव में अनेक कल्पनाएँ आती हैं। लगता है प्रिय इसलिए नहीं आये कि वे किसी दूसरी बड़भागिनी के साथ आराम कर रहे हैं और इस कल्पित बड़भागिनी के सुख की ईर्ष्या के दाह में राधा जलने लगती हैं। उसके सुख की अनेक प्रकार से कल्पना करने लगती हैं, फिर सोचती हैं कि उसे कोई विरह-व्यथा नहीं है। उसे चन्द्रमा नहीं जलाता। उसे मलय-पवन अनुतप्त नहीं करता। इस सर्ग में चार अष्टपदियाँ हैं और विप्रलब्धा नायिका के रूप में राधिका का मर्मस्पर्शी चित्रण है। यह वासकसज्जा और विरहोत्कण्ठिता की अवस्था के बाद विप्रलब्धा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाव की उत्थापना विरह को और भी उद्दीप्त करने के उद्देश्य से की गयी है। ठगे जाने का यह भाव सबसे अधिक उद्दीप्त करनेवाला भाव होता है। इस सर्ग का नाम जो **'नागरनारायणः'** रखा गया है, उसका अभिप्राय यही है कि अनेक व्यष्टि-चित्तवृत्तियों में एक-साथ रमनेवाले नारायण कितने चतुर हैं कि एक चित्तवृत्ति को दूसरी चित्तवृत्ति का पता नहीं चल पाता। वे जल में रहनेवाले जड़ नारायण नागर के छल-छन्द से परिचित हो गये हैं, यह सर्ग के शीर्षक का दूसरा अभिप्राय है। रात ढल रही है और वंचित होने का भाव और तीखा होता जा रहा है, क्योंकि पूरी रात व्यर्थ हुई जा रही है। इस सर्ग में चार अष्टपदियाँ हैं।

भोर होते-होते श्रीकृष्ण का अभिमान टूटता है। वे राधा के निकुंज में स्वयं आते हैं और राधा के चरणों में पड़ जाते हैं। आठवें सर्ग में प्रारम्भ इसी सूचना से होता है कि वे चरणों में पड़े हुए मना रहे हैं और आर्त्त राधा उन्हें झिड़क रही हैं, वह कह रही हैं—'चले जाओ, मुझसे छल-छन्द की बातें न करो। उसी के पास जाओ जो तुम्हारा दुःख हरती हो। तुम्हारा अंग-प्रत्यंग गवाही दे रहा है कि तुम मेरे पास नहीं आये, इसका कारण यहीं था कि तुम उसके साथ खेलते रहे'। इस सर्ग में विप्रलब्धा की स्थिति खण्डिता के रूप में स्पष्ट हो जाती है। पहले कल्पना थी, किन्तु अब राधा को स्पष्ट प्रमाण मिल जाते हैं कि प्रिय को मनाने आये हैं, उसमें कहीं खोट है। यह मेरे रहे नहीं, किसी दूसरी के हो गये हैं। खण्डिता की यह योजना भी व्यष्टि चित्त के विराट् के साथ एकाकार होने की प्रक्रिया को और तीव्रतर बनाने के उद्देश्य से है। टूटने का भाव होता है तो प्रेम में प्रकर्ष का वह क्षण आता है जब पूरे आक्रोश के बाद समर्पित चित्तवृत्ति विगलित होकर श्रीकृष्णमय हो जाती है, उसका अपना अस्तित्व नहीं रहता है। इस सर्ग का नाम इसीलिए **'विलक्ष्यलक्ष्मीपतिः'** है। लक्ष्मीपति होते हुए भी जब लख लिये जाते हैं तो वे विलक्ष्य हो जाते हैं। वे अलक्षित नहीं रह पाते क्योंकि अनेक लक्ष्य, अनेक चिह्न उभर आते हैं कि वे लक्ष्मीपति हैं, राधा के प्रिय नहीं हैं। उस लक्ष्मी के पति हैं जो राधा की छाया है। इस सर्ग में एक अष्टपदी है।

अब सखी बीच में पड़ती है और कलह के लिए तुली हुई राधा को मनाती है—श्रीकृष्ण तुम्हारे पास आये हुए हैं और तुम मान कर रही हो, यह ठीक नहीं है। सारी युवति-सभा इस पर हँस रही है। किसको इतना बड़ा सौभाग्य कि श्रीकृष्ण आकर पैरों पर पड़ें और मनाएँ। इस सर्ग का नाम है 'मन्द-मुकुन्द'। इस सर्ग में एक अष्टपदी है। बहुत बुद्धिमान् बनते थे, अब सारी अकल गुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गयी है। और श्रीकृष्ण को कुछ सूझता नहीं, कैसे मनाएँ? वे सखी को बिचवई बनाते हैं। एकाएक अपनी व्यापकता के उघर जाने से वे हक्का-बक्का हो जाते हैं। कहीं-कहीं सर्ग का नाम 'मुग्ध-मधुसूदन' भी मिलता है। इतने फूलों का रस चखनेवाले एकाएक बड़े निरीह बन जाते हैं और सारा दिन इस कलहान्तरिता राधा को मनाने में बीत जाता है। दिन में राधा से कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती। जब दिन ढलता है तो राधा का क्रोध शिथिल होता है, तब श्रीकृष्ण को अपनी चतुराई का परिचय देने का अवसर मिलता है। वे राधा की चाटुकारी करते हैं कि तुम चारुशीलवाली हो, अकारण क्यों मान कर रही हो, मेरे प्रति यदि इतनी नाराजगी है तो मुझे दण्ड दो। इस प्रकार बड़ी चतुराई से राधा के जरा-जरा पसीजते चित्त को वश में करते हैं और मानिनी का मान शिथिल करते हैं। इसलिए इस सर्ग का नाम **'चतुरचतुर्भुजः'** है। इस सर्ग में एक अष्टपदी है।

ग्यारहवें सर्ग के प्रारम्भ में सूचना मिलती है कि श्रीकृष्ण ने मनाया और फिर अपने कुंज में चले गये। राधा का मन भी उनके पास चलने को हुआ; क्योंकि तब तक राधा अपना राधापन खो चुकी थीं और श्रीकृष्ण राधामय होकर अपने कुंज में चले गये हैं। अब सखी को मौका मिलता है कि वह राधा से कहे कि—'इस अनुगत प्रियतम का अनुसरण करो। अब तुम श्रीकृष्ण को जगाओ'। इस सर्ग में तीन अष्टपदियाँ हैं। पहली अष्टपदी में श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे चलने का अनुरोध है। दूसरी अष्टपदी में कुंज में प्रवेश करने का अनुरोध है और तीसरी अष्टपदी में दोनों की आँखें मिलने का वर्णन है। श्रीकृष्ण को राधा देखती है तो पाती है कि वे अपने साज-शृंगार में राधामय बने हुए हैं, इसीलिए इस सर्ग का नाम **'सानन्ददामोदरः'** है। आनन्द के दाम से बँधे हैं। राधा घनश्याम की आनन्द-दामिनी ही तो हैं। उन्मत्त मेघ को सौदामिनी ही नियन्त्रित करती है। उसी के इशारे पर वह रस-वर्षा करता है। श्रीकृष्ण को इस रूप में देखने पर राधा को अपने प्यार पर और अपने ऊपर पूर्ण विश्वास हो जाता है।

द्वादश सर्ग के प्रारम्भ में सूचना मिलती है कि सखियाँ निकुंज से बाहर चली गयी हैं। अब एकाएक राधा को लज्जा और प्यार दोनों ने घेर लिया है। वे पल्लव-शय्या की ओर दृष्टि किये हुए हैं। श्रीकृष्ण ऐसे में प्रिया से कहते हैं—'अब तक तुम राधिका रही हो, आराधिका रही हो, अब देखो, नारायण स्वयं तुम्हारे अन्दर हैं। इनको प्यार करने की अनुमति दो'। इस बार सूचना मिलती है कि दोनों का मिलन होता है। दोनों का हरि के वांछित रूप में मिलन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है। इस मिलन के बाद राधा पुनः जैसे आयी थीं कृष्णमय होकर, वैसे ही कृष्णमय होना चाहती हैं और कृष्ण के हाथों रची जाकर होना चाहती हैं, इसलिए ये अनुरोध करती हैं कि तुम मुझे ऐसे सजाओ कि अंग-अंग में तुम छा जाओ, तुम्हारा रंग छा जाए। इस सर्ग का नाम है **'सुप्रीतपीताम्बरः'**। राधिका ही तो श्रीकृष्ण या पीताम्बर हैं, और ऐसे सम्पूर्ण भाव से राधामय श्रीकृष्ण से जब यह कामना की जाती है कि राधा ही अपने को श्रीकृष्ण बनाकर कुंज से लौटना चाहती हैं तो प्रीति की सफलता सुनिश्चित हो जाती है। इस सर्ग में दो अष्टपदियाँ हैं।

'गीतगोविन्द' का प्रारम्भ होता है वर्षा के मंगल से और अन्त होता है वासन्ती रसवृष्टि से, जब प्रिया-प्रीतम एक-दूसरे के रंग में भींगकर सराबोर हो जाते हैं। यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि किसका रंग ज्यादा गहरा है। दोनों के ऊपर एक-दूसरे का रंग उतना ही गहरा है। अन्तिम सर्ग के अन्त से यह ध्वनित है कि सुबह होनेवाली है। एक दिन और एक रात अनुताप और प्रतीक्षा में गये। दूसरा दिन मनाने और कोपने से शुरू हुआ और दूसरी रात में जाकर सम्पूर्ण भाव से मिलना सम्भव हुआ। तीसरे दिन का आरम्भ एक नयी रचना की तैयारी से होता है—राधा की कृष्णमय रचना, और यहाँ पर ग्रन्थ समाप्त हो जाता है।

इस ग्रन्थ का लक्ष्य ही यही था कि नयी राधा रची जाए और स्वयं श्रीकृष्ण के हाथों रची जाए। रची जाकर वह काव्य की, वैष्णव भक्ति की, कला की तथा संगीत की अधिष्ठात्री हो जाए।

'गीतगोविन्द' नाट्य-प्रबन्ध का मंगल भी अत्यन्त नाटकीय है। पूरा काव्य वसन्त का काव्य है और मंगल वर्षा का। पूरे काव्य में श्रीकृष्ण अत्यन्त चतुर और विदग्ध नायक के रूप में चित्रित हैं और इस मंगल में एक अबोध और निरीह किशोर के रूप में। इस वैषम्य के दो नाटकीय उद्देश्य हो सकते हैं। एक तो यह संकेत देना कि इस काव्य में वर्णित अनुराग-लीला का बीज ऐन्द्रिय और शारीरिक नहीं है। यह अनुराग अनायास अंकुरित हो गया था, जैसे उस उद्दाम ऋतु ने सारे बन्धन खोल दिये हों। वसन्त के आते-आते वह अनुराग निर्बन्ध और उत्कट प्रेम का स्वरूप ले चुका है। दूसरा प्रयोजन यह हो सकता है कि मंगल में राधा का उत्कर्ष दिखाकर यह इंगित किया गया है कि यह काव्य नायिकाप्रधान है, नायकप्रधान नहीं। एक तीसरा प्रयोजन भी हो सकता है कि वर्षा ऋतु के इस चित्र में सब-कुछ श्याममय है—आकाश, धरती, सब-कुछ। और श्याम को इतनी श्याममयता से घबराहट है। अपने स्वरूप के ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असीम विस्तार से आकुलता है। इस विराट् अकेलेपन का भय है। उन्हें इस अकेलेपन से मुक्ति चाहिए। जो-जो श्याम है, उसे एक विशेष स्वर्णिम आभा से मण्डित करने की आकांक्षा है, जिससे एक सामरस्य, एक चराचर-पूरकता स्थापित हो सके। विराट् के उन्मथित चित्र और व्यष्टि के अत्यन्त विश्वस्त चित्र के बीच सह-भाव जगाना है कि अब मेरे हो गये, यह विराट् अनुभव मेरा हो गया। इस सामरस्य की परिणति एकाएक सहायक नहीं होती। कई सोपानों से होते हुए शिखर पर पहुँचना सम्भव होता है। उन सोपानों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः।।

आकाश पहले से ही श्यामल है। काले मेघों के कारण उसकी श्यामलता और बढ़ जाती है। वह प्रगाढ़ श्यामल हो जाता है। वृन्दावन की भूमि वैसी ही बनी छाया के कारण श्यामल है, पर वर्षा में अपना पत्रजाल फैलाये और अपनी डालियों को जमीन तक लटकाये तमाल वृक्षों की सघनायमान छाया के कारण निपट श्यामा बन जाती है। अवनि और अम्बर की इस दोहरी श्यामता को और अधिक गहरी रंगत देने के लिए रात घिर आती है और इस रात में भीतर का अन्धकार भी घिर आता है। दशों दिशाएँ श्याम हैं। इस श्यामता में श्याम कहाँ जाएँ, कहाँ रहें। इस श्याम को गति कहाँ से मिले। इस श्याम को तो अपना घर भी भूल जाए, अपनी सुधि भी भूल जाए। अपने को अलग वह पहचान न पाएँ। नन्द को लगता है बस, ऐसे अपनी ही असीमता से घबराये हुए श्याम को यदि कोई रूप-विमर्श करा सकता है तो उसकी आह्लादिनी शक्ति ही करा सकती है। वह आह्लादिनी शक्ति राधा है। वे राधा से कहते हैं कि इस डरे हुए बालक को तुम्हीं घर पहुँचा सकती हो। इसे पहुँचा दो। इसका घर मनुष्य-मन के वे झुरमुट हैं जहाँ मन निरन्तर छिपने का स्वप्न देखा करता है। इसका घर भानुसुता यमुना की उजली बालू है, जो वृषभानुसुता राधा के चरणों में पड़ने से और उजली हो गयी। उस घर में पहुँचने पर ही श्याम को अपना बोध हो सकता है; क्योंकि तभी वे केवल सच्चिद्घन न रहकर सच्चिदानन्दघन हो सकते हैं। नन्द के निदेश पर आगे-आगे राधा, पीछे-पीछे माधव चल पड़ते हैं और रास्ते में जितने कुंज पड़ते हैं, उनमें प्रत्येक में निभृत एकान्त में सत् और चित् का आनन्द में, आनन्द का सत्-चित् में सम्पूर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलयन बार-बार घटित होता रहता है। इस प्रकार यह घटना कभी भी समाप्त नहीं होती, निरन्तर घटती रहती है। इसलिए यह एकान्त केलि केवल इसलिए एकान्त है कि एक के सिवा दूसरे को रहने नहीं देती, अन्यथा यह केवल एक कुंज में नहीं घटित होती। एक वृक्ष की छाया में नहीं घटित होती। असंख्यासंख्य कुंजों में, असंख्यासंख्य वृक्षों की छाया में, असंख्यासंख्य अभिलाषाओं के वितान में, असंख्यासंख्य चित्तों के गह्वर में, असंख्यासंख्य एकान्तों में, असंख्यासंख्य निभृत अवकाशों में बार-बार घटित होती रहती है, इसलिए 'रहःकेलयः' बहुवचन का प्रयोग हुआ है और 'प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं' कहा गया है, किसी विशेष तक इसे सीमित नहीं किया गया है। इस प्रकार की अनन्त केलियाँ अपूर्वता, उत्कृष्टता और रसमयता के कारण कुल की कुल अनन्त मंगलविधायिनी हैं।

कुछ टीकाकारों ने नन्द का अर्थ भीतर का आनन्द भाव लिया है और कहा है कि भला नन्द ऐसा निदेश क्यों देने लगे, इसमें औचित्य प्रतीत नहीं होता। पर काव्य की मनोरमता अभिभावक के द्वारा श्रीकृष्ण को राधा के हाथों सौंपे जाने में ही अधिक प्रस्फुटित होती है।

इस मंगल के तुरन्त बाद तीन छन्दों में कवि अपनी और अपने काव्य की ओर ध्यान आकृष्ट कराना चाहता है। दूसरे श्लोक में जयदेव सूचना देते हैं कि एक ओर तो यह रचनाकाव्य ऐसा है, जिसके चित्त का गृह वाग्देवी के चरित्र से चित्रित है, अर्थात् चित्त शुद्ध रचनामय है। पर इसके साथ ही कवि पद्मावती राधा के चरण उपासकों में सर्वश्रेष्ठ है, चक्रवर्ती है। इस प्रकार यह कवि समर्थ है कि सर्वव्यापी वासुदेव के प्यार की लीला से युक्त प्रबन्ध की रचना कर सके; क्योंकि रचना की अधिष्ठात्री देवी उसके भीतर निवास करती हैं और उसे श्रीराधा की सेवा का अखण्ड सौभाग्य प्राप्त है।

तीसरे श्लोक में कवि अपने समकालीन रचनाकारों का स्मरण करता है और उनसे अपने को अलग भी करता है। एक उमापतिधर हैं, जो वाणी को पल्लवित करना जानते हैं। एक शरण हैं, जो सूक्ष्म और प्रवाहयुक्त ध्वनि-प्रवाहों के मर्मज्ञ हैं। एक गोवर्धनाचार्य हैं, जिनका शृंगार रस की रचना में कोई प्रतिस्पर्धी नहीं सुना गया। एक धोयी हैं, जो श्रुतिमाधुर्य में कवियों के सिरमौर हैं। इन सबमें विशिष्ट हैं जयदेव, जो अकेले जानते हैं—शब्द का सही सन्दर्भ क्या है, प्रत्येक शब्द के भीतर निहित मार्मिक अर्थ क्या है और यह जानकर ही शब्दों का विन्यास करते हैं। उनके काव्य में न ध्वनि-प्रवाह ही मुख्य है, न सूक्ष्म अर्थों की खोज ही मुख्य है, न शृंगार ही मुख्य है और न वाग्विलास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही मुख्य है। इन सबको समेटनेवाला एक विशेष प्रयोजन ही मुख्य है, जो केवल क्रम की विलक्षणता के द्वारा विशिष्ट अर्थ का उद्‌भाव करा सकता है। वह अर्थ इस लोक में रहता हुआ भी इस लोक का नहीं है। वह अपने-आप में कितव है। कितव एक बड़े बारीक मुहावरे का शब्द है। जो बहुत ही कुशल ठग होता है, वह सामान भी लेता है और उल्टे कहता है—यह क्या तुम्हारा है, 'किं तव'? भोजपुरी में एक इसी प्रकार की कहावत प्रसिद्ध है 'बटुलिया तोर कि मोर'? (बटलोई तुम्हारी है कि मेरी?)

चौथे श्लोक में कवि अपने पाठक का चयन करता है। ऊपर से तो यह कहता है कि यदि आप का मन हरिस्मरण में सरस है और यदि आपके भीतर विलास-कलाओं के लिए कौतूहल है, तब आप जयदेव की इस सरस्वती को सुनें, जो मधुर कोमलकान्त पदावली से युक्त है। किन्तु वस्तुतः कवि का अभिप्राय यह है कि यदि केवल आप भक्तिरस में डूबे हुए हैं अथवा यदि केवल आप श्रृंगार में डूबे हुए हैं तो आप मेरे काव्य के अधिकारी नहीं हैं। इसका अधिकारी वही हो सकता है जो श्रृंगार का भी और भक्ति का भी अतिक्रमण कर चुका हो। जिसकी भक्ति लौकिक न रह गयी हो, जिसका प्यार लौकिक या परिमित न रह गया हो, ऐसा ही व्यक्ति इस काव्य का सच्चा अधिकारी है। जयदेव यह अच्छी तरह जानते हैं कि कोरे भक्त इस काव्य से उद्विग्न हो सकते हैं, और श्रृंगार तथा प्रेम को विलास समझनेवाले इस काव्य का अनर्थ कर सकते हैं। इस काव्य में दृश्य और श्रव्य का, मूर्त्त और अमूर्त्त का, भाव और विभाव का, उद्दीपन और आलम्बन का, संचारी और स्थायी का एकीकरण है, यह ऊँची रसमयी भूमिकावाले चित्त में ही ठीक तरह प्रतिबिम्बित हो सकता है।

इस प्रारम्भिक वक्तव्य के अनन्तर दो अष्टपदियों में दशावतार-चरित के वर्णन के द्वारा मंगलाचरण किया गया है। अष्टपदी की रचना मूलतः अभिनय के लिए है। इसलिए ये दोनों अष्टपदियाँ अभिनय से प्रायोजित हैं। पहली में दशावतारों का क्रम-वर्णन है, दूसरी में केवल राम और कृष्ण का। श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं, षोडश कलाओं में पूर्ण। उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती अवतारों में उनके पूर्ण व्यक्तित्व के कुछ-कुछ पक्ष व्यंजित हैं। पहली अष्टपदी में मत्स्य अवतार से लेकर कल्कि अवतार तक दश अवतारों का वर्णन है; किन्तु इसमें श्रीकृष्ण अवतार सम्मिलित नहीं है। इसका प्रयोजन स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण अवतार समस्त अवतारों में ओतप्रोत है। यही दिखलाना कवि को अभीष्ट है।

दशों अवतारों के वर्णन में एक समानता है, वह यह कि प्रत्येक वर्णन कुछ-न-कुछ नाटकीयता लिये हुए है। प्रलयकालीन समुद्र के उद्वेलन के विरुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक मत्स्य का प्रयत्न है कि हम जीवन के मुख्य तन्तुओं के प्रज्ञा के बीज वहन करनेवाले पोत बन जाएँ। दूसरे चरण में कच्छप एक डगमगाती हुई पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण करके स्थिरता और गति का सन्तुलन प्रस्तुत करता है। तीसरे में लीला भाव से एक दाँत की नोक पर पृथ्वी सुनहली माया की कैद से मुक्त करके सुरक्षित रख दी जाती है। ऐसा लगता है जैसे चन्द्रमा की गोद में कलंक-कला आकर धँस गयी हो। चौथे में एक आधा पुरुष और आधा सिंह का रूप सोने की शय्यावाले हिरण्यकशिपु दैत्य के काले शरीर को अपने तेज नखों से ऐसे चीरता है जैसे किसी भौंरे को बीच से कोई चीर दे। इनमें हाथों के संचालन पर बल है। इसके बादवाले चरण में पैरों के संचालन पर बल है, जब तीन पग में वामन त्रिभुवन नाप लेते हैं और नापते समय जब विराट् रूप धारण करते हैं, तो उनके पद-नखों की धोवन में ही गंगा का प्रवाह उमड़ आता है। पाँचवें में एक दूसरे प्रकार की सत्ता के मद का निराकरण है। उस मद के प्रभाव में लोग जल रहे हैं और भृगुपति रूप धारण करके भगवान् विष्णु सत्ताधीशों के रुधिर जल से उस ताप का शमन करते हैं। इसके बादवाले चरण में रामावतार में वे दस दिशाओं में रावण के दस सिरों की अलग-अलग बलि बाँटते हैं, जैसे वे दिशाएँ रावण के मदोन्मत्त अहंकार की प्यासी रही हों। आठवाँ अवतार बलराम हैं जो गौरवर्ण हैं और नीले घने बादल जैसा नीला वस्त्र पहनते हैं। अपने हल की नोक से पूरे हस्तिनापुर को उलटने के लिए यमुना को वह उद्वेलित करते हैं तो लगता है वह भयभीत यमुना ही उनके अंगों से लिपट गयी है। नौवाँ अवतार भावी अवतार है, बुद्ध का, जिसमें एक दूसरा उद्वेलन होता है, वह होता है मन में और बुद्धि में। यज्ञ-विधि के बारे में एक दूसरी समझदारी प्रस्तुत की जाती है। पशु-बलि के प्रति करुणा का उद्वेग उमड़ाया जाता है। अन्तिम अवतार है कल्कि अवतार, जो कलियुग की बर्बर संस्कृति का दलन करते हैं, एकाएक चमकते हुए धूमकेतु तारे की तरह सारे भूमण्डल में छा जाते हैं। इन सभी रूपों में अनेक नाटकीय भाव, जो एक-दूसरे के विरोधी रहते हैं, दर्शाये गये हैं। कहीं अतुलित धैर्य है, कहीं असीम क्रोध। कहीं छल है, कहीं सीधा आक्रोश। कहीं कठोरता है, कहीं करुणा। कहीं लीलाभाव है, तो कहीं प्रयत्न का संकल्प।

श्रीकृष्ण के रूप में सभी गुण किसी-न-किसी तरह एक नया सौन्दर्य पा जाते हैं। इसलिए दशावतार-कीर्तन के ब्याज से श्रीकृष्ण का सम्पूर्णत्व ही व्यंजित किया गया है। ऐसे सम्पूर्ण का असम्पूर्ण, खण्डित, व्यष्टि चित्त राधा के आगे और विशिष्ट हो जाता है। उद्दाम रसवर्षी घनश्याम का क्षणदा सौदामिनी के आगे, भरी हुई प्रकृति का निपात वसन्त के आगे, श्यामरस सम्भार का गौर रस बिन्दु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आगे समर्पण सार्थक हो जाता है, असीम इसी में अर्थ पाता है, और यही असीम का अपना विशिष्ट स्पृहणीय सौभाग्य है। यहीं से राधायुग का शुभारम्भ होता है। प्रपञ्चसार में श्री शंकराचार्य ने कहा है 'पुंनपुंसकयोस्तुल्या चाङ्गनासु विशिष्यते'। चैतन्य की लीला पुंस्तत्त्व और नपुंसकतत्त्व में सामान्य होती है, पर अंगनातत्त्व, नारीतत्त्व में विशिष्ट होती है। श्रीकृष्ण का भाव नारी की भावप्रतिमा राधा में ही रसत्व पाता है, और जब पाता है तो विराट् लघु की ओर अभिमुख हो जाता है, लघु का विराट् के आगे समर्पण कम महत्त्वपूर्ण है, विराट् का समर्पण अधिक महत्त्वपूर्ण और सार्थक है। यह होता है, तभी बिन्दु में सिन्धु को खोजने का नया प्रयत्न शुरू होता है। यह प्रयत्न 'गीतगोविन्द' की रचना से शुरू होता है। यह प्रयत्न 'गीतगोविन्द' की रचना से शुरू हुआ और इसके बाद तो शृंखला ही प्रयत्नों की बढ़ती जा रही है। कला में, संगीत में, काव्य में, दर्शन में, सामाजिक आचार में, सर्वत्र। कैसे बाँध दिये गये हैं श्रीकृष्ण प्रेम के दाम में, कितना सुख मिलता है मुक्तिदाता को बन्धन में पड़ा देखकर।

'गीतगोविन्द' और भागवत में अद्वितीय तादात्म्यभाव है। 'गीतगोविन्द' भागवत का पूरक है, एक तरह से उसकी फलश्रुति है। भागवत का प्रारम्भ सब कामनाओं के श्रीकृष्ण-भाव में विसर्जन से होता है और परिणाम होता है श्रीकृष्ण-भाव से भक्तजन में श्रीकृष्ण के भरने से। भागवत के केन्द्र में श्रीकृष्ण हैं। भागवत एक तरह से श्रीकृष्ण का वाङ्मय विग्रह है। 'गीतगोविन्द' के केन्द्र में श्रीराधा हैं, अत: वह राधा का, श्रीकृष्णमय राधा का गीतमय विग्रह है।

पहली बार पढ़ने पर 'गीतगोविन्द' समझ में नहीं आता। वह रस निर्झर की तरह केवल एक आप्लावित करनेवाले निनाद के रूप में गृहीत होता है। एक तो इस कारण समझ में नहीं आता कि हमारी समझ के ऊपर एक परदा टँगा हुआ है, १९वीं शताब्दी के पश्चिमी मसीही चिन्तन के अधूरे विचारदर्शन का। हम पूरे शब्दों को नहीं पढ़ते हैं, बीच-बीच में कुछ शब्दों को पढ़ते हैं और इस अधूरे वाचन के कारण 'गीतगोविन्द' को इन्द्रियविलास का काव्य मान लेते हैं, उसी रूप में उसका मूल्यांकन भी करते हैं। हम यह भी नहीं देखते कि अपने ही देश में 'गीतगोविन्द' को दृश्य और श्रव्य रूप में देखने-सुनने की अविच्छिन्न परम्परा रही है और वह परम्परा ही 'गीतगोविन्द' को एक जीवनरस-सृष्टि के रूप में सामने परसे हुए है। मध्ययुग की चित्रकला, मध्ययुग से लेकर अब तक का अभिनय, मध्ययुग की कविता, उन सबके केन्द्र में यदि एक ग्रन्थ है तो वह 'गीतगोविन्द' है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'गीतगोविन्द' की विशेषता यही है कि वह बहुत ही सीधे शब्दों में लय की वर्तुलता और रूपायमानता की सम्भावनाओं का ऐसा घनीभवन है कि कभी भी उसकी नवीनता चुकती नहीं। केवल ऐन्द्रिय भोग का काव्य इतनी सघनता का भाव कभी नहीं सँभाल सकता था, न वह पूरी भारतीय भावधारा को ऐसा शक्तिशाली मोड़ दे सकता था, जिसमें सिन्धु बिन्दु में समाने के लिए आकुल हो उठे। जयदेव का गीतगोविन्द भारत के सर्जनात्मक इतिहास की ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना है, जो अभी और आगे भी निरन्तर वर्तमान के रूप में, आवर्तमान के रूप में, विवर्तमान के रूप में प्रत्यक्ष अनुभव की जाती रही है, रहेगी। आवश्यकता है उसे ठीक-ठीक उसके चौखटे में रखकर देखने की, भारतीय विश्वदृष्टि के आलोक में देखने की और अध्यात्म के संसार को इन्द्रियगोचर संसार से अविलग देखने की।

श्रीराधा-तत्त्व

श्रीराधा के नाम के बारे में ऐतिहासिक दृष्टि रखनेवालों के भाँति-भाँति के विचार प्रचलित हैं। कोई कहता है कि 'राधा' नाम और राधाकृष्ण के प्रेम का आख्यान पहली-दूसरी शताब्दी में आभीरों के युग में प्राप्त होता है और वही आभीर-भूमि उत्तरकाल में श्रीकृष्ण की लीलाकेन्द्र बनी। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि यह नाम नक्षत्रवाचक 'अनुराधा' से उद्भूत है। सूर्य का जब 'अनुराधा' नक्षत्र के साथ योग होता है, तो मार्गशीर्ष मास आरम्भ होता है और मार्गशीर्ष मास से तभी वर्ष प्रारम्भ होता था। इसी कारण भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अपने को मार्गशीर्ष महीना बताया है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते समय अपने को महीनों में मार्गशीर्ष महीना बताया है। पहले शरद् ऋतु ही वर्षान्त होती थी, इसलिए वेदों में सौ शरद् जियें, सौ शरद् सुनें जैसी कामनाएँ की गयी हैं।

शरद् सम्पात से वसन्त सम्पात तक आकर वर्षा आरम्भ करना खगोल के परिवर्तन के कारण हुआ है और इसी परिवर्तन में भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार कई हजार वर्ष लगे हैं। ऋग्वेद में विशाखा और अनुराधा युग नक्षत्रों को आलंकारिक भाषा में सूर्य की क्रिया के रूप में देखा गया है। कुछ लोगों ने यह समझा कि राधा नाम केवल नक्षत्र से जुड़ा हुआ था तथा श्रीमद्भागवत-पर्यन्त वैष्णव पुराणों में राधा का नाम उल्लिखित न होने से यह अनुमान किया है कि राधा का महत्त्व भारतीय साहित्य और कला में आठवीं-नौवीं शताब्दी के बाद से दिखाई पड़ने लगता है। जयदेव के 'गीतगोविन्द' से राधा काव्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को नया उत्कर्ष मिलता है और यह उत्कर्ष बांग्ला, मैथिली, ब्रजभाषा में और गुजराती के काव्यरूपों में निखरता ही चला गया। इन सबसे अलग एक समग्र दृष्टि है, जो श्रीकृष्णतत्त्व और राधातत्त्व को दो नहीं मानती, एक मानती है। श्रीकृष्ण को अपनी समग्र पहचान के लिए अपने ही आत्मीय अंश के रूप में श्रीराधा की आवश्यकता है। श्रीराधा को अपने समग्र की पहचान के लिए अपने ही आत्मरूप श्रीकृष्ण की आवश्यकता है। यह आवश्यकता शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप से इस मायने में विलग है कि शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप अविभक्त होता हुआ भी विभक्त है और श्रीराधा-कृष्ण का स्वरूप विभक्त होता हुआ भी अविभक्त है। वृन्दावन में 'बाँकेबिहारी' की मूर्ति के बारे में लोक-श्रद्धा यही है कि उसमें श्रीराधा और श्रीकृष्ण स्वामी हरिदास की दो हथेलियों पर नाचते-नाचते दोनों हथेलियों के मिलने से एक ऐसे रूप में प्रतिष्ठित हुए, जिसे कभी कोई ध्यान से देखता है तो उसमें कभी श्रीराधा की छवि झलकती है तो कभी श्रीकृष्ण की छवि। एक ही क्षण में श्रीराधा और श्रीकृष्ण की छवियों का विनिमय होता रहता है। अनेक देवी-पुराणों में, अनेक कथानकों में श्रीराधा श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्यार का विग्रह हैं और वे इस प्यार की साकार प्रतिमा होने के कारण श्रीकृष्ण से नित्य संयुक्त हैं। एकाएक ऐसा लगने पर कि श्रीकृष्ण तो कहीं चले गये, शरीर से या मन के ध्यान से चले गये लेकिन चले गये, यह एक क्षण का विरह ऐसा व्याकुल करनेवाला होता है कि ऐसे अनन्त क्षणों के कारण, ऐसे अनन्त क्षणों के अन्तराल आने के कारण वे नित्य वियुक्त भी हैं। वे नित्य संयोग-वियोगमय श्रीकृष्ण की आकांक्षा ही नहीं करतीं, वह आकांक्षा करती हैं, श्रीकृष्ण के प्यार में, श्रीकृष्ण के भाव में निरन्तर निमज्जन और उन्मज्जन की गाथा में, जो रसखान के शब्दों में केवल चाह बनी रहना चाहती है। यह न श्रीकृष्ण की प्राप्ति है, न अप्राप्ति है, यह दोनों है। श्रीकृष्ण के ध्यान की प्राप्ति की अभिलाषा नहीं है, श्रीकृष्ण के गोलोकधाम की प्राप्ति-अभिलाषा नहीं है, यह सनातन रूप से लीला है जो अतिप्रिय, अतृप्त अभिलाषा है। लीला में भाग लेने की या लीला में भाग न ले सकने की छटपटाहट की व्याकुलता की परिणति है श्रीराधा। श्रीमद्भागवत के बारे में यह भी कहा जाता है कि उसमें श्रीराधा का नाम नहीं है। केवल 'अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः' के द्वारा तो कुछ अन्य संकेतों के द्वारा यह इंगित है कि कोई एक मुख्य गोपी श्रीकृष्ण की प्रीतिभाजन थी, जिसे श्रीकृष्ण ने अपने कन्धों पर चढ़ाया। इसी श्रीकृष्ण ने जब उनके पाँव दुखने लगे, उसमें काँटे गड़ने लगे तो अपने कन्धे पर चढ़ाया और फिर एकाएक उस गोपी के मन में प्रेमाभिमान जाग्रत् हो जाने के कारण उन्हें कन्धे से उतार दिया और अन्तर्धान हो गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह गोपी अकेले श्रीकृष्ण के विरह में बिलखती रही। दूसरी गोपियाँ श्रीकृष्ण को खोजती-खोजती आती हैं तो उन्हें यह मुख्य गोपी दिखाई देती है। रास के (प्रथम) दिन उसी गोपी का नाम लिये बिना संकेत है जिसमें कहा गया है कि 'पुलकाङ्गमुपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता। सर्वास्ताः केशवालोक-परमोत्सवनिर्वृताः'।। (श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध पूर्वार्ध, अध्याय-३२, श्लोक, ८।९)

अर्थात् जहाँ गोपियों ने अंगस्पर्श के द्वारा विविध प्रकार से श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध जोड़ा, वहीं एक गोपी ऐसी है जो आँखों के सम्पुट में उन्हें भरती है और उन्हें हृदय के भीतर पहुँचा देती है और वहीं पर उनसे एकात्म होती है। यही भाव स्थापित करनेवाली श्रीराधा हैं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है। श्रीराधा के नाम का उल्लेख श्रीमद्भागवत में नहीं है, इसके लिए एक भक्तिभाव का तर्क दिया गया है, श्रीराधा का नाम पूरा लेते ही श्री शुकदेव को छः महीने की समाधि लग जाती थी, उन्हें सात दिन के भीतर श्रीमद्भागवत-कथा परीक्षित् को सुनानी थी, इसीलिए उन्होंने श्रीराधा का नाम जानबूझकर नहीं लिया, केवल संकेत किया। ब्रह्माण्ड-पुराण की कथा के अनुसार श्रीललिता ने शक्ति के पूर्णभाव का प्रत्यक्षीकरण कराने के लिए रूप धारण किया और शिव श्रीराधा बन गये। आज भी नन्दगाँव की पहाड़ी ब्रह्मा जी का रूप, गोवर्धन की पहाड़ी विष्णु का रूप और बरसाने की पहाड़ी शिव का रूप मानी जाती है।

एक दूसरी कथा भी है, जिसमें श्रीराधा का ब्रजभूमि में कैसे आविर्भाव हुआ, यह वर्णित है। इस आख्यान में पहले राधा ने गंगा को शाप दिया कि मेरे प्रिय के चरणों में क्यों लिपटी रहती हो, जाओ तुम मर्त्यलोक में जड़ नदी बन जाओ। गंगा ने उलटकर शाप दिया कि मेरी सेवा-भावना भी तुम्हें चुभती है तो तुम भी मर्त्यनारी बनकर संयोग में भी वियोग के दुःख अनुभव करो। इन दोनों के अवतरण से भूमि धन्य हो जाती है और देवता भी इस भूमि से स्पृहा करते हैं। इस प्रकार के अनेकानेक आख्यानों में दो और महत्त्वपूर्ण हैं। पहले में तो यह कहा गया है कि रामावतार में सीता के निर्वासन के बाद अश्वमेध यज्ञ करते समय भगवान् रामचन्द्र को सीता की स्वर्णमूर्ति यजमान-पत्नी के रूप में स्थापित करनी पड़ी, जब यज्ञ सम्पन्न हो गया तो उन्होंने उस मूर्ति का विसर्जन करना चाहा तब उस प्राणप्रतिष्ठित मूर्ति ने विसर्जित होने से इनकार कर दिया और कहा कि मैंने तुम्हारा इतने प्रयोजन में साथ दिया, तुम मुझे विसर्जित कैसे करोगे? तब रामचन्द्र को उसे तत्काल सन्तुष्ट करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए यह वादा करना पड़ा कि इस जन्म में तो नहीं, लेकिन अगले अवतार में तुम श्रीराधा होगी और तुम्हारा हमसे नित्य संयोग बना रहेगा। किन्तु हमसे तुमने बड़ा दुराग्रह किया, इसलिए मैं इस वरदान के साथ-साथ यह शाप भी देता हूँ कि तुम नित्य यह समझती रहोगी कि मैं तुमसे बिछुड़ा हुआ हूँ। इस प्रकार नित्य संयोग और वियोग ही राधा की नियति है।

दूसरे आख्यान में श्रीराधा के ललिता के रूप में अलग से स्थापित होने की कहानी है। श्रीराधा ने भगवान् से मिलने के लिए शृंगार किया, भगवान् को प्रिय लगने के लिए शृंगार किया, तब दर्पण में देखना चाहा कि मैं कैसी लग रही हूँ? दर्पण की ओर देखते समय उन्हें ऐसा लगा कि कहीं पीछे से भगवान् उनका ही रूप देख रहे हैं। दूसरे शब्दों में उन्हें लगा कि भगवान् मेरा प्रतिबिम्ब निहार रहे हैं और अपने प्रियतम, अपने भगवान् द्वारा निहारे गये प्रतिबिम्ब को देखकर इतनी उल्लसित हुईं कि उन्हें मूर्च्छा आ गयी; क्योंकि अपने को पहचानना तभी पहचान बनता है, जब अपना प्रिय उसे पहचान ले। प्रिय के द्वारा पहचाना गया, प्रिय की दृष्टि से आलोकित अपना रूप स्पृहा का विषय बन गया, राधा मोहित हो गयीं। वह दर्पण में बस गया और वही रूप श्रीललिता के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। यदि इन आख्यानों का आकलन किया जाय, तो यही स्पष्ट होता है कि श्रीराधा भारतीय वाङ्मय की अद्वितीय विभूति हैं। वे दूसरी सहचारिणी देवियों से भिन्न हैं। उनमें शुद्ध प्रियातत्त्व है। वे जगन्माता न होकर जगदीश्वर की आह्लादशक्ति होने के कारण, दूसरे शब्दों में आनन्दतत्त्व की आनन्दशक्ति होने के कारण सबसे अलग हैं। वे स्वयं जन्म लेनेवाली हैं और किसी को जन्म देनेवाली नहीं है। सनातन प्यार की अधिष्ठात्री हैं और ऐसी अधिष्ठात्री हैं जो लीला के नायक को उसमें से बाहर जाने नहीं देतीं। वे लोक के परे होते हुए भी इस लोक की सनातन नागरिक हैं। श्रीराधा का प्यार ही श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र का सबसे बड़ा सम्बल है। ऐसा समर्पण, और ऐसा इस तरह से एक-दूसरे का ढूँढ़ना, किसी दूसरे प्रेमाख्यान में दिखाई नहीं पड़ता है।

श्रीकृष्ण और श्रीराधा पृथक् नहीं हैं, जैसे भाव और रस पृथक् नहीं हैं। भाव का उच्छलन ही रस है, श्रीकृष्ण का राधामय होना ही सच्चिदानन्दसागर का ज्वार है। ब्रह्म अतिक्रामी ही नहीं होता, अतिक्राम्य भी होता है, ब्राह्मी स्थिति सबके भीतर होती हुई सबके परे भी जाती है तो ब्राह्मी स्थिति के परे भी एक स्थिति होती है, मोहरूप द्वैत को पार करके अद्वैत की जड़ता तोड़ने वाली भी एक गति होती है, उसी का नाम राधा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यान साँवरे के रंग में रँगा है, आँखों में साँवरे का रस आँसू बनकर उमड़ा चला आ रहा है, कहीं नाभि से स्वर उठ रहा है—कृष्ण-कृष्ण, गोविन्द-गोविन्द, दामोदर-दामोदर, माधव-माधव। श्रीकृष्ण को इसी रस की तरस है, अतृप्य तरस है। सबसे अधिक तरस है शिवस्वरूप श्रीराधा के शान्तनिर्धूम तप के ताप पर खौलाये सात्त्विक वाणी के रस से धैर्य के जेमन से जमाये दही के स्वाद की। सूर की राधा ने कहा—'मेरे दधि को हरि स्वाद न पायो'। हरण करनेवाले लुटेरे ने मेरे दही का स्वाद कहाँ पाया। वह लूटने से नहीं मिलेगा। वह मिलेगा निःशेष समर्पण से, भूमिका-परिवर्तन से, पीताम्बर देकर नीली ओढ़नी लेने से; वंशी देकर मोर मुकुट देकर, बेंदी सिर पर धारण करने से, वास-परिवर्तन से, आगे जाकर चित्त-परिवर्तन से, पुनः स्वभावज नारीरूप में अपना शृंगार कराके और अपने हाथ से शिवरूप राधा को पुरुष में प्रतिष्ठित कराके प्राणों के विनिमय से। श्रीकृष्ण राधा होकर बेचारी राधा के लिए अकुला उठे, उसे बहुत सताया, कैसी होगी, श्रीकृष्ण राधा होकर रूठ जाएँ और मनाये न मानें, कृष्ण हुई राधा थक जाएँ, खीझ जाएँ, क्या अपराध मुझसे हुआ। यह वैचित्त्य, चित्त का अपना चित्त न रह जाना, अपना विशिष्टचित्त हो जाना, सामान्य चित्त की तरह आत्मचित्त न रह जाना, परकीय हो जाना, श्रीकृष्ण-भाव का उच्छलन है। तभी श्रीकृष्ण रस बनते हैं। मैंने उन्हें अन्यत्र भावपुरुष कहा है, उस होने की अधिकारिणी तो केवल उनकी आह्लादिनी शक्ति है, उनका राधामय रूपान्तर है।

राधा न शरीर हैं, न इन्द्रिय, न पत्नी, न पुत्री, वे केवल प्यार हैं। राम में पन्द्रह कलाएँ हैं, सोलहवीं कला तो वह राधा हैं, जिसको अमृता कहें, जिसे राधने का व्यापार कहें, जिसे चाहत कहें, जिसे अपने को मिटाकर विराट् का वरण कहें या सब अधिकारियों को छोड़कर, सुविधाओं, ऐश्वर्यों को छोड़कर केवल आराधिका के अधिकार का वरण कहें, कुछ भी कहें, श्रीकृष्ण के जीवन की जीवनमूरि राधा हैं।

श्रीकृष्ण के श्यामल रूप से पहले उनका वह प्रभामण्डल राधा है। उनके श्याम ललाट पर जो सबसे पहले झलकता है वह है गोरोचन का तिलक, जो राधा है। श्रीकृष्ण के प्राणों की पुकार भी राधा ही हैं। श्रीकृष्ण के रास की ईश्वरी भी राधा ही है। राधा मानव-मन की आदिम वृत्ति है। जो सम्पूर्ण सत्ता को अपनी तरह से बेचैन पाता है, समरस पाता है, वह छोटे मानस में रससिन्धु को भरने की न पूरी होनेवाली कोशिश है। हाँ, राधा पत्नी नहीं, माँ नहीं, बहन नहीं, सखी नहीं, बस केवल प्रिया हैं। भारतीय साहित्य में एकनिष्ठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पातिव्रत की प्रतिमा सीता हैं, रुक्मिणी हैं, सख्य की प्रतिमा द्रौपदी हैं, बहन के दुलार की प्रतिमा हैं सुभद्रा, ऐसी प्रतिमा कि जगन्नाथ जी से लक्ष्मी रूठ गयीं, बेचारे भाई बहन के साथ ही काठ होकर विराजमान हैं, लक्ष्मी मन्दिर में हैं पर प्रिया तो केवल राधा हैं। राधा एक सर्वस्वनाशी प्यार का विग्रह हैं, जहाँ कामनाएँ क्षार हो गयी हैं, प्राप्ति ठुकरा दी गयी है। मिलन छोटा हो गया है, बस केवल प्यार रह गया है।

मुझे बराबर यही लगता है कि श्रीकृष्ण का निर्मोही रूप, योगीश्वर रूप, दार्शनिक रूप, मदविनाशक रूप, ये सभी राधा के प्यार से उद्भुत हैं। राधा के प्यार की धूपछाँही व्यंजना ही श्रीकृष्ण का दुरवगाह चरित है। इतनी अविचल शक्ति, इतना निरुद्वेग भाव और इतनी निर्मम कर्मसम्पृक्तता बिना किसी बड़े आलम्बन के एक व्यक्ति से, चाहे वह समष्टि का एकीकृत रूप ही क्यों न हो, सध नहीं सकता।

इसे यों भी कह सकते हैं, श्रीकृष्ण के स्मरण का कुसुमित परिणाम है राधा का स्मरण, श्रीकृष्ण रूप में कोई गन्ध नहीं, पर राधा के अंग के वे जब शृंगार बनते हैं, तो काले रंगमात्र नहीं रहते, वे मृगमदरस (कस्तूरी के रस) बन जाते हैं और रस बनकर राधा के रोम-रोम में खिले आकांक्षाओं के असंख्य कुसुम-स्तवकों में रस की तरह आपूरित हो जाते हैं। श्रीकृष्ण का घनश्याम-रूप वसन्त का आभरण पाता है और राधा का मधुमय यौवन श्रीकृष्ण की कस्तूरी-गन्ध का आमोद। पर अकेले श्रीकृष्ण न वर्षा हैं, न राधा वसन्त हैं। अकेले श्रीकृष्ण एक विशाल और उज्ज्वल अन्धकार हैं, राधा के अभिभावकत्व में वे वर्षा हैं, पर राधा कभी अकेली हैं ही नहीं, वे श्रीकृष्ण की असंख्य सुधियों के बीच हैं, वे नित्य वसन्त हैं, नित्य नूतन की आकांक्षा हैं, नित्य ताप हैं, नित्य मरण हैं और इसलिए महाकाली के पुरुषावतार श्रीकृष्ण की नित्यलीला का अधिष्ठान हैं।

राधा माधव हो गयी

हमारी शिक्षा ने बचपन में कुछ बड़े ही अस्वस्थ संस्कारों के बीज बोये और मैं तो अपने को भाग्यशाली मानता हूँ कि श्रीमद्भागवत पर शोध का कार्य इन संस्कारों की छाया में शुरू तो किया, पर कई कारणों से वह कार्य अधूरा रह गया और जो उस समय मैं लिखता, वह पाप होता, उससे मैं बच गया। उस जमाने में दो भूत बड़े जबर्दस्त थे। एक तो ब्रह्म का, जिसके कारण भागवत में 'बिलकुल ब्रह्मवाद' देखने के लिए आँखें फोकस कर दी गयी थीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा था पश्चिमी छूँछी नैतिकता के आग्रह का, जिसके कारण सनातनी 'कल्याण' भी यह सफाई देता था कि श्रीकृष्ण तो केवल पाँच-सात वर्ष के थे, उस समय रासलीला में कोई वैसी बात सोची नहीं जा सकती। 'गीतगोविन्द' को भक्ति का ग्रन्थ मानने के लिए पढ़ा-लिखा तर्क-बुद्धि आदमी तैयार नहीं होता था। इसीलिए एक निर्जीव और भावहीन चिन्तन के गुंजलक में हम सभी लोग गिरफ्त थे और गोपी-प्रेम को हम लोग या तो प्रतीक मानकर ही किसी तरह भक्ति का दामन बचा सकते थे या फिर ऐतिहासिक पाण्डित्य का लबादा ओढ़कर आभीर-कृष्णवाली लीलाओं को बाद का क्षेपक मानकर एक शुद्ध गीतावादी कृष्ण को इतिहासपुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करके अपना सांस्कृतिक अभिमान सुरक्षित रख सकते थे।

पता नहीं, कैसे इस गुंजलक से मुक्ति मिली, पर आज भक्ति की पात्रता अपने में पाऊँ, न पाऊँ, इतना तो है ही कि चाहे 'गीतगोविन्द' मणिपुरी और ओडिसी नृत्यरूपान्तर का प्रभाव हो, चाहे काँगड़ा गुलेर के चित्रों का, चाहे विदेश में रहकर अपने देश को पहचानने की नयी कोशिश का, अब भयंकर आधि-व्याधि में भागवत का पारायण उस आधि-व्याधि को जीवन के महनीय क्षण में, जीवन के स्पृहणीय क्षण में जरूर रूपान्तरित कर देता है; क्योंकि तब वह क्षण-क्षण (उत्सव) बन जाता है। अपनी श्यामलता में अशेष अन्धकार को आकृष्ट करनेवाले मेघमेदुर कृष्ण के साक्षात्कार हों न हों, अपना अन्धकार भी प्रिय हो जाता है; क्योंकि वह अन्धकार ही प्रकाश का एकमात्र झरोखा मेरे-जैसे साधारण आदमी के लिए हो सकता है; प्रकाश की पूँजी पर जो इतराएँ, उनकी बात अलग है, क्योंकि देखता हूँ, उस कृत्रिम प्रकाश ने जिस जली काली छाया को जन्म दिया है, उससे यह स्निग्ध अन्धकार लाख गुना प्रेय है, और साथ ही साथ श्रेय भी।

अब, जब भागवत पढ़ता हूँ तो उसका पहला स्कन्ध बड़ा सार्थक लगता है। अर्जुन के शोकगीत को पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगता है जैसे भगवान् अभी-अभी मुझे ही धोखा देकर चले गये और उनके जाते ही मेरा कहा जा सके, ऐसा कुछ भी नहीं रहा। यह भी लगता है कि राधा नाम भागवत में आया या नहीं, राधाभाव ही भागवत की पराभूमिका है; यह न होता तो भीष्म, शुकदेव, नारद, उद्धव जैसे तत्त्वज्ञानी को भी यह स्पृहा क्यों होती—'राधा की कौन कहे, सामान्य गोपी की भी चरण-धूलि जहाँ लगी हो, उन झाड़ियों, वनौषधियों, लताओं का भी कुछ हो पाता तो भक्ति के परमफल का कुछ स्वाद तो मिल जाता'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्याम्,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

मैं भागवत धर्म को एक पोथी में बँधा धर्म नहीं मानता, मैं इसे मनुष्य की अनन्त भावयात्रा का प्रक्रिया-धर्म मानता हूँ और यहाँ इसी रूप में इसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

भागवत का सूत्रपात उचाट से होता है। अठारह पुराण, महाभारत और वेद की संहिताओं के सम्पादन के बाद भी व्यासदेव को लगता है, जो करना चाहिए था, वही नहीं किया है और सरस्वती के किनारे अनमने भाव से सोचते हैं—अपने ही किये से ऐसी उचाट क्यों? नारद समाधान देते हैं—अभी असली बात आपने कही कहाँ? जो वास्तव में वेद्य है, जानने योग्य है और जो शिवप्रद है, जिसमें सहज निष्कपट धर्म भावरूप में लीलायित है, जिसमें जगत् को, मायापाश से बाँधनेवाले को भी बाँधने का विधान है, ऐसी हरिलीला की बात अभी आपने की ही नहीं, जिस निष्काम कर्मयोग की बात आपने की, जिस ज्ञानयोग की बात आपने की, वह कर्मयोग अपनी सार्थकता अच्युत भाव से प्राप्त करता है, और वह ज्ञानयोग श्यामदृगों में अंजित होकर ही निरंजनमल न रहकर ज्योति बन जाता है—

'नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्'।

आपने अभी तक काकपेय तीर्थों का निर्माण किया, हंसों के एकान्तभाव से रमने के लिए कोई घर आपने बनाया ही नहीं। आपको ऐसी प्यास ही नहीं लगी, जिसके लगते ही सारी तृषाएँ तृप्ति बन जाती हैं, पर जो स्वयं तृप्ति होते हुए कभी भी तृप्त नहीं होती। आपने केवल चार पुरुषार्थों को साधने के जतन बताये पर चारों पुरुषार्थ साधने में जहाँ से नया-नया स्वाद आता है, उसे तो आपने अभी तक साधा ही नहीं। जीवन्मुक्त भी जिस बन्धन को मुक्ति से बड़ा मानकर वरण कर सकें और विषयों में फँसे लोग जिसे विषय के रूप में स्वीकार करके विषयी होते हुए भी विषयातीत हो सकें, ऐसी शाश्वत लीला का आख्यान आपने शुरू ही नहीं किया। शायद इसीलिए आप एक कुहासे से ढँके द्वीप में अँधियारे में पैदा होकर भी उस उपेक्षा की पीड़ा से वंचित रह गये, जो इस लीला का अर्थ समझने के लिए सबसे जरूरी शर्त है। मैं उस पीड़ा से गुजर चुका हूँ, एक दासी के पेट से जनमा, केवल हर तरह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जूठन बटोरता रहा निरभिमान भाव से, भोजन मुझे जूठन के रूप में ही मिलता रहा, न पेट भरता रहा, न मन भरता रहा। उसी अतृप्ति में मैंने पाया कि पूर्णकाम नारायण भी अतृप्त हैं, वे सगुण-लीला केवल भक्त के लिए नहीं करते, अपने लिए अपनी बेकली दूर करने के लिए सगुण लीला रचते हैं और उस लीला को फिर समेट नहीं पाते, क्योंकि जो कोई भी उस लीला में अपने को कभी भी, स्मृति में ही सही, कहीं खड़ा कर देता है, लीला उसकी आँखों में बस जाती है और लीलामय उन आँखों में सदा के लिए बस जाते हैं।

भागवत नारद की इस सीख का परिणाम है और भागवत के पहले गृहीता इसीलिए जन्म-जात परमहंस शुकदेव हैं, जो सब ओर से निराकांक्ष होने के बाद भी भागवत लीला के लिए सतत साकांक्ष हैं और शुकदेव इस लीला को सबसे पहले सुनाते हैं परीक्षित् को, जिनकी मृत्यु सात दिन बाद होनेवाली है, इसलिए इन सात दिनों में अपने उस त्राता की कथा सुन लेना चाहते हैं, जिन्होंने गर्भ में अश्वत्थामा की शक्ति से रक्षा की थी और जिनकी कथा की उत्कण्ठा में मृत्यु जीवन की अतृप्त लालसा बन गयी है।

शौनक ने सूत को यहीं पर टोका—

भगवत्परायण परीक्षित् ने शरीर-त्याग का निश्चय किया कैसे? भगवत्परायण व्यक्ति का शरीर दूसरे के लिए है, उस शरीर पर उसका अपना स्वत्व ही कहाँ, इस भगवदर्पित, इस लोकार्पित शरीर से निर्वेद मोक्षाभिलाषी को हो तो हो; भगवद्भक्त को क्यों हो?

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम्।।

वह शंका ही भागवत-धर्म की दूसरी भूमिका है। उत्तमश्लोक भगवान् में निरन्तर जीने का अर्थ है लोक-कल्याण के लिए जीना, लोक के अभ्युदय के लिए जीना और सबसे अधिक लोक के दुःख की साझेदारी के लिए जीना, जब तक एक भी कोना उल्लसित होने से रह गया है, जब तक एक भी दुःख का कण अपनाने से रह गया है, जब तक जिन्दगी एक निरन्तर बेचैनी की उन्मदान्ध यात्रा है, कभी उद्धारक बनकर, कभी उद्धृत बनकर, कभी मोहन बनकर, कभी मोहित बनकर, कभी माधव बनकर, कभी राधा बनकर और कभी-कभी एक ही राधाशरीर में त्वरित क्रम से राधा और माधव बनकर। इस बेचैनी की भी एक शर्त है, दूसरी बेचैनियाँ इसकी धार में बह चलें, केवल यही एक बेचैनी रहे, जैसे—अनउगे पंखवाले चिरौटे चोंच फैलाये माँ के लिए आकुल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो जाते हैं, माँ चारा लेकर आती होगी, उस समय शीत-घाम, आँधी-पानी कुछ भी मालूम नहीं पड़ता, पास के कोटर में महाव्याल की जीभ लपलपा रही है, इसका भी ध्यान नहीं रहता, बस माँ आ रही होगी, इसी का बेसब्री से इन्तजार रहता है, या जैसे सुबह के बँधे बछड़े को शाम होते ही दूध से भरे हुए थन की याद विह्वल कर देती है, कब हुमच-हुमच कर वह अमृत पीने को मिलेगा, दिन कितना लम्बा खिंचेगा, कब मेरी आतुरता देखते ही दूर से रँभाती हुई माँ के थन मेरे मुँह लगाने के पहले ही पेन्हा उठेंगे; या जैसे दूर अवधि देकर गये प्रियतम के लिए अवधि समीप आते ही आशा-निराशा का निविड संघर्ष छिड़ जाता है, एक छन होता है, दो दिन बाकी हैं तो क्या आज शाम आ जाएँगे, सबेरे कागा उचरा था, फिर दूसरे छन ही डर लगता है कहीं बिलम तो नहीं गये, कहीं बिंध तो नहीं गये और विषाद साँझ की प्रतीक्षा किये बिना गहरा हो जाता है। वैसी बेचैनी हो, तब जिसे दर्शन देना है, जिसे प्यास मिटानी है, जिसे उपासी आँख को रूप का पारण देना है, वह स्वयं बेचैन हो जाएगा, वह 'दीर्घ-दर्शन बनकर आएगा', पर शर्त है— आकुलता ऐसी हो—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः,
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा,
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।।

वैसी बेचैनी के बारे में लोगों का खयाल आजकल सम्भव नहीं, उस आदिम जमाने में जब संचार-साधन नहीं थे, तब यह आकुलता कुछ माने रखती थी, आज तो दुनिया सिकुड़ गयी है, दर्शन-श्रवण का सुख लाखों-लाखों कोस की दूरी से भी सुलभ है; पर दर्शन की लालसा का क्या अर्थ? पर सच तो यह है कि अर्थ आज ही सबसे ज्यादा रखता है; क्योंकि देखना-सुनना सिर्फ आँख-कान से नहीं होता, ऐसा होता तो एक ही साथ लोग रहते हैं, दिन-रात एक-दूसरे को देखते-सुनते रहते हैं, पर न वह देखना होता है, न सुनना होता है। एक ही घर में लगता है लोग एक-दूसरे के लिए प्रवासी हो गये हों, परिचय ही दीवार बन गया हो और आँख से देखना कान से सुनना हो भी, पर सर्वात्म भाव से देखना-सुनना दूभर हो गया है; क्योंकि बेचैनियाँ इतने प्रकार की इतनी सारी बढ़ गयी हैं कि हर नयी बेचैनी पहलीवाली बेचैनी को काटती चलती है, पता ही नहीं लगता, कौन बेचैनी सचमुच की बेचैनी है। बेचैनियों की इसी अनवच्छिन्न शृंखला में तो एक दिन ऐसी बेचैनी जुड़ेगी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसके आगे कोई बेचैनी न रह पाएगी, रह जाएगा एक कगार और कगार के नीचे एक खड्ड—काला और डरावना खड्ड। तब बेचैनी जो भी शक्ल लेगी, बेचैनी के जो सबसे बड़े सौदागर हैं, बेचैनी खरीदना और बेचना ही जिनका धन्धा है, वे बनजारे दरवाजे पर अपने-आप आ जाएँगे। वे बेचने की बेबसी भर देखते हैं, और जान जाएँ कि मन की कलौंस बेचने की लाचारी आ गयी है तो उसे भी खरीद लेंगे और उस कलौंस को अपनी कलौंस बना लेंगे। पर बेबसी ऐसी हो कि कुछ सूझे नहीं, किसी भी कीमत पर दे देने की, यहाँ तक कि एक दृष्टिपात पर ही बिक जाने की बेबसी हो। बिकने का सौदा पूरा होने के पहले ही मन से बिककर तैयार हो जाय, ऐसी उन्मदान्धता हो, ऐसी बेखबरी हो, ऐसी बेसुधी हो कि खरीदनेवाला आए तो बेचने की सुधि न रह जाए।

बेचनेवाला रहा ही नहीं, वह तो बेच-खरीद की लीला करते-करते खुद खरीदार हो गया है। ऐसी बेसुधी ही जीवन की सबसे बड़ी साध है, अपनी इच्छा से मृत्यु को रोक रखने वाले भीष्म भी मृत्यु के क्षण एक ओर श्रीकृष्ण के धूलि-सने, अस्तव्यस्त, क्षुब्ध और रोषाकुल रूप का ध्यान करते हैं, पैताने सौम्य प्रसन्न मुद्रा में वे ही श्रीकृष्ण खड़े हैं, पर वह रूप मृत्यु की वेला में ध्यान में क्यों लाया जाए, ध्यान में वह रूप लाया जाए कि वे अकुला उठे हों मारने के लिए और ऐसे मरते हुए मेरी अकुलाहट सब शान्त हो गयी हो और अन्त में जब स्वयं अकुला उठे हों प्रभु की अकुलाहट से, तो अकुलाहट की उस चरम साधना का ध्यान करते हैं—

ललितगतिविलासवल्गुहास-प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः।।

प्रिय सामने हैं, उनके आगे उनके साथ ललित गति से नाचना, उनकी ओर देख-देखकर सहज भाव से मुसकराना, उन्हें प्रेम से निहारना, उनको जरा भी इधर-उधर मुड़ते देखकर रूठ जाना और फिर मान जाना; क्योंकि अभी फिर उन्होंने मनाने के लिए हाथ भी जोड़ लिये, जैसे-जैसे वे विहरें, वैसे-वैसे उनकी छाया बनकर विहरना, होश खो देना कि कोई और सत्ता है, कोई देश है, कोई काल है, बस वे हैं और अलग-अलग 'मैं' बनी हम हैं, ऐसी उन्मदान्धता में ही पूरा तादात्म्य सम्भव है। ज्ञान, प्रकाश, अच्छाई तो हर एक दे सकता है और बड़े सच्चे भाव से दे सकता है पर अपना मोह, अपना अन्धकार और अपने भीतर की बुराई अपने प्रिय को देने का साहस नहीं होता, प्रिय से भी कुछ चीजों का दुराव रह ही जाता है। कितनी भी इच्छा क्यों न हो कि प्रिय मेरे हृदय में छिपे रहें, पर यह मन से नहीं जाता कि मेरे कोने-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अँतरे में छिपे पुराने पाप की पूँजी कहीं टटोलने न लगें। पर अपने को बिलकुल पराया मानकर और उनको अपना मानकर जब दिया जाएगा तो फिर उससे दुराव नहीं रह पाएगा, दुराव तो उससे होता है जिसके लिए एकदम अपनी होने का अभिमान हो, जिसके लिए परायी हैं उससे क्या छिपाना, वह हमारा भीतर-बाहर सब देख सकता है; क्योंकि भीतर तो वही-वही है, बाहर कोई भी तो उसी के रंग में सराबोर होकर है। इसीलिए भागवत धर्म ने सबसे ऊँचा आसन इस मोहान्ध घोर तामस प्रेम के मार्ग से प्रभु की प्राप्ति को दिया है।

इसका भी चरम उत्कर्ष है—'राधा भेलि मधाई' वाला भाव। अनुखन माधव-माधव रटते-रटते राधा माधव हो गयी और माधव के रूप में अपने को स्थापित करते ही बेचैनी कम होने के बजाय और बढ़ गयी, बेचैनी राधा के लिए, जो अब वह नहीं रही और फिर माधव बनी राधा राधा बनकर माधव को सान्त्वना का सन्देश भेजती है, सन्देश पहुँचा नहीं कि विह्वल होकर पुनः माधव बन जाती है और एक ही विजड़ित चित्त के दो पाट चिर जाते हैं : एक राधा दूसरा माधव, दोनों ओर आग पकड़ चुकी है, बीच में प्राण एक कीड़े की तरह फँसा हुआ अकुला रहा है, वही प्राण तो इस विजड़ित काष्ठीभूत द्विभक्त चित्त का संयोजक है, नगण्य चाहे कितना हो, पर वह दोनों पाटों की जलन का साक्षी है, चित्त बेखबर है, प्राण जाग रहा है—

दुहुँ दिसि दारु दहन जइसे, दगधदू आकुल कीट परान।।

आज की दुरन्त मानवीय द्विभक्तता की स्थिति में बस आग की कमी है और अकुला उठनेवाले 'कीट परान' की कमी है, नहीं तो उस बेकली के लिए जैसी तैयारी आज है, वैसी कभी नहीं थी।

मनुष्य के हाथ ने जिसे छुआ वह सोना हो गया, मनुष्य का हाथ पारस पत्थर है न! पर अपने स्पन्दन, अपने स्नेह, अपनी ममता, अपनी वेदना, अपनी हुलास को भी छूकर उसने सोना बना दिया, एकदम ठोस। हाथ से छूते ही जीती-जागती लड़की सोना हो गयी, हाथ में लगा जैसे बिजली की करेण्ट मार गयी हो। अब हाथ उठने से डरता है। अपनी छुवन से सिरजाये सुनहले वैभव के बीच मनुष्य एकाएक काठ हो गया है, उसका लोभ उसे खाने दौड़ रहा है और उसे बचानेवाला कोई प्राण नजर नहीं आता। इसी डर में कहीं भीतर से प्राण छटपटा उठेगा और कहीं बाहर का भय भीतर देनेवाले और लेनेवाले के बीच एक भूमिका की अदला-बदली की जरूरत महसूस कराएगा। बाहर कोई लेनेवाला नहीं रहेगा तो भीतर का लेनेवाला अकुला कर देनेवाले की भूमिका ले लेगा और गुहार लगाएगा कि ओ लेनेवाले मन, लो कितना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगे, लो मेरा लो, मेरा अभिमान, मेरा कर्तृत्व, मेरा भोक्तृत्व लो, इनकी गाँठें एक के ऊपर दूसरी पटी हुई हैं। ले जाओ, मेरा गोदाम खाली करो और जब कोई मन उस भूमिका में उतरने को तैयार नहीं होगा, और जल्दी-जल्दी में आगेवाला पर्दा डालने की उपहसनीय स्थिति आ जाएगी, तभी नाटक का सूत्रधार आएगा। माधव-माधव रटते रहो, माधव होना, राधा के शरीर से माधव होना कठिन साधना है। राधा सुख दे दे, सरबस दे दे, पर अपना राधात्व, अपना दुरन्त अकेलापन, अपना चिरन्तन विरह कैसे दे? वही तो मूलधन है, उसी के कारण राधा का अस्तित्व है। पर राधात्व देने की भी एक बेचैनी की जबर्दस्त बहिया आती है, अपने सँजोये निपट अकेलेपन को उसमें विसर्जित करके माधव की धारा बनने का भी क्षण आता है। वह क्षण चाहे ज्यादा देर तक न ठहर पाए पर वह क्षण आते ही विरह की साधना दु:खी होने के कारण तींव्रतर भूमिका में पहुँच जाती है, ऐसी भूमिका जो अब तक सुनने में न आयी हो, देखने में न आयी हो, उस 'श्रुतिभिर्विमृग्याम्' भूमिका की कामना ही भागवत धर्म की चरम कामना है।

श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी को होता है, समस्त जगत् का अन्धकार पीकर आधी रात में कृष्णचन्द्र का उदय होता है और राधा का जन्म भाद्रपद के शुक्लपक्ष की अष्टमी को होता है, अपनी समस्त उज्ज्वलता, अपनी पूरी प्रभा श्यामल रंग में घोल देने के लिए।

राधा माधव के केलिनिकुंज के अन्धकार में घटित होकर उतनी सार्थक नहीं जितनी राधा के मनोमन्दिर में एक राधाचित्त के दो राधा-माधव भावों की एक-दूसरे को पाने की उत्कट विह्वलता में भावित होकर सार्थक है। भागवत धर्म की चरम सार्थकता परपीड़ा की ज्वाला के वरण से शुरू करके अपनी पीड़ा की ज्वाला को प्रिय की ओर मोड़ने के बजाय पुन: अपनी ओर मोड़ देने में है। यही उसका आज के पर्याकुल सन्दर्भ में सबसे बड़ा अवदान हो सकता है, बशर्ते कि इस पराभूमिका को ग्रहण करनेवाले हम जो सोंठियाये शुद्धिवादी अधूरे और अश्लील संस्कारों के शिकार हो गये हैं, पहले अपने को इस खोखली शिक्षा द्वारा नैतिकता के नाम पर फैलाये गये विषाक्त अनैतिकता के नागपाश से मुक्त कर सकें।

जयदेव : वृष्टि और सृष्टि के कवि

पावस से अपने मंगल श्लोक को अभिषिक्त कर, वसन्त के रस से अपनी रचना के शब्द-शब्द को रच देनेवाले श्री जयदेव वृष्टि और सृष्टि के महाकवि हैं। 'गीतगोविन्द' के मंगल श्लोक में वर्षा है; किन्तु उसके बाद कहीं वर्षा नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, सिर्फ सृष्टि ही सृष्टि है—वासन्ती रास की, आकुल मन के आस की, राधा के मान की, कोयल के तान की और अन्ततः राधा के इस उद्गान की कि वे कृष्ण से कहें कि तुम अपनी तरह रच दो। यह समूचा काव्य वृष्टि से आरम्भ होता है और नयी सृष्टि की मनुहार पर विराम पाता है। 'गीतगोविन्द' के रचनाकार जयदेव भारतीय मनीषा के उस उत्कर्ष के प्रतिनिधि हैं, जो प्रीति के गीत तो रचती है; लेकिन ये गीत ऐसे हैं, जिनमें अध्यात्म की अनुभूति के स्वर निरन्तर गुंजित होते रहते हैं। 'गीतगोविन्द' को केवल घोर शृंगारिक काव्य कहना हमारी मनीषा परम्परा के मूल तत्त्व की पहचान को ही नकारना है। यह कथन इस काव्य के सन्दर्भ में बिलकुल उपयुक्त है; 'ऐसा नहीं कि इसके पूर्व राधा, माधव नहीं थे, राधा माधव की केलि का रस वर्णित नहीं हुआ था, न ऐसा ही कि रागाकुलता और भगवद्भक्ति को एक बिन्दु में, श्याम-बिन्दु में, पहले समाहित नहीं किया गया था। बस, इतना ही कि जयदेव के पहले किसी भी कवि ने श्याम-बिन्दु को अपने में समाहित नहीं देखा था, गौर छवि के चारों ओर नाच-नाच कर वृत्त बनते नहीं देखा था। यही 'गीतगोविन्द' की अपूर्वता है। 'गीतगोविन्द' में प्रत्येक गीत गोविन्द है, गोचर रूप-सम्भार के लिए, गोचर प्राणकार के लिए, गोचर निःश्वास सुरभि के लिए विश्वमोहन की बेचैन तलाश है। 'गोतगोविन्द' एक चिर अभिलाषा का, सनातन आकुलता का काव्य है। यह मोक्ष का भी मोक्ष है। (डॉ. विद्यानिवास मिश्र : 'अंगद की नियति', संग्रह का निबन्ध–वासन्ती रस वृष्टि का काव्य, पृष्ठ–९६)।

'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों की जो व्याख्या डॉ. मिश्र ने की है, उसका निष्कर्ष है कि अपनी आन्तरिकता में यह शृंगारिक नहीं है। शृंगारिकता मात्र प्रतीकात्मकता है, प्रतीति नहीं है।

श्री जयदेव का जन्म 'किन्दुबिल्व' अथवा केंदुली नामक ग्राम में हुआ था। यह स्थान पश्चिम बंगाल के वीरभूमि जिले के बोलपोर थाने के अन्तर्गत आता है। जयदेव के जीवन-चरित के सम्बन्ध में नाभादास ने भक्तमाल (लगभग १५७८ ई.) में विवरण दिया है। उनके प्रारम्भिक जीवन के विषय में बहुत कम जानकारी मिलती है; किन्तु यह स्पष्ट है कि उन्हें अपने जीवन के आरम्भिक काल में ही संस्कृत का बहुत अच्छा ज्ञान हो गया था। नाभादास उन्हें गीतात्मकता का अवतार कहते हैं।

जयदेव के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विवाद की स्थिति बनी रही है। बंगाल, उड़ीसा और मिथिला के विद्वान् उन्हें अपने-अपने क्षेत्र का मानने के लिए तर्क देते रहे हैं। 'किन्दुबिल्व' का उल्लेख 'गीतगोविन्द' के तीसरे सर्ग में इस तरह आता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन।
किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहणीरमणेन।।

इस नाम का एक गाँव पुरी (उड़ीसा) के निकट भी है तथा बंगाल में भी। इसी नाम का एक गाँव जेरिहारपुर के निकट भी है, इसलिए मिथिला के पास के इस गाँव में जन्म लेने सम्बन्धी तर्क भी दिया गया है। इस सम्बन्ध में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने विस्तार से अपने आलेख 'जयदेव : मेकर्स ऑफ इण्डियन लिट्रेचर' (नयी दिल्ली, साहित्य अकादमी) में विचार कर यह अन्ततः प्रामाणिक रूप से सिद्ध कर दिया है कि जयदेव का जन्म बंगाल में हुआ था। मिलर ने अपने ग्रन्थ में विस्तार से इस सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री के बारे में विवरण दिया है।

हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जयदेव (चरितावली) नामक अपने निबन्ध में यह स्पष्ट किया है कि बाबू रजनीकान्त गुप्त ने 'जयदेवचरित्र' नामक ग्रन्थ लिखा था। इसी ग्रन्थ के बहुतेरे निष्कर्षों से असहमति होने के बावजूद भारतेन्दु का यही मानना है कि वीरभूमि से प्रायः दस कोश दक्षिण अजयनद के उत्तर किन्दुबिल्व गाँव में श्री जयदेव जी ने जन्म ग्रहण किया था।

एक मत यह भी है कि श्री जयदेव गुजरात के निवासी थे। गुजरात के शार्ङ्गदेव के शिलालेख में, जो १२०१ ई. का है, 'गीतगोविन्द' के प्रथम सर्ग की एक पंक्ति उत्कीर्ण है—

'वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्‌बिभ्रते'।

यह शिलालेख अनवाड़ा से प्राप्त हुआ है और इसके आधार पर यह स्थापित होता है कि 'गीतगोविन्द' की कितनी लोकप्रियता सुदूर गुजरात में रही; किन्तु इसके आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि 'गीतगोविन्द' की जन्मभूमि गुजरात में कहीं रही होगी। उड़ीसा के विद्वान् जैसे के.एन. महापात्र और सिद्धेश्वर हाट ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जयदेव केन्दुली शासन के पाटन के निवासी थे। यह स्थान पटना प्राची, कुशभद्रा और धना नदियों के निकट है। उनका यह भी तर्क है कि चैतन्य महाप्रभु ने जयदेव की कविताएँ तो गायीं; किन्तु जयदेव के जन्म-स्थान का उल्लेख नहीं किया। किन्तु इन तर्कों के आधार पर कहीं प्रमाणित नहीं होता कि जयदेव उड़ीसा के इस स्थान पर जन्मे होंगे।

जयदेव जहाँ जन्मे, वहाँ जनवरी के मध्य में आज भी जयदेव की स्मृति में एक मेला लगता है, जिसको जयदेव स्मारक मेला कहा जाता है। इसमें हजारों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैष्णव यात्री आते हैं तथा 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों का गान करते हैं। अजय नदी के किनारे एक मन्दिर भी बना हुआ है, जिसमें एक चौकोर पत्थर सुरक्षित है; यह कहा जाता है कि प्रार्थना करते समय जयदेव इस चौकी पर बैठा करते थे। इस मेले की परम्परा काफी प्राचीन है। राधा-कृष्ण के लीलागान की परम्परा प्राकृत में जयदेव से पूर्व से ही विद्यमान रही; अतः यह स्वाभाविक था कि जयदेव-जैसी महान् प्रतिभा इस लीला का गान अपनी माधुरी शैली में उसी भूमि पर करती।

इस तरह अब यह असन्दिग्ध रूप से प्रमाणित होता है कि जयदेव का जन्म बंगाल में ही हुआ। कालिदास की तरह ही जयदेव की स्थिति में प्रत्येक ख्यात मनीषी को अपने-अपने क्षेत्र के लोग अपना सिद्ध करने का यत्न करते हैं। ऐसे महान् मनीषियों के समक्ष इतिहास भी असहाय हो जाया करता है; क्योंकि वे कहीं भी यह उल्लेख नहीं करते कि वे कब जन्मे। जयदेव के जन्म के समय को लेकर कोई पुष्ट ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है। जयदेव के वंश में १५वीं पीढ़ी में जन्मे रामराय गोस्वामी के अनुसार जयदेव संवत् ११६५ (११०८ ई.) में वसन्तपंचमी को जन्मे थे। उनके पिता का नाम भोजदेव तथा माता का नाम रामादेवी अथवा राधादेवी था।

श्री सनातन गोस्वामी ने नवद्वीप में लक्ष्मणसेन की सभा के द्वार पर निम्नांकित श्लोक एक शिलालेख पर उत्कीर्ण देखा था—

'गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च'।।

इस शिलालेख से स्पष्ट होता है कि जयदेव राजा लक्ष्मण सेन की सभा में थे। गोवर्द्धनाचार्य, उमापतिधर, शरण, श्रुतिधर (धोयी) आदि उनके समसामयिक थे। इन कवियों का उल्लेख भी जयदेव ने 'गीतगोविन्द' में किया है। किन्तु भारतेन्दु ने इस सम्बन्ध में गहराई से विचार करते हुए यह माना है कि जयदेव लक्ष्मण सेन की सभा में नहीं थे। वस्तुतः लक्ष्मण सेन को लेकर ही विवाद की स्थिति निर्मित होती है। मुस्लिम इतिहासकार मिनहाज उल सिराज ने 'तबकान्त ए नासरी' में यह उल्लेख किया है कि जब बख्तियार खिलजी ने बंगाल फतह किया, तब लछमनिया नाम का राजा बंगाल में राज करता था। भारतेन्दु ने विभिन्न ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर बंगाल के सेन वंश के राजाओं का तिथिक्रम तय किया है तथा यह निष्कर्ष निकाला है कि उमापतिधर, जिन्हें जयदेव का समकालीन माना जाता है, ने विजय सेन की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशस्ति लिखी तथा विजय सेन बल्लाल सेन के पूर्ववर्ती थे। बल्लाल सेन का काल (१०६६ ई.) है। बल्लाल सेन के बाद लक्ष्मण सेन (११०१ ई.), माधव सेऩ (११२१ ई.), केशव सेन (११२२ ई.) व लछमनिया (११२३ ई.) हुए। बंगाल के इतिहासकारों ने किसी लछमनिया नामक राजा का उल्लेख भी नहीं किया है। मुसलमान इतिहासकारों ने लछमनिया के पूर्व नारायण आदि नाम के राजाओं का उल्लेख किया है। इस प्रकार बल्लाल सेन का काल और भी पीछे जा पड़ता है। इस आधार पर भारतेन्दु का यह मानना है कि सेन वंश के बल्लाल सेन के पूर्ववर्ती विजय सेन के समय में व उससे कुछ ही पूर्व सन् १०२५ से १०५० तक के किसी वर्ष में जयदेव जी का जन्म हुआ होगा।

यह मत भी है कि बल्लाल सेन के पुत्र लक्ष्मण सेन थे, इसलिए सम्भवत: मिनहाज ने लक्ष्मण सेन को ही लछमनिया लिख दिया हो। यह तथ्यसंगत प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में यह आवश्यक है कि विभिन्न राजाओं और उनके काल में हुए साहित्यिक व सांस्कृतिक उन्नयन का विहगावलोकन किया जाए। जब मुहम्मद बिन बख्तियार ने बंगाल पर आक्रमण किया, तब बंग प्रदेश का राजा लक्ष्मण सेन था तथा नदिया उसकी राजधानी थी। उसके आक्रमण का समय ११९७ ई. का है। इस तरह जयदेव का समय भी १२वीं सदी का निर्णीत होता है। बल्लाल सेन एक पराक्रमी राजा था, इसके साथ ही विद्वान् भक्त भी था। दानसागर, अद्‍भुतसागर तथा वेदार्थस्मृतिसंग्रह आदि ग्रन्थ उसी की प्रेरणा से लिखे गये। लक्ष्मण सेन ११७८ ई. में गद्दी पर बैठा। लक्ष्मण सेन ने अपने पिता के समय आरम्भ किया गया ग्रन्थ 'अद्‍भुतसागर' पूरा किया। लक्ष्मण सेन के काल में ही 'सदुक्तिकर्णामृत' शीर्षक काव्य-ग्रन्थ श्रीधरदास ने १२०५ ई. में लिखा। यद्यपि लक्ष्मण सेन गद्दी पर सन् ११७८ ई. में बैठा, किन्तु बल्लाल सेन के वृद्ध होने के कारण उनके ही समय में उसने राज्य सँभाल लिया था। लक्ष्मण सेन के अनुरोध पर ही जयदेव ने ११४८ ई. में 'गीतगोविन्द' की रचना की। श्री रामराय गोस्वामी ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख इन पंक्तियों में किया है—

'बंग मध्य चालीस से रचे गीतगोविन्द।
दशों दिशा उद्धारहित नव नव भाव अमन्द'।।

भारतेन्दु ने भी लक्ष्मण सेन का काल ११०१ ई. दिया है। इस प्रकार यदि लछमनिया को ही लक्ष्मण सेन मान लिया जाए, जो तर्कसंगत व इतिहास-संगत है, तो फिर यह स्पष्ट हो जाता है कि जयदेव का जन्म सन् ११०८ ई. में हुआ तथा चालीस वर्ष की आयु में उन्होंने 'गीतगोविन्द' की रचना की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयदेव के जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में कोई विशद तथा प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। यह ज्ञात होता है कि उनके माता-पिता की मृत्यु उनके बचपन में ही हो गयी थी तथा अत्यन्त विपन्न अवस्था में उनका बचपन निरन्तर भटकते हुई बीता। डॉ. एम.एस. रन्धावा ने लिखा है कि केवल एक पीतल का कटोरा उनकी सम्पत्ति थी और यह यायावर कवि कभी किसी पेड़ के नीचे दो रात्रि से अधिक का समय व्यतीत नहीं कर पाता था।

जयदेव के जन्म के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि पण्डित भोजदेव जयदेव के पिता के पास प्रचुर धन था, किन्तु सन्तान के अभाव में वे सदैव दुखी रहते थे। राधादेवी (रामादेवी) पुत्र-प्राप्ति के लिए निरन्तर व्रत-उपवास रखा करती थीं। एक दिन साधु के वेश में प्रकट होकर भगवान् ने उन्हें आज्ञा दी कि तीर्थयात्रा करो। तब पण्डित भोजदेव ने जगन्नाथपुरी की यात्रा की तथा रथयात्रा के समय जगन्नाथ की स्मृति में एक अष्टक रचा तथा उसका गान किया। अष्टक की टेक थी 'जगन्नाथ स्वामी नयनपथगामी भवतु मे'। जब अष्टक का पाठ समाप्त हो गया, तब एक आश्चर्यजनक घटना घटी। भगवान् श्री पुरुषोत्तम के श्रीअंग से एक तेजपुंज प्रकट हुआ और वह भोजदेव जी के शरीर में समा गया। इसके बाद एक निश्चित समय पूर्ण होने पर उनके यहाँ एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम जयदेव रखा।

मातृ-पितृ-विहीन होने के पश्चात् जयदेव का भटकना आरम्भ हुआ। वे मथुरा-वृन्दावन घूमे और राधा-माधव की प्रचलित कहानियों को सुना। अन्ततः वह जगन्नाथपुरी आये। जगन्नाथपुरी में देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण सपत्नीक भगवान् जगन्नाथ की आराधना कर रहा था; उसने भगवान् जगन्नाथ से प्रार्थना की कि यदि उसे कोई सन्तति होगी तो वह उसे उनकी सेवा में समर्पित कर देगा। कालान्तर में उसके यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम उसने पद्मावती रखा। पद्मावती अत्यन्त रूपवती व नृत्यनिपुणा थी। जब वह विवाह योग्य हुई, तो भगवान् जगन्नाथ ने देवशर्मा को स्वप्न में आदेश दिया कि इसे तुम मेरे ही स्वरूप जयदेव को समर्पित कर दो। जयदेव यद्यपि इच्छुक नहीं थे; किन्तु पद्मावती के यह कहने पर कि मैं अब आपकी दासी हूँ, आप चाहें तो मुझे साथ रखें या मेरा परित्याग करें, मैं आपके दासत्व का त्याग नहीं करूँगी; जयदेव ने पद्मावती से विवाह कर लिया।

जयदेव ने पद्मावती का उल्लेख 'गीतगोविन्द' के प्रथम सर्ग में ही किया है—

'वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा, पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयदेव की एक पत्नी श्री रोहिणी देवी का उल्लेख भी मिलता है। वे पंजाब के सारस्वत गोस्वामी पूर्णचन्द की कन्या थीं। यह प्रख्यात है कि जयदेव मृदंग बजाते थे और पद्मावती 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों पर नृत्य करती थीं। 'दशावतार' पर पद्मावती के द्वारा मोहक नृत्य किये जाने का भी उल्लेख है। जयदेव और पद्मावती का वैवाहिक जीवन सुखी था। यह उल्लेख भी मिला है कि जयदेव को ब्रजयात्रा के समय यमुना की तरंगों के बीच राधा-माधव का विग्रह मिला था, जिसे वे सदैव अपने साथ रखते थे।

'गीतगोविन्द' और जयदेव से जुड़ी प्रचलित अनेक किंवदन्तियों में से एक यह भी है कि जब वे दशम सर्ग पर पहुँचे, तब एक व्यवधान उत्पन्न हुआ, जिसके कारण उस श्लोक को पूर्ण करने में हिचके। जयदेव लिखना चाहते थे, हे राधिके! मेरी ताप-शान्ति के लिए अपना चरणकमल मेरे सिर पर रख दीजिए—

'स्मरगरलखण्डनं मम शिरसिमण्डनं देहि पदपल्लवमुदारम्।
ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो हरतु तदुपाहितविकारम्'।।

लेकिन वे यह लिख नहीं पाये। अपने प्रभु के बारे में ऐसा लिख पाने का साहस उनमें नहीं हुआ। वे इस श्लोक को अधूरा छोड़कर स्नान करने चले गये। जयदेव के जाने के कुछ देर बाद कृष्ण स्वयं जयदेव का वेश धारण कर जयदेव के घर पहुँचे। पद्मावती ने जो भोजन तैयार किया था, वह भोजन उन्होंने किया, फिर पद्मावती से ग्रन्थ माँगकर इस श्लोक को पूर्ण कर, शय्या पर विश्राम करने चले गये। इसी समय जब जयदेव लौटे, तो उन्होंने पद्मावती को भोजन करते देखा। दोनों ही विस्मय से पूर्ण थे। जयदेव चकित थे कि पद्मावती बिना उन्हें भोजन कराये कैसे भोजन कर रही है और पद्मावती विस्मित थी कि ये कौन से जयदेव हैं? पद्मावती ने जब समूचा वृत्तान्त सुनाया, तो जयदेव ने पोथी माँगी। पोथी पर श्लोक पूर्ण था और वह शय्या खाली थी। तब जयदेव ने उस प्रसाद को ग्रहण किया जो भगवान् उस थाली में छोड़ गये थे।

एक और किंवदन्ती यह है कि एक माली की कन्या पुरी में जगन्नाथ मन्दिर के पास बैगन की बाड़ी में बैगन तोड़ती जा रही थी और पाँचवें सर्ग की अष्टपदी विभोर हो गा रही थी—

'रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम्।
न कुरु नितम्बिनि! गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्'।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसे सुनकर स्वयं जगन्नाथ उस कन्या के पीछे-पीछे हो लिये; वे उसका अनुसरण करने लगे, उनके वस्त्र झाड़ियों में उलझकर फट गये; लेकिन वे तब तक उस कन्या का अनुसरण करते रहे, जब तक कि वह गीत समाप्त नहीं हो गया। दूसरी सुबह जब पुरी के राजा मन्दिर गये और उन्होंने जगन्नाथ जी के फटे वस्त्र देखे, तभी से उन्होंने प्रतिबन्ध लगा दिया कि 'गीतगोविन्द' स्वच्छ व पवित्र स्थान पर ही गाया जाना चाहिए। पुरी में आज भी यह गीत जगन्नाथ जी की मूर्ति के सम्मुख उनके विश्राम करने के पूर्व गाया जाता है।

एक किंवदन्ती यह भी है कि एक बार पद्मावती ने निश्चय किया कि वह जगन्नाथ जी को अत्यन्त पवित्र वस्तु अर्पित करेगी। उसने यह प्रण किया कि वह एक माह में तुलसी के पत्रदलों पर चन्दन व इत्र से 'गीतगोविन्द' को लिखेगी तथा उन पत्रदलों को भगवान् को समर्पित करेगी, अन्यथा प्राण त्याग कर देगी। समय कम था, किन्तु अचानक दो रहस्यमय साधुओं ने आकर यह कार्य पूर्ण कर दिया। पद्मावती निश्चित दिन उन पत्रदलों को लेकर मन्दिर गयी; लेकिन पुजारियों के अनुमति न देने के कारण उसने उन पत्रदलों को समुद्र में प्रवाहित कर दिया। दूसरे दिन जब पट खुले, तो देखा कि जगन्नाथ जी की मूर्ति उन्हीं तुलसी के 'गीतगोविन्द' रचित पत्रदलों से आवेष्टित है।

एक और कथा यह है कि उड़ीसा के कवि तथा विद्वान् राजा पुरुषोत्तम देव गणपति ने 'गीतगोविन्द' की प्रशंसा सुन 'अभिनवगीतगोविन्द' नामक ग्रन्थ की रचना की। उसने चाहा कि इस ग्रन्थ को 'गीतगोविन्द' से श्रेष्ठ माना जाए; किन्तु पण्डितों ने यह अस्वीकार कर दिया, तब दोनों ग्रन्थ भगवान् के कक्ष में रख दिये गये। दूसरे दिन जब द्वार खुले, तो देखा कि जयदेव का 'गीतगोविन्द' भगवान् के वक्षस्थल पर रखा हुआ था तथा राजा का ग्रन्थ फर्श पर पड़ा था। तब से राजा 'गीतगोविन्द' का भक्त हो गया।

कहा जाता है कि चैतन्य 'गीतगोविन्द' की प्रत्येक अष्टपदी को मन्त्र मानते थे और उन्हें गाते-गाते चैतन्य की समाधि लग जाती थी।

एक कथा यह भी है कि अत्यन्त वृद्ध होने के बावजूद, जयदेव नित्य पैदल गंगा-स्नान को जाते थे; किन्तु स्वयं गंगा ने कहा कि वे जयदेव के घर के निकट एक बावड़ी में रहेंगी। जयदेव जब पद्मावती के साथ भोजन-सामग्री लेकर स्नान करने गये, तब वहाँ गंगा प्रादुर्भूत हो उठीं।

जयदेव के बारे में यह भी कहा जाता है कि वे अद्भुत संगीतज्ञ थे। एक बार बुधन मिश्र नामक एक गायक राजा लक्ष्मण सेन की सभा में आया। उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायन के कारण समीपवर्ती वृक्ष की पत्तियाँ नीचे गिरने लगीं तथा वह वृक्ष पत्र-विहीन हो गया; किन्तु पद्मावती ने आपत्ति की कि जयदेव ही सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ हैं। तब जयदेव ने राग वसन्त गाया और जो पत्तियाँ नीचे गिर गयी थीं, वे फिर उस वृक्ष पर लग गयीं।

इसी प्रकार की अनेक किंवदन्तियाँ जयदेव के चरित्र और 'गीतगोविन्द' से जुड़ी हैं। निश्चय ही इनका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है; किन्तु इन किंवदन्तियों, आख्यानों और कथाओं का जन्मते जाना ही यह प्रमाणित करता है कि जयदेव और 'गीतगोविन्द' दोनों की कितनी अपूर्व लोकप्रियता अपने समय में और बाद के आने वाले समय में रही होगी।

जयदेव की मृत्यु के स्थान के सम्बन्ध में विवाद की स्थिति है। एक धारणा के अनुसार केन्दुली ग्राम में ही उनकी मृत्यु हुई तथा वहीं उनकी देह को समाधि दी गयी; किन्तु एक मान्यता यह भी है कि वह समाधि किसी तान्त्रिक साधु की है, जिसे जयदेव की समाधि समझ लिया गया है। वस्तुतः अपने अन्तिम दिनों में जयदेव अपने राधा-माधव-विग्रह को लेकर वृन्दावरन चले गये थे तथा वहीं उनका अवसान हुआ। उनके अवसान की सुनिश्चित तिथि की पुष्टि नहीं होती।

चैतन्य सम्प्रदाय व सहजिया सम्प्रदाय के लोग जयदेव को अपने-अपने सम्प्रदायों का प्रमुख मानते हैं, जबकि वैष्णव उन्हें अपने सम्प्रदाय का उत्तम पुरुष मानते हैं। इस सम्प्रदाय की मध्य अवस्था में जयदेव का नाम मुख्य रूप से लिया गया है—

'विष्णुस्वामिसमारम्भां जयदेवादिमध्यमाम्।
श्रीमद्वल्लभपर्य्यन्तां स्तुमो गुरुपरम्पराम्'।।

यह भी उल्लेखनीय है कि जयदेव नाम के कई अन्य कवि भी हुए तथा कई ग्रन्थों के रचनाकार के रूप में राजा लक्ष्मण सेन के सभारत्न जयदेव का नाम लिया जाता है। भारतेन्दु का यह निष्कर्ष है—'लोग कहते हैं कि जयदेव ने 'गीतगोविन्द' के अतिरिक्त एक ग्रन्थ 'रतिमंजरी' भी बनाया था, किन्तु यह अमूलक है। गीतगोविन्दकार की लेखनी से रतिमंजरी जैसा जघन्य काव्य निकले, यह कभी सम्भव नहीं। गंगा की स्तुति में एक सुन्दर पद जयदेव जी का बनाया हुआ हो तो हो'।

'सदुक्तिकर्णामृत' में जयदेव के नाम से कतिपय पद्य मिलते हैं; किन्तु इनके बारे में यह सुनिश्चित नहीं है कि ये जयदेव के ही हैं। 'गुरुग्रन्थ-साहिब' में भी दो पद ब्रज-भाषा के जयदेव के नाम से मिलते हैं; किन्तु इनके सम्बन्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में भी सन्दिग्धता की स्थिति है। एक ग्रन्थ 'चन्द्रालोक' के रचयिता भी जयदेव हैं; किन्तु यह जयदेव 'गीतगोविन्द' के जयदेव से सर्वथा भिन्न हैं; क्योंकि इसी ग्रन्थ में रचनाकार का अपर नाम 'पीयूषवर्ष' दिया हुआ है। 'प्रसन्नराघव' नामक एक नाटक भी जयदेव द्वारा रचित कहा जाता है; किन्तु विद्वानों ने इसके सम्बन्ध में भी सिद्ध किया है कि यह नाटक 'गीतगोविन्दकार' जयदेव द्वारा रचित नहीं है।

जयदेव के सम्बन्ध में संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, उड़िया और अंग्रेजी के विद्वानों ने बहुत शोध कर काफी सामग्री जुटायी है। उपर्युक्त विवरण उसकी एक सहज झाँकी भर है।

जयदेव वास्तव में वृष्टि और सृष्टि के कवि हैं। उनके इस गीतिकाव्य का माधुर्य-जल अपने रचे जाने के बाद से ही हर युग की मानस पगडण्डियों पर छलका है, ये पगडण्डियाँ भीगी हैं और इस निरन्तर भीगते रहने के कारण हमारे मानस के आर्द्र धरातल ने रचाव के नित नये अध्याय लिखे, उसकी सृजन-यात्रा कभी थमी नहीं, रचनाशीलता ने कभी विराम नहीं पाया। जयदेव जैसे महाकवियों का यही वैशिष्ट्य है कि वे किसी एक युग में जन्मते हैं; लेकिन हर आनेवाले युग को 'गीतगोविन्द' बना देते हैं।

गीतगोविन्द : कला एवं परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में

सार्थक सृजन को सदैव के लिए समेट लेने की अद्‌भुत इच्छा-शक्ति भारतीय मानस के संस्कारों में सदैव से है। इस उर्वर मानस ने शब्दों का रूपान्तरण विभिन्न कलाओं में कुछ इस तरह से किया कि शब्द बजे, थिरके, रूपायित हुए और ठुमक उठे। जयदेव की कालजयी कृति 'गीतगोविन्द' शब्द के विभिन्न कलाओं में रूपान्तरित होते रहने और होते जाने का ऐसा अनोखा उदाहरण है, जो इस तथ्य की पुष्टि करता है कि शब्द की व्याप्ति निस्सीम हुआ करती है और परिधि नाम की संज्ञा का कोई अर्थ इस व्याप्ति के लिए है ही नहीं।

'गीतगोविन्द' के मंगलश्लोक से लेकर प्रत्येक अष्टपदी की प्रत्येक पंक्ति इतनी व्यंजनात्मक, गीतात्मक, बिम्बात्मक और रूपात्मक है कि कला की हर विधा उसे अंगीकृत करने को तत्पर ही उठी। 'गीतगोविन्द' के रचनाकाल के बाद से ही उसके सस्वर गान की परम्परा प्रारम्भ हुई, जो आज तक विद्यमान है। बदरिकाश्रम में यदि नारायण की शयन-आरती 'दशावतारचरित' के गायन के साथ होती है, तो खानदेश के सुदूर अंचल में बसे एक गाँव कुकुरमुण्डा के खण्डोजी आश्रम में ये अष्टपदियाँ गायी जाती हैं। 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का खानदेशी में रूपान्तरण कर वहाँ के ग्रामीण बड़े भक्तिभाव से विभोर हो इन्हें गाते हैं। जगन्नाथपुरी में ही 'गीतगोविन्द' के गायन की परम्परा नहीं है, वह तो उत्तर से दक्षिण तक बड़े सघन रूप में व्याप्त है। नवद्वीप के वैष्णव अभी भी धार्मिक कृत्यों के समय गीतगोविन्द के पदों को गाते हैं। बंगाल के पेशेवर कीर्तनिये बांग्ला 'अखारस' के साथ कीर्तन की शास्त्रीय शैली में गाते हैं। मनोहर शाही घराने में 'गीतगोविन्द' के गेय प्रस्तुतीकरण की एक शैली भी विकसित हुई है।

'गीतगोविन्द' के आधार पर जो संगीत और नाट्य के क्षेत्र में परम्पराएँ पल्लवित हुईं, वे समय के अनुसार निरन्तर परिमार्जित होती जा रही हैं और आज भी विद्यमान हैं। संगीत, नाट्य, नृत्य और चित्रांकन की परम्पराओं का भारतीय कला परिदृश्य के सन्दर्भ में आकलन करने का प्रयास भी पौर्वात्य और पाश्चात्य के विद्वान् मनीषी और कलाविद् कर रहे हैं तथा करते रहे हैं और बड़ी बारीकी के साथ विस्तार से यह कार्य निरन्तर होता रहा है। इस सम्बन्ध में डॉ. कपिला वात्स्यायन निरन्तर, पैंतीस वर्षों से एक प्रोजेक्ट 'गीतगोविन्द एण्ड दि आर्टिस्टिक ट्रेडिशन्स ऑफ इण्डिया' पर कार्य कर रही हैं तथा हाल ही में एक सी.डी. कैसेट भी उनके द्वारा तैयार की गयी है। उनका यह महनीय कार्य हमारी एक विलक्षण विरासत को सहेजने का श्लाघनीय प्रयास है।

'गीतगोविन्द' एक गीतिकाव्य है। काव्य की इस विशिष्ट विधा में संगीत प्रधान होता है। काव्य और संगीत का सहज सामंजस्य ही गीतिकाव्य है। यों संगीत की व्यंजना में नाट्य और नृत्य समाहित हैं। किन्तु 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों में यह विलक्षण विशेषता है कि गेयता और अभिनय की दृष्टि से इनका मनोहारी गीतमय प्रस्तुतीकरण स्वयमेव होता रहता है। 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों की योजना इस प्रकार है कि वह गायी जाए और उसके साथ-साथ अभिनय भी प्रस्तुत हो। इस दृष्टि से वह गीतिनाट्य भी है।

संस्कृत काव्य में गीतिकाव्य की परम्परा वेदों से रही है। ऋग्वेद की उषा-स्तुति से लेकर कालिदास के 'ऋतुसंहार' तक और उसके बाद भी यह परम्परा निरन्तर विकसित होती रही है। 'गीतिकाव्य' के प्रायः सभी मौलिक तत्त्व 'गीतगोविन्द' में समाहित हैं। पदों की गेयता, भाव की तीव्र अनुभूति तथा शैली की कोमलता इस काव्य में विशेष रूप से विद्यमान है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गेयपदशैली का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम अपभ्रंश में हुआ और 'गीतगोविन्द' का रचनाकार इससे गहरा प्रभावित भी रहा, इसलिए यह अनुमान भी लगाया गया कि 'गीतगोविन्द' अपभ्रंश या बांग्ला की रचना है; किन्तु यह अपने-आप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में इतना मौलिक काव्य है कि तमाम कसौटियाँ पर कसे जाने के बाद और सहज रूप में इसके मूल स्वरूप में ही इसके समादृत होने के कारण प्रायः अधिकांश विद्वानों ने श्री एस.के. चटर्जी के इस मत को मान्यता नहीं दी कि वह अपभ्रंश अनूदित काव्य है। पिशेल जैसे विद्वानों के भी इसी प्रकार के अनुमान स्थापित नहीं हो पाये। स्थापित तथ्य यह है कि 'गीतगोविन्द' महाकवि श्री जयदेव की मौलिक रूप से रची गयी संस्कृत रचना है।

'गीतगोविन्द' संगीत-प्रधान गीतिकाव्य है। संगीत में गायन, वादन तथा नर्तन इन तीनों कलाओं का बोध सम्मिलित है। 'गीतगोविन्द' का उपसंहार करते हुए श्री जयदेव ने लिखा है—

'यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम्।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः'।।३।।

शास्त्रीय ग्रन्थों में गानविधा, संगीतकला तथा वाद्यशिल्प आदि के विषय में जितना भी विवेचन-विश्लेषण उपलब्ध है, वैष्णव-भक्तिपरक ग्रन्थों में भगवान् के ध्यान, चिन्तन तथा स्मरण आदि के जितने रूपों का विधान हुआ है, काव्यशास्त्र में मधुर (शृंगार) रस के जितने भेदों-प्रभेदों का वर्णन तथा कवियों द्वारा उन भेदों पर विवेचन किया गया है, भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित तथा उनके भक्तिभावपरक मेरे 'गीतगोविन्द' काव्य में रसिक पण्डितों को वह रस एक ही स्थान पर मिल जाएगा।

इस श्लोक में 'गान्धर्व-कला-कौशल' शब्द संगीत की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। शार्ङ्गदेव गान्धर्वसंगीत को मार्गसंगीत का पर्याय मानते हैं। 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों की विशेषता यह है कि कवि का आशय शास्त्रीय संगीत की साधना नहीं, वरन् काव्य को संगीतमय बनाना है। गहराई से विचार करें, तो यह स्पष्ट होगा कि जयदेव ने सर्वसाधारण को ग्राह्य संगीत को ही अपने काव्य का आधार बनाया। उनका यह अनुभव रहा होगा कि पदबद्ध पद्धति जन-साधारण को अधिक प्रभावित करेगी तथा टेक व ध्रुवक आदि के प्रयोग से साधारण व्यक्ति भी इस गीति-काव्य के संगीत का आस्वादन कर सकेंगे, इसलिए उन्होंने उस समय के सुगम संगीत को प्राथमिकता दी। जयदेव का यह प्रयोग बड़ा सफल रहा और यही कारण है कि संस्कृत न जाननेवाले लोग भी इन अष्टपदियों का गान सुनकर विभोर हो उठते हैं। 'गीतगोविन्द' में पदों के साथ संगीत और नृत्य सम्बन्धी रागों और तालों के भी नाम दिये गये हैं। यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभिन्न विद्वानों में राग व ताल के सम्बन्ध में मतमतान्तर हैं; किन्तु मोटे रूप में इनकी पहचान निम्नानुसार की जा सकती है:

सर्ग	प्रबन्ध	राग	ताल
१.	१	मालवगौड़	रूपक
	२	गुर्जरी	प्रतिमठ
	३	वसन्त	रूपक
	४	रामकरी	यति
२.	५	गुर्जरी	यति
	६	मालवगौड़	एकताली
३.	७	गुर्जरी	यति
४.	८	कर्णाट	एकताली
	९	देशाङ्क	एकताली
५.	१०	देशीवराडी	रूपक
	११	गुर्जरी	एकताली
६.	१२	गुणकारी	रूपक
७.	१३	मालव	यति
	१४	वसन्त	यति
	१५	गुर्जरी	एकताली
	१६	देशाख	रूपक
८.	१७	भैरवी	यति
९.	१८	गुर्जरी	यति
१०.	१९	देशीवराडी	अष्टताली
११.	२०	वसन्त	रूपक
	२१	वराडी	प्रतिमठ
	२२	वराडी	यति
१२.	२३	विभास	आदि
	२४	रामकरी	यति

यहाँ यह उल्लेखनीय तथ्य है कि जिस रूप में अष्टपदियाँ जयदेव के समय गायी जाती रहीं, वह रूप उत्तर व दक्षिण भारत में इतना परिवर्तित हो गया है कि वह पहचाना नहीं जाता। अब ये अष्टपदियाँ विशिष्ट रागों में गायी जाने लगी हैं। 'दशावतारचरित' का संगीतमय गायन बेहद लोकप्रिय है। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथ्य भी अपने स्थान पर उपयुक्त प्रतीत होता है कि जयदेव ने अपने समय में संगीत की रूढ़ शास्त्रीयता को नूतन परिधान पहनाये। यही कारण है कि इन पदावलियों का सांगीतिक प्रभाव आज भी मौजूद है तथा विभिन्न लोक-अंचलों में इन्हें अनूदित कर भी गाया जाता है। 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों की यह विशिष्टता भी है कि ये मात्रावृत्तों में रची गयी हैं तथा सहज संगीत से पूर्ण हैं। ये गणवृत्त में भी हैं, इसलिए इनका सस्वर पाठ भी किया जाता है। इसमें समाहित नाट्य तत्त्व भी अत्यन्त प्रभावकारी है, इसलिए यह दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य, दोनों के रूप में समादृत है। सरस्वती महल पुस्तकालय, तंजौर में दो हस्तलिपियाँ मिली हैं, जिनमें प्रत्येक शब्द के लिए अभिनय है। किन्तु ये अधूरी हैं तथा सत्रहवीं अष्टपदी के बाद कथा समाप्त हो जाती है।

'गीतगोविन्द' के संगीत पक्ष पर विचार कर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। भारत और नेपाल में अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से, ग्रन्थों के माध्यम से प्रचार व प्रसार पाकर इस ग्रन्थ की संगीतात्मकता ने अद्‌भुत लोकप्रियता प्राप्त की है तथा आज भी जब पूरे भाव में डूबकर ये अष्टपदियाँ गायी जाती हैं, तो स्वर, ताल और लय अमूर्त नहीं रहते, वे मूर्त होकर जीवन्त हो उठते हैं।

भारतीय परम्परा 'नाद' को ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठा देती है। कण्ठ और वाद्य नाद को उत्पन्न करते हैं। नृत्य वाद्य तथा गीत के आधार पर होता है। इस तरह गीत, वाद्य और नृत्य ये तीनों कलाएँ नाद के अधीन हैं। 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों पर आधारित विभिन्न नृत्य-शैलियों के भावप्रवण नृत्य जब कभी प्रस्तुत होते हैं, तब लगता है जैसे नाद का ब्रह्म रूप साकर हो उठा हो।

साक्ष्यों के आधार पर तो कुछ भी पुष्ट नहीं; लेकिन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जयदेव के समय में किस प्रकार के नृत्य प्रचलित रहे होंगे। प्रो. अरविन्द मंगरूलकर का अनुमान है कि पूर्वी भारत में दो प्रकार के लोक-नृत्यों की परिणति शास्त्रीय नृत्यों में हुई है; ओडिसी एवं कुचिपुडी। भरतनाट्यम् का इतिहास अपेक्षाकृत पुराना नहीं है। वे सम्भवत: यह मानते हैं कि जयदेव के समय में 'गीतगोविन्द' में जिस नृत्य-शैली का प्रयोग किया गया, उसके साथ ओडिसी नृत्य-परम्परा का बीज रूप में सम्बन्ध रहा होगा। यह तथ्य एक स्थापित तथ्य है कि चाहे ओडिसी हो या कुचिपुडी, जयदेव की अष्टपदी का एक अंश उसमें सामान्यत: शामिल किया ही जाता है। केरल में १६२ पृष्ठों की एक मलयालम अभिनय/नाट्य पुस्तिका है, जो पाम्परिक शैली में 'गीतगोविन्द' के अभिनय पर केन्द्रित है। इसके आधार पर कथकली नृत्य-शैली में 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों का नर्तन किया जाता है। इसी प्रकार मणिपुरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नर्तन-शैली पर 'गीतगोविन्द' का अद्भुत प्रभाव है। गुरु विपिनसिंह के अनुसार मणिपुर में विविध प्रसंगों पर जयदेव के 'गीतगोविन्द' के मूल पदों का प्रयोग होता आया है। मणिपुर में राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला चार प्रकार की रास-लीला से प्रदर्शित की जाती है। उसमें वासन्त रास या वासन्ती रास में 'गीतगोविन्द' के मूल पद तथा उसकी प्रेरणा से रचित ब्रजबुली के पद गाये जाते हैं। वासन्ती रास में राधा का मान साधारण होने के कारण उसके उपयुक्त पद 'गीतगोविन्द' से लिये जाते हैं। 'गीतगोविन्द' के मूल पद कथा-रूप में न होने के कारण गुरुजनों ने अपने पदों की रचना कर उसे कथा-रूप में परिणत किया है।

मणिपुरी नृत्य-शैली में ज्यादातर अभिनय 'गमक' से किया जाता है। मणिपुरी नृत्य-शैली की यह विशिष्टता है कि इसमें सांकेतिकता, मर्यादा तथा संस्कारिता अधिक है। इसमें मुखाभिनय बड़ा स्वाभाविक होता है। सुप्रसिद्ध नृत्य-समीक्षक डॉ. सुनील कोठारी का मत है कि 'गीतगोविन्द' की रचना अभिनय के उद्देश्य से ही हुई थी और इसका अभिनय जयदेव की पत्नी पद्मावती द्वारा किया गया था। उनका यह भी मानना है कि इस ग्रन्थ ने न केवल अनेक संस्कृत अनुकृतियों के लिए प्रेरक तत्त्व का काम किया, बल्कि देश के विभिन्न भागों की स्थानीय भाषाओं में संगीतात्मक नृत्य-नाटक में विशिष्ट वर्ग की असंख्य कृतियों की रचना में सहायता की। डॉ. वी. राघवन का मत है कि सारे संसार में संगीत और नृत्य के सम्पूर्ण इतिहास में जयदेव के 'गीतगोविन्द' से बढ़कर कोई विशिष्ट कृति नहीं है। डॉ. राघवन का यह मत कदापि अतिरंजनापूर्ण नहीं है। यदि मणिपुरी, कथक, कुचिपुडी और भरतनाट्यम् जैसी स्थापित शैलियों में 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों पर आधारित नर्तन अपरिहार्य बना है, तो वहीं दूसरी ओर इसकी व्याप्ति लोक-शैलियों में भी हुई है। सुदूर खानदेश में 'हल्लासिक' नाम से एक लोकनृत्य वहाँ के आभीर आदिवासी आज भी करते हैं, जो रास का ही एक लोकरूप है।

'गीतगोविन्द' की अष्टपदियों में नृत्य, गीत, अभिनय और रागात्मकता के तत्त्व सिमटे हैं, उनके सम्बन्ध में विद्वान् मनीषियों ने निरन्तर शोध किया है। तथा उनके बहुआयामी स्वरूप को विश्व के सामने रखा है, किन्तु यह ऐसा काव्य है कि जिसकी नवीनता सदैव उजागर होती रहती है और डॉ. विद्यानिवास मिश्र का यह कथन पूरी तरह उपयुक्त प्रतीत होता है—'गीतगोविन्द की विशेषता यही है कि वह बहुत ही सीधे शब्दों में लय की वर्तुलता और रूपायमानता की सम्भावनाओं का ऐसा घनीभवन है कि कभी भी उसकी नूतनता चुकती नहीं'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिरनवीन बने रहना ही 'गीतगोविन्द' की आत्मा है। चिरनवीन बने रहने का आह्वान भारतीय संस्कृति का मूल स्वर है और भारतीय मानस की यह विशिष्टता है कि सृजन के प्रत्येक पक्ष को वह सहेजता है और वह फिर विरासत के रूप में उसे सौंपता है।

'गीतगोविन्द' की यह विरासत आज भी विद्यमान है, अपने मौलिक रूप में। राधा-माधव की मनोरम छवियों, लीलाओं और भंगिमाओं को अभिव्यक्त करनेवाला यह महान् काव्य निरन्तर शिल्पियों को भी अपनी ओर खींचता रहा। 'गीतगोविन्द' के पूर्ण उत्कीर्णन के प्रमाण यद्यपि वर्तमान में उपलब्ध नहीं है; लेकिन यत्र-तत्र जो भी शिल्प या शिलालेख मिले हैं, वे इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि समूचे उत्तर व दक्षिण भारत में 'गीतगोविन्द' की लोकप्रियता प्रत्येक अंचल में रही। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'जयदेव' (चरितावली) नामक अपने निबन्ध में यह उल्लेख किया है, "उदयन की टीका जयदेव जी के समय में बन चुकी थी और इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'गीतगोविन्द' जयदेव जी के जीवन-काल से ही सारे संसार में प्रचलित हो गया था। 'गीतगोविन्द' दक्षिण में बहुत गाया जाता है और बाला जी में सीढ़ियों पर द्रविण लिपि में खुदा हुआ है"। श्री नीलमणि मिश्र के अनुसार, पुरी के श्रीमन्दिर के मुख्यद्वार के ऊपर, भुवनेश्वर तथा अन्य स्थानों में निर्मित मन्दिरों में भी 'गीतगोविन्द' में वर्णित अवतारों के खोदने से यह स्पष्ट होता है कि उत्कलीय मूर्ति-कला पर श्रीगीतगोविन्द का अखण्ड प्रभाव सदियों से चला आ रहा है। विशेषकर भुवनेश्वर के राज्य संग्रहालय में संगृहीत दशावतारी श्रीकृष्ण की भव्य मूर्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिल्पी ने—

'वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते'।

श्लोक के आधार पर उस मूर्ति की परिकल्पना की है। अपहिलपट्टम् के महाराजा सारंगदेव वाघेला के १२९१ ई. (१३४८ विक्रमी संवत्) के एक शिलालेख के प्रारम्भ में जयदेव दशमावतार के रूप में कृष्ण का आह्वान कर रहे हैं।

यह तथ्य भी अपने स्थान पर स्थापित तथ्य है कि राधा-माधव के जिस रूप की छवि हमारे मन-मानस में पैठी है, वह वास्तव में 'गीतगोविन्द' की देन है। भागवत के दशम स्कन्ध की कृष्णलीला में कहीं भी राधा का उल्लेख नहीं है। राधा का जो मनभावन स्वरूप हमारे मनों में बसा है, उसका उत्स 'गीतगोविन्द' है तथा इसी ग्रन्थ को आधार मानकर कृष्णकाव्य के प्रणयन की परम्परा निरन्तर चली, जिससे शिल्पी और चितेरे दोनों ही अछूते नहीं रहे। इसलिए १२वीं सदी के बाद जितने भी राधा-माधव के शिल्प बने, चित्र बने,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके मूल में 'गीतगोविन्द' ही रहा। सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी के अनुसार, 'उत्तर-मध्य-काल (१२०० ई. से १७०० ई.) में श्री राधा की अनेक प्रतिमाएँ भारत के विभिन्न भागों में पाषाण, मिट्टी, धातु, हाथीदाँत तथा लकड़ी की बनी हुई मिली हैं। इस काल में नेपाल के मन्दिरों में भी श्री राधा की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ बनायी गयीं'।

यह भी उल्लेखनीय है कि 'गीतगोविन्द' के राधा-माधव जब लोक-जीवन में समाये तो लोकमानस ने उन्हें देश के सुदूर अंचलों में अपने-अपने ढंग से स्थापित कर उनकी आराधना आरम्भ कर दी। मुझे हाल ही में खानदेश के एक दूरस्थ गाँव देवमोगरा में, जो महाराष्ट्र की शहादा तहसील में है, एक मन्दिर मिला, जिसमें मटकी लिये राधा हैं, और साथ में हैं बालकृष्ण। हालाँकि इस मूर्ति को वे राधा नहीं कहते, मोगादेवी कहते हैं, लेकिन ये दोनों शिल्प राधा-कृष्ण के ही हैं।

'गीतगोविन्द' के प्रणयन के बाद राधा के माधुर्य भाव में भारतीय मानस ऐसा डूबा कि कृष्ण जैसा अवतार व्यक्तित्व पीछे रह गया और राधा आगे। राधावल्लभ, राधेश्याम, राधामोहन और ऐसे ही अनेक नाम जनम गये, जो राधा के महत्त्व को स्थापित करते थे। 'गीतगोविन्द' के पूर्व भी राधा रहीं; किन्तु उस रूप में नहीं थीं, जो हमारे मन-मानस में विराजा है और जो वस्तुतः 'गीतगोविन्द' की देन है। मधुरा भक्ति की प्रतिनिधि राधा ने भक्ति के इस रूप को विलक्षण भव्यता और ऊँचाई दी। 'गीतगोविन्द' के अन्त में राधा की कृष्ण से यह मनुहार कि 'उसे अपनी तरह तुम रच दो' का सीधा आशय यही है कि कृष्णभाव को प्राप्त करने के लिए राधाभाव का वरण करो। रहस्यवाद और मधुरा भक्ति के इस भाव में घनिष्ठ साम्य है। मधुरा भक्ति के तत्त्व को पूरी तरह न समझ पाने के कारण यह भावना भी पनपी कि 'गीतगोविन्द' केवल घोर शृंगार का काव्य है, जबकि वस्तुस्थिति भिन्न है तथा इस तथ्य को भलीभाँति अपनी टीका में डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने स्थापित भी कर दिया है।

जहाँ तक राधा शब्द का प्रश्न है, इसका उल्लेख ऋग्वेद से ही मिलता है। उसे विशाखा नक्षत्र, कार्य सिद्ध करनेवाली, वैशाख-पूर्णिमा, वृषभानु गोप की कन्या, कृष्णप्रेयसी, विष्णुकान्ता आदि भी कहा गया है। यास्क ने अपने निरुक्त में वैदिक शब्दों की व्याख्या करते हुए राधः शब्द का अर्थ धन दिया है। श्रीमद्भागवत में राधा का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, केवल एक पंक्ति है—

'अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपनिषदों में भी राधा शब्द का उल्लेख है; किन्तु उनकी प्राचीनता सन्दिग्ध है। प्राकृत और अपभ्रंश के प्राचीन ग्रन्थों में भी राधा उस रूप में नहीं है, जिस रूप में 'गीतगोविन्द' में विद्यमान है। हाल की 'गाथासप्तशती', 'पंचतन्त्र', धनंजय के 'दशरूपक', आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' (८५० ई.) भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' (७५० ई.) में श्री राधा के उल्लेख हैं। मालवा के राजा भोज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में राधाविषयक आठ श्लोक उद्धृत किये हैं। इसी तरह क्षेमेन्द्र के 'दशवतार' (१०६६ ई.) तथा जयदेव के पूर्ववर्ती विल्हण के 'विक्रमांकदेवचरित' में भी राधा का उल्लेख है। बज्जालग्ग नामक महाराष्ट्री प्राकृत के श्वेताम्बर शाखा के एक जैनग्रन्थ में कृष्ण की दो प्रियाओं—राधा और विशाखा का सन्दर्भ है। जैनाचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण ग्रन्थ (१०८९ ई.) में राधा के विरह का वर्णन किया है। दसवीं शताब्दी में त्रिविक्रम भट्ट ने 'नवचम्पू' नामक एक ग्रन्थ की रचना की, इस चम्पू काव्य में भी राधा का उल्लेख आता है। इस तरह वाङ्मय की परम्परा में जयदेव के पूर्व भी राधा का उल्लेख प्रमाणित होता है; किन्तु 'गीतगोविन्द' के अलावा इनमें से कोई भी ग्रन्थ जनमानस के बीच इतना लोकप्रिय नहीं हो पाया, जितना कि 'गीतगोविन्द'। 'गीतगोविन्द' में जो राधा प्रकट हुईं, वहस इतनी भावमय थीं कि उन्होंने आनेवाले हर युग को अपने भाव से आपूरित कर दिया। भारतीय मानस ज्यों-ज्यों भावमय हुआ, राधा त्यों-त्यों और रूपमय, रसमय, प्राणमय, अर्चनामय और आनन्दमय होतीं चली गयीं।

'राधा' भाव से ध्वनि में और ध्वनि से रूप और रस में परिणत हो जाने वाला एक ऐसा महान् चरित्र है, जिसे जयदेव ने शब्द देकर हमारे मानस में सदैव के लिए स्थापित कर दिया। यह ग्रन्थ अपने प्रणयन-काल में ही बेहद लोकप्रिय हुआ और समूचे भारत में कालान्तर में इसकी लोकप्रियता बढ़ती गयी। इसके अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हुए।

बारबरा स्टोलर मिलर ने अपने शोध-ग्रन्थ में यह उल्लिखित किया है कि तेरहवीं सदी के आरम्भ में गुजरात के एक मन्दिर के शिलालेख पर इसे उत्कीर्ण किया गया तथा इसकी व्याख्याओं की स्थापित परम्पराएँ सदैव विद्यमान रहीं। उड़ीसा, बंगाल तथा दक्षिण भारत में इसके गीत पूरे भक्तिभाव के साथ गाये गये तथा सोलहवीं सदी में केरल के मन्दिरों में ये गीत गाये जाने लगे।

'गीतगोविन्द' का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद विलियम जोन्स ने किया, जो सर्वप्रथम सन् १७९२ में प्रकाशित हुआ। इसी को आधार बनाते हुए जर्मनी में एफ.एच. वॉन डेल्बर्ग ने 'गीतगोविन्द' का अनुवाद जर्मन में किया। जर्मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि फ्रेडरिक स्कर्ट ने भी सन् १८२९ में 'गीतगोविन्द' का जर्मन में अनुवाद किया। लैटिन में सी. लॉसेन ने सन् १८२६ में इसे अनूदित किया।

अंग्रेजी में एड्विन अर्नाल्ड ने 'दि इण्डियन सांग ऑफ सांग्स' (सन् १७७५), जार्ज क्रेट्स ने 'श्री जयदेवाज़ गीतगोविन्द : दि लव्हज़ ऑफ कृष्णा ऐण्ड राधा' (सन् १९४०), एस. लक्ष्मी नरसिम्हा शास्त्री ने 'दि गीतगोविन्द ऑफ जयदेव' (सन् १९५६), डंकन ग्रीनलीज़ ने 'थियोसॉफिकल रेण्डरिंग दि सांग ऑफ डिवाइन लव' (१९०२ ई.) तथा मोनिका वर्मा ने 'दि गीतगोविन्द ऑफ जयदेव' (१९६८ ई.) उल्लेखनीय अनुवाद किये। इसी तरह फ्रेंच में 'गीतगोविन्द' का सुन्दर अनुवाद कोर्ट टिलर ने १९०४ ई. में किया। पूरनसिंह ने (१९२६ ई.) केवल पद्यानुवाद अंग्रेजी में 'स्प्रिट ऑफ ओरिएण्टल पोयट्री' नामक ग्रन्थ में किया। भारतीय भाषाओं में भी गीतगोविन्द के अनेक गद्यानुवाद तथा पद्यानुवाद हुए। अकेले उत्कल (उड़ीसा) में ही 'गीतगोविन्द' की हजारों पुरानी प्रतियाँ मिलती हैं तथा लगभग ३०० प्रतियाँ भुवनेश्वर के राज्य संग्रहालय में संरक्षित हैं। इनमें चित्रित, माला की तरह बनी, हाथी दाँतों से बने पट्ट तथा लिखित प्रतियाँ अनेक हैं। इसी तरह अनेक भारतीय भाषाओं तथा लोक-भाषाओं में 'गीतगोविन्द' के अनुवाद हुए हैं। हिन्दी में जिस प्रथम छन्दोबद्ध अनुवाद की सूचना भारतेन्दु ने दी है, वह है राजा डालचन्द की आज्ञा से रायचन्द नागर कृत, द्वितीय अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरिदास कृत और तृतीय हरिश्चन्द्र कृत। आधुनिक युग में रमेशनन्दन शरण, आचार्य विनयमोहन शर्मा तथा नागार्जुन ने भी 'गीतगोविन्द' के अनुवाद किये हैं। अभी तक लगभग १४-१५ पद्यानुवाद व गद्यानुवाद की जानकारी मिली है। नवीनतम टीका सहित गद्यानुवाद (१९९७) डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री का है। इसी तरह अनेक टीकाएँ भी संस्कृत व हिन्दी में की गयी हैं। इन सारी टीकाओं की संख्या लगभग ३५ है। इनमें से सभी प्रकाशित नहीं हैं। कुछ प्रमुख टीकाकारों व टीकाओं के नाम इस प्रकार हैं—उदायनाचार्य, कृष्णदास गोपाल, नारायणदास, भावाचार्य, रामतारण, रामदत्त, रूपदेव, विट्ठल, विश्वेश्वराचार्य, शान्तिनाथ, शेषकमलाकर, शंकरमिश्र, चैतन्यदास, मानकसंग्रहदीपिका और बालबोधिनी आदि।

'गीतगोविन्द' की सारी अष्टपदियाँ इतनी बिम्बात्मक और सहज लालित्य से भरपूर हैं कि उन्होंने चितेरों को, विशेषकर मध्यकालीन चितेरों को बेहद आकृष्ट किया। मुगल, राजस्थानी, पहाड़ी और अनेक आंचलिक शैलियों में 'गीतगोविन्द' के प्रसंगों पर मनोरम रूपायन किये गये। 'गीतगोविन्द' के प्रसंगों पर आधारित सर्वप्रथम चित्र गुजरात शैली में मिलते हैं, जिनका अंकन-काल लगभग १४५० ई. है। राय आनन्दकृष्ण ने उल्लेख किया है कि १६वीं सदी से 'गीतगोविन्द' के चित्र मिलने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगते हैं। इसके पूर्व की ३-४ सदियों में चित्र बने होंगे, लेकिन वे मिलते नहीं। उड़ीसा में मध्य १८वीं सदी से 'गीतगोविन्द' की सचित्र प्रतियाँ मिलने लगती हैं। इनके अंकन परम्परागत होते हुए भी बड़े चारु हैं। पश्चिम भारतीय अपभ्रंश शैली में दशावतार अंकन के साधारण कोटि के चित्र मिले हैं। १६वीं सदी में ही सचित्र 'गीतगोविन्द' की दो चित्रावलियाँ इसी परम्परा में मिली हैं। इनमें से एक राष्ट्रीय संग्रहालय नयी दिल्ली में है। आरम्भिक राजस्थानी शैली की एक सुन्दर चित्रमाला प्रिन्स ऑफ वेलस म्यूजियम, मुम्बई में है। यह प्रायः १५५० से १५७५ ई. के बीच चित्रित हुई होगी। इस चित्रमाला की विशेषता निसर्ग व मनोभावों का सूक्ष्म अंकन है। १६वीं सदी के अन्त की एक चित्रावली एन.सी. मेहता संग्रह, अहमदाबाद में है। इसमें १०१ चित्र हैं तथा यह गुजरात शैली में है। इस चित्रमाला के चित्रों पर नाट्य प्रभाव भी स्पष्ट दीख पड़ता है। १७वीं सदी के आते-आते राजस्थान और पहाड़ की विभिन्न रियासतों में लघुचित्र परम्परा खूब फूली-फली और राजस्थान में मुख्यतः निम्न शैलियाँ व उपशैलियाँ रहीं—मेवाड़, उदयपुर, नाथद्वारा, देवगढ़, शाहपुरा, बनेड़ा, नागौर, बेगूँ, केलवाँ, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, अजमेर, सिरोही, जैसलमेर, घाणेराव, रियाँ, भिगाय, जूनियाँ, बूँदी, कोटा, झालावाड़, आमेर, जयपुर, शेखावटी, अलवर, उणियारा, करोली, भरतपुर आदि।

इसी तरह पहाड़ की प्रमुख शैलियाँ हैं—काँगड़ा, गुलेर, बसोहली, गढ़वाल, चम्बा, बिलासपुर, नूरपुर, कश्मीर (जम्मू), कुल्लू, मण्डी, अमृतसर (सिलन) आदि। इन दोनों क्षेत्रों के अलावा भी काफी राधामाधव-केन्द्रित रूपायन हुए। मालवा शैली के मध्यकाल में प्रमुख केन्द्र थे—नरसिंहगढ़, माण्डू, राघौगढ़ और चन्देरी। इनके अलावा ओरछा, ग्वालियर, नागपुर और बंगाल के कालीघाट में तथा दक्षिण भारत तथा बिहार में भी लघु चित्र बने।

इन तमाम शैलियों में से मेवाड़, बीकानेर, किशनगढ़, बूँदी, कोटा तथा काँगड़ा, गुलेर, बसोहली व मण्डी में 'गीतगोविन्द' पर आधारित मनोरम रूपायन हुए। मेवाड़ में साहिबदीन और बीकानेर में रुकनुद्दीन ने बेहद मनभावन लघु चित्र बनाये। किशनगढ़ कलम में निहालचन्द की तूलिका ने अपना कमाल दिखाया और उसकी कूँची से 'बणीठणी' जैसी महान् राधा रूपायित हुईं। कपिला जी ने ऐसे सचित्र पाँच 'गीतगोविन्द' के मोनोग्राफ प्रकाशित कराये हैं। मेवाड़ी 'गीतगोविन्द' इनमें सर्वाधिक प्रशंसनीय है। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक 'गीतगोविन्द' के प्रभाव के कारण स्थिति यह बनी कि यदि कृष्ण के साथ कोई भी गोपी हो तो चित्रकार उसे राधा ही मानते। जहाँ कई गोपियाँ हों, उनमें से प्रमुख को राधा के रूप में स्वीकार करते। यह मनोभूमि केवल चितेरे की ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, बल्कि तत्कालीन समाज की भी थी। इस प्रभाव में राधा-कृष्ण (नायक-नायिका) के चित्र बनते आ रहे थे। राजस्थान के शैलियों में यह अभिनव प्रयोग भी हुआ कि चित्रों के भीतर नाट्य अभिव्यक्ति के द्वारा राधा-कृष्ण का प्राय: यही रूप मिला, जो स्वतन्त्र चित्रों में था।

पहाड़ी शैलियों में सर्वाधिक समादृत शैली काँगड़ा की रही, जहाँ मानक नामक चितेरे ने 'गीतगोविन्द' की चित्रावली रची। मानक के संरक्षण में बसोहली व काँगड़ा में 'गीतगोविन्द' पर केन्द्रित रूपायन बने। डॉ. एम.एस. रन्धावा जैसे प्रख्यात कलाविद् ने इन चित्रों को खोजा तथा इनके विवरण सहित इन्हें प्रकाशित किया। इसी तरह महाराज संग्राम सिंह द्वितीय के शासनकाल (१७१०-१७३५ ई.) में मेवाड़ में 'गीतगोविन्द' पर आधारित चित्रों की एक लम्बी शृंखला भी चित्रित की गयी। यह अब सरस्वती भण्डार, उदयपुर में संगृहीत व सुरक्षित है। बसोहली शैली में राजा मेदनीपाल के समय (सन् १७३०) में 'गीतगोविन्द' पर आधारित चित्र बने। राजा संसारचन्द (१७५०-१८२३ ई.) का काल न केवल काँगड़ा या पहाड़ की लघुचित्र-कला की शैलियों के इतिहास में, अपितु समूची भारतीय चित्रकला के इतिहास में अद्वितीय है। इस महान् कलाप्रेमी शासक ने चित्रकला को इतना उत्कृष्ट योगदान दिया कि काँगड़ा कलम से निकले चित्र चित्रकला के इतिहास की धरोहर बन गये। 'गीतगोविन्द' के शब्द-शब्द रूपायित हुए और ऐसे रूपायित हुए कि इस रूप की झंकार से इतिहास की गलियाँ गूँज उठीं। प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुम्बई में राधा के 'मानभाव' का एक सुन्दर चित्र काँगड़ा शैली का है। इस चित्र में नाट्य तत्त्व भी स्पष्ट दीख पड़ते हैं।

इसका आकार ३५.५ × २२.५ से.मी. है। इस चित्र में एक ओर कुंज में कृष्ण बैठे हुए हैं, दूती उन्हें सन्देश दे रही है। नाना प्रकार के पुष्पों, लताओं और पक्षियों से भरपूर प्रकृति की समूची शोभा चारों ओर बिखरी है। हरियाली से आच्छादित वृक्षों की पंक्तियाँ स्पष्ट दीख पड़ती हैं। दूसरी ओर राधा एक वृक्ष के नीचे पुष्पदलों से सज्जित शय्या पर मान किये बैठी हैं। उनकी पूरी देह बंकिम हो उठी है, एक हाथ ऊपर उठा हुआ, देह का रोम-रोम तिरछा है, मान के आवेग के कारण वे कृष्ण की ओर देख भी नहीं रही हैं। उनका अप्रतिम सौन्दर्य काँगड़ा शैली की सारी सौन्दर्य-दृष्टि को साकार करता है। राधा को अपने रूप का गुमान भी है; और मान भी लेकिन वे आतुर भी हैं और अधीर भी। विलक्षण लघुचित्र है यह, वे मानिनी भी दीख पड़ती हैं मगर ऐसी भी कि जैसे वे मन जाने को आतुर बैठी हों, यह चित्र एक क्षण की तात्कालिकता का स्थायित्व देने में सदैव के लिए बदल जाने का साक्षी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'गीतगोविन्द' के तीनों प्रमुख पात्रों को उनकी अनूठी भंगिमाओं के साथ इस चित्र में साकार कर दिया गया है।

न केवल काँगड़ा, बल्कि गुलेर, नूरपुर, चम्बा और मण्डी में 'गीतगोविन्द' पर आधारित व उससे प्रभावित बहुत से मनभावन चित्र बने।

'गीतगोविन्द' के चित्रों की एक श्रृंखला सन् १५९० में उत्तरप्रदेश के पूर्वी इलाके जौनपुर में बनायी गयी। यह अभी प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुम्बई में है। यह उल्लेख भी मिलता है कि सन् १६१५ में अकबर के समय में एक ऐसा 'गीतगोविन्द' चित्रित किया गया, जिसमें राधा और उसकी सखियों को मुगल वेशभूषा में दर्शाया गया है। जयदेव का एक काल्पनिक चित्र खजांची संग्रह में है, जिसमें उन्हें पाँच अन्य कवियों के साथ दर्शाया गया है। यह आरम्भिक 'चौर-पंचारिका' शैली में है तथा इस पर सन् १५८० अंकित है। 'गीतगोविन्द' १६१० ई॰ में पश्चिमी राजस्थान में भी चित्रित हुआ। इसकी शैली जैन शैली थी। किशनगढ़ शैली में भी सन् १५२० में राजा कल्याणसिंह के काल में एक लम्बी श्रृंखला 'गीतगोविन्द' पर आधारित चित्रों की बनी।

'गीतगोविन्द' के प्रसंगों पर प्राय: प्रत्येक स्थापित शैली में चित्र बने, जिनमें से मेवाड़, बीकानेर, बूँदी, कोटा तथा किशनगढ़ कलमों के चित्रों ने, जो राजस्थान की कलमें थीं, पर्याप्त प्रसिद्धि पायी। इसी तरह काँगड़ा, गुलेर, बसोहली व मण्डी कलमों के चित्र भी पर्याप्त प्रसिद्ध हुए। इनमें उत्कृष्टतम लघु चित्र काँगड़ा कलम के हैं, ये सभी शैलियाँ पहाड़ की थीं। पहाड़ में गढ़वाल कलम भी काफी लोकप्रिय रही। इसके अप्रतिम चित्रकार मोलाराम थे, जिन्होंने मन्दार के फूलों से लदी टहनियों के बीच राधा और कृष्ण की मनोरम प्रणय-भंगिमाएँ रूपायित की हैं।

देश-विदेश के विभिन्न संग्रहालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहों में 'गीतगोविन्द' के ये मनोहारी रूपायन सुरक्षित हैं। यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि पूरे देश में विभिन्न शैलियों में 'गीतगोविन्द' चित्रित किया गया। डॉ. कपिला वात्स्यायन ने 'जौर गीतगोविन्द' में, जो वर्ष १९८० ई. में प्रकाशित हुआ, कुल १८२ ऐसे ग्रन्थों की वर्षवार तथा भाषावार सूची दी है, जो 'गीतगोविन्द' की व्याख्या से सम्बन्धित हैं। उन्हें ४०-४५ सचित्र 'गीतगोविन्द' की प्रतियाँ भी मिलीं। हाल ही में अक्टूबर १९९७ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा भारत कला भवन में आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में कपिला जी ने मुझे अवगत कराया कि अब उनके कम्प्यूटर में लगभग तीन हजार 'गीतगोविन्द' की विभिन्न क्षेत्रों से मिली पाण्डुलिपियों की सूचना संगृहीत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि अभी तक जितने सचित्र 'गीतगोविन्द' प्रकाश में आये हैं, वे स्थापित शैलियों में चित्रित हैं व राजाश्रय में चितेरों ने बनाये हैं, लेकिन मुझे वर्ष १९९५ में धूलिया (महाराष्ट्र) में एक ऐसा सचित्र 'गीतगोविन्द' उपलब्ध हुआ, जो एक समन्वित लोकशैली में चित्रित किया गया है। इस शैली पर खानदेशी प्रभाव है तथा इसके लघुचित्र खानदेश के स्थानीय चितेरों के साथ-साथ सम्भवत: राजस्थान के चितेरों ने भी मिलकर बनाये हैं। इस शैली पर जयपुर, अलवर, मेवाड़ और नाथद्वारा शैलियों का भी प्रभाव है। मैं इसे 'कान्हेरी शैली' कहता हूँ; क्योंकि यह कान्हदेश, जो कालान्तर में खानदेश के नाम से जाना जाने लगा, की देन है। यह 'गीतगोविन्द' सन् १७६५ ई. में पूर्ण हुआ। इसमें कुल २९० लघुचित्र हैं। यह वर्तमान में समर्थ वाग्देवता मन्दिर, धूलिया में है। यह अपने-आप में पूर्ण है। मंगलश्लोक से लेकर प्रत्येक अष्टपदी पर लघुचित्र बने हैं। यद्यपि इस पर मालवा, दकनी व नागपुर कलमों का भी प्रभाव है; किन्तु रंग देशज हैं तथा परिवेश पूर्णत: आंचलिक है। परिधान व प्रतीक भी स्थानीय हैं। राधा किञ्चित् स्थूल लेकिन सुगठित देहवाली नारी के रूप में चित्रित हैं। वे नववारी साड़ी और हरे रंग का काँच का चूड़ा पहने हैं। वह लहँगा-चुन्नी पहने बड़े मनोरम रूप में विभिन्न भंगिमाओं में दीख पड़ती हैं। कृष्ण को विठोबा की तरह चित्रित किया गया है। यह शैली अभी तक प्रकाश में नहीं आ पायी। इसकी विशेषताएँ विलक्षण हैं। इस जीवन्त शैली को 'कान्हेरी' कहना ही उपयुक्त है; क्योंकि यह 'गीतगोविन्द' उस कान्हा को पूरे आस्थाभाव के साथ इन लोक-चितेरों ने समर्पित किया, जिस कान्हा के हृदय के स्पन्दन इस 'कान्हेरी' को ही समर्पित रहे।

उक्त विवरण 'गीतगोविन्द' के बहुआयामी स्वरूप से जुड़े अनेक कलात्मक पक्षों का एक विहंगावलोकन है। 'गीतगोविन्द' की रसात्मक अनुभूति को अपने में समेट लेने का यत्न भर कर लेना भी कभी-कभी स्वयं का गीतमय, गोविन्दमय हो जाना है। जब कभी गहरे घने बादल घिर आएँ, तमाल के वृक्ष अँधेरे को दूना करने लगें, रास्ते की सुध न पड़े, तो अपने मन के नन्द के इस निदेश को मान लेना चाहिए कि किसी राधा के सहारे अपने घर पहुँच जाएँ, यह राधा हमारे लिए 'गीतगोविन्द' ही है और वह घर जहाँ हमें पहुँचना है, वह भी 'गीतगोविन्द' ही है।

'गीतगोविन्द' में समाये इस मार्गदर्शी संकेत के आधार पर अपनी सार्थक यात्रा के नैरन्तर्य को निरन्तर रखा जा सकता है। यही निरन्तरता जीवन की अनबुझी प्यास भी है और वह आस भी, जिसके भरोसे सदैव के लिए तृप्त होने की सफल कामना की जा सकती है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्टम्–२

संक्षिप्त-ग्रन्थानुक्रमणिका

ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक/प्रकाशन-वर्ष
१. भारत की चित्रकला	कृष्णदास राय	भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाध (१९७४)
२. भावपुरुष श्रीकृष्ण	डॉ. विद्यानिवास मिश्र	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली (१९८९)
३. गीतगोविन्द काव्य तथा विवेचन	डॉ. कपिला वात्स्यायन	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (१९८८)
४. गीतगोविन्द : साहित्यिक अध्ययन	डॉ. कौशल कुमारी	सुमन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली (१९९३)
५. रास साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन	डॉ. शिवाजी देवरे	विद्या प्रकाशन, गोविन्दनगर, कानपुर (१९९५)
६. दि काँगड़ा पेण्टिंग्स ऑफ दि गीतगोविन्द	डॉ. एम.एस. रन्धावा	राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली (१९८२)
७. जौर गीतगोविन्द	डॉ. कपिला वात्स्यायन	राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली (१९८०)
८. मेवाड़ी गीतगोविन्द	—	(१९८७)
९. श्रीराधा का क्रम विकास	डॉ. शशिभूषण दासगुप्ता	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी (१९५६)
१०. भारतीय साहित्य में राधा	डॉ. कल्याणमल लोढ़ा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
११. राजस्थानी चित्रकला	डॉ. जयसिंह नीरज	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
१२. भारतीय चित्रकला	वाचस्पति गैरोला	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी (१९९०)
१३. कृष्ण ऑफ दि भागवत पुराण, दि गीतगोविन्द एण्ड अदर टेक्स्ट्स		राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली (१९८२)
१४. इण्डियन पेण्टिंग	डगलस बैरट एण्ड बेसिलग्रे	रिजोल्ड इण्टरनेशनल पब्लिकेशन (१९७८)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१५. दि न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (मुगल एण्ड राजपूत पेण्टिग)	माइलो क्लीवलैण्ड बीच	कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस (१९९२)
१६. दि डिवाइन कन्सर्ट राधा एण्ड गॉडेस् ऑफ लव	जॉन स्ट्रेटन हावले	बोस्टन (१९८२)
१७. बैठे हैं आस लिये (विशेष–'राधारूपायन' तथा 'तेरी भौंह की मरोर तें ललित त्रिभंगी भए' शीर्षक निबन्ध)	नर्मदाप्रसाद उपाध्याय	प्रवीण प्रकाशन, महरौली नयी दिल्ली (१९९८)
१८. कृष्णा : दि डिवाइन लवर मिथ एण्ड लीजेण्ड थ्रू इण्डियन आर्ट	सम्पादन-प्रोपेशर अन्ना एल. डल्लापिक्कोला	बी.आई. पब्लिकेशन्स ५४, जनपथ, नयी दिल्ली (१९८२)
१९. जयदेवकृत गीतगोविन्द	डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री	ज्ञानगंगा, चावड़ी बाजार, दिल्ली
२०. द गीतगोविन्द ऑफ जयदेव	बारबरा मिलर	मोतीलाल वनमासी
२१. भारतीय वाङ्मय में राधा	बलदेव उपाध्याय	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्टम्- ३

श्लोकपादानुक्रमणिका

श्लोकपादाः	पृष्ठाङ्काः
अक्ष्णोर्निक्षिपदञ्जनं श्रवणयोः	२२३
अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः	१५६
अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन.	२३७
अत्रान्तरे च कुलटा.	१५८
अत्रान्तरे मसृणरोषवशामसीम.	२०३
अथ कथमपि यामिनीं विनीय	१८७
अथ तां गन्तुमशक्तां	१५०
अथ सहसा सुप्रीतं	२४८
अथागतां माधवमन्तरेण	१६५
अद्रोत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवल.	५५
अधरसुधारसमुपनय भामिनि	२४२
अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव	२२०
अनिलतरलकिसलयनिकरेण	२१९
अनिलतरलकुवलयनयनेन	१७९
अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रम.	५७
अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्	१९५
अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर हे	३८
अमलकमलदललोचन भवमोचन हे	३७
अमृतमधुरमृदुतरवचनेन	१८०
अलसनिमीलितलोचनया	८९
अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं	२५०
अविरलनिपतितमदनशरादिव	११६
अहमिह निवसामि नगणितवनवेतसा	१६३
अहमिह निवसामि याहि राधाम्	१३१
अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम्	१६२
आवासो विपिनायते प्रियसखी.	१२१
आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखो.	१४६
इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकाम्	१०१
इति चटुलचाटुपटुचारु मुरवैरिणो	२०९
इह रसभणने कृतहरिगुणने	१७७
उन्मदमदनमनोरथपथिक.	४७
उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुप.	५६
उरसि मुरारेरुपहितहारे	१४०
कज्जलमलिनविलोचनचुम्बन.	१९०
कति न कथितमिदमनुपदमचिरम्	१९९
कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम्	१५९
कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन	१८१
कन्दर्पज्वरसंज्वराकुलतनो.	१२८
करकमलेन करोमि चरणमह.	२४०
करतलतालतरलवलयावलि.	६४
कापि कपोलतले मिलिता	६२
कापि चपला मधुरिपुणा	१६६
कापि विलासविलोलविलोचन.	६२
कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन हे	३६
काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणाम्	२२४
किमिति विषीदसि रोदिषि विकला	१९९
किसलयशयनतले कुरु कामिनि!	२३९
किसलयशयननिवेशितया	८८
कुरु यदुनन्दन! चन्दनशिशिर.	२४९
कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे	२२७
कुसुमविशिखशरतल्पमनल्प.	११७
कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया	१६२
केलिकलाकुतुकेन च काचिद्	६३
केशव! धृतकच्छपरूप	२२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केशव! धृतकल्किशरीर ३०
केशव! धृतदशविधरूप ३०
केशव! धृतनरहरिरूप २४
केशव! धृतबुद्धशरीर २९
केशव! धृतभृगुपतिरूप २७
केशव! धृतमीनशरीर २०
केशव! धृतरघुपतिरूप २८
केशव! धृतवामनरूप २५
केशव! धृतशूकररूप २३
केशव! धृतहलधररूप २८
कोकिलकलरवकूजितया ९०
कंसारिरपि संसार. १००
किं करिष्यति किं वदिष्यति १०२
किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने १५७
क्षणमधुना नारायणमनुगत. २३९
क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे १२९
क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं २७
क्षम्यतामपरं कदापि १०६
क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे २२
गणयति गुणग्रामं भामं भ्रमदपि नेहते ८१
गतवति सखीवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर. २३९
गोपकदम्बनितम्बवती. ७६
घटयति सुघने कुचयुगगगने १७३
घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे १७२
घनजघनस्तनभारभरे २१८
चञ्चलकुण्डलदलितकपोला १६७
चन्दनचर्चितनीलकलेवर. ५८
चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डक: ७५
चरणकमलगलदलक्तकसिक्त. १९१
चरणकिसलये कमलानिलये १७६
चरणरणितमणिनूपुरया ९३
चलमलयवनपवनसुरभिशीते २२७
चिन्तयामि तदाननं १०४
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन २५
जनकसुताकृतभूषण जितदूषण हे ३८
जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् २००
जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः २३८
जलदपटलवलदिन्दुविनिन्दक. ७८
जितबिसशकले मृदुभुजयुगले १७४
तत्किं कामपि कामिनीयभिसृतः १६४
तन्वि! खिन्नमसूयया १०४
तरलदृगञ्चलवलनमनोहर. २३४
तव विरहे वनमाली १३२
तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गं. २४
तव चरणे प्रणता वयमिति भावय हे ३९
तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव १९५
तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो २४६
तानि स्पर्शसुखानि ते च·तरलाः ११२
तामथ मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां १९७
तामहं हृदि सङ्गताम् १०४
तालफलादपि गुरुमतिसरसम् १९८
तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलो. ११२
त्यजति न पाणितलेन कपोलम् १२४
त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती १५१
त्वद्वाम्येन समं समग्रमधुना १४५
त्वमसि मम जीवनं त्वमसि मम भूषणं २०५
त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् १५३
त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां २५६
त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमति. २३०
दयितविलोकितलज्जितहसिता १६८
दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्पराग. ५८
दशनपदं भवदधरगतं मम १९२
दहति शिशिरमयूखे मरणम् १३३
दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन हे ३५
दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् १२३
दुरालोकः स्तोकस्तबकनवका. ९७
दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यास्पदं २१३
दृश्यसे पुरतो गतागत. १०५
दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरे. २४५
धीरसमीरे यमुनातीरे १३७
ध्यानलयेन पुनः परिकल्प्य ११९
ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणम् १३३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नयनकुरङ्गतरङ्गविकाश. २५०
नयनविषयमपि किसलयतल्पम् १२४
नवलसदशोकदलशयनसारे २२६
नाथ हरे! जय नाथ हरे! १५१
नामसमेतं कृतसङ्केतं १३८
नायातः सखि निर्दयो यदि शठः १७८
निजगाद सा यदुनन्दने २४९
निन्दति चन्दनमिन्दुकिरण. ११४
निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं २९
निभृतनिकुञ्जगृहं गतया ८३
नीलनलिनाभमपि तन्वि! तव लोचनं २०६
पतति पतत्रे विचलति पत्रे १३९
पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्न. ४०
परिहर कृतातङ्के शङ्कां २१०
पर्यङ्कीकृतनागनायकफणा. २५५
पश्यति दिशि दिशि १५०
पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं १०८
पीनपयोधरभारभरेण ६०
पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपते. १३५
प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव ११९
प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निविडा. २४४
प्रथमसमागमलज्जितया ८६
प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं २०
प्रविश राधे! माधवसमीपमिह २२५
प्रसरति शशधरबिम्बे १५९
प्रातर्नीलनिचोलमच्युतमुरः १८६
प्रियपरिरम्भणरभसवलितमिव २४२
प्रिये चारुशीले मुञ्च मयि मानमनिदानं २०४
प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलया. २१४
बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः २१२
बहिरिव मलिनतरं तव कृष्ण १९२
बाधां विधेहि मलयानिलपञ्चबाण १८५
भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपट-
कण्डूतिपिहित. २३७
भणति कविजयदेवे १३४
भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा १५३
भ्रमति भवानबलाकवलाय १९३
भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि २५०
भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो ११०
भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि १०९
मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने २२५
मणिमयमकरमनोहरकुण्डल. ७८
मदनमहीपतिकनकदण्डरुचि. ५०
मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे २२८
मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन हे ३७
मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे २२९
मनोभवानन्दन चन्दनानिल १८३
मम मरणमेव वरमतिवितथकेतना १६१
मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद २५२
माधविकापरिमलललिते ५२
माधवे मा कुरु मानिनि मानमये १९८
मामतिविफलरुषा विकलीकृत. २४३
मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी १६१
मामियं चलिता विलोक्य वृतं १०१
माराङ्के रतिकेलिसङ्कुलरणा. २४६
मीलद्दृष्टिमिलत्कपोलपुलकं २४८
मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं १४०
मुग्धे! मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके २१७
मुग्धे! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं २११
मुहुरवलोकितमण्डनलीला १५२
मृगमदरसवलितं ललितं कुरु २५१
मृगमदसौरभरभसवशंवद. ४९
मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः १
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं ३०
यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् १६०
यदि हरिस्मरणे सरसं मनो १५
यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनु. २५५
यमुनातीरवानीर. ११४
यामि हे कमिह शरणं १६०
रचय कुचयोः पत्रं २५३
रजनिजनितगुरुजागरराग. १८८
रतिगृहजघने विपुलापघने १७५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रतिसुखसमयरसालसया ९३
रतिसुखसारे गतमभिसारे १३७
रमते यमुनापुलिनवने १७१
रमयति सुदृशं कामपि सुभृशं १७७
राधामुग्धमुखारविन्दमधुप. १४८
राधावदनविलोकनविकसित. २३१
राधिका विरहे तव केशव १२२
रासे हरिमिह विहितविलासं ७२
रासोल्लासभरेण विभ्रमभृताम् ६९
रिपुरिव सखीसंवासोऽयं १८४
ललितलवङ्गलतापरिशीलन. ४५
वदनकमलपरिशीलनमिलित. २३५
वदनसुधानिधिगलितममृतमिव २४१
वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी २०३
वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गर. १९०
वर्णितं जयदेवकेन १०६
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना २३
वसति विपिनविताने १३४
वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवैः ४२
वहति च वलितविलोचनजलधर. ११७
वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय १३२
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं २८
वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा ११
वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः १७
विकसितसरसिजललितमुखेन १८०
विकिरति मुहुः श्वासानाशाः १४४
विगलितलज्जितजगदवलोकन. ५१
विगलितवसनं परिहृतरसनं १४२
विचलदलकललिताननचन्द्रा १६७
विततबहुवल्लिनवपल्लवघने २२८
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं २८
विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्तः १५४
विपुलपुलकपृथुवेपथुभङ्गा १६८
विपुलपुलकभरदन्तुरितं २३६
विपुलपुलकभुजपल्लववलयित. ७७
विरचितचाटुवचनरचनं २१६
विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुजद्युतिः १६९
विलिखति रहसि कुरङ्गमदेन ११८
विशदकदम्बतले मिलितं ८०
विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन् ६६
विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ ७१
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ४५
विहितपद्मावतीसुखसमाजे २२९
विहितविशदबिसकिसलयवलया १५२
वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसाद् १३०
वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते ३१
व्यथयति वृथा मौनं २१२
व्याकोशः केशपाशस्तरलितमलकैः २४७
शशिकिरणच्छुरितोदरजलधर. २३५
शशिमुखि! तव भाति भङ्गुरभ्रू. २११
शशिमुखि मुखरय मणिरसनागुण. २४३
शृणु रमणीयतरं तरुणीजन. २१८
श्यामलमृदुलकलेवरमण्डल. २३३
श्रमजलकणभरसुभगशरीरा १६८
श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल हे ३३
श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुत. ६५
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् १५४
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारं ३०
श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ३९
श्रीजयदेवभणितमतिललितम् २००
श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दर. ८१
श्रीजयदेवभणितमधरीकृत. २२२
श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् १२६
श्रीजयदेवभणितमिदमतिशय. ९५
श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं १२०
श्रीजयदेवभणितमिदमनुपद. २४४
श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति ५४
श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चित. १९४
श्रीजयदेवभणितवचनेन १८३
श्रीजयदेवभणितविभव. २३६
श्रीजयदेवभणितहरिरमितम् १६९
श्रीजयदेववचसि जयदे २५२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे	१४३	स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं	२०७
श्रीभोजदेवप्रभवस्य रामा.	२५७	स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन	१८१
शिलष्यति कामपि चुम्बति कामपि	६४	स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति	२०१
शिलष्यति चुम्बति जलधरकल्पम्	१५३	स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी	२०७
श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम्	१२३	स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भण.	५३
सकलभुवनजनवरतरुणेन	१८२	स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव	२२०
सखि या रमिता वनमालिना	१७९	स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं	२०८
सखि हे केशिमथनमुदारं	८३	स्मरशरसुभगनखेन करेण	२२१
सजलजलदसमुदयरुचिरेण	१८१	स्मरसमरोचितविरचितवेशा	१६६
सजलनलिनदलशीतलशयने	१९९	स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य!	१२८
सञ्चरदधरसुधामधुर.	७२	हरिचरणशरणजयदेवकविभारती	१६३
सत्यमेवासि यदि सुदति मयि कोपिनी	२०५	हरिपरिरम्भणवलितविकारा	१६६
सभयचकितं विन्यस्यन्तीं	१४७	हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासं	२३२
समुदितमदने रमणीवदने	१७१	हरिरभिमानी रजनिरिदानी.	१४३
सरसघने जघने मम शम्बर.	२५२	हरिरभिसरति वहति मधुपवने	१९७
सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम्	१२३	हरिरिति हरिरिति जपति सकामम्	१२५
साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्	९८	हरिरिह मुग्धवधूनिकरे	५८
साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः	२५६	हरिरुपयातु वदतु बहुमधुरम्	२००
सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्.	२०२	हरिहरि याहि माधव याहि केशव	१८८
सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां	२२२	हरि-हरि हतादरतया	१०१
सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्यु.	१२६	हस्तस्रस्तविलासवंशमनृजु.	९५
सा विरहे तव दीना	११४	हारममलतरतारमुरसि	२३२
सा ससाध्वसं सानन्दं	२३१	हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम.	२२५
सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं	२१६	हृदि बिसलताहारो नायं	
स्तनविनिहितमपि हारमुदारम्	१२२	भुजङ्गमनायकः	१०७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi